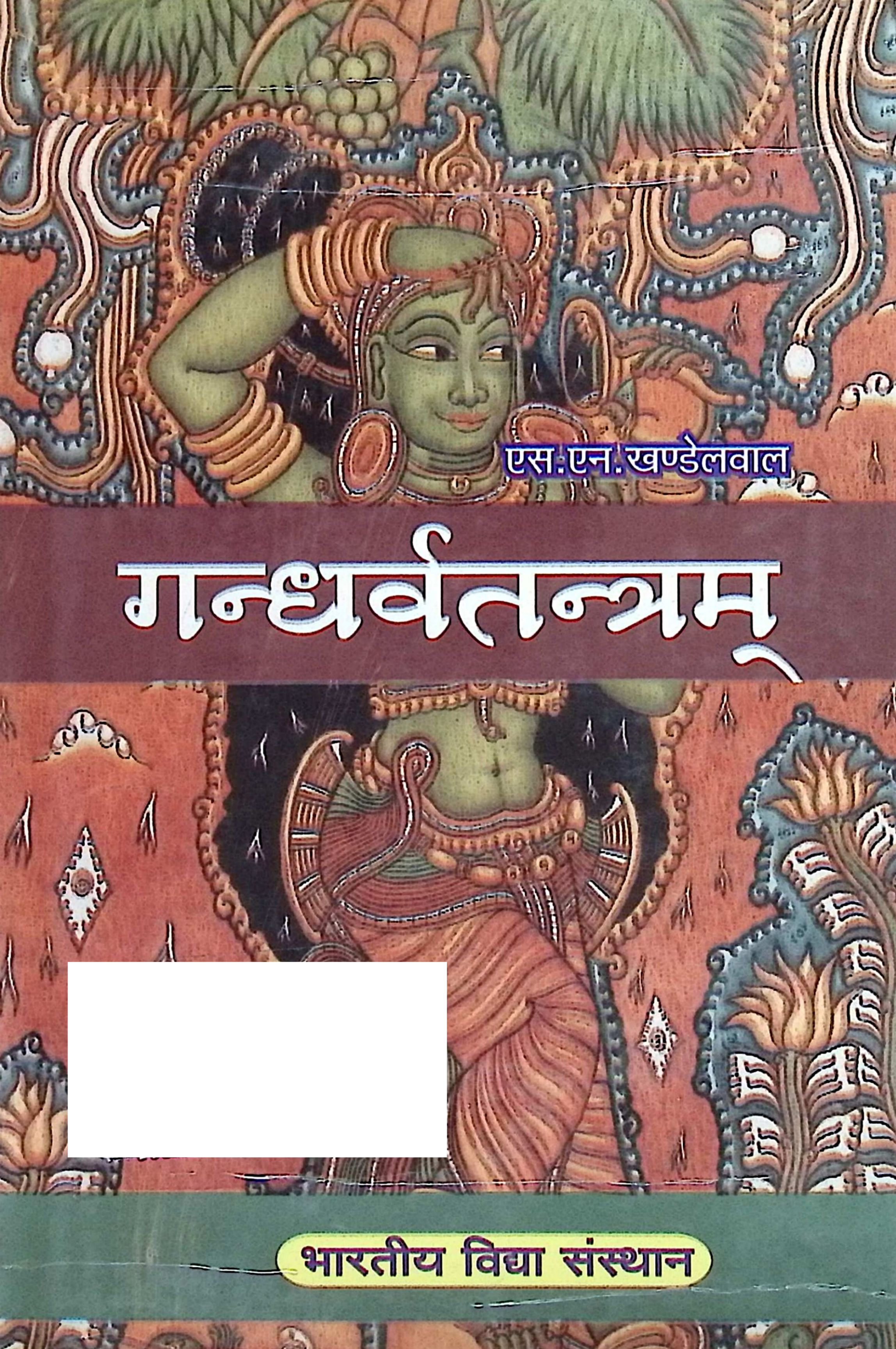

एस.एन.खण्डेलवाल

गन्धर्वतन्त्रम्

भारतीय विद्या संस्थान

अथशिवप्रोक्तम्

गन्धर्वतन्त्रम्

हिन्दी भाष्य सहित

भाषा भाष्यकार:

एस.एन. खण्डेलवाल

[redacted]

[redacted]

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

वाराणसी

प्रकाशक

भारतीय विद्या संस्थान

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
सी. 27/65-1-एस.- जगतगंज, वाराणसी- 221002
☎ 0542-2201655

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी भी रूप में या किसी भी अर्थ में प्रकाशक की अनुमती के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन है।

I.S.B.N- 978-93-81189-04-7
संस्करण - 2012
मूल्य - ₹. 700.0

6९३

[redacted]

मुद्रक–

आशिर्वाद प्रिन्टर्स

मीरापुर बसहीं- कैण्ट, वाराणसी

GANDHARVATANTRAM

WITH

Hindi Commentary

BY

S.N. KHANDALWAL

BHARATIYA VIDYA SANSTHAN
VARANASI- 221002

Publisher by
BHARATIYA VIDYA SANSTHAN
Publisher & Booksellers
C. 27/65-1-S JAGAT GANJ
VARANASI-221 002
☎ : 0542-2201655

No Part of this book shall be reproduced or reprinted without permission of publishers in writing.

◆

ISBN : 978-93-81189-04-7
Edition. 2012
Price. ₹700.0

◆

Printed by--
Ashirvad Printing Press
Meerapur Bashahi, Varanasi.

निवेदन

प्रस्तुत ग्रन्थ 'गन्धर्वतन्त्र' आज अपने पूर्वरूप में नहीं मिलता। शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह विदित होता है। कि इसमें 12000 श्लोक थे। कालक्रमानुसार लुप्त होते-होते आज केवल 4445 श्लोक प्राप्त होते हैं। वह भी क्रमबद्ध रूप से नहीं मिलते। परवर्त्ती विद्वानों ने प्राप्त 4445 श्लोकों को 42 पटलों में बाँटकर प्रस्तुत किया है। गहन अध्याय से ज्ञात होता है कि बीच-बीच में कड़िया विच्छिन्न सी लगती हैं। कहीं इसमें कर्मकाण्ड की प्रखरता उपलब्ध होती है तो कहीं अत्यन्त उच्चस्तरीय अध्यात्म विज्ञान से भी इसे संजोया गया है। अपूर्ण होने के कारण आज जो इसका प्रारूप प्राप्त है, उससे कई जिज्ञासाओ का समापान नहीं हो सका है। अनेकं प्रश्नचिन्ह अभी भी अनुत्तरित से प्रतीत होते हैं। मूलतः इसमें श्रीविद्या का प्रचुरता से उपदेश दिया गया है। साथ ही पञ्चमकार साधना के भी प्रभूत प्रंसग इसमें प्राप्त होते हैं। ग्रन्थ पूर्ण न होने के कारण क्रियाकाण्ड सम्बन्धित तारतम्यता भी भंग सी प्रतीत होती है। कई स्थान पर केवल संकेत मात्र दिया गया है। हो सकता है कि उनका उपबृहंण लुप्त हो गये अंश में रहा होगा। इसी कारण इसमे वर्णित क्रियाकाण्ड के विच्छिन्न अंशों को पूरा करने के लिये अन्य पुरश्चरणपरक तन्त्रग्रन्थों की सहायता लेना एक आवश्यकता सी प्रतीत हो रही है। तभी इसका क्रियाकाण्ड पुश्चरणकर्त्ता पूर्ण कर सकेगा। वैसे शब्दजाल से इस विषय पर चाहे जितना लिख दिया जाये लेकिन यह एक प्रायोगिक विज्ञान है। अतः इस पर अधिक वाग्विलास में न पड़कर इसके क्रियाकाण्ड का अनुशीलन करना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है। यही अध्येतागण से निवेदन भी है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में भारतीय विद्या संस्थान के अधिष्ठाता श्री कुलदीप जी जैन का उद्यम विशेष स्तुत्य है।

नववर्ष दिवस, सन् 2012 ई.
बी 31/32 लंका, वाराणसी

एस. एन. खण्डेलवाल

विषयानुक्रमणिका

प्रथमः पटलः - तन्त्रप्रस्तावनानिरूपणम् 1
द्वितीयः ’’ - विद्याभेदोद्धारनिरूपणम् 12
तृतीयः ’’ - पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपणम् 20
चतुर्थः ’’ - त्रैलोक्यमोहनकवचनिरूपणम् 32
पञ्चमः ’’ - यन्त्रोद्धारआवरणार्चनशक्त्यर्चननिरूपणम् 50
षष्ठः ’’ - कर्मयोगादिक्रमनिरूपणम् 67
सप्तमः ’’ - स्नानसन्ध्योपासनादिविधिनिरूपणम् 84
अष्टमः ’’ - यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादिनिरूपणम् 99
नवमः ’’ - करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यासनिरुपणम् 112
दशमः ’’ - षोढान्यासक्रमनिरूपणम् 119
एकादशः ’’ - नित्यन्यासान्तर्यागविधिनिरूपणम् 132
द्वादशः ’’ - ध्यानयोगनिरूपणम् 144
त्रयोदशः ’’ - बहिर्यागविधि,विशेषार्घ्यपात्रसाधनानिरूपणम् 162
चतुर्दशः ’’ - बहिर्यागविधिनिरूपणम् 172
पञ्चदशः ’’ - पूजोपचारतत्फलवर्णनम् 180
षोडशः ’’ - उपचारफलविधिनिरूपणम् 194
सप्तदशः ’’ - प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरूपणम् 206
अष्टादशः ’’ - जपादिविधिनिरूपणम् 218
एकोनविंशः ’’ - बटुकादिबलिविधिनिरूपणम् 233
विंशः ’’ - शेषिकाविद्याक्रमनिरूपणम् 242
एकविंशः ’’ - पूजासम्पूरणाद्युपायविधिनिरूपणम् 249
द्वाविंशः ’’ - कुमारीपूजनविधाननिरूपणम् 256
त्रयोविंशः ’’ - कुमारीपूजावर्णनम् 271
चतुर्विंशः ’’ - कुमारीपूजामहिमानिरूपणम् 278
पञ्चविंशः ’’ - आपत्कालपूजादिविधिनिरूपणम् 287
षड्विंशः ’’ - गुरुलक्षण, दीक्षानिरूपणम् 294
सप्तविंशः ’’ - दीक्षाविधाननिरूपणम् 305

अष्टाविंशः पटलः - पुरश्चर्याविधिनिरूपणम् 316
एकोनत्रिंशः ,, - विद्यासाधननिर्णयनिरूपणम् 327
त्रिंशः ,, - विद्याकूटत्रयसाधननिरूपणम् 339
एकत्रिंशः ,, - होमतद्द्रव्यविधिनिरूपणम् 347
द्वात्रिंशः ,, - मुद्राधारणविधिनिरूपणम् 354
त्रयस्त्रिंशः ,, - चक्रराजप्राणप्रतिष्ठानिरूपणम् 358
चतुस्त्रिंशः ,, - कुलाचारवर्णनम् 363
पञ्चत्रिंशः ,, - काम्यपूजादिविधिनिरूपणम् 377
षट्त्रिंशः ,, - शक्त्यानयनपूजातत्वनिरूपणम् 385
सप्तत्रिंशः ,, - शक्तिमाहात्म्यदेहासिद्धिनिरूपणम् 394
अष्टात्रिंशः ,, - शिवशक्तिप्राप्तिनिरूपणम् 404
उनचत्वारिंशः ,, - देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णनम् 411
चत्वारिंशः ,, - शिवशक्तिज्ञानकुलवर्णनम् 418
एकचत्वारिंशः ,, - अनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरूपणम् 428
द्विचत्वारिंशः ,, - तत्वज्ञानोपदेशवर्णनम् 440

◆

।। श्री ।।

गन्धर्वतन्त्रम्

प्रथमः पटलः

मङ्गलाचरण

यं वदन्त्यमलात्मानः पुरुषं प्रकृतेः परम् ।
चिद्रूपं परमानन्दं वन्दे देवं विनायकम् ।।१।।

मैं चित् रूप परम आनन्दमय उन विनायक देव की चरण वन्दना करता हूँ जिनको मल रहित (मलत्रय से रहित) ऋषिगण तथा महापुरुषगण प्रकृति से परे 'पुरुष' कहते हैं ॥१॥

भर्तारं गुणवृद्धिशून्यमचलं गत्वाभिसारक्रमाद्
दीव्यन्ती कुलवर्त्मनैव गुणवत्यानन्दमातन्वती ।
शेते सुप्तभुजङ्गपोतकुटिला या मेरुमूलं गता
सूते पुत्र शतानि तानि मुरजिन्मुख्यानि पायादसौ ।।२।।

(इस श्लोक में भगवती कुण्डलिनी की वंदना की जाती है) जो अभिसार क्रम से (उर्ध्वोत्थित होकर) क्रमशः गुण वृद्धि से रहित अचल (साम्यभावापन्न) पति के पास जाकर प्रकाशित (मुदित) होती हैं, साथ ही कौलमार्ग गामिनी होकर गुणयुक्त होकर आनन्द का विस्फार करती हैं, जो निद्रित सर्पशिशु (सर्पिणी) के समान कुटिल (कुण्डलीकृत) होकर मेरुदण्ड के मूल में (मूलाधार) स्थित होकर विष्णु आदि शताधिक प्रमुख देवताओं की सृष्टि करती हैं, वे भगवती आपकी रक्षा करें ।

कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्माण्ड में तथा देहरूप ब्रह्माण्ड में भी स्थित रहती है । इसकी स्थिति मेरुदण्ड के मूल में मूलाधार में कही गयी है। यह सार्द्ध त्रिवलयाकारा है। शक्तिपात से यह सार्द्ध त्रिवलया कुण्डली आरोह क्रम से क्रमशः प्रत्येक चक्रों का भेदन करके उर्ध्वोत्थित होकर गुणातीत अचल उर्ध्वसहस्रार में जाकर परमशिव से अभिसार करती है। पुनः अवरोह क्रम से नीचे उतरती है जिसे गुणयुक्त कहा गया है। अर्थात् गुणातीतावस्था में जो आप्यायन हुआ था उस अन्तर्लीन आप्यायन का बहिः प्रकाशन आनन्दानुभूतिरूप में करते हुये इस आनन्दोल्लास की स्थिति में विष्णु आदि अर्थात् नाना देव शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। वास्तव में यहाँ विश्व कुण्डलिनी की अभ्यर्थना की गई है । यहाँ जो प्रक्रिया वर्णित है, वह विश्व की सृष्टि प्रक्रिया का द्योतन कराती है, क्योंकि विष्णु आदि देवसृष्टि विश्वसृष्टि का ही रूप हैं । यदि इसे देहस्थ कुण्डलिनी

माना जाय तब इसमें विष्णु आदि सैकड़ों पुत्रों की सृष्टि का क्या तात्पर्य? अतः इस वन्दना को विश्व कुण्डलिनी की वन्दना मानना समीचीन है ॥२॥

विश्वामित्र इति ख्यातो नृपः परमधार्मिकः।
सिद्धिं दृष्ट्वा वसिष्ठस्य तपस्तेपे सुदुश्चरम् ।।३।।
अप्राप्य तपसः सिद्धिमुदीचीं दिशमाविशत् ।
गङ्गाद्वारसमासीनं मुनिं योगपरायणम् ।।४।।
दत्तात्रेयं महाभागमभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
उवाचेदं वचस्तस्मै विनयानतकन्धरः ।।५।।

महर्षि वशिष्ठ ने अपनी तपस्या से तथा भगवती की अराधना से अलौकिक अपौरुषेय सिद्धियों को प्राप्त किया था। उन्हें सिद्धियाँ भगवती की कृपा से मिल सकी थीं (देखें महाचीनाचारसारतन्त्र) । उनकी सिद्धियों को देखकर विश्वामित्र ने सिद्धि प्राप्ति की इच्छा से दुष्कर तप किया । लेकिन उस दुष्कर तप का यथार्थ फल न मिलने के कारण वे उत्तर दिशा की ओर गये और गङ्गाद्वार के पास आसीन योग परायण मुनि को वहाँ देखा ।

उन दत्तात्रेय मुनिश्रेष्ठ का यथायोग्य अभिवादन करके विनयावनत होकर विश्वामित्र ने उनसे अपनी समस्या को कहना प्रारम्भ किया ॥३-५॥

विश्वामित्र उवाच-

नाद्राक्ष्यं सम्यगिष्ट्वापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः।
सत्पात्रे सर्वदानानि कृत्वापि मुनिसत्तम ।।६।।
महाविद्यां प्रजप्याथ पुरस्क्रियापुरःसराम् ।
भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।।७।।
सर्वांगमैकतत्त्वज्ञ ब्रह्मनिष्ठ तपोधन ।
किं करिष्याम्यहं देव कुत्र यास्यामि तद्वद ।।८।।

विश्वामित्र कहते हैं-हे मुनिश्रेष्ठ ! आप समस्त आगम शास्त्र के तत्वज्ञाता हैं। हे ब्रह्मनिष्ठ ! हे तपोधन ! उन यज्ञों को करके जिनमें प्रचुर दक्षिणा दी जाती है, सुपात्रों को दान दे करके, महाविद्या (स्त्री देवताओं के मन्त्र) का पुरश्चरण तप रूप अनुष्ठान करके भी इस दुस्तर संसार समुद्र के पार जा सकने का उपाय मुझे नहीं मिला। हे देव! क्या करूं । कहाँ जाऊँ? आप कृपया मार्ग प्रदर्शित करिये ॥६-८॥

दत्तात्रेय उवाच-

मा विषीद नृपश्रेष्ठ सर्वथा त्वं स्थिरो भव ।
यत् श्रुत्वाधिगतं पूर्वमस्माभिर्नन्दिकेश्वरात् ।।९।।
तदशेषं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम् ।
सारमुद्धृत्य भगवान् यामलादपि सर्वतः।।१०।।

तन्त्रं द्वादशसाहस्त्रयं भोगमोक्षैकसाधनम् ।
पार्वत्यै कथयामास तन्त्रं गन्धर्वसंज्ञकम् ।।११।।
गीयते सर्वतन्त्राणामखिलाद्यो यतस्त्विह ।
तेनायं नृपशार्दूल तन्त्रो गन्धर्व उच्यते ।।१२।।

दत्तात्रेय भगवान् कहते हैं–हे नृपश्रेष्ठ ! तुम विषाद न करो। स्थिर हो जाओ (धैर्य रक्खो) । जिस ज्ञान को पूर्व काल में मैंने नन्दिकेश्वर से सुनकर ग्रहण किया था, जो ज्ञान गुप्त से भी गुप्ततर है, उसे मैं तुमसे अक्षरशः कहूँगा । भगवान शिव ने सम्पूर्ण तन्त्रसमूह तथा यामल के साररूप भोग-मोक्ष के एकमात्र साधन रूप से बारह हजार श्लोकों से समन्वित गन्धर्व तन्त्र नामक तन्त्र का पार्वती देवी को उपदेश दिया था। हे नृपशार्दूल ! यह तन्त्र सभी तन्त्रों से पहले गाया जाता है (अर्थात् सर्वप्रथम इसका गायन किया जाता है, यह इसकी महिमा का द्योतक है) तभी इसे गन्धर्व तन्त्र कहते हैं।।९-१२।।

नन्दिकेश्वर उवाच–

कैलासशिखरारूढं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
पञ्चवक्त्रं महाकायं जटाजूटविभूषितम् ।।१३।।
चारुचन्द्रकलायुक्तं मूर्ध्नि व्यालौघभूषितम् ।
बाहुभिर्दशभिर्युक्तं व्याघ्रचर्मधरं शुभम् ।।१४।।
कालकूटधरं कण्ठे नागहारोपशोभितम् ।
विभूतिभूषणं देवं प्रतिवक्त्रं त्रिभिस्त्रिभिः।।१५।।
नेत्रैस्तु पञ्चदशभिर्युक्तं स्फटिकसन्निभम् ।
शक्तित्रिशूलखट्वाङ्गवरदाभयकानपि ।।१६।।
अक्षसूत्रं बीजपूरं भुजङ्गं डमरुं धनुः।
दक्षिणैर्दधतं हस्तैर्वामैः कोटीरभूषणम् ।।१७।।
वृषभोपरिसंस्थं तु गजकृत्तिपरिच्छदम् ।
सर्वात्मनाविष्टचित्तं गिरिमुखपङ्कजे ।।१८।।
प्रणम्य परया भक्त्या कृताञ्जलिपुटा सती ।
उवाच पार्वती देवी ईश्वरं परमेश्वरम् ।।१९।।

भगवान नन्दिकेश्वर कहते हैं—देवाधिदेव, जगद्गुरु (एक बार) कैलास पर्वत के शिखर पर आसनासीन थे । वे ५ मुखों वाले, महाकाय, जटाजूट से शोभित, मस्तक पर सुन्दर चन्द्रकला युक्त तथा सर्पाभूषण से भूषित थे। वे दस भुजाओं वाले एक व्याघ्रासन पर आसीन थे। उनके कण्ठ में कालकूट विष की आभा थी। गला नाग के हार से सुशोभित था। उनके पाँच मुख पर तीन रेखा वाली

विभूति (भस्म) लगी थी, जो आभूषण के समान शोभित हो रही थी । प्रत्येक मुख पर तीन नेत्र होने के कारण वे १५ नेत्रों से शोभायमान थे। उनका शरीर स्फटिक के समान शुभ्र था। उनके दसों (दाहिने ५ तथा बायें ५ हाथ) हाथों में क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, वरमुद्रा, अभयमुद्रा, अक्षमाला, जंभीरी नीबू, सर्प, डमरू तथा धनुष शोभित हो रहा था। (भगवान् के पाँचों मुख का नाम है सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर एवं ईशान) वे मुकुट के आभूषण से शोभित थे।

(ऐसे शोभायमान) भगवान् शिव बैल पर सवार थे । उनका शरीर हाथी के चर्म के परिच्छद से ढका था। वे सर्वात्मना (पूरे मनोयोग से) भगवती गिरजा के मुखकमल को देख रहे थे। ऐसे ईश्वर तथा परमेश्वर को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके देवी पार्वती ने हाथ जोड़कर प्रार्थना पूर्वक कहा॥१३-१९॥

पार्वत्युवाच–

देवदेव जगन्नाथ भक्तानामार्तिनाशन ।
प्रसन्नो यदि मां देव ब्रह्म किं वा तदुच्यते ।।२०।।
योगं किं वा शरीरं च ब्रूहि मे परमेश्वर ।
स्मितपूर्वं महादेवः पूर्णानन्दमयो विभुः।।२१।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! भक्तों के कष्ट का नाश करने वाले देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब कृपया यह बतलाने का अनुग्रह कीजिये कि ब्रह्म किसे कहा जाता है? हे परमेश्वर! क्या योग ही ब्रह्म है अथवा शरीर ब्रह्म है? विभु महादेव पार्वती के प्रश्नों को सुनकर पूर्ण आनन्द के साथ स्मित हास्य मुद्रा मे हो गये॥२०-२१॥

वामदेवाख्यवक्त्रेण प्रत्युवाच प्रियां विभुः।
यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।।२२।।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद् ब्रह्मेत्यवधारय ।
यद् दृश्यान्नापरं दृश्यं यद् दृष्ट्वा न पुनर्भवः।।२३।।
तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमव्ययम् ।
अनन्तमेकं नित्यं यत् तद् ब्रह्मेत्यवधारय ।।२४।।

तथा उन्होंने अपने वामदेव नामक मुख से पार्वती देवी से कहा। ईश्वर (महादेव) कहते हैं—जिससे बढ़कर कोई लाभ नहीं है, जिससे बढ़कर कोई सुख नहीं है, वह ब्रह्म है।

जिससे बढ़कर कोई दर्शन योग्य नहीं है, जिसका अवलोकन, दर्शन करने से पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता, जो तिर्यक्, उर्ध्व, अधः पूर्ण है, सत्-चित्-आनन्द है, अव्यय-अनन्त-एक एवं नित्य है, वही ब्रह्म है॥२२-२४॥

पार्वत्युवाच–

कर्मपाशसमाबद्धो भोगी भोगपरायणः।
कथं मुक्तो भवेद् देव भोगेनैव महेश्वर ।।२५।।
तत् सर्वं कथयेशान यद्यहं तव वल्लभा ।

ईश्वर उवाच–

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यद् गुह्यं परमाद्भुतम् ।।२६।।
न वक्तव्यं त्वया किंचिज्जनेषु कथितं मया ।
अपृथक्त्वशरीरत्वाद् वक्ष्यामि तव सुव्रते ।।२७।।
यदुक्तं ते मया तन्त्रं त्रिविधं त्रिगुणात्मकम् ।
तामसं कुत्र सम्प्रोक्तं राजसं चापि कुत्रचित् ।।२८।।
सात्त्विकं तत्र कुत्रापि धीमांस्तस्मात् तदुद्धरेत् ।
तामसं नरकायैव स्वर्गाय राजसं प्रिये ।।२९।।
सात्त्विकं मोक्षदं प्राहुस्तुरीयं निष्फलं शिवे ।
शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि निबोध मे ।।३०।।

पार्वती कहती हैं–हे देव ! महेश्वर ! कर्म पाश से आबद्ध, भोगी, सतत् भोग परायण व्यक्ति कैसे युक्त हो सकेगा? यदि मैं आपकी वल्लभा हूँ, तब कृपया मुझे (इस प्रश्न का) उत्तर दीजिये।

ईश्वर कहते हैं–हे देवी! अब मैं वह कहता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय तथा अद्भुत है। (इसे सुननें के पश्चात्) तुम इसे मुझसे सुनकर किसी से भी नहीं कहना। हे सुव्रते! तुम मुझसे तनिक भी पृथक् नहीं हो (शिव-शक्ति में भेद नहीं है) अतः मैं यह (रहस्य) तुमसे कहूँगा। मैंने तुमसे जो तन्त्र कहा है वह तीन तरह का त्रिगुणात्मक है। कहीं तामस तन्त्र का मैंने उपदेश दिया है, कहीं राजस तन्त्र कहा है। कहीं-कहीं पर मैंने सात्विक तन्त्र भी कहा है। धीमान (साधकों को) को उसे (प्रयोजनानुसार) वहाँ से लेना, ग्रहण करना चाहिये। तामसिक तन्त्र से नरक, राजस तन्त्र से स्वर्ग तथा सात्विक तन्त्र से मोक्ष प्राप्ति होती है। चौथा निष्फल होता है। अर्थात् इनके अतिरिक्त यदि किसी चौथे प्रकार के तन्त्र की कल्पना की जाती है तब वह शास्त्र विरुद्ध है। उसके अनुसार किये गये कर्म से कोई भी प्राप्ति नहीं हो सकती । हे गिरिजे! तुम मुझसे तामस तन्त्र शास्त्रों को सुनो ।।२५-३०।।

तामसानि पुराणानि तन्त्राणि तानि च प्रिये।
स्वर्गमोक्षविहीनानि तानि यत्नाद्विवर्जयेत्।।३१।।
इयमर्थं पुरा देवि पृष्टवान् देवकीसुतः।
मां प्रसाद्य तपस्तप्त्वा भोगेन मुक्तिसाधनम्।।३२।।

तस्मै वापि मया प्रोक्तं संदेहोच्छेदकारकम्।
ततस्तेनापि सम्प्रोक्तं ब्रह्मणे हंसरूपिणे ।।३३।।
नन्दिकेश्वर एतद्वै मयोक्तं पुनरेव हि।
सोऽपि चाभूत्स्वयं कर्ता मम तुल्यो महामतिः।।३४।।
पुष्पदन्ते ततः प्रोक्तं तन्त्रमेतद्वरानने।
गन्धर्वेभ्यो ददौ तेन रहस्यं परमाद्भुतम् ।।३५।।
ब्रह्मणा च तथा प्राप्तं तस्मात् ते मुनयः प्रिये।
पुरन्दरेणाङ्गिरसाद् भार्गवाद्दैत्यराट् प्रभुः ।।३६।।

हे प्रिये ! तामस तन्त्र एवं पुराण (का अनुशीलन) स्वर्ग एवं मोक्ष रूप फल से सर्वथा रहित हैं। इनसे न तो स्वर्ग मिलता है, न मोक्ष ही प्राप्त होता है। अतः इस प्रकार के तन्त्र को त्याग देना चाहिए। हे देवी ! प्राचीन काल में इस सम्बन्ध में देवकीनन्दन (कृष्ण) ने मुझसे जानना चाहा था । उन्होंने मुझे प्रसन्न करने के लिये तप किया और भोग के द्वारा मोक्ष की (उपाय की) प्राप्ति जानना चाहा । (तब) मैंने उनको संदेह का भंजन करने वाले शास्त्र (के सम्बन्ध में) को बतलाया । उस ज्ञान को उन्होंने हंस स्वरूप ब्रह्मा से कहा । इस ज्ञान को (देवकी पुत्र को बतलाने के पश्चात्) तदनन्तर मैंने नन्दिकेश्वर को बतलाया । (इस ज्ञान को सुनकर) इससे वह महामति मेरे समान तन्त्रों का उपदेष्टा हो गया । मैनें तदनन्तर इस तन्त्र का उपदेश पुष्पदन्त गन्धर्व को दिया । उन्होंने इस रहस्यमय परम अद्भुत तन्त्र का ज्ञान गन्धर्वों को दिया । ब्रह्मा ने उस प्रकार से (हंस रूप से) प्राप्त किया था । हे प्रिये! उनसे यह ज्ञान मुनियों को मिला । इस तन्त्र ज्ञान को आंगिरस (बृहस्पति) से इन्द्र ने तथा भार्गव शुक्राचार्य से दैत्यराज ने प्राप्त किया था।।३१-३६।।

पुलस्तेरपि पौलस्त्याः क्रमादेवं महीतले।
नमुच्याद्या महादैत्याः पुरा स्वायम्भुवान्तरे ।।३७।।
महाबलपरीवारा महावीर्या महौजसः।
सर्वधर्मरताः सर्वे सर्वपापविवर्जिताः।।३८।।
त्रयीधर्मरताः सर्वे भग्ना इन्द्रपुरोगमाः।
तदाकर्ण्य महेशानि ब्रह्मा लोकपितामहः।।३९।।
मदन्तिकं समासाद्य स्तुतिभिर्मां प्रसाद्य च।
उवाचेदं वचश्चापि श्लक्ष्णं मधुरया गिरा।।४०।।

पुलस्ति से पौलस्त्यों को यह तन्त्र ज्ञान मिला था। इस प्रकार यह ज्ञान क्रमशः पृथ्वी पर आविर्भूत हुआ।

प्राचीन काल में अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तर में नमुची आदि दैत्य महाबली, महापराक्रमी, महातेजयुक्त, धर्म में तत्पर, शुद्ध, पापमुक्त तथा वेदत्रयी के अनुसार धर्मा-चरण

करने वाले थे। इन दैत्यों के द्वारा इन्द्रादि सभी देवगण पराजित तथा पद रहित कर दिये गये। हे महेशानी! यह सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा मेरे पास आये और स्तुति से मुझे प्रसन्न किया। तदनन्तर वे मधुर वाणी से कहने लगे।।३७-४०।।

ब्रह्मोवाच–

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुःखनिसूदन।
भोगमोक्षप्रदे तन्त्रे त्वया प्रकाशिते प्रभो।।४१।।
तदवाप्य महादेव नरराक्षसदानवाः।
सिद्धिप्रदा भवेयुस्ते प्रभुनाम कथं चरेत्।।४२।।
सर्वे ब्रह्मात्मना देव यदि यास्यन्ति विद्यया।
कैव सृष्टिः किमत्रापि कार्य्यं स्याद् वद शङ्कर।।४३।।
इति विज्ञाप्य मां ब्रह्मा ययौ ब्रह्मसदः प्रति।
ततोऽहं परमेशानि गत्वा मन्दरपर्वतम्।।४४।।
तान् विप्रानथ संस्मृत्य मन्त्रयित्वा च तैः सह।
नन्दिकेश्वरमाहूय द्वारि संस्थाप्य सत्वरम्।।४५।।
रक्षितव्यस्त्वया भद्र विघ्नश्चेह समागतः।
इत्यादिष्य प्रविष्टोऽहं निर्जनं परमं महत्।।४६।।
मोहनार्थं परं तेषां दैत्यादीनां विशेषतः।
शास्त्राणि विविधान्यत्रसम्प्रोक्तानि द्विजैः सह।।४७।।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि।
यच्चिन्तनान्महादेवि गौतमो मुनिपुङ्गवः।।४८।।
अक्षपाद इति ख्यातः प्रमत्तो मां विगर्हयन्।
अनुभूय तदास्वादं मामेव शरणं ययौ।।४९।।

ब्रह्मा कहते हैं–हे सर्वज्ञ! हे सर्वलोकेश्वर! हे समस्त दुःखों का नाश करने वाले! आपने भोगप्रद तथा मोक्षप्रद उभयविध तंत्रों का प्रकाशन किया है। हे महादेव! यदि इन्हें प्राप्त करके मनुष्य, राक्षस, दानव आदि सभी सिद्धि प्राप्त कर लेगें तब प्रभु का नाम लेने वाला कौन बाकी रह जायेगा क्योंकि इससे तो सभी ब्रह्म भावना युक्त होकर अद्वैत स्थिति प्राप्त कर लेगें। ऐसी सृष्टि में यह स्थिति कैसे चलेगी? हे शंकर! अन्य (इस विन्दु पर) विचार कीजिए। भगवान् ब्रह्मा यह विज्ञापित करके (यह समस्या देखकर) ब्रह्मलोक में चले गये। हे परमेशानी ! तब मैं मन्दर पर्वत गया। (मन्दराचल गया)।

वहाँ पर मैंने विप्रों को (ऋषि-मुनि आदि को) बुलाया और उनके साथ (आगे की प्रक्रिया हेतु) विचार-विमर्श भी किया। तथा तत्काल नन्दिकेश्वर को बुलाकर उनको यह कार्यभार सौंपा कि वे द्वार पर खड़े रहें और (आज्ञा दिया) कहा

कि "देखो कोई विघ्न यहाँ न आये।" उन्हें इस प्रकार से आज्ञा देकर मैं महान् निर्जन में चला गया। ("तदनन्तर निर्जन स्थान में जाकर शास्त्र रचना करके बाहर आने पर" यहाँ पर जो कोष्ठ में लिखा गया वह आवश्यक है, क्योंकि निर्जन स्थान में जहाँ कोई नहीं है शास्त्रोपदेश किसे सुनाया जाता?)

तदनन्तर मैंने द्विजगण से ऐसे विविध शास्त्रों का वर्णन किया जिसे सुनकर विशेषतः दैत्यगण मोहित हो जायें। जिसे सुनने मात्र से ज्ञानीगण का भी पतन हो जाये (मार्गभ्रष्ट हो जायें तथा ब्रह्मसायुज्य न प्राप्त कर सके, जिससे सृष्टि का क्रमभंग न हो)। इन सब ऐसे शास्त्र से गौतम जैसे (परमज्ञानी) मुनियों में श्रेष्ठ गौतम अक्षपाद कहलाये। (इन शास्त्रों के परिणामस्वरूप) वे मत्त होकर मेरी निन्दा में प्रवृत्त हो गये और कालान्तर (अपने अपराध का अनुभव होने पर) में ऐसे तन्त्रों का अनुशीलन करने से खिन्न होकर शरणापन्न हो गये (ताकि के उनके अपराध को मैं क्षमा कर दूँ)।।४१-४९।।

तत् कृपालुरहं देवि स्वयमादिष्टवानिदम्।
वैष्णवं तन्त्रमाचक्ष्व विवृण्वंस्तु सदा मुने।।५०।।
प्रसन्नको यदा विष्णुस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि।
यदुक्तं ते मया तन्त्रं कृष्णस्य परमात्मनः।।५१।।
अधीत्य नारदात् सर्वं सिद्धिमाप मुनिस्तदा।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।।५२।।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रै सम्प्रोक्तानि ततः परम्।
कणादेन च सम्प्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत्।।५३।।
गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन तु।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम्।।५४।।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा।
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्।।५५।।
आपा(त्यं?र्थ्य) श्रुतिवाक्यानां दर्शयंल्लोकगर्हितम्।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्र वै प्रतिपाद्यते।।५६।।
सर्वकर्मपरिभ्रष्टाद् विकर्मासत् तदुच्यते।
गौतमप्रोक्तशास्त्रार्थनिरताः सर्व एव हि।।५७।।

हे देवी ! (ऋषि गौतम की क्षमा प्रार्थना से) मैंने द्रवित होकर उन्हें यह आदेश दिया "हे मुनिवर ! तुम वैष्णव तन्त्र की व्याख्या करके (सरल भाष्य करके) उनका (अधिकारी व्यक्ति को) उपदेश प्रदान करो। इससे विष्णु प्रसन्न होंगे तथा तुमको सिद्धि प्राप्त हो जायेगी । (हे देवी!) मैंने भगवान् परमात्मा कृष्ण का जो तन्त्र तुमको (पूर्वकाल में) बतलाया था, उस सम्पूर्ण तन्त्र को नारद से प्राप्त करके गौतम मुनि ने सिद्धि प्राप्त किया (सम्भवतः यही गौतमीय तन्त्र के रूप में आज मिलता है)। मैंने

पहले ही पाशुपतादि शैव तन्त्रों का उपदेश दे दिया था । इसके अनन्तर मेरी मोहिनी शक्ति से (माया से) आवेशित विप्रों ने इन शास्त्रों का प्रणयन किया । जैसे कणाद ने महान् वैशेषिक शास्त्र का, गौतम ने न्यायशास्त्र का, कपिल ने सांख्यशास्त्र का तथा बृहस्पति ने अत्यन्त निन्दित चार्वाक मत का प्रवचन, प्रणयन किया। बुद्धरूपी विष्णु ने (दैत्यों की मोक्षगामिनी बुद्धि के विनाशार्थ) नग्न नीलपट आदि असत् शास्त्र का (वेद विरुद्ध शास्त्र का) उपदेश दिया । इन सब में (नग्न नीलपट आदि में) वेदवाक्यों के (अर्थ का अनर्थ करते हुये) ऐसे गर्हित अर्थ बतलाये गये हैं जिसे सुनकर लोग वेद से विमुख हो जाते हैं । इन अर्थों में सत्कर्म (यज्ञादि कर्म) को त्याज्य माना गया है । यह बौद्धशास्त्र (वेदविहित) कर्मों से च्युत होने के कारण असत् है । गौतम के (जब वे मोहवशीभूत होकर शिवनिन्दा में रत थे) द्वारा उस समय कहे गये शास्त्रों के अर्थ को मानने वाले पतित होते हैं ।।५०-५७।।

सर्गालीं योनिमापन्नाः संदिग्धाः सर्वकर्मसु ।
सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं पुरा शिवे ।।५८।।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव कथितं देवि जगतां नाशकारणात् ।।५९।।
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थतः।
निश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम् ।।६०।।
तत्रैवाहं महामन्त्रान् संदूष्य दोषविस्तरैः।
कृतवांस्तन्त्रविस्तारं ससंदेहपदान्वितम् ।।६१।।
अथ देवाश्च देव्यश्च दूषिते मन्त्रविग्रहे ।
अभवन् दूषिताः सर्वे हीनवीर्य्यपराक्रमाः ।।६२।।
निर्बलास्त्वङ्गहीनाश्च अथ सर्वे दिवौकसः।
विष्णुलोकं समासाद्य व्यसनं तत्र्यवेदयन् ।।६३।।
विदित्वा व्यसनं विष्णुस्तत्तत् तेषां दिवौकसाम् ।
वैनतेयं समारुह्य नन्दिकेश्वरसन्निधौ ।।६४।।
आगतो वारितस्तेन मद्दर्शनसमुत्सुकः।
तत्र स्थित्वा महेशानि भगवाञ्जगदीश्वरः ।।६५।।
वर्धयितुं शरीरं च वैनतेयं समादिशत् ।
प्रवृद्धस्य खगेन्द्रस्य स्थित्वा तस्योत्तमाङ्गके ।।६६।।

वे सभी विदित कर्मों के प्रति संदिग्ध चित्त हो जाते हैं (त्याग देते हैं) अतः उनको शृगाल योनि मिलती है । हे शिवे ! मैंने (सबको मोक्ष पाते देखकर सृष्टि चक्र के रक्षणार्थ) जगत को (भ्रम से) मोहित करने के लिये प्राचीन काल में वेदार्थवत्

(प्रतीत होने वाले) अवैदिक मायावाद का वर्णन संसार के नाश हेतु किया । (मेरी माया से प्रेरित) ब्राह्मण जैमिनी ने वेद के अर्थ का त्रुटिपूर्ण अर्थ करते हुये निरीश्वरवाद का आश्रय लेकर महत्तर शास्त्र रचित किया। उसमें मैंने (यहाँ 'मैंने' से तात्पर्य है मेरी मोहिनी शक्ति माया से व्यामोहित अथवा "मेरे द्वारा बुद्धि में प्रेरित") महामन्त्रों को दोषों से मण्डित करके संदिग्ध पदयुक्त तन्त्रों का विस्तार कर दिया था। इस प्रकार से मन्त्र विग्रह के दोष युक्त हो जानें के कारण उन मन्त्रों से सम्बन्धित मन्त्रदेवी-मन्त्रदेवता भी दूषित एवं पराक्रम रहित हो गये थे। (क्योंकि मन्त्र तथा मन्त्रदेवता अभिन्न होते हैं) ऐसी स्थिति में सभी देवता निर्बल, अंगहीन होकर विष्णुलोक में आये और उन्होंने अपने कष्ट का निवेदन भगवान विष्णु से किया।

भगवान् विष्णु ने उन देवतागण के कष्ट को जाना और (व्यथित होकर उपाय तथा कारण जानने हेतु) वे गरुड़ पर बैठकर (कैलास पर्वत पर) नन्दिकेश्वर के पास पहुँचे। लेकिन (महादेव की आज्ञा न होने के कारण) मेरे दर्शनार्थ आगत एवं उत्सुक विष्णु को नन्दिकेश्वर नें वहीं रोक दिया। प्रवेश न मिलने से जगदीश्वर विष्णु वहीं रुक गये तथा गरुड़ को उनका अपना आकार बढ़ाने का आदेश दिया। जब गरुड़ का आकार अत्यन्त वर्द्धित हो गया तब महेश्वर गरुड़ के शिर पर बैठ गये। अर्थात् गरुड़ के शिर पर आरुढ़ परिलक्षित होने लगे अर्थात् विष्णु की इच्छा के अनुसार गरुड़ के शिर पर परिलक्षित होने लगे। भगवान विष्णु ने उन्हें वहाँ देखकर स्मितहास्य के साथ कहना प्रारम्भ किया । (गरुड़ प्राण के प्रतीक हैं । उनका आकार वर्द्धित होना अर्थात् व्यष्टि प्राण का समष्टि प्राणरूप हो जाना। तब परमशिव 'सेर पर दर्शन देते हैं अर्थात् शांभव समावेश में)।।५८-६६।।

स दृष्ट्वा समुपाविष्टमिदमाह स्मिताननः।

ीभगवानुवाच–

अकालं प्रलयः कस्मात् क्रियते भवताधुना ।।६७।।
न युज्यते महादेव कर्तुमेवं न साम्प्रतम् ।

ईश्वर उवाच–

दूषिता ब्रह्मणो मन्त्राः सौराश्चाग्निसमुद्भवाः।।६८।।
तथा वै दूषिता यौन्याः श्रियश्चापीह केचन ।
सरस्वत्या महामन्त्राः वैष्णवा अपि केचन ।।६९।।
वैनायका महामन्त्राः प्रायेण दूषिता मया ।
शक्तितन्त्रेषु ये केचित् ससंदेहपदान्विताः।।७०।।

उनको वहाँ बैठे देख स्मित हास्य से श्री भगवान् विष्णु कहते हैं–हे महादेव! आप बिना समय हुये, इस अ+काल में प्रलय क्यों घटित करा रहे हैं ? ····· करना उचित नहीं है।

ईश्वर कहते हैं–ब्रह्मा से, सूर्य से तथा अग्नि से उत्पन्न मन्त्र दूषित हो गये हैं। योनि के (योनिरूपा भगवती के), लक्ष्मी के भी मन्त्र दूषित हो गये हैं। मैंने सरस्वती के महामन्त्र, वैष्णव वाले कुछ मन्त्र, विनायक के महामन्त्र को दूषित कर दिया है। शाक्ततन्त्रोक्त कुछ मन्त्र भी सन्देहात्मक पद वाले (मेरे द्वारा) कर दिये गये हैं।।६७-७०।।

श्रीभगवानुवाच–

जगद्वन्द्य कलाधीश सर्वभूतोपकारक।
निवर्त्तस्व महादेव मद्वाक्यशासनादिभिः ।।७१।।

भगवान् विष्णु कहते हैं–हे जगत् में वन्दित! कलाधीश! सर्वभूत समूह के उपकरण महादेव! आप मेरे वचन, शासन (आदेश, अनुरोधादि) के कारण इस (कार्य से) से विरत हो जाईये।।७१।।

ईश्वर उवाच–

विरतोऽहं तदा तस्य विष्णोरमिततेजसः।
वचनात् परमेशस्य शङ्खचक्रगदाभृतः ।।७२।।
तान्यधीत्यैव ते सर्वे मोहिता विष्णुमायया।
भविष्यन्ति च संदिग्धा वालिशत्वादनास्थया ।।७३।।
विवदिष्यन्ति सम्मूढा हेतुवादपरायणाः।
हेतु साध्येतिवाक्याच्च भविष्यन्ति पराङ्मुखाः।।७४।।

ईश्वर कहते हैं–(हे देवी!) यह सुनकर मैं शंखचक्र गदाधारी परम तेजस्वी विष्णु का वचन सुनकर इस कार्य से विरत हो गया। उन सब शास्त्रों को पढ़कर लोग विष्णु माया से मोहित हो जाने के कारण भविष्य में संदिग्ध कृत्ति वाले होकर हेतुवाद में रत होकर (वादाविवाद आदि में पड़कर) अनास्था में पड़कर तथा हेतु एवं साध्य नामक अनुमान प्रमाण में ही फंसे रहकर तत्वज्ञान रूप वास्तविक ज्ञान से वंचित, बहिर्मुख से रह जायेंगे।।७२-७४।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे तन्त्रप्रस्तावनानिरूपण-
नामकः प्रथमः पटलः।।१।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वती-ईश्वर संवादान्तर्गत् तन्त्रप्रस्तावना निरूपण
नामक प्रथम पटल समाप्त ।।

* * *

द्वितीयः पटलः

विद्याभेदोद्धारनिरूपणम्

पार्वत्युवाच–

शक्तितन्त्रं महादेव संदेहरहितं कुरु ।
तथा कथय देवेश भोगेन मुक्तिसाधनम् ।।१।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे महादेव! (आपने शक्तिमन्त्र को पूर्वकाल में सन्देह युक्त कर दिया था, प्रथम पटल का श्लोक ७०, तथा ६१ देखें) आपने जो शक्तितन्त्र की स्थिति संदेहास्पद बना दी थी, कृपा करके उसे सन्देह रहित कीजिए। (ताकि साधक-जिज्ञासु उसके प्रति नि:संदिग्ध हो जायें तथा अनुशीलन करें) क्या भोग के द्वारा मुक्ति मिल सकती है? (क्या भोग की ऐसी प्रक्रिया है जो उसे मोक्षगामी बना दे) हे देवेश! मेरी इस प्रकार की जिज्ञासा का समाधान कीजिये ।।१।।

ईश्वर उवाच–

निःसंदेहं महातन्त्रं श्रूयतां खलु साम्प्रतम् ।
गोपितव्यं पशोरग्रे पूर्णचन्द्रनिभानने ।।२।।
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ।
ब्रह्मणोऽपि परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ।।३।।

ईश्वर कहते हैं–हे पूर्णाचन्द्र के समान आनन वाली! वर्तमान में यह महातन्त्र नि:संदिग्ध रूप से (सर्वोत्तम) है। लेकिन यह परम गोपितव्य है। पशु श्रेणी वाले (साधक) के समक्ष इसका प्रकाशन नहीं करना चाहिये। इस तन्त्र द्वारा मैं परमात्मा तथा जीव के ऐक्य को विज्ञापित करूँगा। ब्रह्म का निर्गुण पर रूप कहूँगा। उसे सुनो।।२-३।।

श्रूयतां विमले भद्रे आत्मानमात्मना पुनः।
प्रणमामि महादेवीं तुरीयां ब्रह्मरूपिणीम् ।।४।।
यस्याः स्मरणमात्रेण भवाब्धौ न निमज्जते।
अस्याश्चाराधनं कृत्वा नान्यस्याराधनं चरेत् ।।५।।
अन्यस्य स्मरणद्दुःखं योगिनीशापमालभेत् ।
अपमृत्युर्भवेत् तस्य मृते च नरकं व्रजेत् ।।६।।
एनामुपास्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ।
सकृदेनामुपास्यैव न मातुः स्तनपो भवेत् ।।७।।
तस्माद् देवि शुभे भद्रे तुरीयां समुपाश्रयेत् ।
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया द्वितीया भगमालिनी ।।८।।

वज्रेश्वरी तृतीया च तुर्या त्रिपुरसुन्दरी ।
त्रयाणामपि देवानां प्रचोदिका त्रिपादिका ।।९।।
त्रिपुरेति समाख्याता कामदा सा कामेश्वरी ।
त्रीन् यस्मात् पुरतो दद्याद् दुर्गा सा परमेश्वरी ।।१०।।
त्रिपुरेति समाख्याता सौन्दर्य्यातिशयात् तथा ।
मयापि चिन्त्यते सा तु तत्प्रसादादहं प्रभुः।।११।।
जगतामीश्वरत्वं च लब्धं तदनुकम्पया ।
ब्रह्मत्वं ब्रह्मणा प्राप्तं विष्णुत्वं विष्णुना तथा ।।१२।।
सुरासुरमुनीन्द्राणां महत्त्वं तत्प्रसादतः।
तेनेयं महती विद्या दुर्लभा भुवनत्रये ।।१३।।

हे विमले! हे भद्रे! मैं अब स्वयं तुरीया ब्रह्मस्वरूप आत्मरूपा महादेवी को प्रणाम करता हूँ। इनके स्मरण से मनुष्य भवसागर में निमज्जित नहीं होता। इनकी आराधना के पश्चात् उस साधक को अन्य किसी की भी आराधना नहीं करनी चाहिए। आत्मरूपा महादेवी के स्मरण के अतिरिक्त किसी भी अन्य का स्मरण करने से साधक को दुःख मिलता है और वह योगिनीगण के शाप का भागी हो जाता है। उसकी अकाल मृत्यु होती है और मरणोपरान्त नरक में जाता है। हे देवेशी! इनकी उपासना करने से पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं हो जाता? (यहाँ तक कि) इनकी एक बार उपासना करने से मनुष्य को पुनः (माता के गर्भ में आकर) जन्म लेकर माता का स्तनपान नहीं, करना पड़ता। हे देवी! हे शुभे! भद्रे! तुरीया (त्रिपुरसुन्दरी) की उपासना करनी चाहिये। पहली देवी कामेश्वरी तथा द्वितीया भगमालिनी हैं। तीसरी वज्रेश्वरी तथा चतुर्थी (तुरीया) त्रिपुरसुन्दरी हैं। त्रिदेवों को प्रेरित करने के कारण इन्हे त्रिपादिका कहा गया है। यह त्रिपुरा भी कही जाती हैं। (यही) कामदा एवं कामेश्वरी भी (हैं)। यह परमेश्वरी दुर्गा त्रिपुरा नाम से इस कारण प्रसिद्ध हैं कि ये धर्म-अर्थ-काम को पहले देती हैं। अतिशय सौन्दर्यशालिनी होने के कारण भी इन्हें त्रिपुरा कहा गया है। मैं भी उनका चिन्तन किया करता हूँ। उनकी कृपा से संसार का (स्वामी कहलाता हूँ) प्रभु कहा जाता हूँ। उनकी ही अनुकम्पा से मैंने जगदीश्वरत्व पाया है। ब्रह्मा को ब्रह्मत्व तथा विष्णु को विष्णुत्व भी उनकी ही कृपा से मिला है। जो महत्व सुर-असुर तथा मुनीन्द्रगण ने पाया है, वह उन्हें प्रसन्न करके पाया है। यह महाविद्या तीनों लोकों में दुर्लभ है।।४-१३।।

देव्युवाच–

भगवन् सर्वमन्त्राश्च भवता मे प्रकाशिताः।
महात्रिपुरसुन्दर्य्या मन्त्रा ये पूर्वसूचिताः ।।१४।।
तांस्तानेवाधुना नाथ संदेहरहितान् कुरु ।

ईश्वर उवाच–

सर्वकार्येषु सर्वत्र तान्त्रिके वैदिके तथा ।।१५।।
अविश्वासो महान् दोषो यत्नतस्तं विवर्जयेत् ।
संसिद्धेः कारणं देवि विश्वासः समुदाहृतः।।१६।।
विदित्वा रक्षणं यत्तु सगुणं वीर्य्यवर्धनम् ।
रत्नेषु कीलकं यद्वद् ग्रन्थिर्मलयसम्भवे ।।१७।।
आस्तिकोऽथ शुचिर्दान्तो द्वैतहीनो जितेन्द्रियः।
ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मवादी च ब्रह्मी ब्रह्मपरायणः।।१८।।
सर्वहिंसाविनिर्मुक्तः सर्वप्राणिहिते रतः।
सोऽस्मिञ् शास्त्रेऽधिकारी स्यात् तदन्यो भ्रमसाधकः।।१९।।
नास्तिकाय कुशीलाय दाम्भिकाय कदाचन ।
न वक्तव्यं पशोरग्रे कुटिले चुम्बके तथा ।।२०।।

देवी कहती हैं–हे भगवान्! आपने समस्त मन्त्रों का मुझे उपदेश दिया है। हे नाथ! आपने पहले त्रिपुरसुन्दरी के जिन मन्त्रों को पहले बतलाया था, अब उन्हें संशय रहित कीजिए।

ईश्वर कहते हैं–तान्त्रिक तथा वैदिक कार्यों में से सभी कार्यों में अविश्वास करना महान् दोषपूर्ण कार्य है। प्रयत्न करके अविश्वास (रूपी दोष) का त्याग कर देना चाहिए। हे देवी! सिद्धि का कारण विश्वास बतलाया गया है। जिस प्रकार से रत्नों में कीलक तथा मलयचन्दन की गाँठ का सन्धान मिल जाने से उनसे इनकी रक्षा की जाती है तथा उसे गुणवान एवं वीर्यवर्द्धक बनाया जाता है, उसी प्रकार से अविश्वास की स्थिति हो तो उसे हटा देना चाहिए। जो व्यक्ति आस्तिक, पवित्र, दान्त (मन पर वश रखने में समर्थ), द्वेषरहित, जितेन्द्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवादी, ब्रह्मी, ब्रह्मपरायण, सभी प्रकार की हिंसा से रहित, सर्व प्राणिगण के हित में निरत है, वही इस शास्त्र का अधिकारी है। जो ऐसा नहीं है, वह भ्रम साधक (भ्रम बढ़ाने वाला) होता है। हे देवी! नास्तिक, कुशील, दम्भी, को यह शास्त्र कदापि प्रदान न करें। जो पशु श्रेणी का है, कुटिल है, भिन्न-भिन्न लोगों से स्वार्थ सिद्धि करने वाला, सभी शास्त्रों का कुछ उदाहरण लेकर (भ्रम फैलाने वाला) विद्वान कहलानें की चेष्टा करने वाला है, ऐसे व्यक्ति के समक्ष इस शास्त्र को न कहें।।१४-२०।।

श्रुणु देवि महद् गुह्यं मन्त्रोद्धारं वरानने ।
आदौ पञ्चदशी विद्या कथ्यते वीरवन्दिते ।।२१।।
कामदेवस्ततो योनिस्तुर्य्यस्वरपुरन्दरौ ।
भुवनेशी ततः पश्चात् पञ्चवर्णं विभूषितः।।२२।।

अयं स वाग्भवो देवि वागीशत्वप्रदायकः।
एतज्जप्त्वा महाबीजं किं न सिध्यति भूतले ।।२३।।
बालकस्य तु जिह्वायां त्रिदिनाभ्यन्तरे न्यसेत् ।
मधुना श्वेतदूर्वाभिः सुवर्णस्य शलाकया ।।२४।।
इदं वाग्भवकूटं तु लिखेद्वै जननान्तरे ।
स एव पण्डितो भूयान्न तु मूर्खो भवेद् ध्रुवम् ।।२५।।
एतद्वाग्भवकूटं तु वालिशस्यापि मूर्धनि ।
हस्तं दत्त्वा पठेत् सिद्धमष्टोत्तरशतं प्रिये ।।२६।।
सोऽपि श्लोकान्महेशानि करोत्येव न संशयः।
सतर्कपदवाक्यार्थशब्दालङ्कारसारवित् ।।२७।।
जिह्वायां न्यसनाद्देवि मूकोऽपि सुकविर्भवेत् ।
बहुनात्र किमुक्तेन जल्पितेनापि सुन्दरि।।२८।।
वागीशं स्पर्धते वाग्भिः सर्वज्ञो भुवि जायते ।
मूको भवति वागीशो वाचस्पतिरिवापरः।।२९।।

हे देवी! अत्यन्त गुप्त मन्त्रोद्धार को कहता हूँ। श्रवण करो। हे वीरवन्दिते! पहले पंचदशी विद्या कहता हूँ। कामदेव (क), योनि (ए), चतुर्थस्वर (ई), पुरन्दर (ल), भौवनेशी (ह्रीं), यह मन्त्र इस प्रकार से ५ वर्णों से विभूषित है। मन्त्रोद्धार ऐसा है "क ए ई ल ह्रीं"। हे देवी! अब इसके लाभ को सुनो। यह वाग्भवमन्त्र वागीशत्व प्रदायक है। इसका जप करने पर पृथ्वी पर क्या नहीं मिल जाता? यदि जन्म के तीन दिन के समय में बालक की जिह्वा पर सोने की सलाई से शहद तथा सफेद श्वेत दूर्वा के रस को मिलाकर जो स्याही बने, इससे वाग्भव कूट को लिखे। वह बालक मूर्ख नहीं रहेगा। निश्चित रूप से पण्डित होगा।

हे प्रिये! हे महेशानी! यदि मूर्ख के शिर पर इस वाग्भव कूट "क ए ई ल ह्रीं" का १०८ बार पाठ किया जाये, तब वह मूर्ख श्लोक समूह का रचयिता बना जाता है। उसे न्याय व्याकरण मीमांसा तथा साहित्य के तत्वों का ज्ञान हो जाता है। इस मन्त्र को जिह्वा पर रखने से (जपने से) मूर्ख व्यक्ति भी सुकवि कहलाने योग्य हो जाता है। हे सुन्दरी! इस सम्बन्ध में अधिक क्या कहें? वह वाणी में बृहस्पति से भी स्पर्द्धा करने लगता है। पृथ्वी पर सर्वज्ञ हो जाता है। यदि वह मूक है, तब भी द्वितीय बृहस्पति (का रूप लेकर) के समान वागीशत्व प्राप्त कर लेता है।।२१-२९।।

शिवचन्द्रौ समुद्धृत्य कामव्योमपुरन्दरान् ।
उद्धरेत् परमेशानि लज्जाबीजं ततः प्रिये ।।३०।।

कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वशोभितम् ।
चन्द्रः कामस्तथेन्द्रश्च महामाया ततः परम् ।।३१।।
शक्तिबीजं वरारोहे वेदाक्षरसमन्वितम् ।
त्रिकूटेयं महाविद्या महात्रिपुरसुन्दरी ।।३२।।
सर्वतीर्थमयी देवी सर्वदेवस्वरूपिणी ।
सर्वशास्त्रमयी शुद्धा सर्वदोषविवर्जिता ।।३३।।
चतुर्वेदमयी साक्षात् सर्वसौभाग्यदायिनी ।
कामराजाख्यविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ।।३४।।
अनया सदृशी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
एतस्या एव विद्यायाः शक्तिं तुर्यं च पार्वति ।।३५।।
हित्वा मुखे शिवेन्दुभ्यां लोपामुद्राप्रकाशिता ।
मारबीजं ततो योनिः कामः शक्रं तथेश्वरी ।।३६।।
पूर्ववत् कामराजं च शक्तिकूटं तथैव च ।
सवीर्य्या सिद्धिदा विद्या त्रैलोक्यवशकारिणी ।।३७।।
तव स्नेहान्महेशानि मयेयं तु प्रकाशिता ।
एतच्छाम्भवमुद्दिष्टं शृणु शाक्तमतः परम् ।।३८।।
शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रबीजमतः परम् ।
महामाया ततः पश्चात् पूर्ववदपरं ततः ।।३९।।

हे परमेशानी! ॐ शिव (ह), चन्द्र (स), को समुद्धृत करके काम (क), ब्योम (ह), पुरन्दर (ल), का उद्धार करके तदनन्तर लज्जाबीज (ह्रीं) कहें। हे प्रिये! हे भद्रे! यह कामराज बीज "हसकलह्रीं" छ वर्णों से सर्व शोभित है।

चन्द्र (स), काम (क), इन्द्र (ल), तदनन्तर महामाया (ह्रीं) यह वेदाक्षर युक्त है अर्थात् ४ अक्षरों से युक्त है। पूरा मन्त्र है–"सकलह्रीं"। यह महाविद्या त्रिकूटा है। इसे महात्रिपुरसुन्दरी भी कहते हैं। यह सर्व तीर्थमयी, सर्वदेवस्वरूपिणी, सर्वशास्त्रमयी, शुद्ध, सर्वदोषरहित, साक्षात् चतुर्वेदमयी, सर्वसौभाग्यप्रदा, कामराज विद्या भोग तथा मोक्ष देनें वाली है। इसके समान विद्या लोकत्रय में दुर्लभ है। इस विद्या में से (अर्थात् श्लोक २२ में वर्णित विद्या 'क ए ई लं ह्रीं' से) 'ए' तथा 'ई' को हटा देने से (शक्ति=ए, तुर्य= ई) बचता है 'क ल ह्रीं'। अब इसके आदि में शिव (ह) एवं इन्दु (स) का योग करने से मन्त्रोद्धार होता है 'हसकलह्रीं' जो लोपामुद्रा द्वारा उपासिता विद्या है।

अब मारबीज (क) योनि (ए) काम (क), शक्र (ल) ईश्वरी (ह्रीं) यह होता है "कएकलह्रीं"। इसके आगे कामराज बीज (हसकलह्रीं) लगाकर शक्तिकूट

(झसखग्रमऊं) लगाये। मन्त्रोद्धार होगा "कएकलह्रीं हसकलह्रीं झसखग्रमऊं।" यह सवीर्या सिद्धिदा विद्या है, जो त्रैलोक्यवशकारिणी है। हे महेशानी! तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण मैंने इसे प्रकाशित किया। यह शांम्भव मन्त्र कहा गया। अबं तुम शाक्तमन्त्र को सुनो।

शक्ति (स), महेश (ह), काम (क), इन्द्रबीज (ल) तदनन्तर महामाया (ह्रीं), द्वितीय वाग्भव को (कएईलह्रीं) लगाये। मन्त्रोद्धार होता है 'सहकलह्रीं क ए ई ल ह्रीं'॥३०-३९॥

देव्युवाच–

विद्यात्रयमिदं भद्रे दुर्लभं भुवनत्रये ।
षोडशार्णां महाविद्यां त्रैलोक्यवशदायिनीम् ।।४०।।
अधुना कथयेशान यद्यहं तव वल्लभा ।

ईश्वर उवाच–

श्रृणु देवि महाविद्यां षोडशाक्षररूपिणीम् ।।४१।।
एतस्या एव विद्याया यदाद्ये भुवनेश्वरी ।

हे भद्रे! ये तीनों विद्या (वागभव, कामराज, शक्तिबीज) लोकत्रय में दुर्लभ हैं।

देवी कहती हैं–मैं यदि आप की बल्लभा हूँ, हे ईशान! तब आप त्रैलोक्य को वश में करने वाली १६ वर्णमयी महाविद्या का वर्णन करें।

ईश्वर कहते हैं–हे देवी! तुम १६ अक्षर युक्ता महाविद्या को सुनों॥४०-४१॥

तदेयं परमेशानि षोडशाक्षररूपिणी ।।४२।।
मायास्थानेरमाबीजं दत्त्वान्या षोडशी भवेत् ।
वरदा सिद्धिदा विद्या कुबेरास्पददायिनी ।।४३।।
चिन्तामणिरियं विद्या त्रैलोक्ये चापि दुर्लभा।

हे परमेशानी! इस विद्या के पहले जब भुवनेश्वरी बीज में पंचदशी विद्या के पहले भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) जोड़ दिया जाता है तब उसे षोडशी कहते हैं। अर्थात् यह पहली षोडशी विद्या इस प्रकार से है। "ह्रींकएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलह्रीं" जब (भुवनेश्वरी) माया बीज न लगाकर रमा बीज (श्री) लगा देते हैं तब दूसरी षोडशी विद्या परिलक्षित होती है जैसे–"श्री कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलह्रीं"। यह (दोनों) विद्या वरप्रदा, सिद्धिप्रदा तथा कुबेर का पद (कुबेर के समान स्थिति) देने वाली है॥४२-४३॥

वेदादिमण्डिता चान्या विद्या मोक्षप्रदायिनी ।।४४।।
तथैव हि महाबीजं रमाबीजं तथैव च ।

पञ्चदशाक्षरीविद्यां तथैव च समुद्धरेत् ।।४५।।
सेयं सप्तदशी विद्या साक्षात् जाग्रत्स्वरूपिणी ।

देव्युवाच–

ततः कथय देवेश राजराजेश्वरीं पराम् ।।४६।।
षोडशार्णां महाविद्यां त्रैलोक्यवशदायिनीम् ।
जननीं सर्वमन्त्राणां परब्रह्मस्वरूपिणीम् ।।४७।।

यह चिन्तामणि स्वरूपा विद्या है जो तीनों लोकों में दुर्लभ है यह अन्य प्रकार से भी है और (इस प्रकार से भी) मोक्षप्रदा है। इसमें प्रारम्भ (आदि) में वेदादि (वेदों का आदि) 'ॐ' को जोड़ देने से यह सप्तदश अक्षरों वाली विद्या हो जाती है। यह विद्या सदैव जाग्रत रहती है (कभी सुप्त नहीं होती, क्रियाशील रहती है)। इसके अनुसार सप्तदशाक्षरा विद्या दो प्रकार की होगी–

(१) ॐ ह्रीं कएईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलह्रीं।
(२) ॐ श्रीं " "

देवी कहती हैं–हे देवी! कृपया अब राजराजेश्वरी परा महाविद्या का वर्णन करिये जो १६ वर्ण की, त्रैलोक्य को वशीभूत करने वाली, सर्वमन्त्रों की जननी रूपा तथा परब्रह्मारूपा है।।४४-४७।।

ईश्वर उवाच–

राजराजेश्वरीं विद्यां तथास्याः कवचं प्रिये ।
यो जानाति महीपृष्ठे स देवो न तु मानुषः।।४८।।
राजराजेश्वरी विद्या कथ्यते श्रृणु पार्वति ।
रमाबीजं समुद्धृत्य मायाबीजं नियोजयेत् ।।४९।।

ईश्वर कहते हैं–हे प्रिये। राजराजेश्वरी विद्या तथा इसके कवच को जानने वाला पृथ्वी पर देवता ही है। उसे मनुष्य नहीं मानना चाहिए। हे पार्वती! रमाबीज का समुद्धार करके (श्रीं) मायाबीज का नियोजन करे (ह्रीं)।।४८-४९।।

कामबीजं समालिख्य वाग्बीजं तदनन्तरम् ।
चतुर्दशस्वरोपेतं चन्द्रं बिन्दुयुगान्वितम् ।।५०।।
प्रणवं भुवनेशानीं रमां चैव महेश्वरि ।
पञ्चदशाक्षरीं पश्चादुद्धरेत् परमेश्वरि ।।५१।।
व्युत्क्रमात् परमेशानि पूर्वोक्तबीजपञ्चकम् ।
आलिख्य सम्पुटीकुर्य्याद् विद्येयं द्व्यष्टकूटका।।५२।।
तुरीयेयं महाविद्या केवलात्मस्वरूपिणी ।
षोडशार्णा महाविद्या श्रीविद्या कथिता परा।।५३।।

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ।।५४।
षोडशार्णां महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।
तव स्नेहान्महेशानि गन्धर्वे वै प्रकाशिता ।।५५।।

अब कामबीज (क्रीं) तथा वाग्बीज (ऐं) लिखे। चौदहवें स्वर से युक्त चन्द्र को दो बिन्दु से युक्त करके (सौः) तब प्रणव (ओं) भुवनेश्वरी (ह्रीं) तथा रमा (श्रीं) कहे। उसके अनन्तर पञ्चदशाक्षरी का उद्धार करके (एकईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलह्रीं) पूर्वोक्त पाँचों बीजों को विपरीत क्रम से अन्त में लिखें। यह विद्या दो अष्टकूट युता है। इसका स्वरूप यह होगा "श्रीं ह्रीं क्रीं ऐं सौः ओं ह्रीं श्रीं एकईलह्रीं हसकलह्रीं सहकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं" यह तुरीया महाविद्या केवलात्मकस्वरूपिणी है। १६ अक्षरों वाली यही महाविद्या परा श्रीविद्या कही गयी है। इस षोडशाक्षरी विद्या की महिमा का वर्णन कोटि सहस्रों मुखों से अथवा कोटिशत जिह्वा से भी नहीं किया जा सकता। इस १६ अक्षरों वाली महाविद्या को सभी तन्त्रों में गोपनीय रक्खा गया है। हे देवी! तुम्हारे स्नेह के कारण इसे गन्धर्व (तन्त्र) में प्रकाशित किया।।५०-५५।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पर्वतीश्वरसंवादे विद्याभेदोद्धारनिरूपण
नामको द्वितीयः पटलः।।२।।

।। गन्धर्व तन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद का विद्याभेद निरूपण नामक द्वितीय पटल समाप्त।।

◆

तृतीयः पटलः

पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपणम्

देव्युवाच–

देवदेव जगन्नाथ भक्तानामार्तिनाशन ।
पञ्चपञ्चाक्षरी विद्यां पञ्चमीं सर्वकामदाम् ।।१।।
अधुना कथयेशान समग्रां पापनाशिनीम् ।

देवी कहती हैं–हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे ईशान! आप भक्तों के दुःख को दूर करने वाले हैं। अब आप सर्व कामप्रदा पंच-पंचाक्षरी पापनाशिनी पञ्चमी विद्या को पूर्ण रूप से बतायें॥१॥

ईश्वर उवाच–

दुर्लभा पञ्चमी विद्या पञ्चकूटात्मिका शुभा ।।२।।
भक्तिमुक्तिप्रदा शुद्धा सुखदा दुःखनाशिनी ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यथा सा चिन्त्यते परा ।।३।।
गुरुभक्तेन शुद्धेन साधकेन सुबुद्धिना ।
देवि पञ्चात्मकं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।।४।।

ईश्वर कहते हैं–पाँच कूट युक्त पञ्चमी विद्या दुर्लभा है। यह शुभ फलदायिनी, भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी, शुद्धा, सुखप्रदा एवं दुःखों का विनाश करने वाली है। हे देवी! इस पराविद्या का जिस प्रकार से गुरुभक्त शुद्ध साधक (भूतशुद्धियुक्त), सद्बुद्धि वाले साधक जिस प्रकार से ध्यान करते हैं अब उसे सुनो। इस सचराचर जगत् में पाँच देवीगण व्याप्त हैं॥२-४॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ।
पृथिवी ब्राह्मणी शक्तिर्जलं नारायणी तथा ।।५।।
तेजो रुद्रस्य रुद्राणी वायुरीशस्य चेश्वरी ।
माहेश्वरी तथाकाशं शक्तिर्महेश्वरस्य (च) ।।६।।
पञ्चदेवात्मकं पञ्च पञ्चमीपञ्चशक्तयः।
या शक्तिः सर्वभूताां जगच्चैतन्यरूपिणी ।।७।।
सा एव पञ्चमी विद्या जगदाधाररूपिणी ।
सा एव हि जगत्सर्वं सा एव परमा कला ।।८।।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश रूप पंचतत्व हैं, ये पंचदेवीगण से व्याप्त हैं। पृथिवी, ब्रह्माणी ब्रह्मा की शक्ति है। जल नरायणी नरायण की शक्ति है। तेज रुद्राशक्ति रुद्राणी है। वायु ईश्वरी शक्ति है अर्थात् ईश्वर की शक्ति है।

आकाश महेश्वरी की शक्ति माहेश्वरी है। ये पाँचों पंचदेवात्मक हैं। पाँचों तत्व इन पाँच शक्तियों से ओतप्रोत हैं। जो शक्ति सर्वभूत समूह में, समस्त प्राणियों में चैतन्य स्वरूपा (अनुभूत होती है) है, वही पञ्चमीविद्या जगत् का आधार भी है। वही है समस्त जगत् एवं परमा-कलारूप॥५-८॥

नान्यत् परतरं देवि विद्यते तद्बहिष्कृते ।
पञ्चविंशतितत्त्वेन कूटके पञ्च देवताः ।।९।।
आदौ कामेश्वरी ज्ञेया ततो वज्रेश्वरी शुभा ।
तृतीया भगमाला च तुर्य्या त्रिपुरसुन्दरी ।।१०।।
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्य्याश्चिन्तनीया परा कला ।
सा एव पञ्चमी शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ।।११।।

हे देवी! उनके बाहर (अर्थात् उनका जो बहि:प्रकाशन है) उनसे बढ़कर कुछ नहीं हो सकता (क्योंकि बाहर जो कुछ है वह उनकी कला ही है, वह उनसे बढ़कर कैसे हो सकती हैं?) २५ तत्वों के ५ कूटों के ५ देवता हैं। पहली देवता कामेश्वरी, दूसरी हैं शुभप्रदा वज्रेश्वरी। तीसरी हैं भगमालिनी। चतुर्थ हैं त्रिपुरसुन्दरी। अब इन्हीं चतुर्थ देवता त्रिपुरसुन्दरी की चिन्तनीय (जिनका साधकगण चिन्तन करते हैं) जो पराकला है, वही है परब्रह्मरूपा पंचम शक्ति॥९-११॥

परमानन्दरूपं यज्जगतां कारणं महत् ।
तस्या देव्यास्तु तद्रूपमुदयास्तविवर्जितम् ।।१२।।
स्थूलत्वे स्थूलरूपा सा सूक्ष्मत्वे सूक्ष्मरूपिणी ।
स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन जगत्कारणरूपिणी ।।१३।।

उन देवी का रूप महान परमानन्दमय, जगत् कारण, उदयास्तरहित है। स्थूल में वे स्थूलरूप हैं। सूक्ष्म हेतु वे सूक्ष्मरूपा हैं। इस प्रकार से स्थूल-सूक्ष्म (रूप होने के कारण) वे इस जगत् की कारण भी हैं॥१२-१३॥

योऽसौ विश्वेश्वरो देवो विश्वं व्याप्य स्थितश्च यः।
सैव विश्वेश्वरी देवी व्यापकत्वेन संस्थिता ।।१४।।
नित्या सा सुखरूपा च महासुखशुभप्रदा ।
तत्स्वरूपानन्दमयी परमानन्दरूपिणी ।।१५।।
किं पुनः शक्तिरूपेण परब्रह्मस्वरूपिणी ।
तस्याः पुनः पुनः सृष्टिर्जायते लीयते सदा ।।१६।।
तस्माच्छक्तिः प्रधाना च शक्त्या व्याप्तमिदं जगत् ।
सर्वदानन्दहृदयश्चाद्वैतानन्दपारगः ।।१७।।

समयाचारसम्पन्नो भोगी भोगपरायणः।
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा गुरुभक्तो जितेन्द्रियः।।१८।।
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा पञ्चमीं समुपासयेत्।
पृथिव्यां मानवः श्रेष्ठो यदि जानाति पञ्चमीम्।।१९।।

जो विश्व के ईश्वर विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं, वे (अन्य कोई नहीं) ये देवी ही हैं। वे ही देवेश्वरी हैं। वे नित्य हैं, सुखरूपा हैं, महान् सुख एवं महान शुभ तक दे देने वाली हैं। वे तत्स्वरूप ब्रह्मस्वरूपा होने के कारण ब्रह्मानन्दमयी भी हैं। वे परमानन्दरूपा भी हैं। (आनन्द, ब्रह्मानन्द तथा परमानन्द रूप तीन आनन्द का यहाँ वर्णन है। परमानन्द ब्रह्मानन्द से भी परे की स्थिति है। गोपीनाथजी कविराज के ग्रन्थानुशीलन से यह विदित होता है)। वे शक्तिरूप से परब्रह्मस्वरूपा हैं। उनसे ही बारम्बार सृष्टि होती है और उनमें ही पुनः पुनः सृष्टिलय हो जाता है। तभी शक्ति को शास्त्रों में 'प्रधान' कहा गया है। उनसे समग्र जगत् व्याप्त है। हृद्रय से सर्वदा आनन्दित, अद्वैत आनन्द का ज्ञाता, समयाचार (विधि) का पालनकर्ता, भोगी, भोग परायण, सर्वदा ज्ञान से जिसका आत्मा शुद्ध हो गया है, गुरु भक्ति युक्त, जितेन्द्रिय साधक गन्धर्व रूप युक्त होकर पंचमी विद्या की उपासना करें। जो पञ्चमीविद्या का ज्ञाता है, वह पृथ्वी के सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ है।।१४-१९।।

शापभ्रष्टेन गन्धर्वो न नरो दैवयोगतः।
यो जानाति महाविद्यां पञ्चकूटात्मिकां पराम्।।२०।।
स भवेत् खेचरो देवि षण्मासान्नात्र संशयः।
सदा ज्ञानविशुद्धात्मा मोक्षभागी भवेन्नरः।।२१।
भोगेन लभते मुक्तिं यदि जानाति पञ्चमीम्।
पञ्चपञ्चाक्षरीं विद्यां योऽसौ जानाति साधकः।।२२।।
स पूज्यः सर्वलोकेषु स देवो नतु मानुषः।
त्रिकूटमेव कूटेषु कूटमेकं त्रिपञ्चकम्।।२३।।
पञ्चपञ्चाक्षरी विद्या त्रिकूटा पञ्चकूटकैः।
पञ्चविंशतितत्त्वेन वर्णरूपेण संस्थिता।।२४।।
एकवर्णे त्रिकूटे च त्रिकूटे पञ्च देवताः।
एकवर्णे पञ्चदश देवताः परिकीर्तिताः।।२५।।
पञ्चविंशतितत्त्वेन त्रिकूटे पञ्चसंख्यया।
पञ्चसप्ततिपूर्वाणि तेन तासां शतत्रयम्।।२६।।

पञ्चकूटान्विता विद्या परा सौभाग्यसुन्दरी ।
वर्णरूपेण सा देवी जगदाधाररूपिणी ।।२७।।
अक्षरात् सर्वमुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।
नित्यमेकाक्षरं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् ।।२८।।
जप्यमेकाक्षरं ब्रह्म आदिकूटान्त मध्यगम् ।
जप्त्वा तत्साधयेत् सर्वं बहुजप्तेन किं फलम् ।।२९।।
तदेव परमं गुह्यं महासौभाग्यदायकम् ।
तदेव पञ्चकूटं तु पञ्चतत्त्वेन पञ्चमी ।।३०।।

जो व्यक्ति इस पञ्चकूटाविद्या को जानता है, उसे यदि दैवदुर्विपाक से शाप मिल जाये तब वह पुनः मनुष्यादि योनि में जाकर गन्धर्व ही होगा। वह (इस विद्या की उपासना से) छ माह में ही खेचरत्व (आकाश गमन शक्ति) प्राप्त कर लेता है। सदैव ज्ञान से विशुद्ध आत्मा वाला वह मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। पञ्चमी विद्या को जानने वाला साधक भोग से ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। पञ्चपञ्चाक्षरी विद्या का ज्ञाता साधक सभी लोक समूह में पूजा जाता है। वह देवता है, मनुष्य नहीं है। (यहाँ श्लोकों का अर्थ विषयानुरूप तारतम्य से कहा जा रहा है। श्लोकों के तारतम्य से अर्थ करने पर विषयवस्तु जटिल हो जायेगी)

२५ तत्वात्मक वर्णरूपेण यह विद्या स्थित है। अतः त्रिकूटान्तर्गत पंचदेवता तथा एक वर्ण में १५ देवताओं की स्थिति है। इस प्रकार से २५×३=७५×५=३७५ की संख्या हो जाती है। इस प्रकार से ७५, ७५, ७५, ७५, ७५ के ५ कूटों वाली यह विद्या ही पराविद्या एवं सौभाग्य सुन्दरी है।

जब यह वर्णरूपा होती है तब यही जगदाधार रूप हो जाती है। समस्त जगत् की उत्पत्ति अक्षर से होती है। इन सब का उद्गमस्थल एकाक्षर ब्रह्म नित्य है। (आदि अन्त रहित है)। यही परमपद कहा गया है। इस एकाक्षर ब्रह्म का सर्वदा जप करे, क्योंकि यही है आदिकूट-मध्यकूट एवं अन्तकूट। अनेक प्रकार के जप की क्या आवश्यकता, जब इस (एक) का ही जप करके साधक सर्व सिद्धि समूह को पा सकता है! यह परम गुह्य, महासौभाग्यदायक (विद्या) है। अतएव यह जो पंचकूट है, यही पञ्चतत्वात्मक पञ्चमी विद्या है॥२०-३०॥

कामं विष्णुयुतं शक्तिर्माया शक्रश्च पार्वति ।
पश्चाद् देवि महामायाबीजं चान्ते नियोजयेत् ।।३१।।

शिवबीजं समुद्धृत्य शक्तिबीजं तदन्तरम् ।
तदधः कामबीजं तु भूर्व्योमानलसंयुतम् ।।३२।।
चतुर्थस्वरसंयुक्तमर्द्धेन्दुबिन्दुभूषितम् ।
प्रथमं कामराजस्य कूटं त्रैलोक्यपूजितम् ।।३३।।
मध्यकूटं प्रवक्ष्यामि कामराजस्य मध्यगम् ।
अतिगुह्यतरं देवि स्नेहाद् वक्ष्यामि केवलम् ।।३४।।

हे पार्वती! विष्णु से युक्त काम (क), शक्ति (ए), माया (ई) तथा शक्र (ल) के पश्चात् महामाया (ह्रीं)। अतः कूट का उद्धार होता है "क ए ई ल ह्रीं" यह एक कूट है।

अब शिवबीज (ह) को उद्घृत करके शक्तिबीज (स), तदनन्तर कामबीज (क) को पृथ्वी (ल) व्योम (ह) तथा अनल (र) से युक्त करे। साथ ही उसे चतुर्थ स्वर 'ई' एवं अर्द्धचन्द्र बिन्दु ँ से युक्त करना चाहिये। कूट का उद्धार होता है 'हसकलह्रीं'। यह द्वितीय कूट है। प्रथम कामराज कूट है जो त्रैलोक्य पूजित है।

अब कामराज का मध्यकूट कहता हूँ। यह अत्यन्त गोपनीय है केवल तुम्हारे स्नेह के कारण कहूँगा।।३१-३४।।

वियद्विष्णुयुतं देवि मादनं तदनन्तरम् ।
तदधो हंसबीजं तु इन्द्रबीजं समुद्धरेत् ।।३५।।
विष्णोः पदं वह्नियुतं मायाबीजं समुद्धरेत् ।
मध्यकूटमिदं प्रोक्तं महासौभाग्यदायकम् ।।३६।।

हे देवी! व्योम (ह) को विष्णु से युक्त करे (अ)। तदनन्तर मादन बीज (क) तत्पश्चात् हंसबीज (ह) एवं इन्द्रबीज (ल) को उद्धृत करे। तत्पश्चात् विष्णु पद (ह) अग्नि से युक्त करके (र) मायाबीज को उद्घृत करे। मन्त्र होता है "हकहलह्रीं" यह तृतीय कूट है। यह मध्यमूट महासौभाग्यप्रद है।।३५-३६।।

तुरीयं तु प्रवक्ष्यामि श्रृणु देवि सदुर्लभम् ।
कामबीजं महेशानि शिवबीजं ततः परम् ।।३७।।
यदधो वायुबीजं तु इन्द्रबीजं नियोजयेत् ।
वियद् वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरभूषितम् ।।३८।।
अर्द्धेन्दुबिन्दुसंयुक्तं चतुर्थं कूटमुत्तमम् ।
शक्तिकूटं प्रवक्ष्यामि श्रृणु देवि सुदुर्लभम् ।।३९।।

अब चतुर्थकूट कहता हूँ। हे देवी! इस अत्यन्त दुर्लभ कूट को सुनो। हे महेशानी! कामबीज (क) के पश्चात् शिवबीज (ह) तत्पश्चात् वायुबीज (य),

तदनन्तर इन्द्रबीज (ल) को युक्त करे। तदनन्तर आकाश (ह) वह्नियुक्त (र) करके चतुर्थ स्वर से भूषित (ई) करके अर्द्धेन्दु बिन्दु ँ से युक्त करे। अब यह चतुर्थकूट है–"कहयलह्रीं"। अब मैं शक्तिकूट बतलाता हूँ। हे देवी! उस सुदुर्लभ कूट को सुनो॥३७-३९॥

यत् श्रुत्वा साधकाः लभन्ते मुक्तिमुत्तमाम् ।
प्राणबीजं समुद्धृत्य कामबीजं समुद्धरेत् ।।४०।।
इन्द्रबीजं तथा देवि क्रमेण विनियोजयेत् ।
सान्तं वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम् ।।४१।।
नादबिन्दुकलायुक्तं शक्तिकूटं समुद्धरेत् ।
फलं चास्य विशेषेण साधनं च वरानने ।।४२।।
कथितव्यं मया देवि सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना ।
एषा विद्या महाविद्या गुह्याद् गुह्यतमा प्रिये ।।४३।।
भोगदा मोक्षदा चैव सर्वकामार्थसिद्धिदा ।
वाग्भवं प्रथमं कूटं शक्तिकूटं तु पञ्चमम् ।।४४।।

प्राणबीज (ह) को उद्‌धृत करके कामबीज (क) का उद्धार करना चाहिये। हे देवी! तदनन्तर क्रमानुसार इन्द्रबीज को (ल) से युक्त करे तथा देवी बीज (स) लगाये। अब सान्त (ह) को अग्निबीज (र) से युक्त तथा चतुर्थस्वर (ई) से संयुक्त कर दे। अब इसे नादबिन्दु कला (ँ) से युक्त करे। अब यह कूट होगा "हकलसह्रीं"। यह है पञ्चमकूट। हे वरानने! इस विद्या की साधना तथा उसके फल के सम्बन्ध में विशिष्टतया कहना है। अब उसे संक्षिप्त रूप से कहता हूँ। हे प्रिया! यह विद्या गुह्य से भी गुह्य महाविद्या है। तथा भोग-मोक्षप्रदा एवं सर्वकाम (कामनासमूह) में सिद्धिप्रदा भी है। इसमें प्रथम है वाग्भवकूट तथा शक्तिकूट पंचमकूट है॥४२-४४॥

मध्यकूटत्रयं देवि काम राजं मनोहरम् ।
कामराजं प्रवक्ष्यामि कूटभेदेन तच्छृणु ।।४५।।
ज्ञात्वा तत्साधयेद् देवि असाध्यमपि भूतले ।
सौभाग्यं प्रथमं कूटं महासौभाग्यदायकम् ।।४६।।
त्रिकूटमेककूटेन काम (बी?रा)जं महत्परम् ।
एवं कूटत्रयेणैव नित्या सौभाग्यसुन्दरी ।।४७।।

हे देवी! मध्यकूटत्रय मनोहर कामराज कूट हैं। हे देवी! अब मैं कूट- भेदानुसार कामराज का वर्णन करूँगा। उसे जानकर (साधक) पृथ्वी पर असाध्य को भी सिद्ध

कर लेता है। प्रथम है सौभाग्यकूट यह महान सौभाग्यप्रद है। यह मध्य के तीन कूटों में से प्रथम है। इन कूटों को त्रिकूट रूप भेदपरक भावना से न देखकर अभेदपरक भावना से देखने पर यह महापरम कामराज कहलाता है। इन मध्य तीन कूटों की स्थिति के कारण यह नित्या एवं सौभाग्यसुन्दरी (विद्या) है॥४५-४७॥

एकत्र पञ्चकूटेन नित्यं कूटत्रयान्विता ।
दुर्लभा सर्वलोकेषु महासौभाग्यसुन्दरी ।।४८।।
एतस्या एव विद्याया मध्यकूटस्य मध्यमम् ।
जप्त्वानन्दमयो भूत्वा सर्वकाममुपालभे ।।४९।।
इयं स्वप्नावती नाम्ना विद्या त्रैलोक्यविश्रुता ।
आकर्षणकरी विद्या जगदाह्लादकारिणी ।।५०।।

(इस प्रकार) पाँच कूटों को एकत्र कर देनें पर अर्थात् का पहला बीच का तीन, तथा पाँचवां, इन कूटत्रय से समन्वित महासौभाग्यसुन्दरी विद्या त्रिलोकी में सर्वथा दुर्लभ है। मध्य के जो तीन कूट हैं उनमें से मध्यम का जप करके साधक आनन्द से सराबोर होकर समस्त कामनाओं की पूर्ति कर लेता है। इस विद्या को त्रिलोकी में स्वप्नावती कहते हैं जो आकर्षण करने वाली तथा संसार को आनन्द देने वाली विद्या है॥४८-५०॥

साधनं च प्रवक्ष्यामि यस्मादाकर्षणं भवेत् ।
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले नारीणा पुरुषस्य च ।।५१।।
नार्यो वश्या विशेषेण वशं याति जगत्त्रयम् ।
भोगदा मोक्षदा चैषा विद्या गन्धर्वसेविता ।।५२।।
महाभोगवती विद्या महदैश्वर्यदायिनी ।
तथा मधुमतीसिद्धिर्जायतेऽस्याः प्रसादतः।।५३।।

अब मैं उस साधन को बतलाता हूँ जिससे आकर्षण होता है। इस विद्या द्वारा स्वर्ग, पृथ्वीलोक, पाताललोक स्थित नारी तथा नर का आकर्षण साधित होता है। विशेषरूप से नारीगण आकर्षित हो जाती हैं, तीनों लोकों को वश में किया जा सकता है। यह गन्धर्वो से सेविता विद्या भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करती है। यह महाभोगवती विद्या महद् ऐश्वर्य को देने वाली है। इसके प्रसन्न हो जाने पर इसी की कृपा से मधुमती सिद्धि की प्राप्ति होती है॥५१-५३॥

बृहत्त्वं च लघुत्वं च दर्शनादर्शने तथा ।
प्रवेशं परकायस्य कामरूपो भवेद् ध्रुवम् ।।५४।।

पुंसां रूपं स्त्रियां रूपं यच्चान्यद्रूपमुत्तमम्।
सर्वं तत् परमं रूपं तस्या एव न संशयः।।५५।।
कान्तिस्तुष्टिस्तथा पुष्टिःश्रद्धा लज्जा दया घृणा।
धृतिः शान्तिस्तथा ऋद्धिः सिद्धिर्बुद्धिर्मति क्षमा।।५६।।
महामाया महाबुद्धिर्महाविद्या महोदया।
महामहत्करी विद्या ब्रह्मविद्यैव केवला।।५७।।

बृहत्व (विशाल हो जाना महिमासिद्धि), लघुत्व (सूक्ष्म हो जाना) दृश्यत्व (सब कुछ, देखनें की शक्ति, निधिदर्शन, आदि दूर तक देखने वाली दृष्टि) अदृश्यत्व (गायब हो जाना), परकाया प्रवेश, कामरूप (मनचाहे रूप में लक्षित होना), सिद्धि निश्चय प्राप्त हो जाती है। जो भी उत्तम से उत्तम रूप हैं, चाहे पुरुष का हो चाहे स्त्री का हो, वह सब उसका ही (विद्या) का परम रूप है। कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, दया, घृणा, घृति, शान्ति, ऋद्धि, सिद्धि, बुद्धि, मति, क्षमा, महामाया, महाबुद्धि, महाविद्या, महोदय, महान से महान-महत्तम बनानें वाली विद्या (यही) ब्रह्मविद्या ही है।।५४-५७।।

महाभूतदिने नक्तं श्मशाने यदि साधकः।
सहस्रैकप्रमाणेन किं न सिध्यति भूतले।।५८।।
यो जपेत् पञ्चमीं विद्यां परां त्रैलोक्यमातृकाम्।
स नरो देवदेवेशो महादेव इवापरः।।५९।।
भोगात्मा लभते भुक्तिं नानाभोगेन केवलम्।
भुनक्ति बहुलान् भोगान् रसान्नानाविधानपि।।६०।।
यद् ब्रुवन्त्यक्षरं लोके भुनक्ति बहुलं सुखम्।
शून्यागारे विहारे च चिन्तयन्यो जपेत्पराम्।।६१।।
आकर्षणं भवेत्तस्य सर्वकामं ततो लभेत्।
प्रथमानन्दहृदयो द्वितीय मुपभोगवान्।।६२।।
तृतीयमुपभोगेन चतुर्थमपि कामयेत्।
पञ्चमं प्रथमं पुण्यं मन्त्रसिद्धिकरं परम्।।६३।।

यदि साधक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात्रि में श्मशान भूमि में जाकर उक्त विद्या का एक हजार जप करे (यहाँ उक्त विद्या से तात्पर्य है पंचमी विद्या अर्थात् ''हकलसह्रीं''। इसपंचमी विद्या का वहाँ सहस्त्र जप करे) स धरा पर उसे क्या नहीं मिल सकता। जो इस त्रैलोक्य मातृकारूप इस पंचमी पराविद्या का जप करता है, वह देवताओं का स्वामी तथा महादेव के समान हो जाता है।

योगार्थी को अनेक प्रकार के भोग मिलते हैं, वह नानाविध भोगों के रस का नाना प्रकार से भोगता है। यहाँ जिसे लोग अक्षर नाम से जानते हैं, कहते हैं, वह पृथ्वीलोक पर वैसे सुख को प्राप्त करके भोगता है। शून्य गृह में, अथवा स्त्री विहार के समय जो व्यक्ति चिन्तन करके इस परा पञ्चमी विद्या का जप करता है, उसे आकर्षण शक्ति की प्राप्ति होती है तथा सर्व कामनाओं की प्राप्ति होती है। प्रथमकूट के जप का फल है हृदय में आनन्द। द्वितीय कूट का जप करने पर नाना प्रकार के भोग की प्राप्ति हो जाता है। तृतीय कूट का जप करके साधक उपभोग प्राप्त करता है। चतुर्थ कूट से कामना की तृप्ति होती है। पंचम एवं प्रथम कूट के एकत्र जप से मन्त्रसिद्धि तथा पुण्य की प्राप्ति होती है।।५८-६३।।

पञ्चमं तु विशेषेण भोगयेत् कामयेत् सदा।
पञ्चमाभ्यसनाद्वीरः पूजाया लभते फलम्।।६४।।
कुण्डगोलोद्भवैर्द्रव्यैः स्वयम्भूकुसुमेन च।
रोचनाकुकुमाभ्यां च जपमालां प्रलेपयेत्।।६५।।
कर्पूरागुरुकस्तूरीरोचनाकुंकुमेन च।
जपमालामुपस्कृत्य प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत्।।६६।।

बीर व्यक्ति मात्र पञ्चम कूट के अभ्यास से (जप से) विशिष्ट भोग तथा काम तृप्ति प्राप्त कर लेता है। वह वीराचारी पूजा का फल प्राप्त कर लेता है।

कुण्ड (पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात्) तथा गोलक से (मृते भर्त्तारि गोलकः) तथा स्वयम्भु कुसुम (प्रथम पुष्पवती कन्या का) एवं गोरोचन तथा कुंकुम–इन पाँच को मिलाकर जप माला पर लेप चढ़ाना चाहिये। कपूर, अगरु, कस्तूरी को मिलाकर उससे जपमाला को सजाकर प्राण प्रतिष्ठा करे। (प्राणप्रतिष्ठा विधि हेतु–'आगमतत्वविलास' देखें, कुण्ड, गोलक तथा स्वयम्भुकुसुम हेतु सर्वोल्लास तन्त्र देखें, दोनों की व्याख्या इसी ग्रन्थ के व्याख्याकार द्वारा प्रस्तुत है)।।६४-६६।।

तद्द्रव्यैक्षताञ्छुद्धान् संस्राव्य च पुनः पुनः।
वारिणा शोधितं कृत्वा सिन्दूरे निक्षिपेत् ततः।।६७।।
पटे चित्रमये शुद्धे नक्तं यः पूजयेन्नरः।
जप्त्वा विद्यां च मालायां सर्वकाममुपालभेत्।।६८।।

उपरोक्त ५ द्रव्य तथा कपूरादि तीन द्रव्य से बारम्बार लेप किये अक्षतों को जल से शुद्ध करके उसे सिन्दुर में रख देना चाहिए। तत्पश्चात् शुद्ध चित्र-विचित्र वर्ण वाले वस्त्र पर रखकर रात्रि में जो पूजा करता है, तथा इस प्राण प्रतिष्ठित माला से जो पञ्चमी विद्या का जप करता है, उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।६७-६८।।

आनीय कन्यकां दिव्यां प्रमदां यौवनोन्नताम् ।
उक्षितां मूलमन्त्रेण सुशीलां चारुहासिनीम् ।।६९।।
सर्वदानन्दहृदयां घृणालज्जाविवर्जिताम् ।
गुरुभक्तां सुवेशां च देवतापूजने रताम् ।।७०।।
तस्या गात्रे न्यसेन्मन्त्रो पञ्चकामाञ् शरानपि ।
पञ्चकूटं न्यसेन्मन्त्री पञ्चाशन्मातृकां न्यसेत् ।।७१।।
दिव्यमालां समादाय साधको विजितेन्द्रियः।
सहस्रैकप्रमाणेन जपेत् स्वप्नावतीं ततः ।।७२।।

एक सुन्दरी, दिव्य यौवन से मदोन्मत्त, सुशीला, चारुहासिनी, सर्वदा आनन्द-पूर्ण हृदया, घृणा-लज्जा रहिता, गुरुभक्तिमती, अच्छे वेशवाली, देवतापूजनरता कन्या को लाकर उसे मूलमन्त्र से उक्षित करना चाहिये। तदनन्तर साधक उसके शरीर पर पञ्चशर (कामदेव के पंचशर को) न्यस्त करे, (अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका एवं पारिजात पत्र को कामदेव का पंचशर कहते हैं)। उसके शरीर पर पंचकूट तथा ५० मातृकाओं का न्यास करें। तदनन्तर (उस कन्या के समक्ष) साधक इन्द्रियों पर वश करके उस प्राणप्रतिष्ठित दिव्य माला को ग्रहण करके १००० जप स्वप्नावती विद्या का करे॥६९-७२॥

अनेनैव विधानेन भवेदाकर्षणं महत् ।
तस्यास्तु मदनागारे पूजयेत् परमेश्वरीम् ।।७३।।
सर्वसङ्क्षोभिणीं मुद्रां बद्ध्वा योनिं प्रचालयेत् ।
कामेश्वरीस्वरूपां तां चिन्तयेत् साधकोत्तमः ।।७४।।
कामेश्वरस्वरूपं च आत्मानमपि भावयन् ।
स्वयमक्षोभितो भूत्वा साधकः पञ्चमं चरन् ।।७५।।
तस्याः पुष्पं स्वयं यावद् रक्षणीयं प्रयत्नतः।
ताम्बूलगन्धपुष्पैश्च प्रत्यहं पूजयेच्च ताम् ।।७६।।
नानारसान्नपानेन तृप्तिमाचर्य यत्नतः।
वस्त्रालङ्कारभूषाद्यैस्तस्या सन्तोषमानयेत् ।।७७।।

इस विधान से (जप करने पर) महान् आकर्षण होता है। उस कन्या की योनि में परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये। उँगलियों से सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा बन्धन करके उसे उसकी योनि में प्रचालित करे। उत्तम साधक उस योनि की कामेश्वरी रूप भावना करके ध्यानरत हों। साधक उस समय स्वयं को कामेश्वरी रूप माने। तब क्षोभ से रहित साधक पञ्चम मकार (मैथुन) का आचरण करता

हुआ, कन्या के रजः की रक्षा करे। (इस कन्या का रजः आगे पूजनार्थ आवश्यक है)। उस सुन्दरी की प्रतिदिन ताम्बूल, गन्ध पुष्प से नित्य पूजा करें।।७३-७७।।

यथाकाले तथा पुष्पं स्वयं तद्गोप्यरूपतः।
गृहीत्वा तु प्रयत्नेन स्वयम्भूकुसुमं हि तत् ।।७८।।
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं त्रैलोक्येष्वपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति साधकश्रेष्ठो दुर्लभं साधयेद्भुवि ।।७९।।
स्वयम्भूपुष्पयोगेन साक्षतेन सदार्चयेत् ।
विद्यां स्वप्नावतीं जप्त्वा क्षिप्रमाकर्षणं भवेत् ।।८०।।
देवताश्च ग्रहा नागा दानवा राक्षसाश्च ये ।
राजानश्च स्त्रियः सर्वा नित्यं वश्या भवन्ति हि ।।८१।।
स्वयम्भूकुसुमै पूजां प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
जप्त्वा वै दिव्यमालायां सर्वकाममुपालभेत् ।।८२।।

नाना प्रकार के रसयुक्त अन्न पान से उन्हें सन्तुष्ट करके वस्त्राभूषण तथा अलंकरण से उस कन्या को प्रसन्न करना चाहिये। उसके पुष्प (रजः) को यथा काल गोपनीयता से प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित कर लेना चाहिए। प्रथम पुष्प को ही लेना चाहिए, उसके पूर्व पंचम मकार का आचरण न करें। पंचम मकार का आचरण तत्पश्चात् गुरु आदेश से करे। ऐसा स्वयम्भु दिव्य पुष्प त्रैलोक्य में दुर्लभ है। साधक श्रेष्ठ उसे पाकर भूमण्डल पर दुर्लभ को भी साधित कर सकते हैं। (जो अक्षत पहले तैयार करने के लिए लिखा है) उस अक्षत तथा स्वयम्भु पुष्प से देवी पूजन सदैव सम्पादित करें। यह स्वप्रवती विद्या जपने से आकर्षण कार्य क्षिप्रगति से होता है। इस जप साधना से देवता-ग्रह-नाग-दानव-राक्षस-राजा तथा स्त्रीगण सदा वश में हो जाते हैं। जो साधक स्वयम्भु पुष्प से नित्य पूजन सम्पादित करता है तथा इस दिव्यमाला द्वारा जप करता है (पंचमविद्या का जप) उसे सभी कामनायें फलीभूत हो जाती हैं।।७८-८२।।

पार्वत्युवाच–

पुराप्येकादशी विद्या भवता कथिता मयि ।
नाराधिता मया यस्मात्तस्मान्मृत्युवशं गता ।।८३।।
सारात्सारतरां विद्यां श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ।

ईश्वर उवाच–

एकादशाक्षरी विद्या भैरव्या कथिता पुरा ।।८४।।
इदानीं तव प्रीत्यर्थं कथयामि तथा पराम् ।
मादनं गोत्रभि(च्छा?त्सा) न्तो रेफमायार्धचन्द्रवान् ।।८५।।

नादबिन्दुसमायुक्तो वाग्भवः परमेश्वरि ।
ब्रह्मा च गगनं शक्रो नकुलीशोऽनलः शशी ।।८६।।
माया बिन्दुः सनादेन कामराजं समुद्धरेत् ।
शक्तिर्मादनशक्रश्च हरो वह्नीन्दुमायया ।।८७।।
कलानादसमाक्रान्तः कथितः कामदो मनुः ।
यस्मै कस्मै न दातन्यो बान्धवाय च पार्वति ।
मनुर्विमृ(ष्य?श्य)दातव्यो ज्येष्ठपुत्राय धीमते ।।८८।।

भगवती पार्वती कहती हैं–आपने पुराकाल में एकादशी विद्या का उपदेश दिया था। मैंने उसकी अराधना नहीं किया था, अतः मृत्यु को प्राप्त होना पड़ा (सती अवतार में)। अब मैं सारों की सार उस विद्या को सुननें क्री इच्छा करती हूँ। ईश्वर कहते हैं–मैंने इस एकादशी विद्या का उपदेश भैरवी को दिया था। अब तुम्हें प्रसन्न करने के लिये उस पराविद्या का वर्णन करता हूँ। मादन (क), गोत्रमित् (ल), रेफ (र), माया (ई), अर्द्धचन्द्र से युक्त (ँ) सान्त (ह), नाद-बिन्दु से युक्त होकर वाग्भवकूट होता है। यह मन्त्र है "कलह्रीं"। हे परमेश्वरी! अब ब्रह्मा (क), गगन (ह), शक्र (ल), नकुलीश (ह), अनल (र), चन्द्र-माया बिन्दुनाद से युक्त होकर 'ह्रीं' बीज का उद्धार मन्त्रोद्धार है 'कहलह्रीं' यह कामराज कूट है। शक्ति (स), मादन (क), शक्र (ल) तथा हर (ह), वह्नि (र)–इन्दु माया कला से युक्त होकर मन्त्रोद्धार होता है 'ह्रीं'। मन्त्रोद्धार है सकलह्रीं। इन तीनों को मिलाने से कामदमन्त्र एकादशी विद्या होती है। यथा "कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं।।८३-८८।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पञ्चमीविद्योद्धारप्रयोगादिनिरूपण नामकस्तृतीयः पटलः।।३।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद का पञ्चमीविद्योद्धार प्रयोगादि निरूपण नामक तृतीय पटल समाप्त ।।

◆

चतुर्थः पटलः

त्रैलोक्यमोहनकवचविधानम्

पार्वत्युवाच–

देवदेव महादेव लोकानां हितकारक ।
यत्सूचितं पुरा नाथ किमर्थं न प्रकाशितम् ।।१।।
राजराजेश्वरीदेव्यास्त्रिपुरायाः शुभावहम् ।
कवचं यदि मे प्रीतः कथयस्व वृषध्वज ।।२।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे देवदेव! महादेव! लोकों का हित करने वाले! हे नाथ! आपने पहले जिसे सूचित किया था, उसे प्रकाशित क्यों नहीं किया? हे वृषभ-ध्वज! यदि आप मुझसे प्रीति करते हैं तब राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी का शुभ वह कवच मुझसे कहिये॥१-२॥

ईश्वर उवाच–

लक्षवारसहस्त्राणि वारितासि पुनः पुनः ।
स्त्रीस्वभावान्महादेवि पुनस्त्वं परिपृच्छसि ।।३।।
अत्यन्तं दुर्लभं गुह्यं कवचं सर्वकामदम् ।
तथापि कथयाम्यद्य तव प्रीत्या वरानने ।।४।।
त्रैलोक्यमोहनं नाम त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
सर्वसौभाग्यजननं भोगमोक्षफलप्रदम् ।।५।।

ईश्वर कहते हैं–हे महादेवी! लक्ष सहस्त्र बार तुमसे मना कर दिया था, वारण किया था कि यह मत पूछो (गुप्त होने के कारण) परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण तुम बारम्बार पूछती हो।

यह सर्वकामप्रद कवच अत्यन्त दुर्लभ एवं गुह्य कवच है। हे वरानने! इतने पर भी तुम्हारे प्रेम के कारण कहता हूँ। यह त्रैलोक्य मोहन नामक कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है। यह सर्व सौभाग्य देने वाला, भोगमोक्षप्रद कवच है॥३-५॥

यद्धृत्वा दानवान् विष्णुर्निजघान सुदारुणान् ।
लोकान् वितनुते ब्रह्मा संहर्ताहं यतः प्रिये ।।६।।
धनाधिपः कुबेरोऽपि यतः सर्वे दिगीश्वराः ।
नैतत्परतरं गुह्यं प्रतिजाने हि पार्वति ।।७।।

इसे धारण करके विष्णु ने अत्यन्त भयंकर दानवों का वध किया था। इस कवच को धारण करके ब्रह्मा लोक समूह की सृष्टि करते हैं। और (इस कवच को धारण करके) मैं लोकों का संहरण करता हूँ। इसी कवच की कृपा से कुबेर

धनाधीश हैं, तथा अन्य देवगण दिशाओं के अधिपति हैं। हे पार्वती! इससे अधिक बढ़कर कुछ भी गोपनीय नहीं है॥६-७॥

वेदशास्त्रपुराणेषु सारमेतद्वरानने ।
पुत्रदारादिसहितं शिरो देयं कथंचन ।।८।।
न देयं कवचं गुह्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
शृणु सर्वाङ्गसुभगे दिव्यं कवचमुत्तमम् ।।९।।

हे वरानने! इसे वेद-पुराणादि शास्त्र का सार समझो। पुत्र-स्त्री के साथ अपना शिर भले दे दे लेकिन भले ही प्राण कण्ठ तक आ जायें, यह कवच किसी को नहीं देना चाहिये। हे सर्वाङ्ग सुन्दरी! इस उत्तम तथा दिव्य कवच को सुनों॥८-९॥

राजराजेश्वरीदेव्याः कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराड् देवता च मातात्रिपुरसुन्दरी ।।१०।।
हंसः शक्तिः परा बीजं रमाबीजं च कीलकम् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।।११।।

इस राजराजेश्वरी भगवती कवच के ऋषि हैं शिव, छन्दः है विराट, देवता हैं महात्रिपुरसुन्दरी। हंसः शक्ति है, पराबीज (ह्रीं) है, रमाबीज (श्रीं) कीलक है। इसका प्रयोग होता है धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के लिए॥१०-११॥

त्रिपुरा त्रिविधा पातु मम सर्वार्थसिद्धये ।
ऐं क्लीं सौः वदने बाला पातुसर्वार्थसिद्धिदा ।।१२।।
हस्त्रैं-हसकलरीं-हस्त्रौः कण्ठे (पातु महादेवी श्रीमत्)त्रिपुरभैरवी ।
हृदयेऽव्यान्महेशानी महात्रिपुरसुन्दरी ।।१३।।
राजराजेश्वरीविद्या षोडशी या महोदया ।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु कमला परमेश्वरी ।।१४।।

ऐं क्लीं सौः बाला वदन की रक्षा करें। जो सर्वार्थ सिद्धिदा "हस्त्रैं हसकलरीं हस्त्रैं" हैं, वे त्रिपुरभैरवी कण्ठ की रक्षा करें। हृदय की रक्षा त्रिपुरसुन्दरी षोडशी करें जो महोदया हैं। ब्रह्मरन्ध्र की सदा रक्षा कमला परमेश्वरी करें॥१२-१४॥

गिरिराजसुता देवी पातु नित्यं च शीर्षके ।
कामबीजं ललाटेऽव्याद्वाग्बीजं कण्ठदेशके ।।१५।।
सौः पातु तथा पार्श्वे प्रणवो बाहुमूलके ।
शम्भुप्रिया सदा पातु बाह्वोर्दक्षिणसव्ययोः।।१६।।

विष्णुप्रिया सदा पातु मणिबन्धद्वये तथा ।
पार्वतीशः करे पातु नेत्रे नक्षत्रवल्लभः ।।१७।।
श्रोत्रे रतिप्रियः पातु घ्राणे शक्रः सदाऽवतु ।
पृष्ठदेशे सदा पातु पार्वती परमेश्वरी ।।१८।।
ह्सौः श्वासे चैव निश्वासे पातां परमसिद्धिदौ ।
कामः कामे सदा पातु पिनाकी लिङ्गगोचरे ।।१९।।

शिर की रक्षा गिरिराज कन्या करें। ललाट की रक्षा कामबीज करें। कण्ठ देश की रक्षा वाग्बीज करें। पार्श्व की रक्षा 'सौः' करें। प्रणव बहुमूल की रक्षा करें। बायें तथा दाहिनें बाहुद्वय की रक्षा शम्भुप्रिया करें। दोनों मणिबन्ध की रक्षा विष्णुप्रिया करें। करद्वय का रक्षण पार्वतीश करें। नेत्रों की रक्षा नक्षत्रवल्लभ करें। श्रोत्रद्वय की रक्षा रति-प्रिया द्वारा हो, घ्राणद्वय की रक्षा शक्र करें। पृष्ठदेश की रक्षा सदैव पार्वती परमेश्वरी करें। प्रश्वास की रक्षा 'ह्सौ' करें, निश्वास की रक्षा परमसिद्धिदायक करें। काम की रक्षा काम करें। लिंग की रक्षा पिनाकी करें।।१५-१९।।

पृथ्वी सर्वांशके पातु हृल्लेखाहृदयेऽवतु ।
स्तनौ विष्णुप्रिया पातु कुक्षौ च सपुरान्तकः।।२०।।
नेत्रे वज्रधरः पातु माया वै जठरेऽवतु ।
पदद्वन्द्वे च सौः पातु ऐं जिह्वानिलयेऽवतु ।।२१।।
क्लींकार सर्वदा पातु दन्तोष्ठयोर्वरानने ।
शीर्षादिपादपर्यन्तं सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी ।।२२।।

सर्वांश की रक्षा पृथिवी करें। हृदय की रक्षा हृल्लेखा करें। स्तन की रक्षा विष्णुप्रिया करें। कुक्षि की रक्षा त्रिपुरान्तक द्वारा हो। नेत्रों की रक्षा वज्रधर करें, जठर की रक्षा माया करें, पादद्वय की रक्षा 'सौः' करें। जिह्वा की रक्षा 'ऐं' करें। हे वरानने! दाँत तथा ओठ की रक्षा 'क्लीं' द्वारा हो। शिर से पैर तक की रक्षा भुवनेश्वरी करें।।२०-२२।।

रक्षाहीनं च यत् स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।
तत्सर्वं परमेशानि पातु नित्यं हरिप्रिया ।।२३।।
आधारे वाग्भव पातु कामराजो हृदि प्रिये ।
शक्तिकूटं तथा पातु भ्रुवोर्मध्ये च पार्वति ।।२४।।
शीर्षे कूटत्रयं पातु ललाटे सर्वमन्त्रकः।
अष्टाविंशतिवर्णेयं मुखवृन्ते सदावतु ।।२५।।

षोडशीयं महाविद्या ब्रह्मविद्यैव केवला ।
भोगमोक्षप्रदा देवी केवलात्मस्वरूपिणी ।।२६।।
कामेश्वरी ललाटेऽव्यान्मुखे तु भगमालिनी ।
दक्षनेत्रे सदा पातु नित्यंदीप्ता महोदया ।।२७।।
भीरुण्डा वामनेत्रेऽव्यात् कर्णे वै वह्निवासिनी ।
महावज्रेश्वरी पातु वामकर्णप्रदेशके ।।२८।।
दक्षनासापुटे पातु शिवदूती महेश्वरी ।
वामनासापुटे पातु त्वरिता सर्वसिद्धिदा ।।२९।।
दक्षगण्डे सदा पातु नित्यं मां कुलसुन्दरी ।
त्रैलोक्यविमला पातु वामगण्डप्रदेशके ।।३०।।
ओष्ठे नीलपताकाव्याद् अधरे विजयावतु ।
ऊर्ध्वदन्ते सदा पातु देवी मां सर्वमङ्गला ।।३१।।
अधोदन्तप्रदेशेऽव्यान्नित्यं ज्वालांशुमालिनी ।
विचित्रा सर्वदा पातु नित्यं मूर्धनि पार्वति ।।३२।।
आसां प्रधानभूता या महात्रिपुरसुन्दरी ।
षोडशी सा सदा पातु मुखे वै परमेश्वरी ।।३३।।
पृष्ठदेशे सदा पान्तु गुरवस्त्रिविधाश्च ते ।
पादयो सर्वदा पातु त्रिपुरा परमेश्वरी ।।३४।।
जानुदेशे सदा पातु देवी मां त्रिपुरेश्वरी ।
ऊरुद्वये सदा पातु देवी त्रिपुरसुन्दरी ।।३५।।
त्रिपुरवासिनी देवी कटिदेशे सदावतु ।
त्रिपुराश्रीश्च मां नित्यं गुह्यदेशे सदावतु ।।३६।।
मूलाधारे सदा पातु देवी त्रिपुरमालिनी ।
नाभौ त्रिपुरसिद्धाव्यात् त्रिपुराम्बासदा हृदि ।।३७।।
ब्रह्मरन्ध्रे सदा पातु महात्रिपुरसुन्दरी ।
आसां तु मन्त्रबीजानि प्रोक्तस्थानेषु विन्यसेत् ।।३८।।
पाषाण्डगणमध्ये तु बुद्धो मां परिरक्षतु ।
ब्रह्माव्याद् ब्रह्मसङ्घाते शिवो मां योगसिद्धये ।।३९।।
ज्ञाने मां भास्करः पातु मोक्षे नारायणः प्रभुः ।
या शक्तिः सर्वभूतानां विद्याविद्येति गीयते ।।४०।।
सा शक्तिः सर्वदा पातु स्त्रीपुत्रधनसम्पदि ।
अणिमा पश्चिमे पातु लघिमा चोत्तरेऽवतु ।।४१।।

पूर्वतः पातु महिमा ईशिता दक्षिणेऽवतु ।
वशिता वायुनिलये ईशे प्राकाम्यसिद्धिदा ।।४२।।
भुक्तिसिद्धिस्तथाग्नेये पात्विच्छासिद्धी राक्षसे ।
अधः पातु प्राप्तिसिद्धिर्मोक्षसिद्धिस्तथोर्ध्वके ।।४३।।

जिन रक्षाहीन स्थानों को कवच में छोड़ दिया गया है, उन सब की रक्षा हरिप्रिया करें। मूलाधार की रक्षा वाग्भव बीज करें, कामराज बीज द्वारा हृदय की रक्षा हो। हे पार्वती! भ्रूमध्य की रक्षा शक्तिकूट करें। शिर की रक्षा कूटत्रय करें, ललाट की सर्वमन्त्रक, मुखवृत्त की रक्षा अट्ठाईस वर्ण करें। षोडशी महाविद्या ही केवला ब्रह्मविद्या हैं। यह देवी मोक्ष-भोगप्रदा तथा केवलात्म स्वरूपिणी हैं। कामेश्वरी ललाट की रक्षा करें, मुख की भगमालिनी, दक्षिण नेत्र की महोदया नित्यक्लिन्ना, वाम नेत्र की भीरुण्डा, कर्ण की वह्निवासिनी रक्षा करें। वामकर्ण प्रदेश की रक्षा महावज्रेश्वरी करें। दाहिनी नाक की रक्षा सदैव शिवदूती महेश्वरी करें।

वाम नासा की रक्षा त्वरिता सर्वसिद्धिदा करें। दक्षगण्ड की रक्षा कुलसुन्दरी करें। वामगण्ड की रक्षा त्रैलोक्यविमला करें। ओष्ठ की रक्षा नीलपताका करें। अधर की रक्षा विजया करें। उपरी दाँत की रक्षा सदैव देवी सर्वमंगला करें। निचले दाँत की रक्षा ज्वलांशुमालिनी करें। हे पार्वती! विचित्रा सर्वदा मूर्धा की रक्षा करें। जो सदा प्रधानरूपा महात्रिपुरसुन्दरी हैं, वे षोडशी सदा मुख की रक्षा करें। पृष्ठदेश की रक्षा दिव्यौध-मानवौध-सिद्धौध गुरु करें। दोनों पैरों की रक्षा सदा त्रिपुरा परमेश्वरी करें। जानुदेश की रक्षा सदा देवी त्रिपुरेश्वरी करें। उरुद्वय की रक्षा देवी त्रिपुरसुन्दरी करें। कटि प्रदेश की रक्षा सदा त्रिपुरवासिनी करें। गुह्यदेश की रक्षा सदा त्रिपुराश्री करें। मूलाधार की रक्षा सदैव त्रिपुरमालिनी करें। नाभिदेश की रक्षा त्रिपुरसिद्धा करें। त्रिपुराम्बा हृदय की रक्षा करें। ब्रह्मरन्ध्र की महात्रिपुरसुन्दरी रक्षा करें। इस प्रकार से मन्त्रबीजों का कहे गये स्थानों में न्यास करें। पाखण्डीगण के मध्य में बुद्ध रक्षा करें। ब्रह्मसंघात में ब्रह्मा रक्षा करें। योगसिद्धि के सम्बन्ध में शिव रक्षा करें। ज्ञान में भास्कर, मोक्ष में नारायण प्रभु रक्षा करें। जो शक्ति सर्वभूत समूह में विद्याविद्यारूप से ख्यात हैं वह शक्ति सर्वदा-स्त्री-पुत्र-धन सम्पत्ति की रक्षा करें। अणिमा पश्चिम की ओर, लघिमा उत्तर की ओर, महिमा पूर्व की ओर, ईशिता दक्षिण की ओर रक्षा करें। वशिता वायुकोण, प्राकाम्य ईशानकोण में, भुक्तिसिद्धि अग्निकोण में, इच्छासिद्धि नैर्ऋत कोण में, प्राप्ति सिद्धि अधः में, मोक्षसिद्धि उर्ध्व में रक्षा करें।।२३-४३।।

ब्रह्माणी संध्ययोः पातु माहेश्वरी दिवावतु ।
मध्याह्ने पातु कौमारी रात्रौ च शक्रवल्लभा ।।४४।।

ब्राह्मे मुहूर्तके पातु वैष्णवी सर्वसिद्धिदा ।
निशीथे पातु वाराही चामुण्डा शत्रु विग्रहे ।।४५।।
महोत्साहे महालक्ष्मीः पातु नित्यं महेश्वरी ।
शीर्षे सङ्क्षोभिणी पातु तारिणी हृदयेऽवतु ।।४६।।
आकर्षिणी शिखायां तु कवचे पातु वश्यदा ।
उन्मादिनी तथा नेत्रे सर्वगात्रे महाङ्कुशा ।।४७।।
त्रिखण्डा भुजयोः पातु बीजे बीजस्वरूपिणी ।
खेचरी पादयोः पातु योनिमुद्रा च सर्वतः।।४८।।
(स?का)माकर्षणरूपाव्यात् सदाकर्षणकर्मणि ।
बुद्ध्याकर्षणरूपाव्यात् परबुद्धिविकर्षणे ।।४९।।
अहङ्कारे सदा पातु अहङ्कारविकर्षणी ।
शब्दाकर्षणरूपाव्याच्छब्दाकर्षणकर्मणि ।।५०।।
स्पर्शाकर्षणरूपा मां पातु स्पर्शनकर्मणि ।
रूपाकर्षणरूपाव्यात् पररूपविकर्षणे ।।५१।।
रसाकर्षणरूपाव्याद् रसे वै परमेश्वरी ।
गन्धाकर्षणरूपा मां पातु गन्धे च सर्वदा ।।५२।।
चित्ताकर्षणरूपा मां पायादाकृष्टिकर्मणि ।
धैर्याकर्षणरूपा तु पातु धैर्यविधौ सदा ।।५३।।
स्मृत्याकर्षणरूपाव्याज्ज्ञानाकर्षणकर्मणि ।
नामाकर्षणरूपाव्यान्नामव्याहरणे सदा ।।५४।।
बीजाकर्षणरूपा मां सर्वबीजप्ररोपणे ।
परजीवाकर्षणे पात्वात्माकर्षणरूपिणी ।।५५।।
अमृताकर्षणी पातु अमृतीकरणे सदा ।
शरीराकर्षणी पातु सदा शरीरक्षणे ।।५६।।

दोनों सन्ध्या में ब्रह्माणी, दिवा में माहेश्वरी, मध्याह्न में कौमारी, रात्रि में शक्र-वल्लभा रक्षा करें। ब्राह्ममुहूर्त्त में सर्वसिद्धिप्रदा वैष्णवी रक्षा करें। रात्रि में वाराही, शत्रु विग्रह में चामुण्डा महोत्साह में महालक्ष्मी, नित्य महेश्वरी रक्षा करें। शीर्ष की रक्षा संक्षोभिणी करें, तारिणी हृदय की रक्षा करें। आकर्षिणी शिखा की, कवच की वश्यदा, नेत्रद्वय की उन्मादिनी, सर्व शरीर की महाङ्कुशा रक्षा करें। भुजाओं की त्रिखण्डा, बीज की बीजस्वरूपिणी, पादद्वय की खेचरी, योनिमुद्रा सर्वत्र रक्षा करें। कामकर्षणरूपा आकर्षण की, बुध्याकर्षणरूपादेवी परबुद्धि त्रिकर्षण की, अहंकारविकर्षिणी अहंकार की रक्षा करें। देवी शब्दाकर्षणरूपा

शब्दाकर्षण की, स्पर्शाकर्षणरूपा स्पर्शकर्म की, रूपाकर्षणरूपा पर रूप विकर्षण की रक्षा करें। रसाकर्षणरूपा रस की, गन्धाकर्षणरूपा गन्ध की, चित्तकर्षणरूपा आकृष्टकर्म की, धैर्याकर्षणरूपा धैर्य की, स्मृत्याकर्षणरूपा ज्ञानाकर्षण की, नामाकर्षणरूपा नामत्याहारण की, बीजाकर्षणरूपा सर्वबीजप्ररोपण की, आत्माकर्षणरूपिणी पर जीवाकर्षण की, अमृताकर्षिणी अमृतीकरण की, शरीराकर्षिणी शरीररक्षा की रक्षा करें॥४४-५६॥

अनङ्गकुसुमा पातु पुरतः सर्वकर्मणि ।
अनङ्गमेखला पातु पृष्ठतः परमेश्वरी ।।५७।।
अनङ्गमदना पातु वामतो मे महेश्वरी ।
दक्षिणे सर्वदा पातु अनङ्गमदनातुरा ।।५८।।
नित्यं चानङ्गरेखाव्यादूर्ध्वं मम सदा प्रिये ।
अनङ्गवेगिनी पातु अधो मे परमेश्वरी ।।५९।।
तथानङ्गांकुशा नित्यं पातु मां दिक्षु सर्वदा ।
अनङ्गमालिनी पातु विदिक्षु मम सर्वदा ।।६०।।
सर्वसङ्क्षोभिणी चोर्ध्वे पातु मां जगदीश्वरी ।
सर्वविद्राविणी चाधो दिक्षु सर्वविकर्षणी ।।६१।।
सर्वाह्लादकरी शक्तिर्विदिक्षु परिरक्षतु ।
सर्वसम्मोहिनी पातु समन्तात् परमेश्वरी ।।६२।।
अन्तर्बहिश्च मां पातु सर्वस्तम्भनकारिणी ।
तथैव पातु मां नित्यमाकाशे सर्वजृम्भणी ।।६३।।
पाताले चैव मां पातु सर्ववश्यकरी तथा ।
देवलोके सदा पातु सर्वरञ्जनकारिणी ।।६४।।
सर्वोन्मादनशक्तिर्मां भूतले परिरक्षतु ।
सर्वार्थसाधनी शक्तिः पायाद्भूतगणालये ।।६५।।
सिद्धानामालये पातु सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
राक्षसानां च यक्षाणां सर्वमन्त्रमयी गृहे ।।६६।।
असुराणां निवासे तु सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी ।
सर्वसिद्धिप्रदा देवी पातु राजगृहे सदा ।।६७।।
सर्वसम्पत्प्रदा पातु स्वगृहे सर्वसम्पदि ।
सर्वप्रियङ्करी पातु सर्वलोकेषु सर्वदा ।।६८।।
सर्वमङ्गलकार्येऽव्यात् सर्वमङ्गलकारिणी ।
सर्वकामप्रदा देवी सर्वकार्येषु सर्वदा ।।६९।।

ऐश्वर्ये सर्वदा पातु सर्वैश्वर्यप्रदायिनी।
सर्वमृत्युप्रशमनी पायान्नित्यं ममालये।।७०।।

अनंगकुसुमा सर्वकर्म की, अनंगमेखला पृष्ठ की, अनंगमदना वामभाग की, अनंगमदनातुरा दक्षिण भाग की, अनंगरेखा उर्ध्व की, अनंगवेगिनी अधोभाग की, अनङ्गङ्कुशा दिशाओं की, अनंगमालिनी विदिशाओं की, सर्वसंक्षोभिणी उर्ध्व की, सर्वविद्राविणी अधः की रक्षा करें। सर्वविकर्षिणी दिशाओं की रक्षा करें। सर्वाल्हादकरी विदिशाओं की, सर्वसम्मोहिनी सब ओर की, सर्वस्तम्भन कारिणी अन्दर-बाहर की, सर्वजृम्भिणी आकाश की, सर्ववश्यकरी पाताल की, सर्वरंजनकारिणी देवलोक की, सर्वोन्मादनशक्ति भूतल की, सर्वार्थसाधिनी भूतगणालय की रक्षा करें। सर्वसम्पत्तिशक्ति सिद्धालय की, सर्वमन्त्रमयी राक्षस दक्षगृह की, सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी असुरालय की,. सर्व-सिद्धिप्रदा राजगृह की, सर्वसम्पत्प्रदा स्वगृहसम्पत्ति की, सर्वप्रियंकरी सर्वलोक की, सर्वमंगलकारिणी सर्वमंगलकार्य की, सर्वकामप्रदा सर्वकार्य की, सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ऐश्वर्य की, सर्वमृत्युप्रशमनी स्वगृह की, सर्वविघ्नविनाशिनी सर्वारंभ की, सर्वांगसुन्दरी देह सौन्दर्य काल की, सर्वसौभाग्यदायिनी सर्वसौभाग्यकाल की रक्षा करें।

सर्वज्ञा गृह में, सर्वशक्तिमयी युद्ध में, सर्वैश्वर्यप्रदा मार्ग में, सर्वज्ञानमयी जल में, सर्वव्याधिविनाशिनी सर्वव्याधि में, सर्वाधाररूपाप्रबला पर्वत में, सर्वपापहरा सर्वकर्म में, सर्वानन्दकरी अनेक पाप भोग में, सर्वरक्षास्वरूपिणी सर्ववैरीभय में, सर्वेप्सितफलप्रदा सर्वसंकल्प कार्य में, वशिनी वश्यकर्म में, कामेशी स्तम्भन में, मोहिनी सम्मोहन में रक्षा करें। विमला उच्चाटन में, अरुणा वाद में तथा जयिनी जल्प कर्म में रक्षा करें।।५७-७०।।

सर्वारम्भे सदा पातु सर्वविघ्नविनाशिनी।
देहसौन्दर्यकाले तु पातु सर्वाङ्गसुन्दरी।।७१।।
सर्वसौभाग्यकाले तु सर्वसौभाग्यदायिनी।
सर्वज्ञा च गृहे पातु सर्वशक्तिमयी रणे।।७२।।
सर्वैश्चर्यप्रदा मार्गे सर्वज्ञानमयी जले।
सर्वव्याधिषु सर्वत्र सर्वव्याधिविनाशिनी।।७३।।
पर्वते पातु प्रबला सर्वाधारस्वरूपिणी।
सर्वपापहरा पातु सर्वकर्मसु सर्वदा।।७४।।
सर्वानन्दकरी देवी नानाघकृतगोचरे।
सर्ववैरिभये पातु सर्वरक्षास्वरूपिणी।।७५।।

सर्वसङ्कल्पकार्येषु सर्वेप्सितफलप्रदा ।
वशिनी वश्यकार्येऽव्यात् कामेशी स्तम्भनेऽवतु ।।७६।।
मोहने मोदिनी पातु विमलोच्चाटनेऽवतु ।
अरुणा पातु मां वादे जयिनी जल्पकर्मणि ।।७७।।
सर्वेश्वरी काम्यकार्ये कौलिनी भेदकर्मणि ।
जृम्भणे सर्वदा पान्तु शरा पञ्च महेश्वरि ।।७८।।
धनुर्मोहविधौ पातु पाशस्तु वश्यकर्मणि ।
महातेजोमयः पातु स्तम्भने मां तथाङ्कुशः।।७९।।
सर्वज्ञा हृदये पातु नित्यंन्टप्तिः च शीर्षके ।
अनादिबोधिका पातु नित्यं शिखाप्रदेशके ।।८०।।
कवचे मां स्वतन्त्राव्यात् नेत्रे नित्यमलुप्तिका ।
अचिन्त्यशक्ति(व?र)स्त्रेषु पायात् परमसिद्धिदा ।।८१।।
कामेश्वरी रतौ पातु युद्धे वज्रेश्वरी तथा ।
नित्यं पातु महेशानी श्रीकामे भगमालिनी ।।८२।।
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च पातु माम् ।
सर्वानन्दमयी देवी महात्रिपुरसुन्दरी ।।८३।।
ईशाने वटुकः पातु आग्नेय्यां योगिनीगणाः।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि पान्तु नः ।।८४।।
क्षेत्रेशो नैर्ऋते पातु गणेशो वायुमन्दिरे ।
मातङ्गवनिता पातु शेषिका कलसुन्दरी ।।८५।।
शक्तिर्मां सर्वदा पातु मूलाधारनिवासिनी ।
इतीदं कवचं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।।८६।।
यन्नोक्तं डामरे तन्त्रे यन्नोक्तं रुद्रयामले ।
सर्वतन्त्रेषु यन्नोक्तं गन्धर्वे प्रकटीकृतम् ।।८७।।
तव प्रीत्या महादेवि गोपनीयं प्रयत्नतः।
तव नाम्नि स्मृते देवि सर्वयज्ञफलं लभेत ।।८८।।
सर्वत्रैव जयप्राप्तिर्वाञ्छा सर्वत्र सिध्यति ।
नाम्नः शतगुणं स्तोत्रं व्याख्यानं चापि तच्छतम् ।।८९।।
तस्माच्छतगुणं ध्यानं ध्यानाच्छतगुणो मनुः।
मन्त्राच्छतगुणं देवि कवचं ते मयोदितम् ।।९०।।
यस्मै कस्मै न दातव्यं सुगोप्यमतिदुर्लभम् ।
न देयं परशिष्याय कृपणाय सुरेश्वरि ।।९१।।

सर्वेश्वरी काम्यकर्म में, कौलिनी भेदकर्म में, पञ्चबाण जृम्भण में, धनु मोहकर्म में, पाश वश्यकर्म में, अंकुश स्तम्भन में, सर्वज्ञा हृदय में, नित्यतृप्ति शिर में, अनादिबोधिक शिखा में, स्वतन्त्रा कवच में, आनुप्तिका नेत्रद्वय में, अचिन्त्यशक्ति अस्त्र में, कामेश्वरी रतिकार्य में, वज्रेश्वरी युद्धकर्म में, महेशानी श्रीकाम में, भगमालिनी रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द में, त्रिपुरसुन्दरी ईशानकोण में, बटुक आग्नेयकोण में, योगिनीसमूह त्वक्-रक्त-मांस-मेदा-अस्थि-शुक्र में, क्षेत्रपाल नैर्ऋतकोण में, गणेश वायुकोण में, मातंगवनिता शोषिका में, मूलाधारनिवासिनी शक्ति सर्वत्र रक्षा करें।

हे देवी! यह कवच तीनों लोकों में दुर्लभ है। यह न तो डामर तन्त्र में, न रुद्रयामल में, न किसी तन्त्र में कहा गया है, यह केवल गन्धर्वतन्त्र में प्रकट किया गया है। इसे इस तन्त्र में तुम्हारे प्रेम के कारण कहा गया है। हे महादेवी! इसे प्रयत्न के साथ गोपनीय रखना होगा। हे देवी! तुम्हारे नामस्मरण से समस्त यज्ञफल प्राप्त हो जाता है। सब स्थान पर विजय होती है और (समस्त) कामनायें सिद्ध हो जाती है। नाम की तुलना में स्त्रोत्र की महत्ता सौगुनी कही गयी है। उससे सौगुना व्याख्यान, व्याख्यान से सौगुना ध्यान तथा ध्यान से सौगुना महत्वशाली मन्त्र होता है। हे देवी! मन्त्र से भी सौगुना महत्त्वपूर्ण कवच तुमसे कहा है। यह अतिगुप्त है। यह हरेक को नहीं देना चाहिये। (अधिकारी को ही देना चाहिये)। इसे अन्य के शिष्य को, कृपण को भी नहीं देना चाहिये।।७१-९१।।

शिष्याय भक्तिहीनाय चुम्बकाय तथैव च ।
गुरुभक्तिविहीनाय परहिंसारताय च ।।९२।।
निन्दकाय कुशीलाय दाम्भिकाय महेश्वरि ।
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।।९३।।

यह ऐसे भक्तिहीन शिष्य को भी नहीं देना चाहिये जो स्वार्थ सिद्धि के (उद्देश्य से) लिये भिन्न-भिन्न स्थान पर जाकर विद्या ग्रहण करता है। गुरुभक्ति रहित, परहिंसा कर्म में रत, निन्दक, शीलरहित, दम्भी को भी यह कवच न प्रदान करें। हे महेश्वरी! यदि अपना पुत्र हो तथापि भक्त न हो, तब उसे भी यह कवच न दें। ऐसा करने से साधक को मृत्युमुख में जाना पड़ेगा।।९२-९३।।

यो ददाति निषिद्धेभ्यः कवचं मन्मुखाच्च्युतम् ।
तस्य नश्यन्ति देवेशि विद्यायुःकीर्त्तिसञ्चयाः ।।९४।।
तं हिंसन्ति च योगिन्यो मदीयशासनात् प्रिये ।
परे नरकमाप्नोति जन्मकोटिशतानि च ।।९५।।
सर्वलक्षणयुक्ताय यन्त्रमन्त्ररताय च ।
शिष्याय शान्तचित्ताय गुरुभक्तिरताय च ।।९६।।

हे देवेशी! जो मेरे मुख से कहे गये इस कवच को उपर लिखे निषिद्ध लक्षण युक्त लोगों को देता है, उसकी विद्या, आयु तथा यश चाहे जितना संचित हो, सब नष्ट हो जाता है। हे प्रिये! मेरे शासन से (आज्ञा से) उसे योगिनीगण मार देती हैं। मृत्यु के अनन्तर वह कोटि जन्मों तक नरक में निवास करता है। जो शिष्य सर्व शुभ-लक्षण से युक्त हो, यन्त्र-तन्त्र में जो रत हो, शान्तचित्त तथा गुरुभक्ति युक्त हो, उसे यह कवच प्रदान करें।।९४-९६।।

उदके लवणं लीनं यथा भवति पार्वति ।
मनो भवति वै लीनं पादयोः श्रीगुरोः प्रिये ।।९७।।
तदा देयं महद्गुह्यं कृपया चातिदुर्लभम् ।
गुरोः पादप्रसादेन श्रीविद्या यदि लभ्यते ।।९८।।
तथैव कवचं देवि त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
स च देवो हरः साक्षात तत्पत्नी परमेश्वरी ।।९९।।

हे पार्वती! जैसे लवण जल में लीन हो जाता है, उसी तरह से जिसका मन गुरु चरणों में लीन हो जाये, उसे अतिदुर्लभ महागोपनीय यह कवच प्रदान करें। हे देवी! जैसे गुरु की शक्तिपात रूप (अहेतुकी) कृपा से श्री विद्या की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार से गुरु कृपा से तीनों लोकों में दुर्लभ यह कवच प्राप्त होता है। जिसने इस कवच को प्राप्त कर लिया वह साक्षात् शिव है, उसकी पत्नी (मानों) साक्षात् परमेश्वरी है।।९७-९९।।

प्रमादादपि देवेशि श्रीगुरोर्नाम नाददेत् ।
यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये ।।१००।।
तस्य मन्त्रस्य यन्त्रस्य सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
कवचस्य तथा सिद्धिर्गुटिकायाश्च सुन्दरि ।।१०१।।
इदं कवचमज्ञात्वा यो जपेत् सुन्दरीं पराम् ।
नवलक्षं प्रजप्त्वापि तस्य विद्या न सिध्यति ।।१०२।।

हे देवेशी! गुरु का नाम प्रमाद में भी नहीं लेना चाहिये। हे प्रिये! जो देवतावत् मान कर गुरु के प्रति भक्ति करता है, वही मन्त्र, यन्त्र की सिद्धि प्राप्त कर सकता है, अन्य को यह सिद्धि नहीं हो सकती। हे सुन्दरी! कवच तथा गुटिका भी ऐसे शिष्य को सिद्ध होता है। जो इस कवच को जाने बिना परा सुन्दरी विद्या का मन्त्र जपता है, उसे ९लाख जप करने पर भी सिद्धि नहीं मिल सकती।।१००-१०२।।

शुचिः समाहितो भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
सर्वभूतालये सुप्ते निशायामर्धरात्रके ।।१०३।।

हेतुयुक्तो महेशानि निर्जने पशुवर्जिते।
रक्तासनोपविष्टस्तु रक्ताभरणभूषितः ।।१०४।।
ताम्बूलपूरितमुखो धूपामोदसुगन्धितः।
संस्थाप्य वामभागे तु शक्तिं स्वामिपरायणाम् ।।१०५।।

हे महेशानी! साधक को चाहिये कि वह पवित्र, समाहित होकर भक्ति श्रद्धा युक्त हो अर्द्ध रात्रि में जब सब लोग सो जाते हैं तब निर्जन में तथा पशु श्रेणी के लोगों से रहित स्थान पर रक्तवर्ण के आभरणादि पहन कर रक्तवर्ण आसन पर स्थित हो जाये। उसके मुख में तम्बूल भरा रहे, वह धूपादि की गन्ध से सुवासित हो। अपने बायीं ओर स्वामी परायण शक्ति (स्त्री) को बैठाये॥१०३-१०५॥

रक्तवस्त्रपरीधानां शिवमन्त्रधरां शुभाम्।
या शक्तिः सा महादेवी हररूपस्तु साधकः ।।१०६।।
अन्योन्यचिन्तनाद् देवि देवत्वमुपजायते।
शक्तियुक्तो यजेद् देवीं श्रीचक्रे लक्षणान्विते ।।१०७।।
पुष्पाञ्जलित्रयं देव्यै मूलमन्त्रेण दापयेत्।
भोगैश्च मधुपर्कांद्यैस्ताम्बूलाद्यैः सुवासितैः।।१०८।।
पूजयित्वा महादेवीं पूजाकोटिफलं लभेत्।
पूर्वोक्तस्यासमेवास्मिन् समये च प्रविन्यसेत् ।।१०९।।

वह शक्ति रक्तवर्ण वस्त्रधारी हो। वह शुभा तथा शिवमन्त्र धारिणी हो। (शिव मन्त्र दीक्षिता हो)। शक्ति को महादेवी तथा साधक को शिव स्वरूप कहा गया है। वे दोनों परस्पर एक दूसरे को ऐसा ही समझें। हे देवी! इस प्रकार की पारस्परिक भावना से उनमें देवत्व का आविर्भाव हो जाता है। लक्षण से युक्त श्री चक्र की उपासना शक्ति युक्त होकर करनी चाहिये। प्रारम्भ में मूलमन्त्र द्वारा तीन पुष्पांजलि अर्पित करें, तदनन्तर मधुपर्कादि भोग तथा सुगन्धित ताम्बूलादि अर्पण करके जो साधक महादेवी की पूजा करता है, उसे पूजा का कोटि गुणित फल प्राप्त करता है। अब पूर्वोक्त प्रकार से न्यास करना चाहिये॥१०६-१०९॥

आत्मांन परमं ध्यायेद् दिव्यस्त्रीभिरलंकृतम्।
दिव्यं मूर्ध्नि महच्छत्रं सहस्त्रदलनिर्मितम् ।।११०।।
सुधावर्षिमुखाम्भोजं सस्मितं दिव्यवर्चसम्।
परमानन्दसंदोहमुदितं परमव्ययम् ।।१११।।
दिव्यालङ्कारवस्त्राढ्यं दिव्यमाल्यानुलेपितम्।
दिव्यासनसमासीनं दिव्यभोगविभोगिनम् ।।११२।।
सर्वगं सर्वभूतेशं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
निर्लेप निर्मलं शान्तं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।।११३।।

अब स्वयं में परमात्मा भावना करें। ध्यान का विधान कहते हैं–मैं दिव्य स्त्री गण से अलंकृत (घिरा) हूँ। मेरे शिर पर सहस्र दल का महापात्र है। मेरे मुख कमल से सुधा का वर्षण हो रहा है। मैं सस्मित (मुखाकृति का) तथा दिव्य तेज मण्डित हूँ। मैं परमानन्द संदोह से मुदित परम अव्यय हूँ। दिव्य अलंकरणों तथा वस्त्रों से मैं सजा हूँ, दिव्य माला तथा अनुलेप युक्त हूँ। मैं दिव्य आसन पर आसीन, दिव्य भोगों का उपभोग कर रहा हूँ। मैं सवर्ग, सब भूत समूह का ईश, सृष्टि-स्थिति सहन कर्त्ता, निर्लेप, निर्मल, शान्त, सर्वव्यापक ईश्वर हूँ।।११०-११३।।

ततो देवीं हृदम्भोजे ध्यायेत् तद्गतमानसः।
जपा कुसुमसङ्काशां बालार्ककिरणारुणाम् ।।११४।।
रक्तपद्मसमासीनां रक्ताभरणभूषिताम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।।११५।।
सैवाहमित्यभेदेन द्वैतहीनं विचिन्तयेत् ।
अद्वैतानन्दभावेन साधकः परमात्मनः।।११६।।
छायया शोणया व्याप्तं जगदेतच्चराचरम् ।
भावनावशसम्पन्नो भावयेद् भावनापरः।।११७।।

इसके पश्चात् साधक को देवी के विषय में चिन्तन के साथ-साथ अपने हृदय कमल में देवी का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए- यह देवी जवाकुसुम के पुष्प के समान रंग वाली, बालार्क (सूर्योदय के सूर्य) के समान अरुण, रक्तवर्ण कमल पर विराजित, रक्तवर्ण के आभूषणों से सजी, रक्तवस्त्र धारिणी, रक्तकमल पर आसीन तथा पूर्णचन्द्र के समान मुख वाली हैं। वह मैं ही हूँ। साधक को द्वैतहीन हो ऐसी धारणा करनी चाहिये। अद्वैत आनन्द भाव से साधक यह धारणा करे कि यह सचराचर जगत् परमात्मा की रक्तवर्ण छाया से व्याप्त है। साधक भावना के वशीभूत होकर ऐसी भावना करे।।११४-११७।।

एवं चिन्तापरस्याशु सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
सम्प्राप्य विपुलान् भोगान् राज्यास्पदं च भूतले ।।११८।।
ऐन्द्रं पदमवाप्याथ विहरन् नन्दने वने ।
उर्वशीप्रमुखाभिश्च स्वेच्छया दिव्यभोगवान् ।।११९।।
तदाप्नोति परं स्थानं दुरापं त्रिदशैरपि ।
ततश्च कवचं दिव्यं पठेदेकमनाः प्रिये ।।१२०।।

ऐसे चिन्तनशील को शीघ्रता से अष्टसिद्धि प्राप्त हो जाता है। वह इस भूतल पर विपुल भोग एवं राज्य पद प्राप्त करता है और तत्पश्चात् (मृत्यु के

पश्चात्) ऐन्द्र पद पाकर नन्दन वन में उर्वशी आदि प्रमुख अप्सरागण के साथ स्वेच्छा पूर्वक दिव्यभोगों का आस्वादन करके देवताओं के लिये भी दुर्लभ जो पद है, उसे प्राप्त करता है। हे प्रिये! इस (फलश्रुति) के अनन्तर एकमना होकर यह दिव्य कवच पढ़े॥११८-१२०॥

तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
इदं रहस्यं परमं परं स्वस्त्ययनं महत् ।।१२१।।
सर्वेषामेव हिंस्राणां डाकिनीनां महेश्वरि ।
निशाचरगणानां च वारणं नाशनं तथा ।।१२२।।
आयुर्बलप्रदं नित्यं तुष्टिपुष्टिशुभावहम् ।
नारीणां मृतवत्सानां गुणवत्सुतदायकम् ।।१२३।।

उस साधक की सर्वार्थ सिद्धि हो जाती है अर्थात् समस्त कामनायें पूरी हो जाती हैं। इसमें अन्यथा विचार न करें। यह कवच रहस्यपूर्ण तथा परम मंगलकारी है। हे महेश्वरी! यह कवच सब हिंस्र पशुओं, डाकिनियों, राक्षसगणों को भगाने तथा नष्ट करने वाला है। यह नित्य आयु-बलप्रद तथा तुष्टि-पुष्टि एवं शुभ करने वाला है। जिन महिलाओं के पुत्र मर जाते हैं, उन्हें यह गुणवान पुत्र प्रदाता भी है॥१२१-१२३॥

सूत्याः सूतिगृहस्यापि बालग्रहनिवारणम् ।
विषदस्यु ग्रहाणां च सदा शान्तिविवर्द्धनम् ।।१२४।।
विषशस्त्राग्निरुद्राणां वारणं जयदं युधि ।
जले स्थले तथाकाशे सर्वोत्पातेषु सर्वदा ।।१२५।।
त्रैलोक्यवासिनामेव सर्वमङ्गलदायकम् ।
सकृद्यस्तु पठेद् देवि कवचं देवदुर्लभम् ।।१२६।।
हयमेधफलं तस्य भवत्येव न संशयः ।
नित्यं यस्तु पठेद् देवि शृणुयाद्वा समाहितः ।।१२७।।
स सर्वांल्लभते कामान् परे देवीपुरं व्रजेत् ।
संग्रामे च जयेच्छत्रून् मातङ्गानिव केसरी ।।१२८।।

यह प्रसूतिगृह में प्रसूता के बालग्रह का निवारण करता है। यह विष, दस्यु, ग्रहों को शान्त करने वाला तथा विष, शस्त्र, अग्नि, रुद्रों का नाशक, वारण करने वाला तथा युद्ध में जय देता है। जल, स्थल तथा आकाशस्थ सभी उत्पातों का शमन करके त्रैलोक्यवासीगण के लिये सर्वमङ्गल दायक है। हे देवी! जो इस देवदुर्लभ कवच का पाठ करता है। उसे अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यह निःसंदिग्ध है। हे देवी! जो इस कवच को समाहित कर नित्य पढ़ता

अथवा सुनता है, वह पूरी तरह से अपनी कामनाओं का फल प्राप्त करके सर्वान्त में देवलोक में जाता है। जैसे हाथियों पर सिह विजयी हो जाता है, उसी प्रकार साधक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है॥१२४-१२८॥

दहेत् तृणं यथा वह्निस्तथा शत्रून्व्येत् सदा ।
नास्त्राणि तस्य शस्त्राणि शरीरे प्रभवन्ति च ।।१२९।।
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मास्त्राणि च यानि च ।
माल्यानि कुसुमानीव सुखदानि भवन्ति हि ।।१३०।।
पराः पराङ्मुखा यान्ति विना युद्धेन पार्वति ।
व्याधिस्तस्य कदाचित्तु दुःखं नास्ति कदाचन ।।१३१।।
गतिस्तस्यैव सर्वत्र वायोस्तुल्या सदा भवेत् ।
दीर्घायुः कामभोगी सो धनधान्यसमृद्धिमान् ।।१३२।।
जितव्याधी रूपवान् स्याद् गुणवानभिजायते ।
चातुर्वर्ग्यं करे तस्य भवत्येव न संशयः ।।१३३।।
अन्यस्य वल्लभः सो वै पुत्रदारकुलान्वितः ।
इह लोके सुखं भुक्त्वा परे मुक्तो भविष्यति ।।१३४।।

वह उसी प्रकार से शत्रु को नष्ट कर देता है जैसे अग्नि तृण को दग्ध करके नष्ट कर देता है। कोई भी अंस्त्र अथवा शस्त्र उसके शरीर को प्रभावित नहीं करता, उसके शरीर पर प्रहारित ब्रह्मास्त्र आदि शस्त्र भी उसके लिये माला, फूल आदि के स्पर्श के समान सुख प्रदान करते हैं। हे पार्वती! उसके साथ युद्ध बिना ही शत्रुगण भाग जाते हैं। ऐसे साधक को व्याधि से ग्रसितं नहीं होना पड़ता। उसे कभी दुःख नहीं होता, उसकी गति अव्याहत होती है। सर्वत्र वायुवत् गति होती है। वह दीर्घायु, इच्छा भोगी, धन-धान्य से समृद्ध रहता है। वह रोगों पर विजय प्राप्त करने वाला, रूपवान, गुणवान हो जाता है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष उसके हाँथों में रहता है। इसमें सन्देह नहीं है। वह सबका प्रिय, पुत्र-स्त्री से युक्त कुलान्वित होकर इस मर्त्य लोक में सुखभोग के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करता है॥१२९-१३४॥

न तस्य दुर्गतिर्देवि कदाचिदपि जायते ।
दुर्ग्रहाः सुग्रहा यान्ति वशं गच्छन्ति मानवाः ।।१३५।।
न तस्य विघ्नो भवति न शोको भुवि जायते ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च भयानकाः ।।१३६।।
ते सर्वे विलयं यान्ति कवचस्यास्य कीर्त्तनात् ।
तस्यैव शत्रवो देवि चिन्तामात्रप्रयोगतः ।।१३७।।

विनश्यन्ति न संदेहो योगिन्यो भक्षयन्ति तान् ।
शान्तिकादीनि कर्माणि मारणोच्चाटनानि च ।।१३८।।
वचोमात्रेण देवेशि तस्य सिध्यन्ति भूतले ।
न पापैर्लिप्यते देवि महोग्रैस्तु सुदारुणैः ।।१३९।।

हे देवी! उस व्यक्ति की कभी दुर्गति नहीं होती। दुष्ट ग्रह भी उसके लिये शुभ ग्रह हो जाते हैं। मनुष्य उसके वश में हो जाते हैं। न तो पृथ्वी पर उसे विघ्न होते हैं, न शोक। कवच के पढ़ने मात्र से भयान बेताल, पिशाच, राक्षस आदि विलीन हो जाते हैं। हे देवी! इस कवच के चिन्तन मात्र से उसके शत्रु विनष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उन्हें योगिनीगण खा जाती हैं। हे देवेशी! उसके वचन मात्र से पृथिवी पर शान्ति आदि कर्म, मारण, उच्चाटन आदि सिद्ध हो जाते हैं। कवच को पढ़ने वाला दारुण, उग्र पापों में लिप्त ही नहीं होता।।१३५-१३९।।

न कालस्य वशं गच्छेन्न जरा न च दुःखिता ।
तत्र देशे न दुर्भिक्षं न च मारी प्रवर्त्तते ।।१४०।।
न रोगास्तत्र जायन्ते नोत्पाताः प्रभवन्ति च ।
विविधाश्चैव योगिन्यस्तस्य साधकसन्निधौ ।।१४१।।
शान्तिं चैव प्रयच्छन्ति रक्षन्ति पुत्रवत् सदा।
सर्वदा च सुखप्राप्तिः सर्वतीर्थफलं लभेत् ।।१४२।।
नानेन सदृशः कश्चित् साधको भुवि जायते ।
सुरासुरमनुष्याणां तत्त्वरूपः सुखावहः।।१४३।।

न तो वह काल के वश में आता है, उसे वृद्धावस्था तथा दुःख कष्ट नहीं देते। उसके देश में अकाल तथा महामारी नहीं होते। उस देश में रोग नहीं होता, उत्पातों का असर नहीं होता। विविध योगिनीगण साधक के पास रहती हैं। शान्ति देती हैं तथा उसकी रक्षा सदैव पुत्रवत् करती हैं। उसे सदा सुख मिलता है और वह सभी तीर्थों का फल प्राप्त करता है। जो इस कवच को पढ़ता है, उसके समान कोई भी नहीं है। यह सुर-असुर-मनुष्यों के लिये तत्वरूप है तथा सुख देनें वाला है।।१४०-१४३।।

येन विज्ञातमात्रेण स्मृतेनैव च सुन्दरि ।
अक्षयांल्लभते कामान् मुक्तिस्थानं च गच्छति ।।१४४।।
सर्वलक्षणहीनोऽपि स्मरणात् कलुषापहः ।
अहो कवचमाहात्म्यं पठमानस्य नित्यशः ।।१४५।।

विनापि योगचर्येण योगिनां समतां व्रजेत् ।
भूर्जत्वचि समालिख्य चक्रं तत्त्वविनिर्मितम् ।।१४६।।
मध्ये त्रिकोणं संलिख्य साध्यसाधकयोर्लिपिम् ।
तदूर्ध्वे मूलमन्त्रं च मातृकार्णेन वेष्टयेत् ।।१४७।।
अगुरुद्रवमिश्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ।
एतद्यन्त्रं महादेवि सुरासुरसुदुर्लभम् ।।१४८।।
रोचनाकुङ्कुमेनैव तद्बाह्ये कवचं लिखेत् ।
श्वेतसूत्रेण संवेष्ट्य लाक्षया परिवेष्टयेत् ।।१४९।।

हे सुन्दरी! इसे जानने मात्र से अथवा स्मरण करने मात्र से अक्षय कामनाओं की पूर्ति होती है और वह मुक्ति प्राप्त करता है। सर्वलक्षणहीन पुरुष भी इसके स्मरण मात्र से पाप मुक्त हो जाता है। इस कवच का माहात्म्य इतना है कि जो इसका नित्य पाठ करता है, वह योगाभ्यास का ज्ञाता न होने पर भी योगीवत् हो जाता है। इस चक्र को भोजपत्र पर तत्वों से लिखे। बीच में त्रिकोण बनाकर (मध्य में) उसमें साध्य एवं साधक का नाम लिखना चाहिये। हे महादेवी! उस त्रिकोण के उर्ध्व में मूलमन्त्र लिखकर उसे मातृका वर्ण से घेर देना चाहिये। यह यन्त्र सुर-असुर के लिये भी दुर्लभ है। लिखने हेतु सुगन्धित चन्दन तथा अगरु मिलाकर उससे लिखे।

तदनन्तर यन्त्र के बाहर गोरोचन तथा कुंकुम से यह यन्त्र बनाकर उसे सफेद धागे से लपेटकर उसे लाख से चारों ओर से लपेट देना चाहिये।।१४४-१४९।।

पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः स्नपयित्वा शुभेऽहनि ।
सम्पूज्य देवीरूपां तां गुटिका सर्वकामदाम् ।।१५०।।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र निवेशयेत् ।
चारुणा शातकुम्भेन भूषितां योनिमुद्रया ।।१५१।।
अन्तर्योनिं ततो ध्यात्वा तत्र संस्थापयेद् बुधः ।
एषा तु गुटिका देवि कण्ठलग्ना धनप्रदा ।।१५२।।

शुभ दिन पर इसे पंचामृत तथा पंचगव्य से स्नान कराकर देवी रूपा सर्वकाम-प्रदा इस गुटिका का पूजन करे। तदनन्तर प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र द्वारा उसमें प्राण स्थापित करके उसे सुन्दर स्वर्ण से सजाये। तदनन्तर योनिमुद्रा बनाकर योनि चिन्तन करके उस गुटिका को साधक शक्ति की योनि में रखे। हे देवी! यह गुटिका कण्ठ में धारण करने पर धनप्रदा हो जाती है।।१५०-१५२।।

शीर्षे वश्यकरी देवि कट्यां स्तम्भनकारिणी ।
बद्धा वामभुजे चैषा वैरिपक्षविनाशिनी ।।१५३।।
जठरे रोगशमनी पुत्रदा हृदि संस्थिता ।
विद्याकरी ललाटस्था शिखायां तु यशः प्रदा ।।१५४।।
दक्षिणे बाहुमूले वै यदि तिष्ठति सर्वदा ।
तदा सर्वार्थसिद्धिः स्याद्यद्यन्मनसि वर्त्तते ।।१५५।।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।
न शक्नोमि प्रभावं हि कथितुं कवचस्य वै ।।१५६।।
एतत्तु कवचेनैव पठनं साधनं प्रिये ।
कथितं मे तव स्नेहाद् गोपनीयं सदा प्रिये ।।१५७।।

हे देवी ! यह शिर पर धारण करने से वश्यकारक तथा कटि में बाँधने से स्तम्भन कारिणी हो जाती है। बायीं भुजा में धारण करने से यह शत्रुनाशक हो जाता है। पेट पर धारण करने पर रोग को शान्त करती है। हृदय पर धारण करने से यह पुत्र प्रदान करती है। ललाट पर धारण करने से यह विद्याप्रदा तथा शिखा पर धारण करने से यह यशदात्री हो जाती है। साधक की दायीं भुजा पर बाँधनें से मन की सभी इच्छायें सिद्ध होती हैं। यह सत्य है। मैं कवच के प्रभाव का वर्णन करने में सक्षम नहीं हूँ। हे प्रिये! मैंने तुम्हारे प्रेम के कारण इस कवच को और इसकी साधना को कहा। हे प्रिये! इसको पूर्ण गोपनीय रखना होगा।।१५३-१५७।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे महात्रिपुरसुन्दरीत्रैलोक्यमोहनाकवचनिरूपणानामकश्चतुर्थः पटलः ।।४।।

।। गन्धर्व तन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में महात्रिपुरसुन्दरी त्रैलोक्यमोहन कवच निरुपण नामक चतुर्थ पटलः समाप्त ।।

पञ्चमः पटलः

यन्त्रोद्धारआवरणशक्त्यर्चननिरूपणम्

पार्वत्युवाच–

विना यन्त्रेण चेत् पूजा देवता न प्रसीदति ।
तस्मात् कथय देवेश यन्त्रमस्या मनोहरम् ।।१।।
यस्य दर्शनमात्रेण दारिद्र्यं नश्यति ध्रुवम् ।

भगवती पार्वती कहती हैं–बिना यन्त्र से की गई पूजा से देवता प्रसन्न नहीं होते। हे देवेश! अतः उस मनोहर यन्त्र के सम्बन्ध में कहें, जिसके दर्शन से ही दरिद्रता का नाश हो जाता है।।१।।

ईश्वर उवाच–

सैवमालोच्य सर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणी ।।२।।
समस्ततत्त्वसंयोगात् स्मृत्यधिष्ठानरूपिणी ।
व्यक्तीकरोति नित्या या प्रकृतिः परमः पुमान् ।।३।।
सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्राज्ज्योतिषः सन्निधेस्तथा ।
विचिकीर्षुर्योनिभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुना ।।४।।

ईश्वर कहते हैं–वह नित्या परमाशक्ति जो सत्-चित्-आनन्द रूपा है, स्मृति की अधिष्ठान भूता है, स्वयं को तत्वों के पारस्परिक संयोग से प्रकटीभूत करती है। (निराकार से साकार होती है) यह व्यक्तीकरण प्रकृति तथा पुरुष के रूप में होता है। वह प्रकृति ही तत्व है। यह चिन्मात्र ज्योति की सन्निधि द्वारा सृष्टि करने की इच्छा से युक्त होकर सृष्टि कारण रूपा हो जाती है। तदनन्तर (अपनी इच्छा से) किसी (अचिन्त्य) क्षण में बिन्दुरूपा हो जाती है।।२-४।।

अतिव्यक्ता पराशक्तिरविनाभावलक्षणा ।
अखण्डपरचिच्छक्तिर्व्याप्ता चिद्रूपिणी विभुः ।।५।।
समस्ततत्त्वभावेन विवर्त्तेच्छा समन्विता ।
प्रयाति बिन्दुभावं च क्रियाप्राधान्यलक्षणम् ।।६।।
बैन्दवं मातृचक्रस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत् ।
बिन्दुः शिवात्मकस्तत्र बीजं शक्त्यात्मकं स्मृतम ।।७।।

शक्तिमान के साथ इस पराशक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध रहता है। यह अखण्ड चिद्रूपा व्यापक चित् शक्ति सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी जब (स्वात्मस्वातन्त्र्य के कारण) तत्वरूपेण आत्मप्रकाशन करने की इच्छा करती है, तब वह क्रियाप्राधान्य लक्षण बिन्दुभाव को ग्रहण कर लेती है। अब मूलतः बिन्दुरूपी मातृकाचक्र भी त्रिरूपत्व को अपना लेता है। तब बिन्दु है शिवात्मक एवं बीज है शक्त्यात्मक।।५-७।।

तयोर्योगे भवेन्नादस्तेभ्यो यच्चिन्तयाम्यहम् ।
तस्मात् तानि च चक्राणि तत्प्रकारः प्रकथ्यते ।।८।।
ततः प्राङ्मुख आसीनश्चक्रोद्धारं समारभेत् ।
हेमरूप्यादिताम्राणां पट्टे चातिमनोहरे ।।९।।
चतुरस्त्रे समे शुद्धे मध्योच्छूनविभूषिते ।
युग्माङ्गमिलितं देवि पट्टस्येह समीरितम् ।।१०।।

शिवरूप बिन्दु तथा शक्तिरूप बीज का योग होने से नाद उत्पन्न होता है। इनका मैं चिन्तन करता रहता हूँ। उससे जो चक्रों की उत्पत्ति होती है, उसका प्रकार बतलाता हूँ। तदनन्तर पूर्वाभिमुख (आसनासीन) होकर चक्र लेखन कार्य करें। स्वर्ण, चाँदी अथवा ताम्र का एक ऐसा पत्तर लेना चाहिये जो चौकोर, सम, शुद्ध तथा मध्य में कुछ हल्का सा उन्नत हो। (बीच से दबा न हो) इस पत्तर के प्रत्येक कोने (पार्श्व) परस्पर एक दूसरे से मिले हुए होने चाहिये॥८-१०॥

अथवा परमेशानि भूमौ चक्रं समालिखेत् ।
हस्तमात्रमिते शुद्धे गोमयेनोपलेपिते ।।११।।
सिन्दूररजसा तत्र कुङ्कुमेनाथ वा प्रिये ।
आलिखेच्चक्रराजं च लेखन्या हैमया तथा ।।१२।।
अथवा कुशमूलेन दर्भपाणिः समाहितः।
नेत्ररम्यं तथा चक्रं तथा कुर्याद्विचरक्षणः।।१३।।

हे परमेशानी! चक्र को भूमि पर भी अंकित कर सकते हैं (लेकिन जो अशक्त हो यह उसके लिये विधान है। अन्यथा कृपणता दोष लग जायेगा)। (अपने हाथ के नाप से) एक हाथ की चौकोर भूमि को साफ करके उसमें से (तृण आदि की जड़ के) काँटें आदि निकाल कर उस पर गोमय का अच्छी तरह से लेप करे। हे प्रिये! सिन्दूर अथवा कुंकुम से चक्रराज का अंकन करना चाहिये। यदि स्वर्ण की लेखनी से अंकन कर सके, तो ठीक अन्यथा समाहित चित्त से कुश की जड़ से विद्वान साधक ऐसा चक्र अंकित करें जो देखने में नेत्रों को रमणीक लगे॥११-१३॥

प्रतीच्यग्रं लिखेदेकं त्रिकोणं तदुपर्यथ ।
पूर्वत्रिकोणमध्याग्रं त्रिकोणान्तरमालिखेत् ।।१४।।
अथ संधिद्वयं भित्त्वा प्रागग्रं विलिखेत् परम् ।
त्रिकोणमध्यगं चक्रमष्टकोणं तथा भवेत् ।।१५।।

यह अष्टकोण चक्रांकन बतलाते हैं–जिसका अग्रभाग पश्चिम की ओर हो ऐसा त्रिकोण बनाये। इस प्रकार अब दोनों संधियों का भेदन करके ऐसा त्रिकोण बनाये जिसका अग्र भाग पूर्व की ओर हो। यह करने से त्रिकोण के मध्य तक अष्टकोण निर्मित हो जाता है॥१४-१५॥

ततो दशारचक्रस्य निर्माणं शृणु पार्वति।
दक्षिणोत्तरगा रेखास्तिस्रो यास्तत्र तास्वपि ।।१६।।
मध्यरेखां परित्यज्य रेखे द्वे परिवर्धयेत्।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदे चतुष्टयम् ।।१७।।

हे पार्वती! अब दशाचक्र निर्माण की विधि का श्रवण करो। दक्षिण से उत्तर की ओर उन्मुख जो तीन रेखायें होती हैं, उनमें से मध्य रेखा को न बढ़ाकर अन्य दोनों रेखाओं को बढ़ाना चाहिये। इससे षट्कोण का रूप बन जाता है। अब सन्धिभेद से जो चार कोण बन जाते हैं उसमें दो रेखायें अंकित करना होगा। यह दशकोणात्मक यन्त्र है।।१६-१७।।

कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् दशकोणं तथा भवेत्।
तथान्यदशकोणस्य निर्माणं परिकीर्त्त्यते ।।१८।।
दक्षिणोत्तरगास्त्वेवं रेखाः पञ्च भवन्ति याः।
तासां रेखा त्रयं मध्ये हित्वा पूर्वापरं तु तत् ।।१९।।
बाह्यरेखाद्वयं देवि पूर्ववत् परिवर्धयेत्।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदचतुष्टयम् ।।२०।।
कृत्वा रेखाद्वयं कुर्याद् दशकोणं यथा भवेत्।
चतुर्दशारचक्रस्य निर्माणं कथ्येऽधुना ।।२१।।
दक्षिणोत्तरगास्वे(?स्त्वे)वं रेखाः सप्तभवन्ति याः।
तासां रेखा त्रयं हित्वा बाह्ये पूर्वापरं ततः ।।२२।।
दीर्घं रेखाद्वयं मन्त्री पूर्ववत् परिवर्धयेत्।
तेन षट्कोणकं कृत्वा संधिभेदचतुष्टयम् ।।२३।।
दशारीकृत्य तेनैव संधिभेदचतुष्टयात्।
रेखाद्वयं बहिः कुर्याद्रेखाः स्युर्नव चैव वै ।।२४।।
कल्पयेदथ सत्याग्रैरन्यकोणचतुष्टयम्।
एवं चतुर्दशारं स्याद्विलोचनमनोहरम् ।।२५।।
एवं निष्पादिते चक्रे यद्भवति च तच्छृणु।
मध्ये त्रिकोणमेव स्यात् तन्मध्ये बिन्दुरिष्यते ।।२६।।
चतुर्णामपि चक्राणां बहिरग्रास्त्रिकोणकाः।
त्रिचत्वारिंशच्च गुणिता योनयोष्टौ च शोभनाः।।२७।।
मत्स्या द्वादश सम्पन्नाश्चतुष्कोणेपशोभिताः।
ग्रन्थयोऽष्टादशापि स्युः षट्पथा ग्रन्थयोऽपरे ।।२८।।
चतुर्विंशतिसंख्याताः शोभनास्ते चतुष्पथाः।
अष्टकोणकगर्भं तु चतुष्कोणत्रयं तथा ।।२९।।

अब एक अन्य दशकोण यन्त्र की निर्माण विधि बतलाई जा रही है। दक्षिण से उत्तर की ओर ५ रेखायें होती हैं। इनमें से मध्य की तीन रेखाओं को छोड़ दें और पहली एवं पाँचवीं रेखा को पहले की तरह बढ़ायें। इस प्रकार षटकोण बनने के अनन्तर सन्धि भेद द्वारा कोण अंकित करके दो रेखायें बनाने में दशकोण का रूप तैयार हो जाता है। अब चौदह कोणात्मक चतुर्दशार निर्माण विधि को कहा जा रहा है। दक्षिण से उत्तर की ओर जो ६ रेखायें हैं, उनमें से मध्य की तीन रेखाओं को छोड़ दे। मन्त्र-वित् साधक बाह्य पूर्वापर दो रेखाओं को आगे बढ़ाये। इस प्रकार षट्कोण बनाने के पश्चात् ४ सन्धि भेद द्वारा दशकोण को लेखन करे। तदनन्तर चार सन्धि भेदों से दो रेखायें बाहर ले जाये। इस प्रकार पूर्व की सात तथा अब की यह दो, सब मिलाकर ९ रेखायें अंकित हों। उसके आगे अन्य चार कोण बनते हैं। ऐसा चतुर्दशार बनने पर जो (अंकन) होता है, उसे सुनो। चक्रमध्य में जो त्रिकोण बना है, उसके मध्य में बिन्दु का अंकन होता है। चारों चक्रों के बाह्याग्र में त्रिकोण हो जाते हैं। इनकी कुल संख्या है ४३, शोभन योनि होती हैं ८, चारों कोण में १२ मत्स्य शोभित होते हैं। १८ ग्रन्थियां तथा अन्य ६ ग्रंथियां होती हैं। २४ की संख्या में चतुष्पथ शोभायमान हो जाते हैं। अष्टकोण के गर्भ में ३ चतुष्कोण होते हैं।।१८-२९।।

दक्षिणोत्तरपूर्वासु दिक्षु सम्भवति क्रमात्।
दक्षिणोत्तरगास्तत्र नव रेखा भवन्ति हि।।३०।।
नव रेखास्तथैवान्या वह्निवायुदिगायताः।
नव रेखास्तथैवान्या नैर्ऋतेशदिगायताः।।३१।।
तत्र ये पञ्च देवेशि साधकाभिमुखाग्रकाः।
त्रिकोणास्ते शक्तयः स्युः पञ्चतत्र शुभोदयाः।।३२।।

इनके मध्य में एक-एक अष्टकोण बन जाता है। दक्षिण से उत्तर गामिनी ९ रेखायें होती हैं। नैर्ऋत कोण से ईशान की ओर जाने वाली भी ९ रेखायें बन जाती हैं। अग्निकोण से वायुकोण को जाने वाली भी ९ रेखायें हो जाती हैं। हे देवेशी! इनमें से ५ कोण साधक के सम्मुख होते हैं, उनमें शुभोदय वाली पंचशक्ति होती है।।३०-३२।।

पूर्वाग्रा ये तु चत्वारो वह्नयस्ते प्रकीर्तिताः।
एवं चक्रं विनिर्माय बाह्ये वृत्तं विलिख्य च।।३३।।
तेनाष्टदलपद्मस्य निर्माणं तद्बहिस्तथा।
वृत्तेन षोडशदलं लिखेत् पद्मं मनोहरम्।।३४।।
वृत्तत्रयं तु तद्बाह्ये तद्बाह्ये चतुरस्रकम्।
त्रिरेखं भूपुरं विद्धि चतुर्द्वारोपशोभितम्।।३५।।

एवं भवन्ति चक्राणि बिन्दुनैव नव क्रमात् ।
वृत्तत्रयं महेशानि न पूजायां निगद्यते ।।३६।।

पूर्वाग्र में जो ४ कोण होते हैं वे चतु:वह्नि हैं। चक्र का इस विधान से निर्माण हो जाने के उपरान्त उसके बाहर एक वृत्त का निर्माण करें। वृत्त के बहिर्देश में मनो-हारी अष्टदल कमल बनाना चाहिये। इसके वहिर्देश में जो वृत्त का अंकन करके मनोहारी षोडशदल पद्म अंकित करें। उसके बाहर तीन वृत्त और वृत्तों के बाह्य देश में चौकोर भूपुर का निर्माण करना चाहिये। तदनुसार बिन्दु के नवचक्र बन जाते हैं। वृत्त-त्रय की पूजा का नियम नहीं है।।३३-३६।।

एवमेतस्य चक्रस्य प्रभावो वर्णितुं मया ।
न शक्यते महेशानि कल्पकोटिशतैरपि ।।३७।।
एवमेतन्महाचक्रं महाश्रीत्रिपुरामयम् ।
यन्त्रं शरीरमित्याहुर्मन्त्रं ज्ञानमखण्डितम् ।।३८।।
शरीरं त्रिविधं प्राहुभौतिकं च मनोमयम् ।
परं ज्ञानमयं नित्यं यदनाशि निरन्तरम् ।।३९।।

करोड़ों कल्पों में मैं इस चक्र के प्रभाव का वर्णन नहीं कर सकता। यह महा-त्रिपुरसुन्दरी का महाचक्र इस प्रकार का कहा गया है, ८ देव शरीर ही यन्त्र है। अथवा यन्त्र ही देवता की देह हैं। मन्त्र है देवता का अखण्ड ज्ञान स्वरूप। शरीर तीन प्रकार का कहा गया है। यथा भौतिक (स्थूल), मनोमय (सूक्ष्म) तथा ज्ञानरूप (महाकारण)। यह ज्ञानमय शरीर नित्य एक रूप रहता है।।३७-३९।।

मुद्रां भौतिकमित्याहुर्यन्त्रं विद्धि मनोमयम् ।
मन्त्रं ज्ञानमयं विद्धि एवं त्रिधा वपुर्भवेत् ।।४०।।
मुद्राशरीरं मे विद्धि अङ्गभूतं तथा परम् ।
योनिभूता महामुद्रा शरीरमिति कीर्तितम् ।।४१।।
तस्या रससमुत्पन्नाः कामेश्वर्यादिकास्तथा ।
बिन्दुचक्रं वरारोहे सर्वानन्दमयं प्रिये ।।४२।।
संविद्वेद्यं महाचक्रं ज्ञेयं ब्रह्मस्वरूपकम् ।
ततः परं शिवाङ्कस्थां महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।४३।।
समावाह्य यजेद्देवीं परयाथ सपर्यया ।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्षु च पार्वति ।।४४।।
षडङ्गयुवतीः पश्चात् पूजयित्वा विधानतः।
तन्मयीश्चाथ नित्याश्च यजेत् सौभाग्यकामुकः।।४५।।
महात्र्यस्रं स्मरेत् तत्र पञ्चदशकलात्मकम् ।
वामावर्तक्रमेणैव कलाः पञ्चदश क्रमात् ।।४६।।

अकाराद्यामुकारान्तां दक्षिणस्यां विचिन्तयेत् ।
ततश्च पूर्वरेखायां दीर्घकर्णादि पञ्चकम् ।।४७।।
विचिन्त्योत्तररेखायां शक्त्यादि परिचिन्तयेत् ।
कामेश्वर्यादिका नित्यास्तथैव परिपूजयेत् ।।४८।।

मुद्रा को भौतिक कहा गया है, यन्त्र मनोमय है। मन्त्र ज्ञानमय है। इस प्रकार से तीन शरीर होता है। मुद्रा को मेरा शरीर जानो, बाकी अंगरूप हैं। योनिभूता महामुद्रा ही मेरा शरीर कहा गया है। उससे कामेश्वरी आदि नित्याओं की उत्पत्ति हुई है। हे वरारोहे! बिन्दुचक्र सर्वानन्दमय है। हे प्रिये! संविद् द्वारा जानने योग्य महाचक्र ब्रह्म-रूपी है। इसके पश्चात् शिवाङ्क स्थिता महासुन्दरी का आवाहन करके उत्तम सपर्या द्वारा पूजन क्ररे। इसके अनन्तर हे पार्वती! अग्नि-ईशान-नैर्ऋत तथा वायुकोण में एवं चारों दिशा में षडङ्ग युवतियों की पूजा के अनन्तर सौभाग्य का इच्छुक साधक तन्मयी नित्याओं का पूजन करें। वहाँ पञ्चदश कला वाले महात्रिकोण का स्मरण करें। तत्पश्चात् वामावर्त क्रम से १५ कलाओं का चिन्तन करके दक्षिण रेखा में "अ आ इ ई उ" का पूर्व रेखा में "ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ" का ध्यान करके उत्तर रेखा में शक्ति प्रभृति का "ए ऐ ओ औ अं" का चिन्तन करें। ऐसे कामेश्वरी आदि नित्याओं की पूजा का विधान है।।४०-४८।।

प्रतिपत्तिथिमारभ्य पौर्णमास्यन्तमद्रिजे ।
एकैकां पूजयेन्नित्यां तत्तत्तिथिक्रमेण तु ।।४९।।
आदावेकैकवृद्ध्या तु यजेत् साधकसत्तमः ।
कृष्णपक्षे महेशानि पूजयेत्तु त्रिमण्डलम् ।।५०।।

उत्तम साधक शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से लेकर पूर्वमासी पर्यन्त एक-एक तिथि पर एक-एक नित्या का क्रम से पूजन करे। पहले दिन एक, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, चौथे दिन चार की पूजा सम्पन्न करे। हे महेशानी! कृष्णपक्ष में त्रिमण्डल् की पूजा सम्पन्न करें। (अर्थात् षडङ्गयुवतीगण, नित्यागण तथा १५ कला—ये हैं त्रिमण्डल)।।४९-५०।।

विचित्राद्या वरारोहे यावत् कामेश्वरी भवेत् ।
पूजनीया विलोमेन वान्या (:)तथैव पार्वति ।।५१।।
उभयोः पक्षयोरन्ते यथोक्तध्यानयोगतः ।
सर्गस्थां षोडशीं नित्यां महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।५२।।
तत्तद्विद्यास्तथा ध्यानं यन्त्राणि पूजनानि तु ।
होमान्यन्यानि सर्वाणि काम्यानि च वरानने ।।५३।।
पटलैः पञ्चसंख्यैस्तु पश्चात् वक्ष्याम्यहं शिवे ।
अत्राङ्गावृत्तिभूतानां शृणु पूजां वरानने ।।५४।।

हे वरारोहे! विचित्राद्या (चित्रा से तात्पर्य है) से लेकर कामेश्वरी पर्यन्त विलोम रूप से पूजा करें, अथवा अन्य की भी ऐसे ही पूजा करनी चाहिये। दोनों पक्षों के अन्त में पहले कहे ध्यान योग के द्वारा सर्गस्था षोडशी नित्या महात्रिपुरसुन्दरी की अर्चना करनी चाहिये। हे शिवे! मैं वे विद्या, उनका ध्यान, यन्त्र पूजनादि, होम तथा अब काम्य कर्मों को आगे वाले पाँच पटलों में कहूँगा। हे वरानने! अब आवरण भूत अंगों की पूजा का प्रसंग सुनो।।५१-५४।।

ईश्वर उवाच–

तत्र तत्र महेशानि समावाह्य विधानतः।
पूजयेत् साधको भक्त्या यथोक्तक्रवर्त्मना।।५५।।

यथोक्त क्रमवर्त्मना–

मूलाद्येनैव तत्राद्यां हंसेन पुटितेन तु।
द्वितीयेन द्वितीयां च तृतीयेन तृतीयकाम्।।५६।।
चतुर्थेन चतुर्थीं च पञ्चमेनैव पञ्चमीम्।
पष्ठेन तु तथा षष्ठी सप्तमेन तु सप्तमीम्।।५७।।
अष्टमेनाष्टमीं चैव नवमीं नवमेन तु।
दशमीं दशमे (मी?मे) नैव एकादशीं तथैव हि।।५८।।
एकादशाक्षरेणैव द्वादशीं द्वादशेन तु।
त्रयोदशीं च तत्रैव त्रयोदशाक्षरेण तु।।५९।।
चतुर्दशाक्षरेणैव यजेत् यजेत् तत्र चतुर्दशीम्।
पञ्चदशाक्षरेणैव पञ्चदशीं ततः।।६०।।
समस्तेन तथा देवि षोडशीं परिपूजयेत्।
आदावन्ते च मध्ये च सपर्या खलु पार्वति।।६१।।
महादेव्याः समाख्याता नित्यैव विहितागमे।
तामेव पूजयेद्वापि महात्रिपुरसुन्दरीम्।।६२।।

भगवान् शिव कहते हैं–हे महेशानी! उन-उन तिथियों में यथा विधान नित्याओं का आवाहन करके मूल मन्त्र के प्रथम वर्ण को हंस से सम्पुटित करके प्रथम नित्या का पूजन करे, यथा–ह ह ह कामेश्वर्यै नमः। हंस सम्पुटित द्वितीय नित्या भगमालिनी का पूजन करें, यथा- ह स ह भगमालिन्यै नमः। तृतीय वर्ण से तृतीय नित्या नित्यक्लिन्ना का पूजन करे, यथा–ह क ह नित्यक्लिन्नायै नमः। चतुर्थ वर्ण से चतुर्थनित्या भेरुण्डा का पूजन करे, यथा–ह ल ह भेरुण्डायै नमः। पञ्चम वर्ण से पञ्चम नित्या वह्निवासिनी का पूजन करे, यथा–ह ह्रीं ह वन्हिवासिन्यै नमः। षष्टवर्ण से षष्टनित्या वज्रेश्वरी का पूजन करे, यथा–ह ह ह वज्रेश्वर्यै नमः।

सप्तम वर्ण से सप्तमनित्या शिवादूती का पूजन करे, यथा–ह स ह शिवादूत्यै नमः। अष्टम वर्ण से अष्टम नित्या त्वरिता का पूजन करे, यथा–ह क ह त्वरितायै नमः। नवम वर्ण से नवम नित्या कुलसुन्दरी का पूजन करे, यथा–ह ह ह कुलसुन्दर्यै नमः। दशम वर्ण से दशम नित्या-नित्या का पूजन करे, यथा–ह ल ह नित्यायै नमः। एकादश वर्ण से एकादश नित्या नीलपताका का पूजन करे, यथा–ह ह्रीं ह नीलपताकायै नमः। द्वादश वर्ण से द्वादश नित्या विजया का पूजन करे, यथा–ह स ह विजयायै नमः। त्रयोदश वर्ण से त्रयोदश नित्या सर्वमङ्गला का पूजन करे, यथा–ह क ह सर्वमङ्गलायै नमः। चतुर्दश वर्ण से चतुर्दश नित्या ज्वालामालिनी का पूजन करे, यथा–ह ल ह ज्वालामालिन्यै नमः। हंस सम्पुटित पन्द्रहवें वर्ण से पन्द्रहवीं नित्या चित्रा का पूजन करे, यथा–ह ह्रीं ह चित्रायै नमः। हे देवी! हंस से सम्मुटित मन्त्र द्वारा महा-त्रिपुरसुन्दरी (पोडशी) की पूजा करे, यथा–ह ह स क ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं ह त्रिपुरसुन्दर्यै नमः।

हे पार्वती! पूजानुष्ठान के आदि-मध्य-अन्त में इन महादेवी की पूजा करे। आगमों के अनुसार यह नित्य करना चाहिये। यहाँ यह भी कहा है कि महात्रिपुरसुन्दरी का ही पूजन करना चाहिये, उनसे ही समस्त नित्यागण समुत्पन्न हैं।।५५-६२।।

यतस्तस्याः समुत्पन्नं नित्यामण्डलमीदृशम् ।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि काम्यं कामार्थसिद्धये ।।६३।।
यथोक्तां कुलजां शस्तां चारुलक्षणक्षिताम् ।
स्वेच्छात्रृतुमतीं पूर्णयौवनाच्छन्नशैशवाम् ।।६४।।
तत्राद्यदिवसे देवीं पूजयित्वा यथाविधि ।
यजेत् कामेश्वरीमाद्यां द्वितीयां द्वितीये तथा ।।६५।।
तृतीयेऽथ तृतीयां च चतुर्थे च चतुर्थिकाम् ।
पञ्चमे पञ्चमीं चैव षष्ठीं षष्ठे तथाहनि ।।६६।।
सप्तमो सप्तमीं चैव अष्टमीमष्टमेऽहनि ।
नवमे नवमीं देवीं दशमे दशमीं तथा ।।६७।।
एकादशीं तथा रुद्रे द्वादशीं द्वादशेऽहनि ।
त्रयोदशदिने देवीं त्रयोदशीं क्रमेण तु ।।६८।।
चतुर्दशीं तथा शक्रे पञ्चदशीं ततो यजेत् ।
षोडशीं षोडशे पूर्णे यजेद् वृद्धिक्रमेण तु ।।६९।।

अब मैं कामना की सिद्धि हेतु अन्य काम्यकर्म बतलाता हूँ, इसमें कुलजा (कुलोत्पन्न), प्रशस्त उत्तम लक्षण युक्ता स्वेच्छा से जो ऋतुमती हो गई हो, पूर्ण यौवनाच्छन शैशव से युक्त शक्ति को ग्रहण करे। यहाँ पहले दिन देवी

की पूजा विधिपूर्वक करे, प्रथम दिन कामेश्वरी का, दूसरे दिन भगमालिनी का, तीसरे दिन नित्यक्लिन्ना का, चतुर्थ दिन भेरुण्डा का, पञ्चम दिन वह्निवासिनी का, छठें दिन वज्रेश्वरी का, सप्तम दिन शिवदूती का, अष्टम दिन त्वरिता का, नवम दिन कुलसुन्दरी का, दशम दिन नित्या का, एकादशवें दिन नीलपताका का, द्वादश दिवस में विजया का, त्रयोदश दिवस में सर्वमङ्गला का, चतुर्दश दिवस मे ज्वालामालिनी का, पंचदश दिवस मे चित्रा का तथा षोडश दिवस में त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करे। यह पूजा वृद्धि क्रमेण करनी चाहिये, यह इस प्रकार है–

प्रथम दिन – प्रथम नित्या पूजा
द्वितीय दिन – प्रथम एवं द्वितीय नित्या की पूजा
तृतीय दिन – प्रथम से तृतीय तक नित्याओं की पूजा
चतुर्थ दिन – प्रथम से चतुर्थ तक नित्याओं की पूजा
पंचम दिन – प्रथम से पंचम तक नित्याओं की पूजा
षष्ट दिन – प्रथम से षष्ट तक नित्याओं की पूजा
सप्तम दिन – प्रथम से सप्तम तक नित्याओं की पूजा
अष्ट दिन – प्रथम से अष्टम तक नित्याओं की पूजा
नवम दिन – प्रथम से नवम तक नित्याओं की पूजा
दशम दिन – प्रथम से दशम तक नित्याओं की पूजा
एकादश दिन – प्रथम से एकादश तक नित्याओं की पूजा
द्वादश दिन – प्रथम से द्वादश तक नित्याओं की पूजा
त्रयोदश दिन – प्रथम से त्रयोदश तक नित्याओं की पूजा
चतुर्दश दिन – प्रथम से चतुर्दश तक नित्याओं की पूजा
पंचदश दिन – प्रथम से पंचदश तक नित्याओं की पूजा
षोडश दिन – प्रथम से षोडश तक नित्याओं की पूजा

अन्यांश्चैव यजे् पश्चादपरं यत् प्रकीर्तितम् ।
षोडशर्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु क्रमोत्क्रमाद् यजेत् ।।७०।।
यथाविधि क्रमेणैव न दिनं व्यतिलङ्घयेत् ।
नैव विसर्जयेत् तां तु यावत्सा स्यात् फलार्थिनी ।।७१।।
फलार्थिनीं विदित्वैव विसृज्यान्यां समाश्रयेत् ।
निशाः षोडश संयुक्ताः षोडश शक्तयस्तथा ।।७२।।
एकस्मिन् दिवसे देवि लभ्यन्ते भाग्ययोगतः।
पूजयेत्ताः प्रयत्नेन यथावत् पूर्वसूचिताः।।७३।।
रात्रौ बृद्ध्या दिने हान्या रसे मध्ये स्थितो बली ।
ऋतुमेकं क्रमेणैव स भवेत् सुरपादपः।।७४।।

विमलाजयिनीमध्ये गुरवः कथितास्तु ते।
त्रैलोक्यमोहने चक्रे बुद्धं च परिपूजयेत् ।।७५।।

अन्य की पूजा इसके बाद की जाती है। १६ रात्रि तक इसी क्रम से यजन करें। एक दिन भी क्रम भंग न हो। जब तक वह स्त्री (शक्ति) ऋतुमती न हो जाये तब तक उस शक्ति का विसर्जन न करें। जब वह ऋतुमती हो जाये तब तक अन्य शक्ति को सादर ले आये। १६ रात्रि में १६ शक्तियों को (क्रमशः) ग्रहण करे (जैसे नित्याओं का क्रम क्रमशः नित्य बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार से)। हे देवी! एक साथ १६ शक्तियाँ अत्यन्त सौभाग्य से ही प्राप्त हो सकती हैं। पहले उन्हें पूर्व सूचना देकर (आमन्त्रित करके) तब पूजा करे। रात्रि में वृद्धि करके तथा दिन में ह्रास करके, तथा मध्य में समरस होकर जो स्थित है, और यही आचरण (साधन) एक ऋतु पर्यन्त क्रम से करता है, उसके लिये यह अनुष्ठान कल्पवृक्षवत् हो जाता है। विमला तथा जयिनी के मध्य में गुरु हैं। त्रैलोक्य मोहन चक्र में बुद्ध की पूजा सम्पन्न करे।।७०-७५।।

ब्रह्मविष्णुशिवाख्यास्तास्तिस्रो रेखाश्च तन्निभाः।
तत्रादौ ब्रह्मरेखायामणिमाद्याः स्थिता प्रिये ।।७६।।
वराभयकरा रक्ताः समीहितफलप्रदाः।
कौमारी पीतवर्णा च शक्तितोमरधारिणी ।।७७।।
वरदाभयहस्ता च ध्यातव्या परमेश्वरी।
अङ्कुशं तोमरं विद्युत्कुलिशौ बिभ्रती करैः।।७८।।
इन्द्राणी गौरवर्णा च ध्येया सर्वसमृद्धिदा।
वैष्णावी श्यावर्णा च शङ्खचक्रवराभयान् ।।७९।।
हस्तपद्मैश्च बिभ्राणा दिव्यभूषणभूषिता।
वाराही श्यामवर्णा च पोत्रिवक्त्रसमन्विता ।।८०।।
हलं च मुसलं खड्गं खेटकं दधती करैः।
चामुण्डा कृष्णवर्णा च शूलं डमरुकं तथा ।।८१।।
खड्गं वेतालकं चैव दधाना दक्षिणैर्भुजैः।
खेटकं चषकं चैव नागं घण्टां च वामकैः।।८२।।

(चक्र में) ब्रह्मा-विष्णु-शिव नामक रेखात्रय इन तीनों देवताओं के ही समान है। हे प्रिये! ब्रह्मरेखा में अणिमा आदि की स्थिति है। हाथों में वरद एवं अभय मुद्राधारी हैं। इनका वर्ण है रक्तवर्ण। साधक की इच्छा के अनुसार फलप्रदा हैं।

कौमारी का रंग पीत है। ये शक्ति, तोमर, वरद एवं अभय मुद्रा युक्त हैं। इस रूप में उनका ध्यान करे।

इन्द्राणी गौरवर्णा हैं, ध्यान करने वाले को सर्व समृद्धि देती हैं। वैष्णवी का वर्ण नील है। वे हाथों में शंख-चक्र-वरद एवं अभय मुद्राधारी हैं। हाथों में कमल है। दिव्याभरण से भूषित हैं। वाराही श्यामवर्णी हैं। उनका मुख शूकरवत् है। उनके हाथों में हल-मूसल-खड्ग तथा ढाल है। चामुण्डा कृष्णवर्णा हैं। उनके दाहिने हाथ में शूल-डमरु-खड्ग बेताल हैं। बायें हाथ में खेटक, प्याला, नाग तथा घण्टा स्थित है।।७६-८२।।

ब्रह्माणीप्रमुखाः सर्वा विष्णुरेखा समाश्रिताः।
ब्रह्माणी रक्तवर्णा च चतुर्भिः शोभिता मुखैः।।८३।।
वरदाभयहस्ता च कुण्डिकाक्षलसत्करा।
माहेश्वरी श्वेतवर्णा त्रिनेत्रा शूलधारिणी।।८४।।
कृपाणमेणं परशुं दधाना पाणिभिः प्रिये।
भेदमस्याः परं गुह्यं सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना।।८५।।
महालक्ष्मीस्तु पीताभा पद्मे दर्पणमेव च।
मातुलुङ्गफलं चैव दधाना परमेश्वरी।।८६।।
शिवरेखां समाश्रित्य सङ्क्षोभण्यादिकाःस्थिताः।
रक्ताः सङ्क्षोभणीमुख्याः स्वस्वमुद्राकरान्विताः।।८७।।
एताः प्रकटयोगिन्यो ध्येयाः सर्वसमृद्धये।
अणिमापुरतो देवि त्रिपुरा चक्रनायिका।।८८।।
शुद्धस्फटिकसङ्काशा मुक्तारत्नविभूषिता।
पुस्तकं चाक्षमालां च कमलद्वयमुत्तमम्।।८९।।
बिभ्रती सिद्धये ध्येया महापातकनाशिनी।
त्रिवृत्तं चन्द्रसूर्याग्निस्वरूपं विद्धि पार्वति।।९०।।

ब्रह्माणी आदि प्रमुख अष्टशक्ति विष्णुरेखा का आश्रय लेकर स्थित रहती हैं। ब्रह्माणी रक्तवर्णी तथा चतुरानना हैं। इनके हाथों में वरद, अभय मुद्रा, कमण्डलु तथा अक्षमाला शोभित हैं। माहेश्वरी का वर्ण श्वेत है, त्रिनेत्रा हैं। हाथों में त्रिशूल, कृपाण, मृग तथा फरसा है। इनका रहस्य अत्यन्त गोपनीय है अतः संक्षेप में कहा गया। महालक्ष्मी का वर्ण पीला है। परमेश्वरी महालक्ष्मी के हाथों में दो कमल है, दर्पण और जंभीरी नीबू धारिणी हैं।

अब शिव रेखा कहते हैं जहाँ संक्षोभिणी आदि स्थित हैं। रक्तवर्णी संक्षोभिणी प्रभृति ने हाथों में अपनी-अपनी मुद्रा धारण किया है। इन प्रकट योगिनी का ध्यान सर्व समृद्धि हेतु साधकगण को करना चाहिये। जो चक्र की नायिका त्रिपुरसुन्दरी हैं उनका ध्यान अणिमा आदि के पहले करना चाहिये। इनका वर्ण स्फटिकवत् शुद्ध है, मुक्ता तथा रत्न से विभूषिता हैं। हाथों में अक्षमाला तथा

कमलद्वय धारिणी महापातकों का नाश करने वाली इनकी सिद्धि के लिये ध्यान करे। हे पार्वती अब चन्द्र-सूर्य-अग्नि स्वरूप त्रिवृत को समझो।।८३-९०।।

सर्वाशापूरके चक्रे रविवेददलान्विते।
ब्रह्माणं चिन्तयेत्तत्र स्रवत्पीयूषवर्षिणी।।९१।।
कामाकर्षणिकाद्यास्तु षोडशस्वरसंयुताः।
सृणिपाशधराः सर्वा रुपेणापीह तत्समाः।।९२।।
एतास्तु गुप्तयोगिन्यो ध्येयाः सर्वसमृद्धिदाः।
कामाकर्षणिकाग्रे तु त्रिपुरेशी व्यवस्थिता।।९३।।
त्रिपुरासदृशी ध्येया त्रिपुरेशी वरानने।
अष्टपत्रं वरारोहे जपाकुसुमसन्निभम्।।९४।।
सर्वसङ्क्षोभणं नाम सर्वकामफलप्रदम्।
चिन्तयित्वा शिवं तत्र वर्गाष्टकसन्विताः।।९५।।
अनङ्गकुसुमाद्यास्तु स्मृता गुप्ततराश्च ताः।
सुन्दरीसृशाः सर्वाः सर्वकामफलप्रदाः।।९६।।
अनङ्गकुसुमाग्रे तु ध्येया त्रिपुरसुन्दरी।
सर्वालङ्कारसम्पन्ना पुस्तकं चाक्षमालिकाम्।।९७।।

अब सर्वाशापरिपूरक चक्र को कहते हैं–रवि (अर्थात् १२) तथा वेद (चार) अत: १६ दलों वाले इस चक्र में ब्रह्मा का ध्यान करे। साथ ही गुप्त योगिनीगण का भी ध्यान करे जो कि १६ हैं। यथा–कामाकर्षिणी, बुध्याकर्षिणी, अहंकारकर्षिणी, शब्दाकर्षिणी, स्पर्शाकर्षिणी, रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणी, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी, बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, मृतशरीराकर्षिणी, त्रिपुरेश्वरी। इनका ध्यान इस प्रकार से है। ये निरन्तर अमृतवर्षिणी हैं। हाथों में अंकुश तथा पाश है। इनका रूप भी अंकुश के समान है। सभी समृद्धि देने वाली हैं। कामाकर्षिणी के आगे त्रिपुरेशी व्यवस्थित हैं। हे वरानने! त्रिपुरेशी का ध्यान त्रिपुराभैरवी की ही तरह करना चाहिये। अब सर्व संक्षोभण चक्र कहते हैं–हे वरारोहे! यह आठ दलों का चक्र है और जवा पुष्प के रंग वाला, सर्वकाम फलदायक है। यहाँ शिव का ध्यान वर्गाष्टक समन्वित अनंगकुसुमादि के पूजन के साथ करें। ये हैं–अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, अनंगरेखा, अनंगवेगिनी, अनंगकुशा, अनंगमालिनी। ये अत्यन्त गुप्त कहीं गयी हैं। ये सभी त्रिपुरसुन्दरी के समान तथा सर्वकामफलप्रदा हैं। अनंगकुसुमा के समक्ष त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करें। यह सर्वालङ्कार

सम्पन्न, पुस्तक तथा अक्षमाला, वरद एवं अभयमुद्रा धारण करती हैं। इनका वर्ण बन्धूक पुष्प जैसा है॥९१-९७॥

वराभयौ च दधती बन्धूककुसुमप्रभा ।
सर्वसौभाग्यदे चक्रे दाडिमीकुसुमप्रभे ।।९८।।
चतुर्दशारके देवि भास्करं परिचिन्तयेत् ।
सर्वसङ्क्षोभणीमुख्याः सम्प्रदायाःस्मृता इमाः ।।९९।।
सर्वसङ्क्षोभिणीशक्तेः पुरस्त्रिपुरवासिनी ।
सुन्दर्याः सदृशी ध्येया सर्वकामफलप्रदा ।।१००।।

अब सर्वसौभाग्यप्रद चक्र कहते हैं–यह अनार के पुष्प के समान रंग वाला, १४ दलों वाला चक्र है। हे देवी! इसमें सूर्य का ध्यान करे। इसमें सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्वाह्लादिनी, सर्वमोहिनी, सर्वस्तम्भिनी, सर्वजृम्भिणी, सर्व-वशङ्करी, सर्वरञ्जनी, सर्वोन्मादिनी, सर्वार्थसाधिनी, सर्वसम्पत्पूरणी, सर्वमन्त्रमयी तथा सर्वद्वन्दक्षयकरी का ध्यान करे। ये सम्प्रदाय हैं। सर्वसंक्षोभिणी देवी त्रिपुरवासिनी हैं। इनका ध्यान त्रिपुरसुन्दरी के समान करे। ये सर्वकामफलप्रदा हैं॥९८-१००॥

सर्वार्थसाधके चक्रे सर्वरक्षाकरे तथा ।
बाह्यारदशकोणे च जपाकुसुमसन्निभे ।।१०१।।
नारायणं प्रपूज्याथ बाह्यारदशके ततः।
सर्वसिद्धिप्रदामुख्याः कुलकौला इमाः स्मृताः।।१०२।।
सर्वसिद्धिप्रदाग्रे तु त्रिपुराश्रीर्व्यवस्थिता।
उद्यद्भानुसहस्राभा दिव्यालङ्कारभूषिता ।।१०३।।

अब सर्वार्थसाधक बाह्यदशार को कहते हैं–यह सभी तरह से रक्षा करता है। यह दशकोण वाला तथा जवापुष्प के समान रंग वाला है। इसके मध्य में नारायण का पूजन करके बाह्य दशकोणों में सर्वसिद्धिप्रदा, सर्वसम्पत्प्रदा, सर्वप्रियङ्करी, सर्वमङ्गलकारिणी, सर्वकामप्रदा, सर्वदुःखविमोचिनी, सर्वमृत्युप्रशमनी, सर्वविघ्नविनाशिनी, सर्वाङ्गसुन्दरी तथा सर्वसौभाग्यदायिनी की पूजा करे। ये कुलकौला (योगिनी) कहलाती हैं। सर्वसिद्धिप्रदा के आगे त्रिपुराश्री रहती हैं। इनका स्वरूप उगते सहस्रों सूर्य के समान कान्तियुता, दिव्य अलंकारों से भूषिता, दिव्य अलंकारों से अलंकृता, हाथों में पुस्तक, जपमाला, वरद, अभयमुद्रा धारी है॥१०१-१०३॥

पुस्तकं जपमालां च दधती वरदाभये ।
अन्तर्दशारचक्रे च पूज्याः सर्वसमृद्धिदाः।।१०४।।
तथा निगर्भ योगिन्यः सर्वज्ञाप्रमुखाः प्रिये ।
सर्वज्ञापुरतो देवि स्थिता त्रिपुरमालिनी ।।१०५।।

इन्द्रगोपप्रभा देवी पाशाङ्कुशकपालिनी ।
महाभीति हरा सम्यक् साधकानां क्षणादियम् ।।१०६।।

अब अन्तर्दशारचक्र को कहते हैं–इस चक्र में सभी समृद्धि प्रदा, सर्वज्ञा, सर्व-शक्ति, सर्वैश्वर्यप्रदा, सर्वज्ञानमयी, सर्वव्याधि विनाशिनी, सर्वाधारस्वरूपा, सर्वपापहरा, सर्वानन्दमयी, सर्वरक्षास्वरूपिणी, सर्वैप्सितफलप्रदा, निगर्भा योगिनीगण की पूजा करे। हे देवी! सर्वज्ञा के समक्ष त्रिपुरमालिनी देवी स्थित रहती हैं। इनका वर्ण इन्द्रगोप के समान है। ये हाथ में पाश-अंकुश-कपाल तथा अभयमुद्रा धारण करती हैं। ये क्षणमात्र काल में साधकों के भय को दूर कर देती हैं। इनका भी ध्यान करे॥१०४-१०६॥

सर्वरोगहरे चक्रे बालार्ककिरणारुणे ।
वशिनीप्रमुखास्तत्र रहस्ययोगिनीर्यजेत् ।।१०७।।
वशिनीप्रमुखा रक्ता वराभयकरान्विताः।
पुस्तकं जपमालां च दधानाः परमेश्वरि ।।१०८।।
वशिनीपुरतो देवि सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ।
तथा त्रिपुरसिद्धां च ध्यायेद्विषविनाशिनीम् ।।१०९।।
त्रिकोणाग्रविभागस्य दक्षिणे वामके प्रिये ।
चतुष्पथसमायुक्ते बाणचापौ प्रपूजयेत् ।।११०।।
त्रिकोणस्योर्ध्वभागस्य वामदक्षिणयोस्तथा ।
षडध्वरूपयोर्देवि पाशाङ्कुशौ व्यवस्थितौ ।।१११।।

अब सर्वरोगहर चक्र का वर्णन करते हैं–इस प्रातःकालीन सूर्य की किरण के समान अरुण चक्र में वशिनी प्रभृति रहस्य योगिनीगण की पूजा करे, यथा–वशिनी, कामेश्वरी, मोहिनी, विमला, अरुणा, जायिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी तथा वाग्देवता। इसमें वशिनी की पूजा चक्र मध्य में की जाती है। हे परमेश्वरी! इनका वर्ण है रक्तवर्ण, हाथों में वर, अभय मुद्रा, पुस्तक तथा जपमाला है। हे देवी! वशिनी के समक्ष सर्वसिद्धि एवं विषनाशिनी त्रिपुरासिद्धि का ध्यान करे। हे प्रिये! त्रिकोण के अग्रभाग के दक्षिण तथा वाम चतुष्पथ युक्त स्थान में बाण एवं धनुष का पूजन करे। त्रिकोण के ऊर्ध्व में षडध्वरूप का तथा वाम-दक्षिण भागस्थ पाश एवं अंकुश का पूजन करे॥१०७-१११॥

सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे त्रिकोणे परमेश्वरि ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभे बन्धूककुसुमप्रभे ।।११२।।
अतिरहस्ययोगिन्यः संस्थिता वीरवन्दिते ।
अग्रकोणे अग्निचक्रे कामरूपे वरानने ।।११३।।
कामेश्वरी त्रिनेत्रा च तरुणारुणविग्रहा ।
चषकं वरदानं च पाशं चाङ्कुशमेव च ।।११४।।

दधती परमेशानि ध्येया रुद्रात्मशक्तिका ।
वामकोणे त्रिकोणस्य सूर्यचक्रे महेश्वरि ।।११५।।
जालन्धरे महापीठे वज्रेश्वरी समीरिता ।
त्रिनेत्रा पूर्णचन्द्रास्या बन्धूककुसुमप्रभा ।।११६।।
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं चषकं मातुलुङ्गकम् ।
दधती चारुरूपा सा ध्येया विष्ण्वात्मशक्तिका ।।११७।।
दक्षकोणे त्रिकोणस्य सोमचक्रे वरानने ।
पूर्णगिर्यालये देवि कथिता भगमालिनी ।।११८।।
त्रिनेत्रा तरुणेन्दुमस्ता सिन्दूरारुणविग्रहा ।
पुस्तकं जपमालां च पाशाङ्कुशकमेव च ।।११९।।
दधती परमेशानी ध्येया ब्रह्मात्मशक्तिका ।
कामेश्वरी पुरोभागे त्रिपुराम्बा व्यवस्थिता ।।१२०।।

अब सर्वसिद्धिप्रद कवच कहते हैं–हे परमेश्वरी! यह त्रिकोणरूप चक्र सहस्रों उदीयमान सूर्य के समान आभा वाला तथा बन्धूक पुष्प के समान रक्तवर्ण है। हे वीरवन्दिते! इसमें अत्यन्त रहस्यमयी योगिनीगण रहती है। हे वराननें! इसका आगेवाला कोण अग्निचक्र कहलाता है। इसकी कामरूप नामक पीठ के ऊपर त्रिनेत्रा तरुण तथा अरुण आभा वाले शरीर की महादेवी कामेश्वरी का स्थान है। इनकी चार भुजाओं में चषक, वरदानमुद्रा, पाश तथा अंकुश स्थित है। हे परमेशानी! इनका ध्यान रुद्रशक्ति रूप में करे। वाम ओर का जो त्रिकोण है, वहाँ सूर्यचक्र है। इस जालंधर नामक पीठ पर वज्रेश्वरी देवी स्थित हैं। ये तीन नेत्रों वाली हैं, इनका मुख पूर्ण चन्द्र की छवि वाला है। इनका वर्ण बन्धूक पुष्प के समान है। यह देवी अपने हाथों में पाश-अंकुश, बाण, धनुष, चषक तथा मातुलुङ्ग धारिणी हैं। इनका रूप अत्यन्त सुन्दर है। वैष्णवीशक्ति रूप में इनका ध्यान करे। (त्रिकोण के) इसके दाहिने कोण पर सोमचक्र स्थित है। हे वरानने! हे देवी! यहाँ पूर्णगिरि पीठ पर देवी भगमालिनी स्थित हैं। जिनका वर्ण सिन्दूर के समान अरुण है। इनके हाथों में पुस्तक, जपमाला, पाश एवं अंकुश स्थित है। इन परमेशानी का ब्रह्मशक्ति के रूप में ध्यान करना चाहिये। इसके आगे कामेश्वरी त्रिपुराम्बा अवस्थिता हैं॥११२-१२०॥

मालिनीसदृशी ध्येया सर्वकामफलप्रदा ।
अथवा रश्मयः सर्वा देवीरूपेण चिन्तयेत् ।।१२१।।
नवावरणशक्तीनां ध्यानं देव्याः समं यतः ।
निःसरन्ति यथा नित्यं सूर्यबिम्बान्मरीचयः ।।१२२।।

देव्यस्तथा समुत्पन्ना महादेव्याः शरीरतः।
उड्याणपीठके देवि ब्रह्मचक्रे वरानने ।।१२३।।
परापररहस्याख्या देवी ब्रह्मस्वरूपिणी ।
चक्रेशीमपि तामेव पूजयेत् साधकोत्तमः।।१२४।।
स्थितिक्रमेण पूजेयं यन्त्रोद्धारक्रमेण तु ।
सृष्टिक्रमं महद्गुह्यं पूजनं परमेश्वरि ।।१२५।।

ये देवी सर्वकामफलप्रदा हैं, इनका वर्ण भी मालिनी के समान है, (इसी प्रकार) ध्यान करे। अथवा रश्मियों का देवी रूप में चिन्तन करे। ये रश्मि ही देवी (की आकृति) हैं। नवावरण शक्तियों का ध्यान भी देवीवत् करे। जैसे सूर्य बिम्ब से किरणें निकलती रहती हैं, उसी प्रकार महादेवी के शरीर से किरणरूपेण देवियों का निष्क्रमण होता रहता है। हे देवी! वरानने! उड्डीयानपीठस्थ ब्रह्मचक्र में ब्रह्मस्वरूपिणी परापररहस्या देवी की स्थिति है। श्रेष्ठ साधक इन समस्त चक्रों की अधीश्वरी रूप से इनकी पूजा करे। यह स्थिति क्रम की पूजा है, यन्त्रोद्धार चक्र में यह स्थिति क्रम पूजा सम्पन्न की जाती है। हे देवी! सृष्टिक्रम वाला पूजन अति गुप्त है।।१२१-१२५।।

पार्वत्युवाच–

चक्रमण्डलमाख्यातं न पूजा तत्र मण्डले ।
इदानीं कथयेशान पूजाक्रममनुत्तमम् ।।१२६।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे ईशान! आपने चक्रमण्डल का वर्णन किया है लेकिन उस मण्डल में पूजा की विधि का कोई भी वर्णन नहीं किया, अब कृपा करके उत्तमोत्तम पूजा क्रम को कहिये।।१२६।।

ईश्वर उवाच–

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि पूजाक्रममनुत्तमम् ।
यस्य प्रबोधमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रमोदते ।।१२७।।
देव्या नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता ।
परा चैवापरा देवि तृतीया च परापरा ।।१२८।।
चक्रमध्ये समावाह्य पूज्यते द्रव्यविस्तरैः।
प्रथमा सा समाख्याता मता पुरन्दरादिभिः।।१२९।।
मृद्वासने समासीनः खगसंयमने रतः।
समकायशिरोग्रीवो नासालोकनतत्परः।।१३०।।
विकल्परूपसङ्कल्पविमुखो भावतत्परः।
महापद्मवनान्तःस्थां परमानन्दरूपिणीम् ।।१३१।।

आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम् ।
तत्तज्ज्ञानमये चक्रे परामात्मस्वरूपिणीम् ।।१३२।।
अर्धमात्रां योनिरूपां बिन्दुत्रिवलयात्मिकाम् ।
परमानन्दपुष्पेण पूजयेदात्मरूपिणीम् ।।१३३।।
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितं स्वात्मपूजनम् ।
उत्तमेयं द्वितीया सा मया निष्पाद्यते सदा ।।१३४।।
परापरा समाख्याता उभयं यत्र विद्यते ।
देवकीसूनुना चेयं निष्पाद्यते सदा प्रिये ।।१३५।।

ईवर कहते हैं–हे देवी! अब मैं पूजा का उत्तम क्रम बतला रहा हूँ, इसके प्रबोध मात्र से व्यक्ति जीवन्मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर लेता है। देवी की नित्योदित पूजा तीन प्रकार से व्यवस्थित है। वह है परा, अपरा तथा परापरा। चक्र में देवी का आवाहन करके द्रव्य विस्तार पूर्वक जो पूजा की जाती है, वह इन्द्रादि देवगण द्वारा प्रथम श्रेणी की पूजा कही जाती है अर्थात् **परा पूजा**। जब साधक कोमल आसन (मृत बालक के शव पर बैठकर) पर प्राण वायु का संयम करके काय, शिर तथा ग्रीवा को सम रखकर नासाग्र में दृष्टि निबद्ध किये रहता है, विकल्प रूप बकवाद से विमुख रहता है, भाव तत्पर (चिन्तनतत्पर) रहता है, महापद्मवनस्था (सहस्रास्था) परमानन्द रूपा, जगत् को तृप्त करने वाली, परमामृतवर्षिणी, तत्तद् (उन-उन) ज्ञानमय चक्रों में भी परमात्मा स्वरूपा, अर्द्धमात्रा, योनिरूपा, बिन्दुत्रिवलयाकारा देवी का पूजन परमानन्द पुष्प (संवित्) से तथा इन्द्रियों को तृप्त करने वाले द्रव्यों से करता है, तब यह **अपरा पूजा** होती है। यह द्वितीय वाली पूजा है। मैं इसे प्रतिदिन करता रहता हूँ। जब प्रथम एवं द्वितीय पूजा मिश्रित हो जाती है, तब इसे **परापरा** पूजा कहते हैं। यह तृतीय पूजा है। हे प्रिये! देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण इसे नित्य करते हैं।।१२७-१३५।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे यन्त्रोद्धारावरणशक्त्यर्चन
नामकः पञ्चमः पटलः ।।५।।

।। गन्धर्वतन्त्र का पार्वतीश्वर संवाद रूप यन्त्रोद्धार आवरणार्चन
नामक पंचम पटल समाप्त ।।

◆

षष्ठः पटलः

कर्मयोगादिक्रमनिरूपणम्

पार्वत्युवाच–

देव्याः पूजा समाख्याता तृतीया या महेश्वर।
कथय तां सुरश्रेष्ठ विस्तरेणाधुना प्रभो ।।१।।
ज्ञानेन कर्मणा चेह देहशुद्धिर्द्विधा भवेत् ।
ज्ञानशुद्धिस्त्वया प्रोक्ता कर्मशुद्धिर्न दर्शिता ।।२।।
विपमू त्रपिच्छलो देहः कथं देवमयो भवेत् ।
तन्मे वद महादेव प्रसादसुमुख प्रभो ।।३।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे महेश्वर! आपने देवी की तृतीया पूजा (परापरा पूजा) का वर्णन किया है। हे देवताओं में श्रेष्ठ! हे प्रभो! उसे विस्तार पूर्वक कहिये।

हे प्रभो! इस संसार में ज्ञान तथा कर्म से देह शुद्धि सम्पन्न होती है। आपने ज्ञान शुद्धि की चर्चा तो किया है लेकिन कर्म शुद्धि का उपदेश नहीं दिया है। मलमूत्र से व्याप्त यह पिच्छिल शरीर कैसे देवमय हो सकता है? हे महादेव! हे प्रसाद सुमुख! कृपया बतलाईये।।१-३।।

ईश्वर उवाच–

ज्ञानेन कर्मणा वापि सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
ज्ञानयोगश्च वक्तव्यः कर्मयोगं शृणु प्रिये ।।४।।
ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय साधकः स्थिरमानसः।
पद्मासनसमासीनः प्राणायामपुरः सरः।।५।।
ब्रह्मरन्ध्रस्थिते पद्मे सहस्त्रदलशोभिते ।
विमले पूर्णचन्द्रस्य मण्डले चिन्तयेद् गुरुम् ।।६।।

ईश्वर कहते हैं–सिद्धि की प्राप्ति ज्ञान अथवा कर्म से होती है। अन्य साधन से नहीं मिल सकती। हे प्रिये! पहले कर्मयोग के सम्बन्ध में श्रवण करो। ज्ञानयोग तत्पश्चात् कहूँगा। स्थिर मानस साधक ब्राह्ममुहूर्त में उठकर पद्मासनासीन होकर प्राणायाम के साथ ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्त्रदल कमल में विमल पूर्ण चद्र रूप मण्डल में गुरु का चिन्तन करे।।४-६।।

शुद्धस्फटिकसङ्काशं श्वेताभरणभूषितम् ।
तादृक्प्रसूनमाल्यादिविभूषितनुं तथा ।।७।।
पद्मासनसमासीनं सर्वयोगिनिषेवितम् ।
वराभयकरं शान्तं द्विनेत्रं करुणामयम् ।।८।।

वामोरुगतया शक्त्या रक्तया वामपाणिना ।
धारयन्त्योत्पलं दक्षहस्तेनालिङ्गितं विभुम् ।।९।।
परमानन्दसंदोहसान्द्रमानसमीश्वरम् ।
आनन्दसान्द्ररक्ताक्षं स्मरेत् स्मितमुखाम्बुजम् ।।१०।।

अब ध्यान कहते हैं–गुरु का वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है। उनका शरीर अलंकारों से सुशोभित है। इसी प्रकार की वर्ण वाली पुष्पमालाओं से उनका शरीर विभूषित है। वे पद्मासनासीन हैं और सभी योगीगण से सर्वदा सेवित हैं। वे अपने हाथों में अभय एवं वरमुद्रा को धारण करते हैं। वे शान्त, द्विनेत्र तथा करुणामय हैं। उनकी वाम जंघा पर रक्त वर्णों वाली शक्ति विजित हैं। यह शक्ति बायें हाथ में रक्त कमल धारण करती हैं। उन्होंने अपने दाहिने हाथ से परमेश्वर का आलिंगन कर रखा है। इस प्रकार के परमानन्द समूह से मेरे चित्त वाले, आनन्द से सान्द्र रक्ताक्ष, स्मितहास्य युक्त मुख कमल वाले ईश्वर का स्मरण करें।।७-१०।।

बालाद्यं भुवनेशानी रमा चैवाथ खेचरी ।
शिवचन्द्रौ मातृकान्तं कालशक्राम्बु वह्नयः।।११।।
वायुश्च वामकर्णेन योजिता बिन्दुनादिनः।
चक्रं कृत्यवादिमन्तेषु कर्णे वामाक्षियोजयेत् ।।१२।।
शिवचन्द्रौ त्रिशूलाढ्यौ बिन्दुना परिमण्डितौ ।
चन्द्रशिवौ त्रिशूलाढ्यौ सर्गवन्तौ महेश्वरि ।।१३।।
तस्मात् स्वगुरुनामान्ते आनन्दनाथ चालिखेत् ।
तथा शक्तिपदान्ते वै अम्बापदमतो लिखेत् ।।१४।।
पादुकां पूजयामीति विधिना परिपूजयेत् ।

बालाद्य (ऐं), भुवनेश्वरी (ह्रीं), रमा (श्रीं), खेचरी (हसखफ्रें), शिव (ह), चन्द्र (स), मातृकान्त (क्ष), काल (म), शक्र (ल), अम्बु (व), वह्नि (र), वायु (य), वामकर्ण (ऊ) में बिन्दु नाद जोड़े (ऊँ), वक्र अर्थात् 'हसखफ्रें' को पहले (पुनः ऊँ के आगे रखकर) उसमें वामक्षि (ई) का योग करना चाहिये। तदनन्तर चन्द्र (स) शिव (ह) को त्रिशूल (औ) से जोड़कर बिन्दु जोड़ने से हसौं होगा। अब चन्द्र शिव (सह) को त्रिशूल (औ) से जोड़कर विसर्ग से अलंकृत करे, जिससे 'स्हौः' का उद्धार होता है। अब मन्त्रोद्धार होगा "ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह स क्ष म ल व र य ऊं हसखफ्रें ईं ऊं हसौं स्हौः अमुकानन्दनाथ (अमुकाम्बा भी प्रयोजनानुसार लगा सकते हैं) पादुकां पूजयामि" मन्त्रोच्चार करे।।११-१४।।

लं पृथिव्यात्मना ब्रह्माणा गन्धं कल्पयामि गन्धतन्मात्रात्मने ।
श्राणेन्द्रियाय गन्धं गृहाण स्वाहा,
अथाङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां योजयेद्गन्धमुत्तमम् ।।१५।।

हं आकाशात्मना सदाशिवेन पुष्पं कल्पयामि शब्दतन्मात्रात्मने
श्रोत्रेन्द्रिय शब्दं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगं पुष्पदानं तथैव हि।
यं वाय्वात्मना ईश्वरेण धूपं कल्पयामि स्पर्शतन्मात्रात्मने
त्वगिन्द्रियाय स्पर्शं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठमध्यमायोगं धूपदानं तथैव हि ।।१६।।
'रं' वह्न्यात्मना रुद्रेण दीपं कल्पयामि रूपतन्मात्रात्मने
चक्षुरिन्द्रियाय रूपं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठाभ्यां महेशानि दीपं दद्यात् समाहितः।
वं अमृतात्मना विष्णुना नैवेद्यं कल्पयामि रसतन्मात्रात्मने
जिह्वेन्द्रियाय रसं गृहाण स्वाहा,
अङ्गुष्ठानामिकायोगं नैवेद्यं तत्प्रतिष्ठितम् ।।१७।।
एवं कुलगुरुं देवि पूजयित्वा विधानतः।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रणमेत् सिद्धिहेतवे ।।१८।।

अंगुष्ठ तथा कनिष्ठ को जोड़कर इस मन्त्र से गन्ध प्रदान करे-"लं पृथिव्यात्मना ब्रह्मणा गन्धं कल्पयामि गन्धतन्मात्रात्मने घ्राणेन्द्रियाय गन्धं गृहाण स्वाहा।" अंगुष्ठ तथा तर्जनी को जोड़कर पुष्प प्रदान करे-"हं आकाशात्मना सदाशिवेन पुष्पं कल्पयामि शब्दतन्मात्रात्मने श्रोत्रेन्द्रियाय शब्द गृहाण स्वाहा।" अंगुष्ठ तथा मध्यमा को जोड़कर धूप प्रदान करे-"यं वाटवात्मना ईश्वरेण धूपं कल्पयामि स्पर्शतन्मात्रात्मने त्वगिन्द्रियाय स्पर्शं गृहाण स्वाहा।" दोनों अंगुष्ठों को जोड़कर दीप प्रदान करे-"रं ववन्ह्यात्मना रुद्रेण दीपं कल्पयामि रूपतन्मात्रात्मने चक्षुरिन्द्रियाय रूपं गृहाण स्वाहा।" अंगुष्ठ अनामिका को जोड़कर नैवेद्य देना होगा-"वं अमृतात्मना विष्णुना नैवेद्यं कल्पयामि रसतन्मात्रात्मने जिह्वेन्द्रियाय रसं गृहाण स्वाहा।" हे देवी! इस प्रकार से विधानानुसार उनके समक्ष योनिमुद्रा प्रदर्शित करके सिद्धि के लिये उनके समक्ष प्रणाम निवेदित करके प्रार्थना करना होगा।।१५-१८।।

नमस्ते भगवन्नाथ शिवाय गुरुरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ।।१९।।
नवाय नवरूपाय परमात्मैकरूपिणे ।
सर्वाज्ञनतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ।।२०।।
स्वतन्त्राय दया क्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ।।२१।।
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ।
प्रकाशिनां प्रकाशाय ज्ञानिनांज्ञानरूपिणे ।।२२।।

पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः।
सदा सच्चित्रूपेण विधेहि भवदासनम्।।२३।।

गुरु की प्रार्थना कहते हैं–हे भगवान! हे नाथ! आप गुरु रूपी शिव हैं, विद्यावतार से सिद्धि हेतु अनेक विग्रहों को स्वीकार करने वाले (अर्थात् अनेक रूप धारण करने वाले), नव, नवीन रूपं धारी, परमात्मारूप से समस्त अज्ञानान्धकार को हटाने में तत्पर सूर्य के समान, चिद्घन, स्वतन्त्र, दया से भरपूर विग्रह वाले शिवात्मा आप को नमस्कार। आप भक्तों के समक्ष परतन्त्र रूप हैं, भव्यों में भी भव्य रूपधारी, विवेकी गण के विवेक स्वरूप, विमर्शी के विमर्श, प्रकाशयुक्त के प्रकाश, ज्ञानियों के ज्ञान हैं। आपको सामने से, पार्श्व से, पीछे से, ऊपर नीचे से (सब ओर सर्व दिशाओं से) आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरे अन्तः में सदैव सत् तथा चित् रूपेण आसन ग्रहण करें।।१९-२३।।

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।२४।।
नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मने।
अविद्याग्रस्तसंसारसागरोत्तरहेतवे ।।२५।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ज्ञानं गुरुरेव परं तपः।।२६।।
अतः सर्वत्र देवेशि गुरुपूजा गरीयसी।
अन्यदेव सपर्या वा चान्यदेवस्य कीर्तनम्।।२७।।
गुरुदेवं विना देवि तदग्रे क्रियते यदि।
तदा नरकमाप्नोति सत्यमेतद्वदाम्यहम्।।२८।।
पूजिते गुरुपादे वै सर्वदैव सुखी भवेत्।
सर्वेषां मन्त्रतन्त्राणां पितासौ यः सदाशिवः।।२९।।

जिन्होंने अज्ञान रूपी तिमिरान्ध स्थिति से शिष्य के नेत्रों को ज्ञानार्जन शलाका द्वारा खोल दिया उन गुरु को नमस्कार। मैं उन गुरु को नमस्कार करता हूँ जो ब्रह्मा-विष्णु-शिव रूप हैं। जो संसार सागर से उत्तीर्ण कराने वाले हेतु हैं। गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर देव हैं। गुरु ही परम ज्ञान हैं तथा गुरु ही परमतपरूप भी हैं।

हे देवेशी! यह गुरु पूजा सभी पूजाओं से श्रेष्ठ है। हे देवी! यदि गुरु की पूजा के बिना, उनके समक्ष अन्य देवतार्चन अथवा कीर्त्तन किया जाता है, तब वह पूजक अवश्य नरकगामी होता है, मैं यह सत्य कह रहा हूँ। गुरु के चरणकमल का पूजक शिष्य सदैव सुखी होता है। भगवान सदाशिव को सभी मन्त्र-तन्त्र का पितृ स्वरूप माना गया है।।२४-२९।।

यस्य भक्तिर्गुरौ नित्यं वर्तते देववत् प्रिये।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यान्नान्यथा खलु पार्वति ।।३०।।
गुरुपादरजो मूर्ध्नि ध्यात्वा कर्म समारभेत्।
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे कर्पूरधवलो गुरुः।।३१।।
वराभयकरो नित्यो ब्रह्मरूपी सदानघः।
जागर्ति परमेशानि निजस्थानप्रकाशकः।।३२।।

हे पार्वती! हे प्रिये! जिस व्यक्ति की भक्ति गुरु के प्रति वैसी ही होती है जैसी देवता के प्रति होती है, उसे सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होती है, अन्यथा (सर्वार्थसिद्धि) नहीं होती। तभी समस्त कर्म का प्रारम्भ करते समय गुरुपदरेणु का ध्यान शिर पर करना चाहिये। हे परमेशानी! ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रार में कर्पूर के समान धवल गुरु स्थित हैं। उनके हाथों में वर तथा अभय मुद्रा हैं। वे ब्रह्मस्वरूप, अघ रहित है। वे अपने स्थान के प्रकाशक रूपेण सदैव जाग्रत रहते हैं।।३०-३२।।

कुलनाथं परित्यज्य ये शाक्ताःपर सेविनः।
तेषां दीक्षा च यागश्च ह्यभिचाराय कल्पते ।।३३।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुलीनं गुरुमाश्रयेत्।
कुलीनः सर्वविद्यानामधिकारीति गीयते ।।३४।।
दीक्षाप्रभुः स एवात्र सर्वमन्त्रेषु नापरः।
गुरुमण्डलपूजां तु कुर्यात् सप्तसु पर्वसु ।।३५।।

जो शक्ति साधक कुलनाथ का त्याग करके अन्य की सेवा में लग जाता है, उसका किया यज्ञ तथा प्राप्त की गई दीक्षा अभिचारवत् हो जाती है। तभी सर्व प्रकार का प्रयत्न करके कुलीन गुरु का आश्रय ग्रहण करें। कुलीन ही समस्त विद्या समूह का अधिकारी होता है। वही समस्त मन्त्रों की दीक्षा दे सकता है। अन्य नहीं। सातों पर्वों पर गुरु मण्डली का पूजन करें।।३३-३५।।

देव्युवाच–

विना योगं न सिध्यंत कुण्डलीचङ्क्रमःप्रभो।
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो ।।३६।।
तावन्न किंचित् सिध्येत मन्त्रयन्त्रार्चनादिकम्।
जागर्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयै ।।३७।।
तदा प्रसादमायान्ति मन्त्रयन्त्रार्चनादयः।
शिववद्विहरेल्लोके अष्टैश्वर्यसमन्वितः।।३८।।
योगयोगाद् भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डिता।
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिर्णयः।।३९।।

युक्तात्मा येन विहरेत् स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते परं निर्वाणमाप्नुयात् ।।४०।।
तत् कार्त्स्न्येन परं योगं कथयस्व मयीश्वर ।

देवी कहती हैं–हे प्रभो! योग के बिना कुण्डलिनी का उद्बोधन सिद्ध नहीं होता। हे प्रभो! मूलाधार पद्म में जब तक कुण्डलिनी अप्रबुद्ध सी रहती है, तब तक कोई भी मन्त्र, यन्त्र, अर्चनादि तनिक भी सिद्ध नहीं होता। यह देवी कुण्डलिनी जब अनेक पुण्यों के संचय से उद्बुद्ध होती है, तब मन्त्र-यन्त्र-अर्चनादि फलदायक हो जाते हैं। वह साधक अष्टैश्वर्य से मण्डित हो इस भूमि पर शिववत् विचरण करता है। योग से युक्त हो जाने पर मुक्ति-मन्त्र सिद्धि अखण्ड रूपेण सिद्ध हो जाती है। मन्त्रसिद्धि से परतत्व की प्राप्ति होती है ऐसा शास्त्रों का मत है। हे ईश्वर! युक्तात्मा मनुष्य स्वर्ग-मृत्युलोक तथा पाताल में (उन्मुक्तता से) विहार करता रहता है। तदनन्तर वह जीवन्मुक्तावस्था में देहान्तोपरान्त परम निर्वाण प्राप्त कर लेता है।।३६-४०।।

ईश्वर उवाच–

कथयामि तव स्नेहाद् योगयोग्यासि पार्वति ।।४१।।
संसारोत्तारणं मुक्तिर्योगशब्देन कथ्यते ।
योगो हि ललिता देवी निश्चितं विद्धि पार्वति ।।४२।।
न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले ।
ऐक्यं जीवात्मनोश्चाहुर्योगं योगविशारदाः ।।४३।।

ईश्वर कहते हैं–हे पार्वती! तुम्हारे स्नेह के कारण तथा इस कारण से बतला रहा हूँ कि तुम योग के लिये योग्य अधिकारी हो। संसार को उत्तीर्ण करना मोक्ष है और योग का भी यही अर्थ है (अर्थात् दोनों समानार्थक हैं)। हे पार्वती! यह निश्चित जानों कि योग (प्रकारान्तरेण) ललिता देवी ही हैं। योग न तो आकाश के पृष्ठ में है, न भूमि पर है, न रसातल में ही है। योगविशारदगणों का कथन है कि जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य (के अनुभव को) को योग कहा गया है।।४१-४३।।

कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः ।
तत्समूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरा इमे ।।४४।।
यो(गङ्गै?गाङ्गै)रेभिर्जित्वै तान्योगिनो योगमाप्नुयुः।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम् ।।४५।।
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना ।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने ।।४६।।
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम् ।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश ।।४७।।

तपः सन्तोषमास्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम् ।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम् ।।४८।।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।
पद्मासनं स्वस्तिकाख्यं भद्रं वज्रासनं तथा ।।४९।।
वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम् ।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक् पादतले उभे ।।५०।।
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमात् ततः।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनीं हृदयङ्गमम् ।।५१।।
जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायो वसेद्योगो स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।।५२।।
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ।
वृषणाधः पादपार्ष्णि पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ।।५३।।
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः परिकीर्तितम् ।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली ।।५४।।
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरावथेतरम् ।।५५।।

योग के विघ्नकारक ये हैं–काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद तथा मात्सर्य अथवा इनका आपसी गठजोड़। यहाँ जो योगाङ्ग कहे जा रहे हैं, उनसे इन पर विजय प्राप्त करके योगीगण (जीवात्मपरमात्मैक्य रूप) योग को प्राप्त कर लेते हैं। वह योगांग योगीगण के अनुसार है–यम-नियम-आसन-प्राणायाम प्रत्याहार-धारणा-ध्यान और समाधि। ये योग-साधन के अंग हैं।

१० यम हैं–अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता (आर्जव), क्षमा, घृति, मिताहार, शौच।

१० नियम हैं–तप, सन्तोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, शास्त्रीयसिद्धान्त, श्रवण, लज्जा, मनन, जप तथा होम।

आसन–(क) **पद्मासन**–दोनों जंघों के ऊपर पैर के तलवों को स्थापित करके दोनों हाथों की उगलियों से पृष्ठ से पैर के दोनों अंगुष्ठों को पकड़ना पद्मासन है। यह योगीगण को प्रिय लगता है।

(ख) **स्वस्तिकासन**–जो योगी दोनों तलवों को जांघ तथा घुटने में रखकर शरीर को सीधा रखता है, उसके इस आसन को स्वस्तिकासन कहते हैं।

(ग) **भद्रासन**–सीवनी के दोनों पार्श्व में दोनों घुटनों को रखना तथा एड़ियों को अण्डकोश के नीचे दोनों हाथों से वद्ध करके योगीगण भद्रासनस्थ होते हैं।

(घ) **वज्रासन**–दोनों पैर को दोनों जंघा पर स्थापित करके घुटनों पर हथेली को उल्टा करके रखना वज्रासन है।

(ङ) **वीरासन**–एक पैर को निम्न में रखकर दूसरे पैर को ऊरु के ऊपर रख कर शरीर को सीधा रखकर जब योगी स्थित हो तब यही वीरासन है॥४४-५५॥

ऋजुकायो वसेद्योगी वीरासनमितीरितम् ।
इडया कर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया ।।५६।।
धारयेत् पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया ।
सुषुम्नामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः ।।५७।।
नाड्या पिङ्गलया चैवं रेचयेद्योगवित्तमः ।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।।५८।।
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्यासेन समाचरेत् ।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग् द्वादश षोडश ।।५९।।
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तद्विदुर्बुधाः ।
तदपेतं पेतं विगर्भं च प्राणायामं परं विदुः ।।६०।।
क्रमादभ्यसतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
मध्यमः कम्प संयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ।।६१।।
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यच्छीलनकमिष्यते ।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निराकुलम् ।।६२।।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽयमीरितः ।
अङ्गुष्ठगुल्फजानुषु सीवनीलिङ्गनाभिषु ।।६३।।
हटद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि ।
भ्रूमध्ये स्तनके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ।।६४।।
धारणं प्राणमरुतोर्धारणेति निगद्यते ।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना ।।६५।।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ।
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।।६६।।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ।
इति ते कथितं देवि कामादिषट्कनाशनम् ।।६७।।

अब प्राणायाम कहते हैं–योगी द्वारा इड़ा नाड़ी से १६ मात्रा में बाह्यवायु का अन्दर आकर्षण करना, ६४ मात्रा में रोके रहना तथा पिङ्गला नाड़ी द्वारा ३२ मात्रा में बाहर विकर्षण करना शास्त्रों में प्राणायाम कहा जाता है। इस प्राणायाम का बारम्बार क्रम से तथा पलट कर अभ्यास करे। इसे प्रारम्भ करके १२ बार अथवा १६बार करना चाहिये। जप-ध्यान से युक्त प्राणायाम को बुद्धिमान लोग सगर्भ

प्राणायाम कहते हैं। केवल प्राणायाम करना विगर्भ प्राणायाम कहलाता है। यदि क्रमाभ्यास करने पर साधक के देह में स्वेद होने लगे तब वह अधम प्राणायाम कहा जाता है। जब शरीर में कम्पन हो, तब वह मध्यम प्राणायाम है। यदि प्राणायाम के समय साधक भूमि से ऊपर उठ जाये (बैठे बैठे ऊपर उठ जाये) तब यही है उत्तम प्राणायाम। उत्तम प्राणायाम की गुण प्राप्ति को शीलनक कहा गया है।

प्रत्याहार—इन्द्रियां विषयों में बेरोकटोक विचरण करती रहती हैं। उन्हें अपने (इच्छाशक्ति के) बल से विषयों से हटा लेना ही प्रत्याहार है।

धारणा—अंगुष्ठ, गुल्फ, जानु, सीवनी, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, लम्बिका, नासिका, भ्रूमध्य, स्तनक, मूर्धा, तथा द्वादशान्त में प्राणमरुत् को स्थिर रखना (भावना द्वारा यह सरलता से होता है) ही धारणा है।

ध्यान—समाहित तथा चैतन्यान्तरवर्त्ती मन से अपने अभीष्ट देवता के चिन्तन को ध्यान कहा गया है।

समाधि—मुनिगण जीवात्मा-परमात्मा में समत्व सामरस्य भावना को समाधि बतलाते हैं।

हे देवी! मैंने कामादि षट्क (शत्रु) का नाश करने वाले, विषयासक्त के लिये दुर्लभ तथा संयतात्मना के लिये सुलभ अष्टाङ्ग योग को कहा।।५६-६७।।

दुर्लभं विषयासक्तैः सुलभं संयमात्मनाम्।
समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति ।।६८।।
यदि जीवः पराद्भिन्नः कार्य्यतामेति सुव्रते ।
अचित्त्वं च प्रसज्येत घटवत् परमेश्वरि ।।६९।।
विनाशित्वं भयं चैव द्वितीयादिति ते श्रुतिः।
नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।।७०।।
एकः सन् विद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपतः।
तस्माद् द्वैतं न मे चास्ति न प्रपञ्चो न संसृतिः।।७१।।
यथाकाशो घटाकाशो महाकाश इतीरितः।
तथा भ्रान्तिर्द्विधा प्रोक्ता ह्यात्मजीवेश्वरात्मना ।।७२।।

अब समाधि का रूप बतलाते हैं। समाधि है परमात्मा तथा जीवात्मा के ऐक्य की संवित (भावना) का उदय। यदि जीव परमात्मा से अलग है, भिन्न है, तब वह कार्य कहा जायेगा। हे सुव्रते! हे परमेश्वरी! तब जीव घटवत् अचित् माना जायेगा। तब उसे विनाशी एवं भययुक्त माना जायेगा, क्योंकि श्रुति का वचन है कि "द्वितीयाद वैभयं"। इसलिये (यह मानना होगा कि) जीवात्मा नित्य, सर्वगत कूटस्थ तथा दोष वर्जित है। माया की भ्रान्ति के कारण एक होकर भी भिन्नवत् अनुभूत होता है। वास्तव में स्वरूपतः वह अभिन्न है। तभी न तो मुझमें द्वैत है

न प्रपञ्च है, न संसार (संसरति) ही है। जैसे आकाश की प्रतीति घटाकाश एवं महाकाशरूपेण अलग अलग (भ्रान्ति से) होती है, उसी प्रकार भ्रान्ति द्विविध है- जीवात्मा एवं परमात्मा (भेदरूपता होनें पर)॥६८-७२॥

नाहं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि तथैव च ।
न मनो नैव बुद्धिश्च नैव चित्तमहंकृतिः।।७३।।
नाहं पृथ्वी न सलिलं न च वह्निस्तथानिलः।
न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथा रसः।।७४।।
नहि गन्धो न रूपं च न मायाहं न संसृतिः।
सदा साक्षिस्वरूपत्वाद् ब्रह्म चैवास्मिं केवलः।।७५।।
सोऽहं ब्रह्म न संसारी न मत्तोऽन्यत् कदाचन ।
इति विद्यात् स्वमात्मानं समाधिः परिकीर्तितः।।७६।।

न तो मैं देह हूँ, प्राण-इन्द्रिय-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार भी नहीं हूँ। मैं पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश भी नहीं हूँ। मैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध भी नहीं हूँ। मैं माया एवं संसार भी नहीं हूँ। मैं सदा साक्षीरूपत्व होने के कारण केवल ब्रह्म ही हूँ। वह ब्रह्मरूप मैं संसारी नहीं हूँ। मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है (सब कुछ मैं ही हूँ) ऐसा जो आत्मा को जानता है, वही समाधियुक्त है॥७३-७६॥

समाधौ स्वस्वरूपोऽसौ तुरीयस्वर एव हि ।
तुरीयांशः पराशक्तिर्बिन्द्वात्मा ब्रह्म केवलम् ।।७७।।
प्रज्ञात्मानं वदन्त्येके एकेऽपि ब्रह्म केवलम् ।
जीवमीश्वरभावेन विद्यात् सोऽहमिति ध्रुवम् ।।७८।।

योगी समाधि स्थिति में स्वस्वरूपस्थ हो जाता है। यह चतुर्थ स्वर की अवस्था है। यह तुरीयांश पराशक्ति विन्द्वात्मा केवल ब्रह्म है। इसे कुछ विद्वान प्रज्ञात्मा कहते हैं, अन्य विद्वान् इसे केवल ब्रह्म मानते हैं। साधक को यह अनुभव करना चाहिये कि जीव ही ईश्वर है। "वह मैं ही हूँ"॥७७-७८॥

यथा फेनतरङ्गादि समुद्रादुत्थितं पुनः।
समुद्रे लीयते तद्वज्जगदात्मनि प्रलीयते ।।७९।।
यस्यैवं परमात्मा स्वा पृथग्भूतः प्रकाशितः।
स याति परमं भावं स्वयं साक्षात् परामृतम् ।।८०।।
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वात्मकं सदा ।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम् ।।८१।।
यदा भूतानि सर्वाणि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।।८२।।

यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति ।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः ।।८३।।

जैसे समुद्र में फेन उठकर (अलग प्रतीत होकर) पुनः उसी में लीन हो जाता है, वैसे ही (जगत् आत्मा से स्फुरित होकर) आत्मा में ही जगत् लीन हो जाता है। जो साधक परमात्मा को स्वयं से पृथक् नहीं देखता, वह परमभाव स्थिति को प्राप्त होकर स्वयं साक्षात् पराकृत रूप हो जाता है। जब योगी के मन में चैतन्य सर्वात्मक रूप से अनुभूत होने लगता है, तब उसे आत्म प्राप्ति (स्वभाव प्राप्ति) हो जाती है। वह जब समस्त भूत समूह को आत्मा में तथा आत्मा को सर्वभूत समूह में देखने लगता है (ज्ञान नेत्रों से) तब वह ब्रह्म ही है। जब पृथक्तः सर्वभूत रूप (द्वैत) समाधि में अनुभूत नहीं होता, तब उसकी एक परतत्व में (अद्वैत में) स्थिति हो जाती है। उसे केवली कहते हैं।।७९-८३।।

यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेव भेषजम् ।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः ।।८४।।
तस्माद्विज्ञानतो मुक्तिर्नान्यथा भवकोटिभिः ।
मन्त्रौषधिबलैर्यद्वज्जीर्यते भक्षितं विषम् ।।८५।।
तद्वत् सर्वाणि कर्माणि जीर्यन्ति ज्ञानिनः क्षणात् ।
देहाभिमाने गलिते विदिते परमात्मनि ।।८६।।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ।
अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि मुक्तोऽहमिति भावयेत् ।।८७।।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यं मुक्तस्वभाववान् ।
एवं समाधियुक्तो य समाधये स कल्पते ।।८८।।
सदाशिवोऽहमित्युक्तत्वा स्वेच्छया विहरेद्यतिः ।
लिप्यते न स पापेन बध्यते न च कर्मणा ।।८९।।
यथाग्निविद्रुतं स्वर्णं मालिन्यं दहति क्षणात् ।
तथा ब्रह्मार्पितात्मासौ सर्वकर्माणि दह्यति ।।९०।।
आत्मस्थां देवतां त्यक्त्वा बर्हिर्देवान्विचिन्वते ।
करस्थं कौस्तुभं त्यक्त्वा भ्रमन्ते काचतृष्णया ।।९१।।

अब उसकी ब्रह्मानुभूति जरा-जन्म-दुःख-व्याधि की औषधि बन जाती है। वह अब साक्षात् शिवरूप है। संसार में करोड़ों जन्म लेनें से मुक्ति नहीं मिलती। केवल ब्रह्म को जानने से ही शिवत्व प्राप्त होता है। जैसे विष खा लेने पर मन्त्र तथा औषधि से उसका पाचन हो जाता है, वैसे ही ज्ञानी के समस्त (संचित आदि) कर्म क्षण मात्र में जीर्ण हो जाते हैं। देहाभिमान (देह बोध) समाप्त होने पर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। तब जहाँ-जहाँ चाहे मन जाये, वहीं-

वहीं समाधि है। योगी को भावना करनी चाहिये कि मैं ब्रह्म हूँ, अन्य नहीं हूँ। मैं मुक्त हूँ। जो ऐसी समाधि भावना करता है कि ''मैं सच्चिदानन्दरूप हूँ नित्य मुक्तस्वभाव युक्त हूँ'' वह समाधि को प्राप्त हो जाता है। जो ''मै सदाशिव हूँ'' ऐसी (तादात्म्य) भावना करते हुये स्वच्छन्द विचरण करता रहता है, वह न पाप से लिप्त होता है न कर्म से लिप्त होता है।

जैसे अग्नि द्वारा पिघले सोना का मालिन्य क्षणमात्र में दग्ध हो जाता है, उसी प्रकार जिसने अपने सर्वकर्म को ब्रह्मार्पित कर दिया है, उसके समस्त कर्म (बन्धन) दग्ध हो जाते हैं। जो आत्मा में स्थित देवता का त्याग करके बाह्य देवताओं की अराधना में लग जाते हैं, वे हाथ में स्थित कौस्तुभ मणि की उपेक्षा करके शीशा पाने लिये दौड़ते रहते हैं।।८४-९१।।

न योगेन न यन्त्रेण न मन्त्रेण विना हि सः(?)।
द्वयोरभ्यासयोगेन ब्रह्म संसिद्धिकारणम् ।।९२।।
तमःपरिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते।
एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः।।९३।।
एतत्ते गुथितं देवि ब्रह्मज्ञानमिदं महत्।
विज्ञाय कुरुतो जप्त्वा संसारसागरं तरेत्।।९४।।
यत्र यत्र मृतश्चायं गङ्गायां श्वपचालये।
ब्रह्मविद् ब्रह्मभूयाय कल्पते नान्यथा प्रिये।।९५।।

योगी योग-मन्त्र-यन्त्र के बिना ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। दोनों (मन्त्र तथा भावना) के अभ्यास से सिद्धि प्राप्त होती है। अन्धकार से आच्छन्न ग्रह में घट को देखने के लिये दीपक प्रज्वलित करके देखते हैं। इसी प्रकार माया के आवरण से आवृत्त आत्मा का साक्षात्कार मन्त्र रूपी दीपक (की प्रभा) से होता है। हे देवी! तुमसे इस महत् ब्रह्मज्ञान को कहा। गुरु द्वारा मन्त्र दीक्षा प्राप्त साधक संसारार्णव को सहज उत्तीर्ण कर लेता है। हे प्रिये! मन्त्री भले ही गंगा में देह त्याग करे अथवा चाण्डाल गृह में, वह तो ब्रह्मविद् ही है। ब्रह्मवेत्ता ही ब्रह्म है। अन्य प्रकार से ऐसा हो ही नहीं सकता।।९२-९५।।

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं प्रिये।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैकरूपकम् ।।९६।।
तिस्र कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः।।९७।।
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा।।९८।।

इडा वामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी ।
पिङ्गलाख्या च या दक्षे पुंरूपा सूर्यविग्रहा ।।९९।।
दाडिमीकुसुमप्रख्या विषाख्या चापरा मता ।
मेरुमध्यस्थिता या तु मूलादाब्रह्मरन्ध्रगा ।।१००।।
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना वह्निरूपिणी ।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ।।१०१।।
सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा ।
विसर्गाद्बिन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः।।१०२।।

हे प्रिये! पंचभूतात्मक यह देह ही विश्व संज्ञक है। चन्द्र-सूर्य-अग्नि तेज से यह जीव ब्रह्मरूप है। शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाड़ियां कही गई हैं। इनमें से दस मुख्य हैं, उनमें भी तीन को प्रमुख माना गया है। सुषुम्ना मेरुदण्ड में स्थित है। ये तीनों चन्द्र-सूर्य-अग्नि रूपा हैं। सुषुम्ना को शक्तिरूपा कहा गया है। अमृत रूपिणी इड़ा नाड़ी मेरुदण्ड के वामभाग में है। इसे शुक्लवर्णी तथा चन्द्रस्वरूपा कहते हें। पिंगला नाड़ी मेरुदण्ड के दायीं ओर पुरुष रूपा तथा सूर्य स्वरूपा कही गयी है। यह अनार के पुष्प के रंग वाली है। इसे विष भी कहते हैं। मेरुदण्ड के मध्य में सर्वतेजोमयी अग्निरूपा सुषुम्ना है। वह मूलाधार चक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाती है। सुषुम्ना के अन्दर विचित्रा नाड़ी स्थित है। यह अमृतस्रवा, शुभा, सर्वदेवमयी तथा योगीगण को अभीप्सिता है। इसकी व्याप्ति विसर्ग से विन्दु तक है।।९६-१०२।।

मूलाधारे त्रिपुराख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।१०३।।
तदूर्ध्वे तत्तुरीयं तु ध्यायेद्बन्धूकसन्निभम् ।
तदूर्ध्वे तच्छिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा ।।१०४।।
सा एव हि परा सूक्ष्मा महात्रिपुरसुन्दरी ।
चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्म यदुच्यते ।।१०५।।

मूलाधार में जो त्रिपुर हैं और जो इच्छा ज्ञान-क्रिया रूप है उसके मध्य कोटि सूर्य समप्रभ स्वयम्भू लिंग स्थित है। उसके ऊपर तुरीयरूप का ध्यान करे। इसका वर्ण बन्धूक पुष्पवत् है। उसके ऊपर शिखाकृति रक्तवर्णी कुण्डलिनी स्थित है। यही परा सूक्ष्मा महात्रिपुरसुन्दरी कही गयी है। यह समस्त प्राणीगण में स्थित चैतन्य (शक्ति) तथा शब्द ब्रह्म है।।१०३-१०५।।

तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम् ।
सर्वतेजोमयं तत्तु सच्चिदानन्दमव्ययम् ।।१०६।।
तद्बाह्ये हेमवर्णाभं वसवर्णं चतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ।।१०७।।

तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
बादिलान्तषडर्णेन युक् स्वाधिष्ठानसंज्ञकम् ।।१०८।।
मूलमाधारष्टकानां मूलाधारं ततो विदुः।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः।।१०९।।
तूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महत् पुरम् ।
हेमाभं वैद्युताभं च बहुतेजोमयं तथा ।।११०।।
मणिवद्भिन्नं तत्पूरं मणिपूरं ततो विदुः।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ।।१११।।
विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विश्वालोकनकारणम् ।
तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ।।११२।।
कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्च समलंकृतम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।।११३।।
शब्दब्रह्ममयः शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
अनाहताख्यं तत्पद्मं योगिभिः परिकीर्त्यते ।।११४।।

वह कुण्डलिनी रूपेण प्राणीगण के देह मध्य में स्थित है। वह सर्वतेजोमय सच्चिदानन्द एवं अव्यय रूप है। उसके बाह्य में स्वर्णवर्ण का चतुर्दल कमल है (जो मूलाधार है)। इसके दलों पर 'व श ष स' ये चार वर्ण स्थित हैं। उससे ऊर्ध्व में अग्नि के समान प्रभायुक्त हीरक जैसी द्युति वाला षड्दल कमल है जिसमें 'ब भ म य र ल' ये षड्वर्ण स्थित है। इसे स्वाधिष्ठान् संज्ञा से कहा गया है। छ चक्रों का जो मूल आधार है उसे मूलाधार कहा गया है। स्वाधिष्ठान के 'स्व' का अर्थ है परलिङ्ग। परलिङ्गाधार होने से यह स्व+अधिष्ठान=स्वाधिष्ठान है। उसके ऊपर नाभिदेश में विद्युत की आभा वाला स्वर्ण जैसी चमक वाला मणिपुर नामक महान् पुरम् है। यह अत्यन्त तेजोमय है। यह मणि के समान है तथा अन्य चक्रों से अलग है अतः इसे मणिपुर कहते हैं। यह दश दलों से युक्त है, इसमें प्रत्येक दल पर एक-एक वर्ण हैं। यथा–ड ढ ण त थ द ध न प फ। इस कमल पर विष्णु अधीष्ठित रहते हैं। इस चक्र द्वारा समस्त विश्व का अवलोकन (योगी) करते हैं। उससे ऊर्ध्व में अनाहत कमल है जो उदीयमान सूर्य के समान है। (यह कमल द्वादशदल है) प्रत्येक दल में एक-एक वर्ण हैं, यथा–'क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ'। इसके मध्य में दस हजार सूर्य के समान प्रभायुक्त बाणलिङ्ग है। यहाँ शब्द ब्रह्ममय अनाहत दृष्टिगोचर होता है। यहाँ अनाहत रूप शब्द ब्रह्म परिलक्षित होने से योगीगण इस पद्म को अनाहत पद्म कहते हैं।।१०६-११४।।

आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ।
तदूर्ध्वे तु विशुद्धाख्यं दलैः षोडशभिर्युतम् ।।११५।।

स्वरैः षोडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णं महत्प्रभम् ।
विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।।११६।।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम् ।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ।।११७।।
हक्षादिद्विदलं पद्मं चन्द्रेणाधिष्ठितं तु तत् ।
आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ।।११८।।
कैलासाख्यं तदूर्ध्वे तु बोधिनी तु तदूर्ध्वतः।
सहस्त्राराम्बुजं देवि बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वतः।।११९।।

यह पद्म आनन्द का सदन है तथा यहाँ (ईश्वर रूप) पुरुष अधीष्ठित रहते हैं। इसके उर्ध्व में विशुद्धारव्य पद्म है जो षोडश दल है। इसके १६ दलों में 'अ आ इ ई ऋ ॠ ऌ ॡ उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः' ये १६ स्वर स्थित हैं। यह महान् प्रभा वाला पद्म धूम्रवर्ण का है। यह जीव में विशुद्धि का विस्तार करता है जो कि 'हंसावलोकन' (हंसः मन्त्र की धारणा) द्वारा सम्पादित होता है तभी इसे 'विशुद्ध पद्म' कहते हैं। यहाँ अति अद्भुत आकाश तत्व है। इसके उर्ध्व में आज्ञा पद्म (आज्ञा चक्र) है। यहाँ आत्मा अधिष्ठित रहता है। यह दो दलों का पद्म है जिसमें 'ह' तथा 'क्ष' वर्ण स्थित रहते हैं। यहाँ से जिस आज्ञा का संक्रमण होता है, वह गुरु आज्ञा है। इससे उर्ध्व में कैलास तथा उससे भी उर्ध्व में बोधिनी की स्थिति है। हे देवी! उससे उर्ध्व में सहस्त्रदल वाला कमल एवं बिन्दु स्थान है।।११५-११९।।

आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत् ।।१२०।।
लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुस्थानं समानयेत् ।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत् ।।१२१।।
तदुद्भवामृतं वक्त्रद्रुतं लाक्षारसोपमम् ।
पाययित्वा च तां शक्तिं परोक्षां योगसिद्धिदाम् ।।१२२।।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः।।१२३।।
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मनोलयम् ।
एवमभ्यस्यमानं तु अहन्यहनि पार्वति ।।१२४।।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनैः।
इत्युक्तं परमं योगं योनिमुद्राप्रबन्धनम् ।।१२५।।

अब यहाँ योनिमुद्रा प्रसंग कहते हैं–पहले पूरक प्राणायाम के द्वारा मूलाधार में मन का योजन करे। तब उस शक्ति का प्रबोधन गुदा तथा लिंग के

बीच संकुचन द्वारा करे। तदनन्तर लिंग भेद क्रम से उसे बिन्दु स्थान में ले जाये। तब यह चिन्तन करें कि वह शक्ति शिव से एक हो गई। तब इस एकीकरण द्वारा उनके वक्त्र (मुख) से विगलित अमृत की जो लाक्षारसवत धारा है योगसिद्धिप्रदा शक्ति को पिलाये। तदनन्तर उससे चक्रों में स्थित देवताओं को सन्तर्पित करे। तदनन्तर (अवरोह क्रम से) उस शक्ति को पुनः उसी मार्ग से मूलाधार तक लाये। अब इसी (आरोह-अवरोह रूप) यातायात पद्धति का अवलम्बन करके (मूलाधार से उठाकर बिन्दु तक लाना तदनन्तर पुनः बिन्दु से मूलाधार पर्यन्त ले जाना) बारम्बार कुण्डलिनी (को आरोह-अवरोह कराते हुए) में मन को लीन कर दे। हे पार्वती! इसका प्रतिदिन अभ्यास करने से जरा-मरण-दुखादि तथा भव बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। यह परमयोगरूप योनिमुद्रा प्रबन्ध कहा॥१२०-१२५॥

अथापरं प्रवक्ष्यामि समाधिं भवनाशनम्।
अथवा परमेशानि यथोक्तध्यानयोगतः॥१२६॥
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये ध्यायेद्देवीमनन्यधीः।
त्रिपुरात्मकमात्मानं भावयेन्न्यस्तविग्रहः॥१२७॥
ऐक्यं सम्भावयेन्नित्यं स्वगुरुदेवतात्मनाम्।
अहं देवो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्॥१२८॥
सच्चिदानन्दरूपोऽहं शुद्धबुद्धस्वभाववान्।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तदिति परतस्ततः॥१२९॥
सदिति तु समालोच्य कर्म कुर्याद्विचक्षणः।
स्मरणात् कर्मणामाद्ये ब्रह्मभूयाय कल्पते॥१३०॥
सर्वमङ्गलसम्पन्नो बहिर्निर्गत्य साधकः।
त्यक्त्वामूत्रपुरीषे च करपादौ विशोधयेत्॥१३१॥
मुखं प्रक्षाल्य देवेशि नासारन्ध्रद्वयं ततः।
नेत्राञ्जनं विधायैव शुद्धस्थानं समाश्रयेत्॥१३२॥
नेत्राञ्जनमकृत्वैव यः पश्येत् सौरमण्डलम्।
जन्मार्जितफलं नश्येत् का कथा तस्य दुर्मतेः॥१३३॥

अब समाधिवर्णन प्रसंग कहते हैं—अब मैं भवनाशिनी समाधि कहता हूँ। हे परमेशानी! अथवा (मार्ग यह है कि) पूर्वोक्त ध्यान योग से हृदयकर्णिका में अनन्य चिन्तन द्वारा त्रिपुरात्मक आत्मा उनके विग्रह का ध्यान करे। नित्य अपने गुरु-आत्मा तथा देवता में ऐक्य भावना करनी चाहिये। वह यह भावना करें कि मैं देवी हूँ। अन्य नहीं हूँ। मैं ब्रह्म हूँ, शोकभाक् नहीं हूँ। मैं शुद्ध बुद्ध स्वभाव वाला सच्चिदानन्द रूप हूँ।

इसके अनन्तर पहले प्रणव लगाकर तत्सत् (ॐतत्सत्) की भावना करके विद्वान व्यक्ति कर्म करे। हे आद्ये! इस प्रकार से स्मरण करके कर्म करने वाला साधक ब्रह्मवत् हो जाता है। वह साधक ब्रह्मवत् हो जाता है। सर्वमङ्गल से युक्त वह साधक कक्ष से बाहर निकले। मूत्र-पुरीषादि त्यागोपरान्त हाथ पैर को शुद्ध करे। हे देवेशी! तत्पश्चात् मुख एवं नाक के छिद्रों को धोकर आँखों में अंजन लगाकर शुद्ध स्थल पर जाये। जो बिना नेत्रांजन लगाये सौरमण्डल को देखता है, उसका जन्मार्जित फल नष्ट हो जाता है, उस दुर्मति के सम्बन्ध में और क्या कहा जाये?॥१२६-१३३॥

त्रितत्त्वेन त्रिराचम्य चम्य दन्तधावनमाचरेत् ।
दन्तकाष्ठमखादित्वा पूजयेद्यस्तु देवताम् ।।१३४।।
तत्पूजा विफला देवि मृते च नरकं व्रजेत् ।
क्लीमात्मकं कामदेवं सर्वान्ते जनमालिखेत् ।।१३५।।
प्रियाय हृदयान्तोऽयं मनुर्दन्तविशुद्धये ।
चतुर्दशस्वरैर्वक्त्रं क्षालयेच्छुद्धिहेतवे ।।१३६।।

त्रितत्व से तीन बार आचमन करके दन्तधावन करे। हे देवी! जो दन्तकाष्ठ से दन्तधावन किये बिना देव पूजा करता है, उसकी पूजा निष्फल हो जाती है। वह मरने के पश्चात् नरक जाता है। दन्तधावन का मन्त्र यह है—पहले 'क्लीं' लिखकर 'जन' लिखे। 'प्रियाय' लिखकर तब हृदय (नमः) लिखे। मन्त्रोद्धार होगा 'क्लीं जनप्रियाय नमः'। तदनन्तर अकरादि चौदह स्वर का उच्चारण करके शुद्धि हेतु मुख को धोये॥१३४-१३६॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वसंवादे कर्मयोगादिक्रमनिरूपण नामकः षष्ठः पटलः।।६।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवाद रूप कर्मयोगादि क्रमनिरूपण नामक षष्ट पटल समाप्त ॥

❁

सप्तमः पटलः

स्नानसन्ध्योपासनादिविधानम्

शङ्कर उवाच–

प्रातः स्नानं ततः कुर्यात् त्रैपुरं योजयन् क्रमम्।
सुगन्धिसलिलैः शुद्धैः कुलतीर्थेऽथवा पुनः।।१।।
नद्यादौ विधिवत् स्नायात् कुलदर्भैवि धारकः।
रौप्यं दक्षिणतर्जन्यामनामा हेमसंयुता।।२।।
वामकनिष्ठिका हेमैः कुलदर्भोऽयमीरितः।
एष एव भवेद्दर्भो न दर्भो वनसम्भवः।।३।।
अशून्यं तु करं कुर्याद्वह्नीन्द्वर्कप्रतिष्ठया।
सर्वभूतवशी स स्यान्मुद्रया चातिशोभया।।४।।
त्रितत्त्वेन त्रिराचम्य चम्य सङ्कल्प्य पापनुत्तये।
कुलपात्रे सरत्नं च सतिलं सजलं ततः।।५।।
गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत्।
अस्नातस्य फलं नास्ति तथातर्पयतः पितॄन्।।६।।
इदं विष्णुभैरवं तु विचक्रम इतीरितम्।
मृदालम्भनकृत्ये च नित्यमेवमुदीरयेत्।।७।।

इसके अनन्तर त्रिपुरक्रम की योजना करके सुगन्धित जल से स्नान करे अथवा कुलतीर्थ में स्नान करे अथवा कुलदर्भ (दायीं तर्जनी उंगली में चाँदी की, अनामिका में सोना तथा बायीं कनिष्ठा में भी स्वर्ण की अंगूठी कुलदर्भ है)। धारण करके नदी में विधिवत स्नान करे।

यही यथार्थ दर्भ है। जंगल वाली जड़ी दर्भ (कुशा) को यहाँ दर्भ नहीं माना जाता। इससे हाथ में अग्नि-चन्द्र तथा सूर्य की प्राण प्रतिष्ठा करे। यह शोभन मुद्रा धारण से साधक सर्वभूत समूह को वश में करने वाला हो जाता है। तीन तत्व से तीन बार आचमन करके पाप को दूर करने का संकल्प करे। तदनन्तर साधक कुलपात्र में रत्न, जल तथा तिल रखकर कुल देवता के प्रीत्यर्थ स्नान करे। जो स्नान नहीं करता उसे फल नहीं मिलता। तथा जो पितरों का तर्पण नहीं करता, उसे भी फल नहीं मिलता। स्नान क़े समय मिट्टी का लेप करते समय ''इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ़मस्यपांसुरे स्वाहा' मन्त्रोच्चार करे।।१-७।।

कुलचक्रं चलं न्यस्य कुलमुद्रां विधाय च।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते।।८।।

आवाहयामि देवि त्वां स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
आवाह्याम्भसि संयोज्य सोमसूर्याग्निमण्डलम् ।।९।।
संचिन्त्य मन्त्री तन्मध्ये ध्यायेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ।
गायत्र्या च महादेव्याः सुन्दरीमाह्वयेच्छिवाम् ।।१०।।
त्रिवारमज्जने वारिमूलमन्त्रेण मन्त्रयेत् ।
अभिषिञ्चेत् ततो मूर्ध्नि मूलमन्त्रं हृदि स्मरन् ।।११।।

जल में कुलचक्र का न्यास करने के अनन्तर कुलमुद्रा प्रदर्शन करते हुए "एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते। आवाहयामि देवि त्वां स्नानार्थमिह सुन्दरी।" "हे गंगे! तुम्हें नमस्कार तुम सर्वतीर्थ से समन्वित हो। हे देवी! मैं इस जल में तुम्हारा आवाहन करता हूँ।" यह मत्र पढ़े। अब यह भावना करनी चाहिये कि उस जल में सोम-सूर्य तथा अग्नि का संयोग है। तदनन्तर मन्त्री उसमें त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करे। तदनन्तर महादेवी की गायत्री द्वारा शिवा नामक सुन्दरी का आवाहन करे। हृदय में मूलमन्त्र जपते हुए शिर का जल से अभिसिंचन करे।।८-११।।

त्रिभिस्तु त्रिपुराबीजैस्त्रिधा मज्जनमाचरेत् ।
तस्मादुत्थाय देवेशि निर्मुक्ताशेषविग्रहः ।।१२।।
त्र्यक्षरीं च समुच्चार्य दुकूले परिधापयेत् ।
सकेशं मूषिकाक्रान्तमधौतं भग्नमम्बरम् ।।१३।।
मलिनं परकीयं च पर्युषितं च वर्जयेत् ।
तिलकं कुलरूपं च कृत्वाचम्य विधानतः ।।१४।।

तत्पश्चात् मूलमन्त्र को तीन बार पढ़कर तीन बार जल में डुबकी लगाये (हर डुबकी के साथ एक बार मूलमन्त्र जपे। इसके अनन्तर तीन त्रिपुराबीज "ह् ल् क्षौ" से तीन बार जल में डुबकी लगानी चाहिए। हे देवेशी! जल से बाहर आकर वस्त्र बदलते समय 'ॐ' का उच्चारण करे। तब दो ही वस्त्र धारण करना चाहिये। केश लिपटा, चूहे से काटा, मलिन, फटा, गन्दा, दूसरे के द्वारा प्रयुक्त, बासी कपड़ा वर्जित करे। अपने कुल के अनुरूप तिलक लगाकर विधि से आचमन करे।।१२-१४।।

ततः संध्यामुपासीत पापहानाय साधकः।
स्नानं च त्रिविधं प्रोक्तं संध्या च त्रिविधा स्मृता ।।१५।।
आन्तरं च भवेद्देवि बाह्यं मानसमेव च ।
मानसं वै भवेत् स्नानं यः सदा शुद्धमानसः ।।१६।।
स्पर्शते पादुके देवि निर्विकल्पः सदैव हि ।
बाह्यमन्त्रैश्च सम्प्रोक्तमान्तरं शृणु साम्प्रतम् ।।१७।।

प्रागुक्तक्रमयोगेन प्राणायामपरो बुधः।
शक्तिं परशिवेनैव सङ्गमय्य विधानतः।।१८।।
तदुद्भवामृते शश्वन्निमज्य पुनरेव हि।
स्नायाच्च विमले तीर्थे पुष्करे हृदयाश्रिते।।१९।।
बिन्दुतीर्थेऽथवा स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते।
आत्मानं सर्वदा सम्यग् ध्यायेद्ध्यानपरायणः।।२०।।
देवताभेदतः सन्ध्या मानसीयं परा प्रिये।
शिवशक्त्योः समायोगो यस्मिन् काले प्रजायते।।२१।।
सा सन्ध्या कुलनिष्ठानां समाधिस्थैः प्रतीयते।
अपरां कथयाम्यत्र सर्वपापविनाशिनीम्।।२२।।

साधक आचमनोपरान्त सन्ध्या वन्दन करे। इससे पाप नाश होगा। स्नान तीन प्रकार का कहा गया है। सन्ध्या भी तीन प्रकार की है। हे देवी! आन्तर, बाह्य एवं मानस भेद से स्नान त्रिविध है। हे देवी! जो सर्वदा शुद्ध मानस है, विकल्पों से स्पृष्ट नहीं हे, उसका गुरु की पादुका का स्पर्श करना (भौतिक रूप से गुरु के चरण का स्पर्श, सूक्ष्मरूप से सहस्रारस्थ गुरु पादुका का भावना द्वारा स्पर्श) ही **मानस स्नान** है। **बाह्य स्नान**-मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जलावगाहन बाह्य स्नान है। **आन्तर स्नान** में पहले कहे गये क्रम से बुद्धिमान व्यक्ति प्राणायाम करे। मूलाधारस्थ शक्ति का सहस्रारस्थ शिव से संगम करना, उससे उद्भूत अमृत में शश्वत स्नान करके हृदयस्थ विमल तीर्थ पुष्कर में अथवा बिन्दुतीर्थ में स्नान करना होता है। इन दोनों में से कहीं भी भावना दृढ़ हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

अब सन्ध्या कहते हैं। आत्मा का सदा ध्यान परायण साधक ध्यान करे। इसके देवता से अभेद होने से इसे परा (मानसी) सन्ध्या कहा गया है। (आत्मा तथा देवता में ऐक्य भावना इसका तात्पर्य है)। शिवशक्ति समायोग से कौलमार्गी साधक की सन्ध्या सम्पन्न होती है। इसकी अनुभूति उन समाधिस्थ कौल साधक करते हैं। यह दूसरे प्रकार की सन्ध्या है। यह अब अपरा सन्ध्या को कहता हूँ, जो सर्व पाप नाशक है।।१५-२२।।

उपविश्य शुचौ देशे त्रितत्त्वेन त्रिराचमेत्।
प्राणायामत्रयं कृत्वा त्रिभिर्बीजैस्त्रिधावि(ध?धि)म्।।२३।।
वामहस्ते जलं गृह्य गलितोदकबिन्दुभिः।
सप्तधा प्रोक्षणं कुर्यान्मूर्ध्नि मन्त्रमनुस्मरन्।।२४।।
अवशिष्टोदकं दक्षहस्ते संगृह्य साधकः।
नासामाश्लिष्य तोयेन ततस्तेनाधमर्षणम्।।२५।।

पवित्र स्थान पर बैठकर तीन तत्व से तीन बार आचमन करे। इसके अनन्तर बीजत्रय द्वारा प्राणायामत्रय करे। तत्पश्चात् वाम हाथ में जल लेकर हथेली से गिरती हुई जल की बूँदों से मन्त्रोच्चार करते हुए सात बार शिर पर प्रोक्षण करे। तदनन्तर बचे हुए जल को दायें हाथ में लेकर नासिका का स्पर्श कराने के पश्चात् उसी से अधमर्षण करें॥२३-२५॥

इडयाकृष्य देहान्तः क्षालितैः पापसञ्चयैः।
कृष्णावर्णं तदुदकं दक्षनाड्या विरेचितम्।।२६।।
दक्षहस्ते तु तन्मन्त्री पापरूपं विचिन्त्य च।
पुरतो वज्रपाषाणे प्रक्षिपेदस्त्रमन्त्रतः।।२७।।
इत्यघमर्षणं कृत्वा पुनराचमनं तथा।
अभिषिञ्चेत् ततो मूर्ध्नि विधिना साधकोत्तमः।।२८।।
ओं आपो देवी रसोऽमृंत पूतं ब्रह्म पुनीमहे।
जलाञ्जलित्रयं् भूमौ मार्तण्डभैरवाय च।।२९।।
ऊर्ध्वबाहुस्ततो मन्त्री मार्तण्डं समुपाश्रयेत्।
ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।।३०।।
दृशे विश्वाय मार्तण्डशेषे भैरवमीरयेत्।
सूर्यमण्डलमध्ये तु कुलचक्रं विचिन्तयेत्।।३१।।
बाल्योचितं स्पृहन्तीं वै बालिकां चक्रमध्यतः।
बालार्कमण्डलाभासां भानुबह्नीन्दुलोचनाम्।।३२।।
पाशाङ्कुशौ शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां स्मरेत्।
मध्याह्ने चिन्तयेद् देवीं नवयौवनशोभिताम्।।३३।।
सायाह्ने चिन्तयेद् देवीं त्रैलोक्यैकप्रभामयीम्।
सर्वयौवनसम्पन्नामुज्ज्वलां परमां कलाम्।।३४।।
तामेव चिन्तयेद्रात्रौ भोगी भोगपरायणाम्।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं च जपेत् सुधीः।।३५।।
रविमण्डलगां देवीं प्रणिपत्य समापयेत्।
एवं सन्ध्यां समाप्याथ हृदि विद्यां परामृशेत्।।३६।।
अथवा परमेशानि सदैनां परिचिन्तयेत्।

उस समय इड़ा नाड़ी से जल को अन्दर खींचकर उससे संचित पापराशि के प्रक्षालन की भावना करते हुए उस कृष्णवर्ण (भावना से कृष्णवर्ण समझे) जल को दाहिनी नाड़ी (नासिका) से बाहर विरेचित करे। दाहिनी हथेली पर रखे उस जल की पापरूप भावना करके उसे सामने के पत्थर पर 'फट्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए जोरों से फेंक दे। इस अधमर्षण कृत्योपरान्त पुनः

आचमन करे और (पहले कही विधि से) शिर पर इस मन्त्र से अभिषेक करे 'ओं आपोदेवी रसोऽमृतं पूतं ब्रह्म पुनीमहे।'' इसके अनन्तर तीन अंजली ज़ल मार्त्तण्ड भैरव के लिए पृथ्वी पर छोड़ना चाहिए। तदनन्तर मन्त्री साधक को उर्ध्वबाहु होकर सूर्योपस्थान करना होगा। इसका मन्त्र है–

''ओं उदत्य जांतवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशेविश्वाय मार्त्तण्डभैरवम्''

सूर्य- मण्डल में कुलचक्र का चिन्तन करना होगा। उस चक्र मध्य में बाल्योचित इच्छा वाली शिवा का ध्यान करे जो प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य के समान वर्ण वाली है, सूर्य-चन्द्र-अग्नि जिसके त्रिनेत्र हैं जिनके हाथों में पाश-अंकुश-धनुष-बाण है। मध्याह्न में नव यौवनयुता शोभिता देवी का चिन्तन करे। सायं काल में देवी का चिन्तन करे जो त्रैलोक्य प्रभायुता, सर्वयौवनसम्पन्ना, समुज्वला, परमा कामा हैं। रात्रि में योगी भोग से रता शिवा का ध्यान करे। ध्यानोपरान्त विद्वान साधक को १०८ बार गायत्री का जप करना चाहिये। तथा देवी को सूर्यमण्डल मध्य में प्रणाम करे। ऐसे सन्ध्या कार्य का समापन करके मन में विद्या का आमर्शन करे। हे परमेशानी! अथवा उनका सदैव चिन्तन करे।।२६-३६।।

देव्युवाच–

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कथमत्राधिकारिता ।।३७।।
वेदव्रतविहीनानां व्रात्यादीनां कृतागसाम् ।
तथैवानुपनीतानां स्त्रीशूद्राणां भवेच्छिव ।।३८।।
कथमेते महादेव मुक्तिं गच्छन्त्यनुत्तमाम् ।
न विना ब्राह्मणं मुच्येद्देहबन्धा दिति श्रुतिः।।३९।।

देवी कहती हैं–हे शिव! अब कृपया यह बतायें कि वेद व्रत रहित पापी चाण्डाल गण तथा यज्ञोपवीत संस्कार रहित स्त्री-शूद्र का इस साधना में कैसे अधिकार होता है? हे महादेव! ये किस प्रकार से उत्तम मुक्ति के भागी होंगे। क्योंकि श्रुति के अनुसार ब्राह्मण के बिना देह बन्धन (आवागमन) से मुक्ति नहीं मिलती।।३७-३९।।

ईश्वर उवाच–

देवदारुवने पूर्वं ब्राह्मणानतिदुर्धियः।
विलोक्य भगवान् विष्णुर्मामभ्येत्याभिवाद्य च ।।४०।।
उपविष्टस्तदा देवः कारुण्यद्रुतचेतसा ।
पृष्टवान् मां महादेवि तेषां मुक्तेर्हि कारणम् ।।४१।।

ईश्वर कहते हैं–हे महादेवी! पहले देवदारु वन में भगवान विष्णु दुर्बुद्धि ब्राह्मणों को देखकर मेरे पास आये। वे मुझे प्रणाम करके बैठे। उन्होंने कारुण्य पूर्ण चित्त से मुझसे स्त्री-शूद्र आदि की मुक्ति का उपाय पूछा।।४०-४१।।

भगवानुवाच–

इमे दुर्मतयः सर्वे वेदाचारबहिष्कृताः।
अन्यायमैथुने शक्ताः सुरापानपरायणाः।।४२।।
आत्मज्ञानविहीनानां योगाभ्यासावहेलिनाम्।
कथमेषां भवेन्मुक्तिस्तदुपायं वद प्रभो।।४३।।
शूद्रादीनां कथं देव दीक्षायामधिकारिता।

ईश्वर उवाच–

अपि कृत्वा दुराचारान् पतितो वेदवर्जितः।।४४।।
नारी शूद्रोऽथवा व्रात्यो यां ज्ञात्वा ब्राह्मणो भवेत्।
यया विज्ञायते ब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम्।।४५।।
तामेव कथयाम्यद्य तवैव हृदि संस्थिताम्।
चतुर्विंशतितत्त्वेन निर्मितां तत्स्वरूपिणीम्।।४६।।

भगवान विष्णु कहते हैं–हे प्रभो! ये दुर्मति सभी वेदाचार से बहिष्कृत हैं। अन्याय मैथुन में लगे हुए हैं। सुरापान परायण हैं। वे आत्मज्ञान रहित हैं और योगाभ्यास की अवहेलना करते हैं। इनकी मुक्ति कैसे हो, वह उपाय कहिये। हे देव! शूद्रादि का दीक्षा अधिकार कैसे होता है?। ईश्वर कहते हैं–जो दुराचार से पतित है, वेद वर्जित है, ऐसे नारी, शूद्र अथवा व्रात्य जिनको जानकर ब्राह्मण हो जाते हैं, जिसे जानकर (साधक) सच्चिदानन्द अव्यय ब्रह्म का साक्षात्कार होता है आज वर्णन करूँगा, जो तुम्हारे हृदय में स्थित हैं तथा २४ तत्त्वों से निर्मित तत्वरूपिणी है।।४२-४६।।

त्रिकारं चम्पकापीतं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
शतपत्रासनारूढं ध्यायेत् पद्मासनस्थितम्।।४७।।
पुकारं चिन्तयेदेवमतसीपुष्पसन्निभम्।
पद्ममध्यस्थितं सौम्यमुपपातकनाशनम्।।४८।।
रकारं कपिलं नित्यं कमलासनसंस्थितम्।
ध्यायेच्छान्तं सुरश्रेष्ठ महापातकनाशनम्।।४९।।
सुकारं चिन्तयेदेवमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
निर्दहेत् सर्वदुःखानि ग्रहरोगोद्भवानि च।।५०।।
न्दकारं वह्निदीप्ताभं चिन्तयेत् पुरुषर्षभ।
भ्रूणहत्याकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति।।५१।।
यैंकारं विमलं ध्यायेद् ब्रह्महत्याविनाशनम्।
विकारं चिन्येद्विद्वान् शुद्धस्फटिकसन्निभम्।।५२।।

पापं नश्यति तत्क्षिप्रमगम्यागमनोद्भवम् ।
सुकारं चिन्तयेद्योगी शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।५३।।
अभक्ष्यभक्षणं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
हेकारं तारकावर्णमिन्दु शीर्ष विभूषितम् ।।५४।।
योगिनां वरदं ध्यायेद् ब्रह्महत्याविनाशनम् ।
काकारं कृष्णवर्णं च नीलमेघसमप्रभम् ।।५५।।
ध्यात्वा पुरुषशार्दूल पापं नाशयति ध्रुवम् ।
मेकारं रक्तवर्णं च कमलासनसंस्थितम् ।।५६।।
गोहत्यादिकृतं पापं नाशयत्येव तत्क्षणात् ।
श्वकारं परमं ध्यायेत् तप्तकाञ्चनसन्निभम् ।।५७।।
कमलासनमासीनं मन्त्री हत्याविमोचनम् ।
यैंकारं शुक्लवर्णं तु जातीपुष्पसमप्रभम् ।।५८।।
गुरुहत्याकृतं पापं ध्यात्वा दहति तत्क्षणात् ।
धीकारं चिन्तयेच्छुक्लं कुन्दपुष्पसमप्रभम् ।।५९।।
पितृमातृवधात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
मकारं पद्मरागाभं चिन्तयेद् दीप्ततेजसम् ।।६०।।
पूर्वजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
हिकारं शङ्खवर्णं तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ।।६१।।
अशेषपापदहनं ध्यायेन्नित्यमिहाच्युत ।
तत्कारं पाण्डुरं ध्यायेत् पद्मस्योपरि संस्थितम् ।।६२।।
प्रतिग्रहकृतं पापं स्मरणादेव नश्यति ।
नःकारं रक्तवर्णं तु इन्द्रगोपसमप्रभम् ।।६३।।
ध्यात्वा प्राणिवधं पापं निर्दहेज्जगदीश्वर ।
क्लिन्कारं रक्तवर्णं तु स्मरेद्वज्रसमप्रभम् ।।६४।।
निर्दहेत् सर्वपापानि नान्यैः पापैः प्रलिप्यते ।
नेकारं तु मुखं पूर्वमुद्यदर्कसमप्रभम् ।।६५।।
सकृद्ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं प्रकारं दक्षिणाननम् ।।६६।।
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।
सौम्यं गोरोचनापीतं चोकारं चोत्तराननम् ।।६७।।
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेद्रुद्रतां पुनः।
शरच्चन्द्रनिभं शान्तं दकारं पश्चिमाननम् ।।६८।।

सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ स गच्छेदैश्वरं पदम् ।
यात्कारं च शिरः प्रोक्तमूर्ध्वाननमितीरितम् ।।६९।।
सकृद् ध्यात्वा सुरश्रेष्ठ सदाशिवपुरं व्रजेत् ।
अक्षराणां तु सर्वेषां वक्ष्यन्ते देवताः क्रमात् ।।७०।।

अब त्रिपुरागायत्री प्रसंग कहते हैं–त्रिपुरागायत्री मन्त्र २४ अक्षरों वाला है। इस तन्त्र के अनुसार तत्व भी २४ हैं और मन्त्राक्षर भी २४ हैं। चौबीस तत्वों का प्रतिनिधित्व ३० गायत्री के एक-एक अक्षर करते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। तत्व इस प्रकार हैं— पृथिवी-जल-तेज-पवन-व्योम-पंचतन्मात्रा-दशेन्द्रियां (पंचज्ञानेन्द्रिय+पंच कर्मेन्द्रिय= १०)-मन-अंहाकार-बुद्धि-प्रकृति। अब त्रिपुरा गायत्री है ''त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्''। अब इसके एक एक वर्ण का भावार्थ प्रस्तुत करते हैं।

त्रि–यह चम्पक के समान पीतवर्ण है। इसके देवता हैं त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शिव। यह सौ पत्र वाले कमल पर पद्मासनस्थ है। इस प्रकार इसका ध्यान करे।

पु–इसी क्रम से 'पु' का ध्यान करे। इसका वर्ण अलसी बीज के पुष्प के समान नील है। यह वर्ण पद्ममध्यस्थ है। यह सौम्यरूप तथा उपपातकों का नाश करता है।

र–'र' वर्ण कपिल रंग का है। यह सर्वदा कमल के आसन पर स्थित रहता है। हे सुरश्रेष्ठ! यह महापातकों का नाश करता है तथा शान्त रूप है। इसके ध्यान का यही स्वरूप है।

सु–इसी प्रकार 'सु' का ध्यानं करना होगा। यह इन्द्रनील वर्ण का है। यह (रोगोद्भव) समस्त दुःखों का निर्दग्ध कर देता है।

न्द–इसका ध्यान इस प्रकार से करे। इसका रूप ज्वलन्त अग्नि के समान है। हे पुरुषर्षभ! इसका ध्यान फल है भ्रूणहत्याकृत पाप का नाश।

र्यै–इसका ध्यान प्रकार इस प्रकार से है–यह विमल है। इसका ध्यानफल है ब्रह्महत्यादोष का विनाश करना।

वि–विद्वान साधक इस प्रकार इसका ध्यान करे। यह शुद्ध स्फटिक के समान हैं। इसका फल है अगम्यागमन जनित पाप का सद्यः विनाश कर देना।

द्म–योगीगण इसका ध्यान इस प्रकार करे–इसका वर्ण शुद्धस्फटिक जैसा है। इसका ध्यान फल है अभक्ष्य-भक्षण जनित पाप का नाश कर देना।

हे–योगीगण इसका ध्यान इस प्रकार करे–यह तारक के वर्ण का है। इसके शीर्ष पर चन्द्रमा विराजित है। यह योगियों को वर देने वाला है। ध्यानफल है ब्रह्महत्या जनित पाप नाश।

का—यह कृष्णवर्ण है तथा नीले मेघ के समान प्रभायुक्त है। हे पुरुषशार्दूल! इसका ध्यानफल पाप नाश।

मे—यह रक्तवर्ण है। कमल के आसन पर आसनासीन है। इसका ध्यानफल है—गोहत्या जन्य पाप का तत्क्षण विनाश।

श्व—इसका ध्यान है—यह तपे हुए स्वर्ण की कान्तिवाला है। यह भी कमलासन पर स्थित है। इसका ध्यानफल है हत्या के पापों को दूर कर देना।

यैं—यह शुक्लवर्ण है। चमेली के पुष्प के समान है। इसका ध्यान करने से गुरु हत्याजन्य पाप तत्क्षण दूर हो जाता है।

धी—यह शुक्लवर्ण है। कुन्दपुष्पवत् है। इसका ध्यान फल है माता-पिता की हत्याजनित पाप का नाश।

म—यह पद्मराग मणि की आभायुक्त है। अत्यन्त दीप्त तेजवाला है। इसके ध्यान का फल पूर्वजन्माजित पाप फल का तत्क्षण नाश।

हि—यह शंखवर्ण का है। पूर्णिमा चन्द्रवत् प्रभायुक्त है। हे अच्युत! इसका ध्यान फल है अशेष पाप को दग्ध करना। इसका नित्य ध्यान करे।

तत्—इसका ध्यान पाण्डुरंग में करना चाहिये। यह कमल पर आसनासीन है। इसका ध्यानफल है प्रतिग्रह से हुए (दान लेने से) पापों का नाश करना।

नः—यह रक्त वर्ण का है जैसा वर्ण वीरबहूटी नामक कीट का होता है वैसा। हे जगदीश्वर! इसका ध्यान फल है प्राणिवध के पापों का नाश।

क्लिन्—यह रक्तवर्ण है तथा इसका प्रभा वज्रवत् है, (जैसे आकाश में बिजली चमकती है), इसका ध्यानफल है कि पहले तो यह सर्वपाप विनष्ट करता है, दूसरा है कि साधक को ऐसा बना देता है कि वह आगे पुन: पाप लिप्त न हो।

ने—यह पूर्वाभिमुखीन है। उदीयमान सूर्य समप्रभ है। हे सुरश्रेष्ठ! इसका एक बार भी ध्यान कर लेने पर ब्रह्मपद मिलता है।

प्र—यह नीलकमल के दल के समान वर्ण वाला तथा दक्षिणाभिमुखी है। इसका ध्यान फल है—विष्णुपद प्राप्ति।

चो—यह सौम्य तथा गोरोचन के समान पीतवर्ण है। हे सुरश्रेष्ठ! इसका ध्यान फल है रुद्र-पद प्राप्ति।

द—यह शरतचन्द्र के समान प्रभावान् है। यह पश्चिमाभिमुखी स्थित है। हे सुर-श्रेष्ठ! इसका ध्यानफल है ईश्वरपद प्राप्ति।

यात्—यह सम्पूर्ण मन्त्रविग्रह का शिरोमणि रूप है। अत: यह उर्ध्वमुख है। इसका ध्यानफल है सदाशिव पद प्राप्ति।।४७-७०।।

अग्निवायुसूर्यविद्युद्यमा वरुण एव च।
बृहस्पतिस्तु पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्व एव च।।७१।

पूषा शिवश्च त्वष्टा च वसवश्च मरुत्तथा।
सोमोऽङ्गिरा विश्वेदेवा अश्विनौ च प्रजापतिः।।७२।।
सर्वदेवश्च रुद्रश्च ब्रह्मा विष्णुश्च देवताः।
जपकाले चिन्तयित्वा तासांसायुज्यमाप्नुयात्।।७३।।
ललितायास्त्रिभिर्बीजैस्त्रिपदीयं त्रयीमयी।
एतज्ज्ञात्वा तु मेधावी जपहोमं करोति यः।।७४।।
षडङ्गमविधायादौ ध्यायस्तां परदेवाताम्।
न भवेत् सूतकं तस्य मृतकं च न विद्यते।।७५।।

अब गायत्री के २४ अक्षरों के देवता क्रम से कहे जा रहे हैं।

त्रि – के देवता – अग्नि।
पु – के देवता – वायु।
र – के देवता – सूर्य।
सु – के देवता – विद्युत
न्द – के देवता – यम
र्यै – के देवता – वरुण
वि – के देवता – बृहस्पति
द्म – के देवता – पर्जन्य
हे – के देवता – इन्द्र
का – के देवता – गन्धर्व
मे – के देवता – पूषा
श्व – के देवता – शिव
र्यै – के देवता – त्वष्टा
धी – के देवता – वसु
म – के देवता – मरुत्
हि – के देवता – सोम
तत् – के देवता – अङ्गिरा
न्नः – के देवता – विश्वदेव
क्लिन् –के देवता – अश्विनीद्वय
ने – के देवता – प्रजापति
प्र – के देवता – सर्वदेव
चो – के देवता – रुद्र
द – के देवता – ब्रह्मा
यात् – के देवता – विष्णु

अब इस जप का फल कहते हैं–जप काल में तत्तद् देवताओं का चिन्तन करके जापक उन-उन देवता में सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है। ललिता के बीजत्रय के साथ यह त्रयीमयी गायत्री है (ऋक्,यजुः तथा साम-यह त्रयी है)। जो मेधावी साधक यह जानकर जप-होम का अनुष्ठान करता है, उसे (मन्त्र जनित) जननाशौच तथा मरणाशौच नहीं लगता।।७१-७५।।

यश्चैवं तु न जानाति गायत्रीं च यथाविधि ।
कथितं सूतकं तस्य मृतकं च मयानघ ।।७६।।
नैव दानफलं तस्य न च यज्ञफलं लभेत ।
न च तीर्थफलं प्रोक्तं तस्यैवं सूतके सति ।।७७।।
गायत्र्येषा समाख्याता त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा ।
गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन चोच्यते ।।७८।।

हे अनध! जो यथाविधान इस गायत्री को नहीं जानता उसे यह जनन एवं मरणंशौच लगता है। उसे दानफल तथा यज्ञफल एवं तीर्थफल इन सूतकों के कारण नहीं मिलता। यह गायत्री त्रैपुरी है और सर्वसिद्धिदा है। जो गायन करने से (जपने से) त्राण करें, वह गायत्री कहलाती है।।७६-७८।।

महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद् दशधा यदि ।
सत्यं सत्यं महादेवि मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।।७९।।
अष्टोत्तरसहस्रं वै जपेदेनामनन्यधीः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेत् पूजाधिकारवान् ।।८०।।
जीवन्मुक्तो जामदग्न्यः शिष्यो मे घोरपातकैः।
विमुक्तो मातृहत्याद्यैर्मीननाथस्तथा परः।।८१।।
जैगीषव्यश्च चन्द्रश्च वासवश्च विमोचितः।
गुरुतल्पगमनाद्यैस्तथागस्त्यः प्रमोचितः।।८२।।

हे महादेवी! यदि महान् पाप से युक्त व्यक्ति इसे १० बार जप लेता है वह पापों से तत्क्षण मुक्त हो जाता है। यह सत्य है, सत्य है। जो अनन्य चित्त होकर इसका १००८ जप कर लेता है, तब वह पापों से विनिर्मुक्त होकर पूजाधिकार प्राप्त कर लेता है। जमदग्नि के पुत्र परशुराम मातृहत्या के पाप से मुक्त होकर जीवन्मुक्त हो गये जो मेरे शिष्य हैं। मीननाथ, जैगीषव्य, चन्द्रमा तथा इन्द्र भी गुरुपत्नीसमागम जैसे पाप से इस जप के प्रभाव से मुक्त हो गये।।७९-८२।।

अभक्ष्यभक्षणात् पापादनयैव विमोचितः।
चाण्डालगमनाद्यैश्च वशिष्ठश्चापि मोचितः।।८३।।

दत्तात्रेयः सुरापानाज्ज्वलनःसर्वभक्षणात् ।
त एव ब्रह्मणा सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ।।८४।।
अनयैव महादेवि सर्व एव प्रमोचिताः।

देव्युवाच–

धन्या चानुगृहीतास्मि त्वया नाथेन शङ्कर ।।८५।।
निःसंशयास्मि देवेश भ्रमो द्वैतश्च मे हतः।
कतिधा सा भवेद् देव तदिदानीं वद प्रभो ।।८६।।

इसी जप के प्रभाव से अगस्त्य ऋषि भी अभक्ष्यभक्षण जनित पाप से मुक्त हो गये। वशिष्ठ ऋषि चाण्डालगमन से, ऋषि दत्तात्रेय सुरापान के पाप से तथा अग्नि सर्वभक्षण जनित पाप से इसी जप के कारण मुक्त हो गये। सभी ब्राह्मण, देवता, ऋषिगण को इसी गायत्री के द्वारा ब्रह्मा-विष्णु ने मुक्त किया। देवी कहती हैं–हे शङ्कर! आप मेरे नाथ हैं। मैं आपसे धन्य एवं अनुगृहीत हूँ। हे देव! मैं अब संशय रहित हूँ। मेरा भ्रम तथा द्वैत समाप्त हो गया है। हे प्रभो! वह शक्ति कितने प्रकार की है, कृपया यह कहें।।८५-८६।।

ईश्वर उवाच–

एकैव सा महादेवि बहुधा भिन्नतां गता ।
सौरी च वैष्णवी चैव शाक्ती ब्राह्म्यथ शाम्भवी ।।८७।।
तत्तन्त्रे ताः प्रयोक्तवस्त्रैपुरीयं प्रकाशिता ।
तर्पणं च त्रिधा प्रोक्तं साम्प्रतंतच्छृणुष्व ।।८८।।

अब तर्पण प्रसंग कहते हैं–हे महादेवी! वह देवता वास्तव में एक ही है। जो भिन्नवत् (प्रतीत) होता है। सौरी, वैष्णवी, शाक्ती, ब्रह्माणी तथा शांभवी रूप में उन-उन तन्त्रों में उन्हें बतलाया गया है। उनमें त्रिपुरसुन्दरी अनेक प्रकार से प्रकाशित हुई हैं। तर्पण तीन प्रकार का बतलाया गया है, उसे कहता हूँ सुनो।।८७-८८।।

सोमार्कानलसङ्घट्टात् स्खलितं यत् परामृतम् ।
तेनामृतेन दिव्येन तर्पयेत् परदेवाताम् ।।८९।।
आन्तरं तर्पणं ह्येतन्मानसं श्रृण साम्प्रतम् ।
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा सदा सन्तर्पितात्मवान् ।।९०।।
सर्वदा सर्वकार्येषु सन्तुष्टः स्थिरमानसः।
उपविश्य शुचौ देशे ततस्तर्पणमारभेत् ।।९१।।

सोम-सूर्य तथा अग्नि के संघट्ट से जो परमामृत स्खलित होता है, उस दिव्य अमृत से परदेवता का तर्पण करे। यह आन्तर तर्पण कहा गया। अब

मानस तर्पण सुनो। स्वयं की (आत्मा को) देवता के रूप में भावना करके (भाव से) आत्मा को सदैव सन्तर्पित करते रहना मानसिक तर्पण है। इससे साधक सभी कार्य में स्थिरमना तथा सन्तुष्ट स्थिति में हो जाता है। तृतीय तर्पण में पवित्र स्थान में स्थिर हो बैठे तब तर्पण प्रारम्भ करे।।८९-९१।।

तर्पयित्वा गुरूनादौ मूलदेवीं च तर्पयेत् ।
बीजद्वयं ततो विद्या हुतभुग्दयितान्विता ।।९२।।
ततो देव्याः स्वनामान्ते तर्पयामि नमः पदम् ।
देवान पितॄन् ऋषींश्चैव तर्पयेत् कुलवारिणा ।।९३।।
तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यतां वृद्धभैरवः ।
तथैव परमेशानि विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ।।९४।।
एवं ऋषीन् प्रतर्प्याथ पितॄनपि च भैरवान् ।
तृप्यतां सुन्दरी माता पिता भैरवस्तृप्यताम् ।।९५।।

इस बाह्य तर्पण में सर्वाग्र में गुरुओं को तर्पण करे। पहले मानवौघ गुरु का तर्पण करना चाहिए। इसमें स्वगुरु, उनके गुरु, उनके गुरु तथा उनके गुरु का तर्पण करे, तदनन्तर सिद्धौघ गुरु का करे, सर्वान्त में दिव्यौघ। गुरुओं का तर्पण करना चाहिए। तदनन्तर मूलदेवी का तर्पण करना चाहिये। तर्पणमन्त्रोद्धार इस प्रकार से करे, पहले बीजद्वय (हे सौः) तदनन्तर विद्या लिखे, तदनन्तर अग्निवल्लभा अर्थात् 'स्वाहा' लिखे। तदनन्तर देवी का नाम लिखे 'त्रिपुरसुन्दरी' तदनन्तर 'तर्पयामि नमः' लिखना होगा। मन्त्रोद्धार होगा ''ऐं सौः कएईलह्रीं हसकल ह्रीं हकहलह्रीं कहयलह्रीं हकलसह्रीं स्वाहा त्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि नमः। (कहीं-कहीं 'ऐंसौः' के स्थान पर 'हें सौः' भी कहा गया है। सम्प्रदायानुसार साधक व्यवहार करे)।

देवता, पितर, ऋषीगण का तर्पण प्रथम मकार मद्य से करे। बाह्य तर्पण के प्रारम्भ में ''वृद्ध भैरव तृप्यताम'' का उच्चारण करना चाहिये। हे परमेशानी! विष्णु, रुद्र, प्रजापति तथा ऋषियों, पितरों तथा भैरवों का तर्पण करके यह मन्त्र पढ़े ''त्रिपुरसुन्दरी माता तृप्यताम् पिता भैरवस्तृप्यताम्'' कहे। ऐसे पहले त्रिपुर शब्द का योग करें।।९२-९५।।

आदौ त्रिपुरपूर्वं च तर्पणे विनियोजयेत् ।
श्राद्धे विवाहे दाने च स्नाने चानङ्गपूजने ।।९६।।
सर्वदा सर्वकार्येषु तान्त्रिके वैदिके तथा ।
त्रिपुरभैरवं चैव स्मरेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ।।९७।।
स्वविद्यां संस्मरन् कुर्य्यात् क्रियां सर्वत्र चोदिताम् ।
द्विजातीनां च संस्कारो वेदोक्तः समुदाहृतः।।९८।।

तेषां तु तत्र तत्रापि विद्यया विधिमाचरेत् ।
अन्येषामपि वर्णानां विद्ययैव समापयेत् ।।९९।।
विद्यया संस्कृतो यस्तु स एव ब्राह्मणो मतः।
निधने विद्यया दाहो विद्ययान्यत् समाचरेत् ।।१००।।
तेनैव तन्मयी सिद्धिः सर्वत्र भवति ध्रुवम् ।
यावन्न दीयते देवि सूर्यायार्ध्यं विधानतः।।१०१।।
विधिना विहिता पूजा तावत् केन प्रगृह्यते ।
मार्तण्डभैरवायार्घ्यं दूर्वाभिः सिततण्डुलैः।।१०२।।
रक्तपुष्पैश्चन्दनैश्च सगणाय निवेदयेत् ।
शिवबीजं वह्निसंस्थं वामनेत्रविभूषितम् ।।१०३।।
नादबिन्दुकलायुक्तं हंसःपदमथो लिखेत् ।
मार्तण्डभैरवायेति प्रकाशशक्ति चालिखेत् ।।१०४।।
सहितायेति चोक्त्वा वै इदमर्ध्यमतः परम् ।
वह्निजायान्वितं कृत्वा सूर्यायार्ध्यं निवेदयेत् ।।१०५।।

श्राद्ध, विवाह, दान, स्नान, अनंगपूजा, आदि समस्त तांत्रिक वैदिक आदि समस्त पूजनों में त्रिपुरभैरव एवं त्रिपुरसुन्दरी का चिन्तन करे। सभी क्रियाओं में अपनी विद्या (मन्त्र) का स्मरण करे। द्विजातिगण के लिए वेद में जो कहा गया है, उन सब अपनी विद्या के द्वारा आचरण करे। अन्य वर्ण के भी (संस्कार) में अपनी विद्या से करे। जो इस विद्या से संस्कृत है, वह यथार्थ ब्राह्मण है। मृतक का दाह संस्कार भी विद्या द्वारा सम्पन्न करे। अन्य संस्कार भी विद्या से ही करे। इससे निश्चित रूपेण सर्वत्र तन्मयी सिद्धि होती है। हे देवी! जब तक विधान पूर्वक सूर्य को अर्घ्यदान नहीं किया जाता, तब तक किस विधि से पूजा होगी? अतः सभी पूजा के आदि में सूर्यदेव को अर्घ्य देना आवश्यक है। सूर्यदेव को उनके गणों के साथ दूर्वा, श्वेततण्डुल, रक्तपुष्प, रक्तचन्दन से (सब मिलाकर) अर्घ्य प्रदान करें। अब सूर्यमन्त्र विधि कहते हैं–शिवबीज (ह) वह्नि के साथ (र) युक्त करे इसे वाम नेत्र (ई) से विभूषित करके बिन्दु नाद कला (ँ) से युक्त करे, इससे (ह्रीं) का मन्त्रोद्धार होता है। तदनन्तर 'हंस' को लिखे। तदनन्तर 'मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्ति सहिताय' लिखे। अब 'इदमर्घ्यं' लिखे इसमें वह्निजाया (स्वाहा) को युक्त करके सूर्यार्घ्य प्रदान करे। मन्त्रोद्धार है 'ह्रीं हंसः मार्त्तण्ड भैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा'॥९६-१०५॥

न दद्याद्भास्करायार्ध्यं शङ्खतोयैर्महेश्वरि ।
सर्वदेवमयं सूर्यं सर्वदेवनमस्कृतम् ।।१०६।।

पूजयित्वा विधानेन प्रदक्षिणमनुव्रजन् ।
प्रणम्य भगवन्तं वै सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१०७।।
यः यदा पूजयेद् देवं दृष्ट्वा वा प्रणमेत् प्रभुम् ।
पूजितं दैवतत्वेन ब्रह्माण्डान्तरगोचरम् ।।१०८।।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां यदुदाहृतम् ।
सकृत् प्रदक्षिणं देवि दद्यात् तत्फलमञ्जसा ।।१०९।।
तीर्थानां दर्शने यद्यत् तत्तद्भास्करदर्शनात् ।
सर्वतीर्थामृतैः स्नातो स सदा सूर्यरश्मिभिः ।।११०।।
अथ त्रिपुरगायत्र्या देव्यै चार्घ्यं निवेदयेत् ।
सूर्यमण्डलसंस्थायै पूर्वोक्तध्यानयोगतः ।।१११।।
चक्रराजं हृदि ध्यात्वा तत्र देवीं समापयेत् ।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या जपन् विद्यामनन्यधीः ।।११२।।

हे महेश्वरी! शंख में जल भरकर सूर्याघ्य प्रदान न करे। सूर्य सर्वदेवमय हैं। सभी देवता उन्हें नमस्कार करते हैं। उनका विधि पूर्वक पूजनादि करके प्रदक्षिणा करके प्रणाम करना चाहिए। ऐसा व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जो सदैव सूर्य पूजन करता है, उनका दर्शन होने पर प्रणाम करता है, इस ब्रह्माण्डान्तर में गोचरीभूत इन देवता की पूजा करता है, इनकी एक प्रदक्षिणा करने से वह जो फल प्राप्त कर लेता है वह साढ़े तीन करोड़ तीर्थ यात्रा के फल के बराबर है। तीर्थों के दर्शन के बराबर फल सूर्य दर्शन से मिलता है। सर्वदा सूर्यकिरण से स्नान व्यक्ति मानो समस्त तीर्थों के अमृत से स्नान कर चुका। तदनन्तर त्रिपुरगायत्री एवं सूर्यमण्डलमध्यस्था देवी को अर्घ्यप्रदान करे। तत्पश्चात् पहले कही गयी ध्यान प्रक्रिया का अनुशीलनं करके हृदय में चक्रराज का ध्यान करे। सर्वान्त में समाहित चित्त से देवी के मन्त्र का (विद्या का) १०८ जप करके भावना द्वारा देवी को चक्रराज के अपर आसीन करे।।१०६-११२।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे स्नानसंध्योपासनादिविधि-निरूपणनामकः सप्तमः पटलः ।।७।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवादान्तर्गत् स्नान सन्ध्योपासनादि निरूपण विधि नामक सप्तम पटल समाप्त ।।

◆

अष्टमः पटलः

यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

ततो मौनी विशुद्धात्मा हृदि विद्यां परामृ परामृशेत् ।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत् ।।१।।
केशकीटादिसंयुक्ता न स्निग्धानातिपिच्छला ।
न रूक्षा नातिनीचा वै नात्युच्चा न वनान्विता ।।२।।
न च वायुभिराच्छन्ना नान्यप्राणिसमाकुला ।
धूलिकर्दमसंयुक्ता पशुभिर्न विलोकिता ।।३।।
वृक्षादिभिरनाकीर्णा द्रववारिसमाकुला ।
अनावृता चतुर्दिक्षु मनसस्तुष्टिकारिणी ।।४।।

ईश्वर कहते हैं–तत्पश्चात् साधक मौन धारण करके विशुद्धात्मा होकर हृदय में विद्या का ध्यान करे और अन्तर्मुखी होकर यागभूमि में प्रवेश करे। यागभूमि केश-कीट आदि से असंयुक्त (रहित) चिकनी तथापि पिच्छिला न हो (पैर न फिसले) रुखी न हो, ऊँची-नींची न हो। जंगली न हो, वायु से ढकी न हो। अन्य प्राणियों से समाकुल न हो। वह स्थान धूल, कीचड़ से मुक्त हो। उसे पशु न देखे। वृक्ष आदि से अनाकीर्ण हो, वहाँ की जमीन पर पानी छिड़का हो। वह भूमि ढकी न हो, देखकर चित्त को सन्तोष प्रदान करने वाली हो। ऊषर तथा कृषि की भूमि के पवित्र होने पर भी उस पर अनुष्ठान पूजनादि न करे।।१-४।।

ऊषरे कृषिसंयुक्ते स्थाने पुण्येऽपि नार्चयेत् ।
यागभूमिर्निषिद्धैषा विहिता कथ्यतेऽधुना ।।५।।
वापीकूपसमीपस्था सुमनोद्यानमध्यगा ।
विचित्रमण्डपैर्युक्ताशुद्धवेदिपरि(स्कृ?ष्कृ) ता ।।६।।
पताकाध्वजसङ्कीर्णा लाक्षारुणपरिच्छदा ।
पुष्पप्रकरसङ्कीर्णा घण्टाचामरभूषिता ।।७।।

ऐसी भूमि यज्ञ के लिए निषिद्ध बतलाई जाती है (जिसे श्लोक २से ४ में निषिद्ध बतलाया है)। अब याग के लिए उचित भूमि बतलाता हूँ। यह भूमि तालाब अथवा कूप के निकट हो, मध्य में पुष्प वाटिका हो, विचित्र मण्डप से युक्त तथा शुद्ध वेदी परिष्कृत होकर स्थित हो। पताका ध्वज से भरी, लाक्षारुण परिच्छद युक्त हो, पुष्पादि से सजी तथा घण्टा-चामरादि से वह भूमि विभूषित हो।।५-७।।

दीपदर्पणसंयुक्ता वितानोपपरिष्कृता ।
पेयैर्भक्ष्यैः समायुक्ता कर्पूरागुरुधूपिता ।।८।।

बालार्कसदृशी रम्या मनःसन्तोषकारिणी ।
तत्तदायुधपूर्णान्तर्विभूषितप्रपूजिता ।।९।।
एवमेषा महादेवि यागभूमिः समीरिता ।
पूजावेद्या बहिः स्थित्वा चतुर्हस्तान्तरे धिया ।।१०।।
गृहे चेद् द्वारदेशस्थ आचम्य मनसा गुरून् ।
प्रणमेदिष्टदेवीं च दिक्पालानपि चेतसा ।।११।।
इन्द्रमग्निं यमं वन्दे निर्ऋतिं वरुणं तथा ।
पवनं धनदं चेशं प्रजापतिमनन्तकम् ।।१२।।
गणेशं चैव क्षेत्रेशं वन्दे द्वारश्रियं तथा ।
गणनाथं च वटुकं दुर्गां क्षेत्रं रतिं स्मरम् ।।१३।।
प्रीतिं वसन्तकं चैव शङ्खपद्मनिधी तथा ।
सरस्वतीं महालक्ष्मीं मायां दुर्गां नमाम्यहम् ।।१४।।
भद्रकालीं च स्वस्तिं च स्वाहां शुभङ्करीं तथा ।
गौरीं च लोकधात्रीं च वागीश्वरीं नमाम्यहम् ।।१५।।
ब्रह्माणं वास्तुपुरुषं प्रणमामि यथाक्रमम् ।
पुष्पाञ्जलिमथैतेभ्यो भक्त्या परमया दिशेत् ।।१६।।

वहां दीप-दर्पण युक्त से वितान लगा हो। वहाँ पेय तथा भोज्य पदार्थ हों, कर्पूर-अगर से धूपिता हो। वह भूमि प्रात:कालीन उदीयमान सूर्य के समान रम्य तथा मन को सन्तोष देने वाली हो। उसमें विभिन्न प्रकार के आयुध शोभित हो रहे हों तथा पूजित हों। हे महादेवी! ऐसी यागभूमि कही गयी। यदि पूजावेदी बाहर है तब उससे चार हाथ दूर रह कर और यदि वहाँ किसी घर के अन्दर पूजावेदी है तब घर के दरवाजे पर खड़ा हो कर आचमन करे और गुरु का मन में ध्यान करे। उन्हें प्रणाम करने के अनन्तर इष्ट, दिक्पाल, इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, प्रजापति, अनन्त, गणेश, क्षेत्रपाल तथा द्वार-लक्ष्मी को प्रणाम करे। पूजक यह उच्चारण करे कि मैं गणेश, वटुक, दुर्गा, क्षेत्रपाल, रति, काम, प्रीति, वसन्त, शंख पद्मानिधि समूह, सरस्वती, महालक्ष्मी, माया तथा दुर्गा को प्रणाम करता हूँ। मैं भद्रकाली, स्वस्ति, स्वाहा, शुभंकरी, गौरी, लोकधारी, वागीश्वरी को प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा तथा वास्तुपुरुष को प्रणाम करता हूँ। प्रणामोपरान्त भक्ति पूर्वक इन्हें पुष्पांजलि प्रदान करे।।८-१६।।

मण्डलं वामतः कृत्वा चतुरस्रं महेश्वरि ।
आधारं पूजयेत् तत्र पात्रं चान्नोदकान्वितम् ।।१७।।
संस्कृत्य परमेशानीं सर्वभूतबलिं हरेत् ।
तारं च भुवनेशीनीं सर्वविघ्नपदं ततः।।१८।।

कृदन्ते सर्वभूतेभ्यो हुङ्कारं वह्निवल्लभाम् ।
समुच्चरन् बलिं दद्यान्मुद्रया तत्त्वसंज्ञया ।।

हे महेशानी! मण्डल को वाम करके चतुरस्र में आधार पूजन करे। वहाँ पात्र का भी पूजन करे जो अन्न जल से पूरित हो। परमेश्वरी का संस्कार करके सर्वभूतवलि प्रदान करे। अब बलिमन्त्र कहते हैं–पहले तार (ओं) भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं) तदनन्तर 'सर्वविघ्न कृत्' कहकर 'सर्वभूतेभ्यः स्वाहा' कहे। (अग्निवल्लभा=स्वाहा)। मन्त्रोद्धार है "ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृत् सर्वभूतेभ्यः स्वाहा"। (यहाँ ॐ न लिखकर 'ओं' इसलिए लिखा है कि 'ॐ' का उच्चारण स्त्री शूद्रादि के लिए वर्जित है। वे 'ओं' कहकर प्रयोग करे)। इस मन्त्र का उच्चारण करके तत्वमुद्रा द्वारा बलि प्रदान करे।।१७-१९।।

अङ्गुष्ठानामिकायोगं तत्त्वमुद्रेयमीरिता ।
बालान्ते चास्त्रमालिख्य ङेन्तंफट्कारसंयुतम् ।।२०।।
अस्त्रमन्त्रः समाख्यातः सर्वविघ्नौघनाशकः।
अनेनैवाक्षतान् सम्यक्सम्मन्त्र्य सप्तधा ततः।।२१।।
अपसर्पन्तु ते भूता भूमौ ये चान्तरिक्षगाः।
दिव्यलोकगता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।।२२।।
अनेनैवाक्षतांस्तत्र विकिरेद्यज्ञमण्डपे ।
ऐंक्लींसौः इतिमन्त्रेण पूजा(देव्या?वेद्यां)महेश्वरि ।।२३।।
अङ्गं सङ्कोचयन् वामं प्रविशेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा ।
यागमन्दिरगांस्तत्र विघ्नानुत्सारयेत् ततः।।२४।।
पार्ष्णिघातकरस्फोटसमुदञ्चितवक्त्रकैः ।
तालत्रयमिदं कृत्वा पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ।।२५।।
ततः पुनर्हुंफडिति पार्श्वमूर्ध्वमधस्तथा ।
आत्मनः क्रोधदृष्ट्याथ निरीक्ष्य सुमना भवेत् ।।२६।।
वीक्षणं वर्म बीजेन यज्ञभूमेः समीरितम् ।
तत्तुर्यो बिन्दुसंयुक्तः कलानादसमन्वितः।।२७।।
वर्मबीजमिदं प्रोक्तं धर्मकामार्थसाधनम् ।
प्रोक्षणं चास्त्रमन्त्रेण वागभूमेः समाचरेत् ।।२८।।
अशुद्धपक्षिसंयोगपक्षिविष्टावसेचनम् ।
मूषिकामण्डूकस्पर्शकृमिकीटादिसङ्गमः ।।२९।।
अज्ञातदूषणं स्थानं मार्जनादौ च यद्भवेत् ।
एवमादीनि नश्यन्ति लोकनात् स्पर्शनात् प्रिये ।।३०।।

अब तत्वमुद्रा बतलाते हैं–अंगुष्ठ तथा अनामिका को मिलाने से तत्वमुद्रा

होती है। बाला के अन्त में ङेऽन्त अस्त्र को फट् से युक्त करे। यह सर्वविघ्ननाशक अस्त्र मन्त्र है। मन्त्रोद्धार यह है–'ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट्''।

इस मन्त्र से सम्यक् रूप से अक्षतों को सात बार अभिमंत्रित करके इस मन्त्र द्वारा यज्ञमण्डप में अक्षतों को छिड़के। मन्त्र है–

''अपसर्पन्तु ते भूता ये चान्तरिक्षगाः।
दिव्यलोकगता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।''

यह भूतापसारणमन्त्र है।

हे महेश्वरी! 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से वेदी के ऊपर देवी पूजा करे। वामांग का संकोच करके (नत करके) दायां पैर आगे बढ़ाकर यागमण्डप में प्रवेश करना चाहिए। इसके पश्चात् यागमन्दिर के विघ्नों को उत्सारित करे। साधक एड़ी से पृथ्वी पर आघात करके, चुटकी बजाकर तथा मुख से (मन्त्र कहकर) कहकर अगल-बगल, उर्ध्व-अधः तीन ताली बजाये। इससे विघ्न हट जाते है। तदनन्तर क्रोधित मुद्रा तथा दृष्टि द्वारा 'हुं फट्' बोलते हुए अगल-बगल, उर्ध्व-अधः में देखें। तदनन्तर प्रसन्न मुद्रा में हो जाये। यज्ञभूमि को देखते समय कवच बीज कहें। यह कवच बीज है 'हुं'। यही वर्मबीज है, इसे धर्म, काम, अर्थ का साधक कहते हैं। इस यागभूमि का प्रोक्षण अस्त्र मन्त्र (फट्) से करना होगा। हे प्रिये! अशुद्ध पक्षी का संयोग अर्थात् उस स्थान पर निवास घोसला आदि बनाना अथवा बैठना, पक्षी की बीट का गिरना, मूषक, मेढक का स्पर्श, कृमि-कीटादि का होना, ये सब भूमि दोष करने वाले हैं। ऐसे तथा अज्ञात दूषण से दूषित स्थानों के दोष (जो स्वच्छ करने से पूर्व से हैं) भूमि के दर्शन तथा स्पर्शन (सफाई आदि से) से नष्ट हो जाते हैं।।२३-३०।।

मधुकैटभयोर्मेदसङ्घातैर्दृढतां गता।
मेदिनी सर्वदाऽशुद्धा सुरपूजासु सर्वतः।।३१।।
तस्य दोषस्य मोक्षार्थं कामबीजं लिखेत् क्षितौ।
नैवेद्यादि स्वयं धृत्वा आच्छाद्य मीनमुद्रया।।३२।।
वायुबीजेन संशोष्य वह्निना च मलं दहेत्।
श्रीवत्समुद्रया दृष्ट्या तत् सर्वमवलोकयेत्।।३३।।

मधुकैटभ दैत्यों के मेद से यह भूमि कठोर हो सकी है। अतः सुरपूजार्थ यह सर्वथा अशुद्ध कही गयी है। इस दोष के मोक्षपार्थ पृथ्वी पर कामबीज 'क्लीं' का अंकन करे। स्वयं नैवेद्य आदि को लेकर उसे मत्स्य मुद्रा द्वारा (हथेली से बनाकर) आवरित करके वायुबीज से (यं) उसका शोषण करके अग्निबीज (रं) से दोषों को दग्ध कर दे। श्रीवत्स मुद्रा की दृष्टि से सबको देखे।।३१-३३।

यदात्मना न विज्ञातं सम्यक् पुष्पादिदूषणम्।
अस्पर्शनादिकं वापि यदन्यायार्जितं भवेत्।।३४।।

तथा निर्माल्यसंसृष्टिः कीटाद्यारोहणं च यत् ।
तत् सर्वं नाशमायाति नैवेद्याद्यवलोकनात् ।।३५।।
नैवेद्यकादिकं यत्तु पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
सर्वमाच्छादितं कार्यं यावदावाहयेत् पराम् ।।३६।।
आवाह्य स्थापयित्वा तु निराच्छादं प्रकाशयेत् ।
राक्षसाः प्रतिगृह्णन्ति निराच्छादं यतः प्रिये ।।३७।।

जिन पुष्प आदि को लाया गया है, यदि उनमें का दोष सम्यक रूप से ज्ञात नहीं हो सका है, जो अस्पर्शन (अन्याय) से मिला है, जो अयोग्य पुष्प (जिनका इस पूजार्थ विधान नहीं है) लाये गये हैं, तथा जिन पर कीटादि अरोहण कर गये हैं, सबका तथा नैवेद्य आदि का दोष श्रीवत्समुद्रा दृष्टि से देखने से नष्ट हो जाता है। जब तक परादेवी का आवाहन सम्पादित न हो जाये, तब तक सब सामग्री को आवरित करके रखना चाहिये। आंवाहनोपरान्त उन्हें स्थापित करके तब इन सभी का आवरण हटा दे। आवाहन के पूर्व खुली सामग्री रखने से उसे राक्षस स्वीकार कर लेते हैं।।३४-३७।।

आसनं च ततः कुर्यान्नातिनीचं न चोच्छितम् ।
आसनं चार्घ्यपात्रं च भग्नमासादयेन्न तु ।।३८।।
कृष्णाजिने मोक्षसिद्धिः श्रीमोक्षौ व्याघ्रचर्मणि ।
काम्यार्थं कम्बले चैवमभीष्टं रक्तकम्बले ।।३९।।
कुशासने सर्वसिद्धिर्मारणे कृष्णकम्बलम् ।
त्रिपुरापूजने शस्तं रक्तकम्बलमासनम् ।।४०।।
नैतद् द्विहस्ततो दीर्घंसार्धहस्तान्न विस्तृतम् ।
न त्र्यङ्गुलात् समुच्छ्रायं पूजाकर्म्मणि संग्रहेत् ।।४१।।
यथेष्टं चार्म्मणं कुर्यात् पूर्वोक्तं सिद्धिदायकम् ।
न दीक्षितो विशेज्जातु कृष्णसाराजिने गृही ।।४२।।

अब आसन स्थापित करे जो न अत्यन्त ऊँचा हो न नीचा। आसन तथा अर्घ्य-पात्र भग्न न हो। कृष्ण मृग के चर्म पर बैठकर उपासना द्वारा मोक्ष मिलता है। व्याघ्र चर्म पर बैठकर उपासना करने से श्री तथा मोक्ष, दोनों मिलता है। काम्यकर्मार्थ कम्बलासन, अभीष्ट सिद्धि हेतु लाल रंग का कम्बलासन प्रशस्त है। कुश के आसन पर बैठ-कर उपासना द्वारा सर्वसिद्धि मिलती है। मारणार्थ काला कम्बल आसनार्थ लायें। आसन की दो हाथ लम्बाई तथा ढेड़ हाथ चौड़ाई (साधक अपने हाथों से नापे) से अधिक न हो। लेकिन चर्मासन चाहे जितना लम्बा चौड़ा लें उसमें कोई नियम नहीं है। यदि गृही दीक्षाविहीन है, तब उसे कृष्णसार मृगासन पर नहीं बैठना होगा।।३८-४२

धरण्यां दुःखसम्भूतिदौर्भाग्यं दारुजासने ।
आम्रनिम्बकदम्बानामासनं वंशनाशनम् ।।४३।।
बकुले किंशुके चैव पनसेषु हतश्रियः।
वंशेष्टकाश्मधरणीतृणपल्लवनिर्म्मितम् ।।४४।।
वर्जयेदासनं मन्त्री दारिद्र्यव्याधिदुःखदम् ।
नाराचैर्वारिभिन्नं स्याद्विशीर्णं भग्नमेव च ।।४५।।
पर्युषितं परेषां तदधौतं च विवर्जयेत् ।
गान्तारीनिर्म्मितं शस्तं नानादारुमयं शुभम् ।।४६।।

पृथ्वी पर बैठकर उपासना से दुःख, काष्ठासन पर दुर्भाग्य, आम-नीम-कदम्ब का आसन बंशनाश, बकुल, पलाश, कटहल का आसन शोभा तथा लक्ष्मी नाश करता है। बास-ईट-पत्थर-मिट्टी-तृण-पत्ते से निर्मित आसनों का त्याग करे। इनसे दरिद्रता, व्याधि तथा दुःख होता है। नाराचादि अस्त्र से कटा-फटा, पानी से जीर्ण-विशीर्ण, कटा, दूसरों द्वारा उपयोग में लिया गया हो लेकिन धोया न गया हो, ऐसे आसन को त्याग देना चाहिए। गान्तारी का आसन उत्तम माना गया है।।४३-४६।।

न यथेष्टासनो भूयात् पूजाकर्म्मणि साधकः।
काष्ठादिकासनं कुर्यान्मितमेव सदा प्रिये ।।४७।।
चतुर्विंशत्यङ्गुलेन दीर्घं काष्ठासनं शिवे ।
षोडशाङ्गुलविस्तीर्णमुच्छ्रातायाच्चतुरङ्गुलम् ।।४८।।
तदर्धाङ्गुलं वा कुर्यान्नोच्छ्रितं चात आचरेत् ।
धरण्या वस्त्रसंयोगाद् दारुजे कम्बलस्य च ।।४९।।
कौशेयाजिनसंयोगो हन्ति पुण्यं पुरातनम् ।
यथाशक्त्त्येकतो मन्त्री शस्तासनमुपाविशेत् ।।५०।।

साधक को पूंजाकर्मार्थ जो चाहा वही आसन नहीं लेना चाहिये। नियमानुसार आसन लेना चाहिए। हे प्रिये! काष्ठादि का आसन ठीक नाप वाला हो। हे शिवे! काष्ठासन २४ अंगुल लम्बा, १६ अंगुल चौड़ा तथा ४ अंगुल ऊँचाई का हो। दो अंगुल ऊँचा भी विहित माना गया है। चार अंगुल से ऊँचा आसन विहित नहीं है। पृथ्वी से धारण किये वस्त्र का संयोग (पूजाकाल में) लकड़ी पर कम्बलासन तथा रेशमी वस्त्र के साथ चर्म का संयोग (ऐसे आसन) साधक के पहले के पुण्य का भी नाश कर देते हैं। जहाँ तक हो सके मन्त्री उत्तम आसन पर आसनासीन होकर पूजा करे।।४७-५०।।

पाणिभ्यामासनं धृत्वा विहितं विस्तरेद् भुवि ।
पराबीजं समुच्चार्य ततश्चाधारपूर्वकम् ।।५१।।
शक्तिपदं समालिख्य कमलासनमालिखेत् ।
ङेन्तं नमः पदं कुर्यादनेनैवासनं यजेत् ।।५२।।

मूलप्रकृतिं तत्रैव कूर्मं च परिचिन्तयेत् ।
अनन्तं चापि सम्पूज्य पृथिव्यर्घ्यं निवेदयेत् ।।५३।।

नियमानुसार चुने गये आसन को दोनों हाथों से पकड़ने के पश्चात् पृथ्वी पर विछाये। अब उसकी विधि कहते हैं। पहले पराबीज का उच्चारण करके (ह्रीं) तदनन्तर 'आधारशक्ति' तदनन्तर कमलासन को ङेऽन्त लिखे (कमलासनाय), अन्त में 'नमः' पद लगाये। मन्त्रोद्धार है 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः'। इससे आसन पूजा करके उस पर मूल प्रकृति एवं कूर्म का चिन्तन करे। अनन्त की पूजा करके पृथ्वी को अर्घ्य निवेदित करे।।५१-५३।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पृथिव्यै नम इत्यपि ।
पाणिभ्यामासनं धृत्वा स्मरेदेवं विधानतः।।५४।।
मेरुपृष्ठ ऋषिः प्रोक्तः सुतलं छन्द ईरितम् ।
कूर्मो वै देवता चात्र आसनस्योपवेशने ।।५५।।
विनियोगस्तथा प्रोक्त उपविशेत् समन्त्रकम् ।
पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।।५६।।
त्वं च धारयं मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु ।
दुःशिल्पिरचितत्वादि यदन्यासनदूषणम् ।।५७।।
अज्ञातरूपकं याति विलयं विधिना प्रिये ।
पदद्वयं समं सम्यगुरुद्वयोपरिस्थितम् ।।५८।।
सव्यं पादमुपादाय दक्षिणोपरि विन्यसेत् ।
विष्टभ्य कट्योः पार्ष्णी तु नासाग्र न्यस्तलो चनः।।५९।।
पद्मासनं भवेदेतत् प्रशस्तं त्रिपुरार्चने ।
स्वस्तिकं गोमुखं चैवमूर्ध्वस्वस्तिकमेव वा ।।६०।।
पर्यङ्कमासनं शस्तमेवं बद्धासनः प्रिये ।
पश्यन्नभीष्टदेवं च पाददोषं न पश्यति ।।६१।।

अर्घ्य मन्त्र इस प्रकार है। पहले प्रणव (ओं) का उच्चारण करके 'पृथिव्यै नमः' लिखे। मन्त्रोद्धार है 'ओं पृथिव्यै नमः'। दोनों हाथों से आसन का स्पर्श करके यह मन्त्र कहे। तदनन्तर विनियोग करे। यह मन्त्र कें साथ करे। मन्त्र है-'ॐ पृथिवीत्वेति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः' कहकर भूमि पर जल छोड़े तदनन्तर यह पढ़ते हुए आसनासीन हो जाये-

'पृथ्वि त्वया घृता लोका देवि त्वंविष्णुना घृता।
त्वं च धारय मों नित्यं पवित्रमासनं कुरु।।'

हे पृथ्वी! तुमने लोकों को धारण किया है। हे देवी! तुमको विष्णु ने धारण किया है। हे देवी ! तुम मुझे धारण करके इस आसन को पवित्र करो।

हे प्रिये ! दु:शिल्पी से रचित आदि जो आसन के अज्ञात दोष हैं, वह उपरोक्त विधान से नष्ट हो जाता है। हे देवी! दोनों पैर को समरूप से दोनों उरु पर रखे। तदनन्तर बायें पैर को उठाकर दाहिने पर रखे। दोनों एड़ी को कमर के पास ले जाकर स्थापित करे और दृष्टि को नासाग्र में नियोजित करे। यही है पद्मासन। इसे त्रिपुरार्चन में प्रशस्त मानते हैं। हे प्रिये! इनके स्थान पर स्वस्तिक, गोमुख, उर्ध्वस्वस्तिक तथा पर्यङ्क आसन अच्छे माने गये हैं। हे प्रिये! आसनासीन व्यक्ति की इष्टदेव ध्यान में रत अथवा उनके दर्शन में रत होने पर यदि आसनासीन स्थिति में दृष्टि अपने पैरों की ओर चली जाती हैं, तब उसे पाद दोष नहीं होता, लेकिन आसनासीन न रहने पर देवपूजा के समय अपने पैरों की ओर देखना दोषप्रद होता है।।५४-६१।।

न युक्तमन्यथा पाददर्शनं सुरपूजने।
दिग्विभागेषु कौबेरी दिक् शिवाप्रीतिदायिनी ।।६२।।
तस्मात् तन्मुख आसीनः पूजयेत् त्रिपुरां सदा।
उत्तराभिमुखो भूत्वा यदा देवीं प्रपूजयेत् ।।६३।।
उत्तराशा तदा देवि पूर्वाशैव न संशयः।
ईशानमग्निकोणं स्याद्वायपुकोणं तथेशकम् ।।६४।।
दक्षिणाशा तदा ज्ञेया पश्चिमाशा महेश्वरि।
राक्षसं वायुकोणं स्यादाग्नेयं राक्षसं भवेत् ।।६५।।
प्राक्प्रत्यङ्मुखपूजायां लौकिकं पश्चिमं स्मृतम्।
दक्षिणोत्तरपूजायां सम्मुखं पश्चिमं स्मृतम् ।।६६।।

उत्तरमुख होकर पूजा करना शिव को प्रीतिकारक है। अत: साधक को उस ओर मुख करके त्रिपुरापूजन सदैव करना चाहिये। हे देवी! जब पूजक उत्तर की ओर मुख करके पूजन करता है तब उत्तर दिशा उसके लिये पूर्व दिशा हो जाती है, यह नि:संदिग्ध है। तब साधक हेतु ईशानकोण ही अग्निकोण तथा वायुकोण हो जाता है। तब हे महेश्वरी! पूजा काल में दक्षिण को पश्चिम दिशा जाने। तब नैर्ऋत कोण ही वायुकोण एवं अग्निकोण नैर्ऋतकोण हो जाता है। पूर्वाभिमुखीन तथा पश्चिमाभिमुखीन पूजा में से पश्चिममाभिमुखीन पूजा लौकिक वस्तु तथा कामना फल देती है। दक्षिणमुखी तथा उत्तर-मुखी पूजा में से सम्मुखीन दिशा ही पश्चिम दिशा मांनी जाती है। यह नियम केवल योगिनी पूजार्थ है। अन्य के लिए नहीं है।।६२-६६।।

योगिनीचक्रपूजायां दिगियं नान्यथा भवेत्।
कुङ्कुमारुणदेहस्तु रक्ताभरणभूषितः ।।६७।।
रक्तासनोपविष्टस्तु लाक्षारुणगृहे स्थितः।
ताम्बूलरागवदनो धूपामोदसुगन्धितः।।६८।।
कर्पूरक्षोददिग्धाङ्गो रक्तचन्दनभूषितः।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यस्त्रिपुरीकृतविग्रहः ।।६९।।

मनःसङ्कल्परक्तो वा साधकः स्थिरमानसः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मन्दस्मितमुखाम्बुजः।।७०।।
वामकर्णोर्ध्वभागे तु गुरुं च प्रणमेत् ततः।
वामकर्णोर्ध्वभागे तु गणेशं प्रणमेद् बुधः।।७१।।
दुर्गां नमेत् पुरोभागे पृष्ठतः क्षेत्रनायकम्।
स्वदक्षे वामतो देव्या दीपं संस्थापयेत्ततः।।७२।।
तो रमिति मन्त्रेण शिखां दीपस्य संस्पृशेत्।
देवतीर्थेन देवेशि संस्पृश्य च विधानतः।।७३।।
सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहा।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽस्तु शुभदायकः।।७४।।

साधक को चाहिये कि कुंकुम लगाकर देह को अरुण वर्ण का करे। लाल रंग के कपड़ों तथा आभूषण से स्वयं को सजा ले। रक्तासन पर उपविष्ट हो, उसका पूजाकक्ष लाक्षा के लेप से अरुण वर्ण हो। साधक का मुख ताम्बूल से रंजित, रंगा हुआ हो। धूप की गन्ध से सुगन्धित हो। कपूर का शरीर में आलेपन करना चाहिए। साधक लाल चन्दन से चर्चित रहे। उसे अपना शरीर समस्त शृङ्गार से सज्जित कर लेना चाहिए ताकि वह त्रिपुरा के समान वेशवाला प्रतीत हो। साधक का मन संकल्प युक्त (साधन संकल्प युक्त) हो और स्थिर चित्त वाला हो। बुद्धिमान साधक अंजलिबद्ध होकर मन्द मुस्कान वाले मुख के साथ वामकर्ण के उर्ध्व भाग में गुरु को प्रणाम करे। दाहिने कान के उर्ध्व भाग में गणेश को प्रणाम करे। दुर्गा को सामने प्रणाम करे। पीछे क्षेत्रपाल को नमन करे। अपने दाहिने देवता के वाम भाग में दीप की स्थापना करे। 'र' मन्त्र द्वारा दीप शिखा का स्पर्श करे।

हे देवी! उसका विधान पूर्वक स्पर्श करे। स्पर्श मन्त्र है–

सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहा।
स बाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽस्तु शुभदायकः।।

सुप्रकाश रूप यहमहा दीप सब ओर के तिमिर का अपोहन करता है। बाह्य तथा अभ्यन्तर में ज्योति विखेरने वाला यह दीप हमको शुभदायक हो।।६७-७४।।

स तस्य शुभदो दीपो भवेत् स्पर्शनमात्रतः।
पतङ्गकीटकेशादिदाहक्रव्यादसङ्गतः ।।७५।।
वसामज्जास्थिसम्भूतिर्यदाद्यनुपयोगिता ।
अज्ञातरूपकं सर्वं दोषं स्पर्शाद्विनाशयेत्।।७६।।
रोचनाकुङ्कुमाभ्यां च कस्तूरीचन्दनेन्दुभिः।
रञ्जितं चक्रराजं च स्वयम्भूकुसुमैर्युतम्।।७७।।

सिन्दूररजसाक्रान्तं पुरतः सिंहविष्टरे।
संस्थाप्य सहसा देवि योगिनीभिः समं ततः।।७८।।
देवीरूपं विचिन्त्याथ चक्रे पुष्पाञ्जलिं दिशेत्।
अशून्यं कुसुमैः कुर्याच्छून्ये विघ्नाद्यनेकशः।।७९।।
गन्धपुष्पाक्षतादीनि दक्षभागे निधापयेत्।
प्रक्षालनाय करयोः पात्रं पश्चान्निधापयेत्।।८०।।
अर्घ्यादिकं पुराभागे सव्ये कुम्भं निधापयेत्।
मण्डलं वामतः कृत्वा जलेन चतुरस्रकम्।।८१।।

यह दीप पतंग-कीट से, केश आदि जलने के दोष से, मांसभक्षी पक्षिगण के संसर्ग से, वसा-मज्जा-अस्थि की उत्पत्ति तथा अनुपयोगी मद आदि स्पर्श जनित समस्त अज्ञात रूपी दोषों के स्पर्श जनित दुष्प्रभाव को नष्ट कर देता है। तदनन्तर चक्रराज को गोरोचन, कुंकुम, कस्तूरी, चन्दन, कपूर से लिप्त करके उसे स्वयम्भु कुसुम से मण्डित करें। चक्रराज पर सिन्दूर छिड़कर उसे सिंहासन पर रखे। चक्रराज को स्थापित करके उसकी योगिनीगण के साथ (योगिनीगण परिवृत्ता) देवी के समान भावना करे। तथा उस पर पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। उस पर से स्वयम्भु कुसुम को मिटाना उचित नहीं है। अन्यथा अनेक विघ्न आ जाते हैं। चक्र को देवीरूप मानकर उस पर पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिए। उस चक्रराज के दाहिनी ओर गन्ध-पुष्प-अक्षतादि रखे। तदनन्तर हस्त-प्रक्षालनार्थ पात्र भी स्थापित करे।।७५-८१।।

वहन् कराभ्यां देवेशि तत्राधारं मनोहरम्।
सुवर्णरौप्यताम्रादिविहितं स्थापयेत् ततः।।८२।।
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत्।
कलशं हेमजं धन्यं निश्छिद्रं चापि सुन्दरम्।।८३।।
वस्त्रपूतैर्जलैः पूर्णं सगन्धैर्दोषवर्जितैः।
पानीयं घटमध्यस्थं वीक्ष्य गुह्यं च साधकः।।८४।।
वामेन पाणिना देवि तत्राधारे निवेशयेत्।
पूजयेत् सूर्यरूपं तं कलाभिः परमेश्वरि।।८५।।
कलशं तं समभ्यर्च्य विशेषेण वरानने।
तत्रस्थममृतं साक्षाच्चन्द्ररूपं विचिन्तयेत्।।८६।।

हे देवेशी! तदनन्तर दोनों हाथों से सुवर्ण अथवा चाँदी अथवा ताम्र आदि से निर्मित मनोहर आधार कलस को उठाकर चक्र के ऊपर स्थापित करे। वह्निमण्डल-रूप उस कलश की पूजा अग्नि की १० कलाओं के साथ करे। (अग्नि की दस कलायें हैं धूम्रार्चि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालामालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहना, कव्यवाहना)। स्वर्ण का कलस धन्य माना

जाता है। जो छिद्र रहित सुन्दर हो। गन्धयुक्त दोषरहित जल द्वारा उस कलस को भर देना चाहिये। हे देवी! घटस्थ उस जल को गुप्तरूप से देखकर साधक उस पर बायीं हथेली से उसे आधार चक्र पर स्थापित करे। हे परमेश्वरी! सूर्य रूप उस घट की उसकी (सूर्य की) १२ कलाओं के साथ पूजा करे। (ये कलायें हैं तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी तथा क्षमा) हे वरानने! उस कलश की विशेष पूजा करके कलशस्थ जल की साक्षात् चन्द्ररूप भावना करनी चाहिये।।८२-८६।।

चन्द्रमण्डलमभ्यर्च्य कलाभिः सुरवन्दिते ।
आनन्दभैरवं तत्र यजेदानन्दभैरवीम् ।।८७।।
यद्यन्यद्दूषणं पात्रे तोये वाज्ञानतो भवेत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति पूजार्हः कलशो भवेत् ।।८८।।
पात्रमस्त्राम्बुभिः प्रोक्ष्य दक्षतो वह्निमण्डले ।
साधारं स्थापयेद्देवि पूजयेत् तं यथाविधि ।।८९।।
शुद्धोदकेन सम्पूर्णं मूलविद्यां ततो जपेत् ।
प्रोक्षयेत्तेन कलशं प्रोक्षिणीस्थेन वारिणा ।।९०।।
वामतस्तु तथा शङ्खं प्रतिष्ठाप्य विधानतः।
तदुत्तरत एवास्मिन् पाद्यमाचमनीयकम् ।।९१।।

हे सुरवन्दिते! चन्द्रमण्डल की पूजा उसकी कलाओं के साथ करे और वहाँ (उसी में) आनन्द भैरव एवं आनन्द भैरवी का पूजन करे। इससे पात्र का अथवा वहाँ के जल का अज्ञात दोष यदि कोई है तो वह नाश को प्राप्त हो जाता है और कलश पूजन योग्य हो जाता है। हे देवी! पात्र का प्रोक्षण अस्त्र मन्त्र (फट्) से करके उसे दायीं ओर स्थित वह्निमण्डल पर आधार के साथ रख देना चाहिए। उसकी पूजा यथाविधि करनी चाहिए। उस कलश को जल से भर कर मूलमन्त्र का जप करे। जप करते-करते प्रोक्षणी के जल से उस कलश का प्रोक्षण सम्पन्न करना चाहिए। उसके बायीं ओर शंख की स्थापना विधान पूर्व करके उसके समक्ष पाद्य एवं आचमनीय रखे।।८७-९१।।

चक्रोपरि शिवां नत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत् ।
स्वभावतः सदाऽशुद्धं पञ्चभूतात्मकं वपुः।।९२।।
सदा पूतिसमायुक्तं श्लेष्मविण्मूत्रपिच्छिलम् ।
तस्यैव हि विशुद्ध्यर्थं वाय्वग्निसलिलाक्षरैः।।९३।।
शोषदाहौ तथा भस्मप्रोत्सादोऽमृतवर्षणम् ।
आप्लावनं च कर्तव्यं पूरकुम्भकरेचकैः।।९४।।
पञ्चशुद्धिविहीनेन कृतं यदभिचारवत् ।
विपरीतफलं दद्यादभक्त्याभ्यर्चनं तथा ।।९५।।

अब भूत शुद्धि कहते हैं–चक्र पर शिवा को नमन करके भूतशुद्धि करनी चाहिये। स्वभावतः यह पाञ्च भौतिक शरीर सर्वदा अशुद्ध है। यह अपवित्र है, कफ, मल, मूत्र से यह सदा चिकना आर्द्र रहता है। शुद्धि हेतु वायुबीज 'यं' से शोषण, अग्निबीज 'रं' द्वारा दहन तथा भस्म उड़ाना, तथा जलबीज से अमृत वर्षा तथा आप्लावन कर्म को पूरक-कुंभक एवं रेचक प्राणायाम से करना चाहिए। पंचशुद्धिविहीन स्थिति में किया गया कर्म अभिचार के समान है। ऐसी अभक्ति से किया गया अर्चन विपरीत फल देता है।।९२-९५।।

शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् ।
अव्ययब्रह्मसंस्पर्शाद् भूतशुद्धिरियं प्रिये ।।९६।।
अन्तःकरणमध्ये तु ज्योतिरात्मा प्रवर्तते ।
लिङ्गदेहं तु तं प्राहुर्योगिनस्तत्त्ववेदिनः ।।९७।।
तस्य वै शोधनं चैव सर्वशुद्धिः प्रजायते ।
तदेव विश्वजननकारणं जन्मकारणम् ।।९८।।

हे प्रिये! शरीराकार भूतों का (अर्थात् जब पंचमहाभूत शरीराकृति धारण करके देह का गठन करते हैं) जो शोधन है, वही अव्यय ब्रह्म के संस्पर्श में भूतशुद्धि कही जाती है। अन्तःकरण में ज्योतिरूप आत्मा प्रवर्तित है, उसे ही योगीगण लिंगदेह कहते हैं। लिंगदेह का शोधन हो जाने से सर्वशुद्धि हो जाती है। वहीं विश्वजनन कारण है और शरीर के जन्म का कारण है। उसकी प्रतीति से ही मुक्ति प्राप्त होती है जो करोड़ों जन्म में भी अन्य उपाय से नहीं हो सकती।।९५-९८।।

तत्प्रतीतौ भवेन्मुक्तिर्नान्यतो जन्मकोटिभिः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा योनिमुद्रां तथा स्मरेत् ।।९९।।
विद्याकूटत्रयं देवि वह्न्यर्केन्दुमयं धिया ।
पुरत्रयेऽथ संचिन्त्य तेषामैक्यं ततः स्मरेत् ।।१००।।
तस्मिंस्तेजोमये बिम्बे सच्चिदानन्दधामनि ।
केवलानुभवानन्दे परब्रह्मणि शाश्वते ।।१०१।।
निमज्य बिन्दुगे धाम्नि क्षणं स्थित्वा तु चिन्तयेत् ।
बालार्ककिरणारक्तं तत्तत्तेजोमयं स्मरेत् ।।१०२।।

तीन प्राणायाम करके तब योनिमुद्रा करे। हे देवी! तदनन्तर अग्नि-सूर्य-चन्द्र वाले विद्याकूटत्रय की भावना (मन) से तीन पुरों में ध्यानोपरान्त इनकी ऐक्य भावना करे। सच्चिदानन्द रूप उस तेजोमय केवल अनुभवानन्द स्वरूप (जो केवल अनुभव तथा आनन्द रूप है) शाश्वत परब्रह्म में निमज्जन करके उस स्थिति में क्षण पर्यन्त स्थिर रहकर चिन्तन करे। उसमें बाल सूर्य की किरण के सगान रक्तवर्ण रूप उन (उनकी तुरीया परमा कला का ध्यान करे) तेजोमय का स्मरण करे।।९९-१०२।।

शुद्धलाक्षामृताम्भोधिमध्ये चातिमनोहरे ।
नवरत्नमये द्वीपे तच्चिन्तामणिमण्डपे ।।१०३।।
रत्नसिंहासनाम्भोजे वह्न्यर्केन्दुस्वरूपिणीम् ।
बालार्ककोटिसङ्काशां तुरीयां परमां कलाम् ।।१०४।।
दक्षिणाधः करे बाणान् वामाधो धनुरेव च ।
दक्षिणोर्ध्वें सृणिं वामे पाशं चापि करे धृतम् ।।१०५।।
अरुणामरुणाकल्पवसनाक्षित्रयान्विताम् ।
आत्माभेदेन संचिन्त्य शुद्धज्ञानस्वभाविनम् ।।१०६।।
केवलानुभवानन्दमात्मानं परिचिन्तयेत् ।
ओं ह्रीं हंसस्ततः सोऽहं स्वाहेति मनुना शिवे ।।१०७।।
बालाबीजत्रयस्यान्ते महात्रिपुरसुन्दरि ।
आत्मानं रक्ष रक्षेति कुर्याद्रक्षां हृदि स्पृशन् ।।
दिग्बन्धः स्वस्त्रिया(?)चैवं छोटिकाभिः समन्ततः।।१०८।।

ध्यान यह है–शुद्ध लाक्षा के रंग वाले अमृत समुद्र में अति मनोहारी नवरत्न-मय द्वीप के चिन्तामणि मण्डप में कमलाकृति सिंहासन पर अग्नि-सूर्य-चन्द्र स्वरूपिणी कोटि बालसूर्य के समान तुरीया परमाकला स्थित हैं। उनके दाहिने निचले हाथ में बाण और बाये निचले हाथ में धनुष है। दाहिने ऊपरी हाथ में अंकुश है, बायें ऊपरी हाथ में पाश स्थित है। वे स्वयं अरुणवर्णी हैं, वस्त्र भी अरुण हैं, वे त्रिनेत्रा हैं। उन्हें अपने आत्मा से अभिन्न मानकर स्वयं की शुद्धज्ञान स्वभाव, केवलानुभवानन्द आत्मारूप भावना करें। तदनन्तर 'ओं ह्रीं हंस सोऽहं स्वाहा' मन्त्र को बाला त्रिबीज (ऐं क्लीं सौः) के अन्त में लगाकर तदनन्तर 'महात्रिपुरसुन्दरी आत्मानं रक्ष रक्ष' से हृदय का स्पर्श करके आत्म रक्षा करे। तदनन्तर चुटकी बजाकर दिग् बन्धन किया जाता है। उपरोक्त रक्षा मन्त्र है ''ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरी आत्मानं रक्ष रक्ष ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा''।।१०३-१०८।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे यागधामार्चनभूतशुद्ध्यादि-वर्णननामाष्टमः पटलः।।८।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद का यागधामार्चन भूतशुध्यादि वर्णन नामक आठवां पटल समाप्त ।।

◆

नवमः पटलः

करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यासनिरूपणम्

ईश्वर उवाच–

देव एव यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् ।
न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं शिवे ।।१।।
न्यासात्तदात्मको भूत्वा देवो भूत्वा तु तं यजेत् ।
प्राणायामैस्तथा ध्यानैर्न्यासैर्देवशरीरता ।।२।।

देवता भाव अपने में दृढ़ करके ही देवपूजा करनी चाहिए। स्वयं में देवभाव के अभाव में देवार्चन नहीं हो सकता। हे शिवे! न्यास रहित जप आसुर जप एवं व्यर्थ जप है। न्यास से (देवता के साथ) तादात्म्य होने के कारण जापक देवरूप हो जाता है। न्यासोपरान्त ही देवपूजा प्रारम्भ करे। प्राणायाम ध्यान तथा न्यास से साधक में देवरूपता आती है॥१-२॥

न्यासविधिं शृणु प्राज्ञे करशुद्धिपुरःसरम् ।
मातृकाद्यं समुद्धृत्य द्वितीयं च सबिन्दुकम् ।।३।।
शा(?सा)न्तान्तं कादिसंयुक्तमेकारान्तान्तयोजितम् ।
एवमेषा महाविद्या करशुद्धिकरी मता ।।४।।

हे प्राज्ञे! करशुद्धि मैंने पूर्व में कही है। अब न्यास विधि को सुनो। आद्यमातृका (अ) का उद्धार करके दूसरे वर्ण को बिन्दु सहित (आं) कहकर आदि से संयुक्त करे तथा अन्त में ए कार लगाये। यह विद्या करशुद्धि करने वाली है (हो सकता है कि इसका स्वरूप यह हो तथापि साधक गुरु तथा सम्प्रदायानुसार इसे संशोधित करे। मेरे विचार से यह स्वरूप है–अं आं कं खं गं घं ङं इं ईं चं छं जं झं ञं उं ऊं टं ठं डं ढं णं ऋं ॠं तं थं दं धं नं ऌं ॡं पं फं बं भं मं एं ऐं यं रं लं वं शं ओं औं षं सं हं)॥३-४॥

गृहीत्वा रक्तपुष्पं च सगन्धं साधकस्तः।
अनेनैव तु मन्त्रेण पुष्पं हस्ततलस्थितम् ।।५।।
सम्मार्ज्य सव्यहस्तेन वामेन पाणिना ततः।
निर्मञ्छ्य कामबीजेन जिघ्रपेद्वाग्भवेन तु ।।६।।
ऐशान्यां निःक्षिपेदेतच्छेषबीजेन पार्वति ।
अङ्गुल्यग्राणि शुद्धानि पुष्पस्य ग्रहणाद्भवेत् ।।७।।
मर्दनात् करयोः शुद्धिर्निर्मञ्छनात्तु पृष्ठयोः।
घ्राणाद्देवाश्च तुष्यन्ति तीर्थानां च समागमः।।८।।

प्रक्षेपात् सर्वविघ्नानां दूरसंस्थानमेव च।
दुर्गन्धोच्छिष्टसंस्पर्शदूषणं करयोस्तु यत्।।९।।
अज्ञातरूपं तत्सर्वं नाशयेद्विधिनामुना।
करशुद्धिं विधायादावृषिन्यासादिकं ततः।।१०।।

अब साधक गन्ध तथा रक्त पुष्प लेकर इसी मन्त्र से पुष्प तथा गन्ध को दाहिनी हथेली में रख बायीं हथेली से मले। अब बायीं हथेली से इसे कामबीज (क्लीं) पढ़ते हुये झाड़े तथा वाग्भव (ऐं) बीज कहते हुए सूंघे। हे पार्वती! तदनन्तर अंतिम बीज (आं) कहते हुए उसे ईशान कोण में त्याग दे। इसे सूंघते समय देवता प्रसन्न हो जाते है। जो सूँघता है उस जापक साधक के शरीर में तीर्थगण का आगमन होता है। फेंककर त्यागने से (ईशानकोण में) समस्त विघ्न दूरीभूत हो जाते हैं। हथेली की दुर्गन्ध तथा जूठन आदि को छूने से साधक के हाथों का जो दोष संचित हो गया है तथा अनजाना जो दोष है, वह इस विधि से नष्ट हो जाता है। करशुद्धि के अनन्तर ही ऋष्यादि न्यास करे।।५-१०।।

ऋषिच्छन्दो दैवतानां विन्यासेन विना यदा।
जप्यते साधितेऽप्येष न तत्र तत्फलं लभेत।।११।।
ऋषिरस्या महेशानि दक्षिणामूर्तिरव्ययः।
पङ्क्तिश्छन्दस्तथा प्रोक्तं विद्यायाः शृणु पार्वति।।१२।।
देवता परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी।
विनियोगः समाख्यातो भुक्तिमुक्तिप्रसाधने।।१३।।
शिरसि मुखवृन्ते च हृदये च प्रविन्यसेत्।
मातृकां शृणु देवेशि सर्वपापविनाशिनीम्।।१४।।
या ब्राह्मीप्रमुखा देव्यो मातरः परिकीर्तिताः।
तासां मन्त्राणि सर्वाणि व्यञ्जनानि स्वरास्तथा।।१५।।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ताः सर्वकामफलप्रदाः।
ऋषिः सम्मोहनः प्रोक्तश्छन्दो गायत्रमुच्यते।।१६।।
देवतेयं समुद्दिष्टा समस्तजननी परा।
शक्तयस्तु स्वरा देवि बीजं व्यञ्जनसञ्चयः।।१७।।

ऋषि छन्द तथा देवता के न्यास से रहित जो जपानुष्ठान किया जाता है, वह जप पूर्ण समाप्त कर देने पर भी कोई फल नहीं देता। हे पार्वती! हे महेशानी! इस विद्या के ऋषि हैं अव्यय रूप दक्षिणामूर्त्ति। पंक्ति छन्द है, परमेशानी महात्रिपुरसुन्दरी इसकी देवता हैं। इसका विनियोग होता है भोग एवं

मोक्ष सिद्धि हेतु। इस न्यास को शिर मुख तथा हृदय में करे। हे देवेशी! अब सर्वपापविनाशिनी मातृका को सुनों। ब्राह्मी आदि प्रमुखा देवी माता रूपेण कीर्त्तित हैं। समस्त व्यंजन तथा स्वर जो चन्द्र बिन्दु युक्त हैं, सर्वकामफल दायक हैं। उस मन्त्र के सम्मोहन नामक ऋषि हैं, गायत्री छन्दः है, देवता हैं समस्त सब कुछ की जननी परा (त्रिपुरसुन्दरी)। बीज है स्वर-व्यंजन समूह॥१४-१७॥

विनियोगः समुद्दिष्टः समस्तजनमोहने।
स्वरेण दीर्घयुक्तेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१८॥
हृदयं च शिरो देवि शिखा च कवचं ततः।
नेत्रमस्त्रं न्यसेत् स्वीयमुद्राजातियुतं नमः॥१९॥
स्वाहा वषड् हुं च वौषट् फडन्तं योजयेत् प्रिये।
षडङ्गोऽयं मातृकायाः सर्वपदोत्तरः शिवे॥२०॥

इसका विनियोग सर्वजन मोहनार्थ किया जाता है। दीर्घ युक्त स्वर से षडङ्गन्यास करना चाहिए। हे देवी! हृदय, शिर, शिखा तथा कवच, दोनों नेत्र, तथा अस्त्र का उन-उन मुद्राओं द्वारा न्यास करना चाहिए। उनमें (यथा स्थान) स्वाहा, वषड् 'ॐ, वौषट्, फट् को युक्त करे। हे शिवे! यह मातृकाओं का सर्वपदोत्तर षडङ्ग कहा गया है॥१८-२०॥

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां
कोदण्डमिक्षुजनितं स्मर रपञ्चबाणान्।
विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां
ध्यायेत् समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम्॥२१॥

अब ध्यान करना होगा। यथा–कोटि बाल सूर्य के समान रुचिर हाथों में स्फटिक अक्षमाला धारिणी, ईख के धनुष तथा काम के पंचबाण को धारण करने वाली, विद्या धारिणी त्रिनेत्र नवचन्द्र चूड़ा धारिणी विश्वजननी त्रिपुरा का ध्यान करे॥२१॥

द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान्षोडश चिन्तयेत्।
हृत्पद्मे द्वादशच्छदे कादीन् द्वादश विन्यसेत्॥२२॥
दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादीन् न्यसेद्दश।
षट्पत्रे लिङ्गमध्यस्थे बकारादीन्न्यसेद् रसान्॥२३॥
आधारे चतुरो वर्णान् वादीन् न्यसेच्चतुर्दले।
हक्षौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्विदले परिचिन्तयेत्॥२४॥
इत्यन्तर्मातृकाः स्मृत्वा बहिर्न्यासं ततश्चरेत्।
अकारादिक्षकारान्ता मातृकाः परिकीर्तिताः॥२५॥

प्रत्येकं कामबीजाद्याः सर्वकामफलप्रदाः।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्ता नमोऽन्ताश्च प्रविन्यसेत् ।।२६।।

कण्ठ में षोडशदल कमल में १६ स्वरों का चिन्तन करे। हृदय के द्वादश दल कमल में 'क' से लेकर 'ठ' तक के १२ व्यञ्जनों का न्यास करे। नाभीस्थ दशदल कमल में 'ड' से लेकर 'फ तक के १० व्यञ्जनों का न्यास करना चाहिए। षड्दल लिंग मध्य में 'ब' से लगाकर 'ल' तक का न्यास करे। चतुर्दल कमल मूलाधारस्थ है। वहाँ 'व' से लेकर 'स' तक के व्यञ्जनों का न्यास करे। भ्रूमध्यस्थ द्विदल कमल में 'ह' 'क्ष' चिन्तन करे। यह अन्तर्मातृका न्यास है। तदनन्तर बहिर्न्यास करना होगा। अब बहिर्न्यास कहते हैं–'अ' से लेकर 'क्ष' पर्यन्त को मातृका कहते हैं। प्रत्येक के पूर्व में (आदि में) कामबीज 'क्लीं' का योग करने से वह सर्वकामफलप्रद हो जाती है। मातृका पर चन्द्र बिन्दु (ँ) लगाकर अन्त में नमः लगाये।।२२-२६।।

ललाटे मुखवृत्ते च नेत्रकर्णेषु पार्वति ।
नासागण्डौष्ठदन्तेषु समूर्धास्येषु शाङ्करि ।।२७।।
पाणिपादयुगस्यान्तः सन्ध्यग्रेषु क्रमाच्छिवे ।
पार्श्वद्वये पृष्ठनाभिजठरेषु क्रमान्न्यसेत् ।।२८।।
यादीन् सधातुकान् देवि क्रमेणैव ततो न्यसेत् ।
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।।२९।।
प्राणात्मा च जीवात्मा च परमात्मा तथैव च ।
हृदये बाहुमूले च तथा कण्ठप्रदेशके ।।३०।।
स्कन्ध योर्हृदयप्रान्ते पाणिपादयुगे तथा ।
जठराननयोर्देवि सर्वाङ्गेषु क्रमान्न्यसेत् ।।३१।।

हे पार्वती! जहाँ न्यास करना है उन स्थानों को कहते हैं–ललाट, मुखवृत्त, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासापुटद्वय, गण्डद्वय, ओष्ठद्वय, ऊपर नीचे की दोनों दन्त पंक्ति, मूर्द्धा, पाणिद्वय, पादद्वय, अन्तःसन्धिद्वय, पार्श्वद्वय, पीठ, नाभि, जठर इन सब स्थानों का क्रम से न्यास करे। हे देवी! अब क्रम से धातुओं का न्यास करना चाहिए वे हैं–त्वक्, रक्त, मांस, भेद, अस्ति मज्जा। तदनन्तर प्राणात्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा का न्यास करके हृदय, बाहुमूलद्वय, कण्ठ, स्कन्धद्वय, हृदयप्रान्त, पाणिद्वय, पादद्वय, जठर, आनन तथा सर्वांग का न्यास करे। (यहाँ जठर का न्यास दो बार है)।।२७-३१।।

ललाटेऽनामिकां मध्यां विन्यसेन्मुखपङ्कजे ।
तर्जनीमध्यमानामावृद्धा एव तु नेत्रयोः।।३२।।

अङ्गुष्ठं कर्णयोर्देवि कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ नसोः।
मध्यास्तिस्रो गण्डयोश्च मध्यमामोष्ठयोः प्रिये ।।३३।।
अनामां दन्तयोर्देवि मध्यमामुत्तमाङ्गके ।
मुखेऽनामां मध्यमां च हस्तपादेऽथ पार्श्वयोः।।३४।।
कनिष्ठानामिकामध्यास्तास्तु पृष्ठेऽथ पार्वति ।
तास्तु साङ्गुष्ठका नाभौ सर्वाः कुक्षौ प्रविन्यसेत् ।।३५।।
हृदये च तलं सर्वं बाह्वोः कण्ठप्रदेशके ।
स्कन्धयोर्हृदयप्रान्ते हस्तपादयुगे तथा ।।३६।।
जठरास्ययुगे देवि तलमेव प्रकीर्तितम् ।
एतास्तु मातृकामुद्राः क्रमेण परिकीर्तिताः।।३७।।
अज्ञात्वा विन्यसेद्यस्तु न्यासः स्यात्तस्य निष्फलः।
अनामया वा पुष्पैर्वा मनसा वा न्यसेदुत ।।३८।।

ललाट में अनामिका से, मुखवृत्त में मध्यमा से, नेत्रद्वय में तर्जनी-मध्यमा-अनामा से न्यास करे। हे देवी! कर्णद्वय का अंगूठे से, नासापुटद्वय का कनिष्ठा तथा अंगूठे से न्यास करे। दोनों गण्ड में तीन बीच की ऊँगलियों से, तथा ओष्ठद्वय में मध्यमा से न्यास करे। हे देवी! दन्तपंक्तिद्वय का न्यास अनामिका द्वारा करे। शिर का न्यास मध्यमा से, मुख का न्यास अनामिका एवं मध्यमा से, हाथों पैरों तथा दोनों पार्श्व का कनिष्ठा, अनामिका तथा मध्यमा से तथा पृष्ठदेश का भी इन्हीं से न्यास करे। हे पार्वती! अंगुष्ठ के साथ कनिष्ठा-अनामिका एवं मध्यमा द्वारा नाभि का तथा कुक्षि का समस्त उंगलियों से न्यास करे। हृदय, करतल, भुजद्वय, कण्ठ, स्कन्धद्वय, हस्तद्वय, पादद्वय, जठर, आस्य अर्थात् मुख में करतल से ही न्यास करने का विधान है। ये सब मातृका मुद्रा यहाँ क्रमानुसार कही गयी हैं। जो इन्हें बिना जाने न्यास करता है, उसका न्यास फलदायक नहीं होता। यदि साधक सभी उंगलियों से न्यास न कर सके, तब उसके लिए अनामिका एवं पुष्प से अथवा दोनों में से एक ही से न्यास करने की स्वतन्त्रता दी गयी है। अथवा यह दोनों मीन (अशक्त हो) हो, तब वह मन ही मन न्यास करे।।३२-३८।।

एवं तु मातृकान्यासं य कुर्यात् परमेश्वरि ।
सर्वयज्ञेषु पूजासु पूता योग्यश्च जायते ।।३९।।
नातः परतरो मन्त्रो विद्यते क्वचिदेव हि ।
ये ये मन्त्रा देवतानामृषीणामथ रक्षसाम् ।।४०।।
ते सर्वे मातृकामन्त्रे नित्यमेव प्रतिष्ठिताः।
सर्वमन्त्रमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ।।४१।।

चतुर्वर्गप्रदश्चायं तुष्टिपुष्टिप्रदायकः।
सर्वपीठमयश्चापि मातृकान्यास उच्यते ।।४२।।

अब मातृका न्यास का महत्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि हे परमेश्वरी! जो ऐसे मातृका न्यास करता है वह सभी यज्ञ तथा पूजन कर्म हेतु पवित्र होता है तथा उनका अधिकारी होता है। कहीं भी इससे श्रेष्ठ मन्त्र नहीं है। राक्षस, देवता तथा ऋषिगण के सभी मन्त्र मातृका मन्त्र में ही नित्य प्रतिष्ठित रहते हैं। यह सर्व देवमय, सर्व मन्त्रमय, धर्मार्थकाममोक्ष प्रदायक, तुष्टि-पुष्टि प्रदाता है। यह सर्वपीठमय न्यास कहा गया है।।३९-४२।।

यः कुर्यान्मातृकान्यासं विनैव सुरपूजनात् ।
तस्माद्विभेति सततं भूतग्रामश्चतुर्विधः।।४३।।
तं द्रष्टुमपि देवाश्च स्पर्धयन्ति महौजसम् ।
स तु सर्वं वशं कुर्यान्न च याति पराभवम् ।।४४।।
पुटितां सर्वबीजेन समस्तजननीं पराम् ।
पञ्चाशन्मातृकां विद्यां जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।४५।।
वाग्देवतां हृदि ध्यात्वा मूर्ध्नि सर्वाक्षराणि तु ।
द्विधा च मातृकामन्त्रैः सक्रमैर्व्युत्क्रमैरपि ।।४६।।
मन्त्रयित्वा महेशानि प्रभाते यः पिबेज्जलम् ।
स वाग्मी पण्डितो धीमाञ्जायते प्रवरः कविः।।४७।।
चन्द्रबिन्दुसमायुक्तान् स्वरान् पूर्वं पठेद्बुधः।
व्यञ्जनानि तु सर्वाणि केवलानि पठेत् प्रिये ।।४८।।

मातृका न्यास निरत साधक से चारों प्रकार के भूत उससे भयभीत रहते हैं, भले ही वह तब देवपूजा में न हो। उस महान् तेजस्वी साधक का दर्शन करने के लिए देवगण भी आपस में होड़ करते हैं कि किसे पहले दर्शन मिल जाये। सभी उसके वशीभूत हो जाते हैं। वह कभी भी पराजित नहीं होता। 'हंसौः' बीज से सभी ५० वर्णों वाली विश्वजननी मातृका को सम्पुटित करके १०८ बार जपे। जो हृदय में वाग् देवता का तथा मूर्धा में समस्त अक्षरों का ध्यान करने में तत्पर होकर जल को अनुलोम-विलोम मातृका से मन्त्रित करके उस जल का प्रातः प्रभात काल में पान करता है, वह वाग्मी, पण्डित, धीमान प्रवर कवि हो जाता है। यहाँ यह नियम है कि बुद्धिमान व्यक्ति पहले स्वरों को चन्द्र बिन्दु लगाकर पढ़े। हे प्रिये! तदनन्तर व्यञ्जन वर्णों को बिन्दु को बिना ऊपर लगाये पढ़ना चाहिये।।४३-४८।।

जलं हस्ततले गृह्य पठित्वाऽक्षरसंहतिम् ।
अभिमन्त्र्य च तत्तोयं प्रथमं पूरकैः पिबेत् ।।४९।।

कुम्भकेन द्वितीयं तु तृतीयं रेचकेन तु।
एवं सकृत् त्रिवारं तु पीत्वा तोयं विचक्षणः।।५०।।
दृढाङ्गः पण्डितो भूयात् पुत्रपौत्रसमन्वितः।
त्रिसन्ध्यमथ पीत्वैवं मातृकामन्त्रमन्त्रितम्।।५१।।
तोयं कवित्वमाप्नोति सर्वान् कामांस्तथैव च।
सततं कुरुते यस्तु मातृकामन्त्रमन्त्रितम्।।५२।।
तोयदानं महादेवि पूरकुम्भकरेचकैः।
स सर्वकामान् सम्प्राप्य पुत्रपौत्रसमृद्धिमान्।।५३।।
भूत्वा महाकविर्लोके बलवान् सत्यविक्रमः।
सर्वत्र दुर्लभो भूत्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयात्।।५४।।
राजानमथवा राजपुत्रं भार्यां च वा प्रिये।
वशीकरोति न चिरान्मातृकामन्त्रपालकः।।५५।।

अब इसे विस्तार से कहा जा रहा है। जल को हाथ में लेकर मातृकाओं के पाठोपरान्त उस अभिमन्त्रित जल को पहले पूरक स्थिति में पान करे। तदनन्तर कुंभक स्थिति में, तदनन्तर रेचक स्थिति में उस जल का पान करना चाहिए। (यह एक बार जल पीना कहा जायेगा) ऐसे ही एक बार अथवा तीन बार इस जल को पीकर साधक सर्व कामनाओं के फल की प्राप्ति करता है। पुत्र-पौत्र से युक्त तथा समृद्धिवान हो जाता है। वह लोकों में महाकवि, बलवान, सत्य, पराक्रमी भी हो जाता है। वह जगत् में सर्वत्र दुर्लभ (अर्थात् अद्वितीय) होकर अन्त में मोक्ष को प्राप्त करता है। हे प्रिये! इसका जप करने से राजा, राजपुत्र, भार्या भी शीघ्र वश में हो जाते हैं।।४९-५५।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे करशुद्ध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यास-वर्णननामको नवमः पटलः।।९।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवादान्तर्गत् करशुध्यन्तर्बहिर्मातृकान्यास वर्णन नामक नवम पटल समाप्त।।

◆

दशमः पटलः

षोढान्यासक्रमनिरुपणम्

श्रीदेव्युवाच–

षोढाख्यां मातृकां देव कथयस्व वृषध्वज।

ईश्वर उवाच–

गणेशैः प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः।।१।।
नक्षत्रैश्च तृतीयः स्याद्योगिनीभिश्चतुर्थकः।
राशिभिः पञ्चमो न्यासः षष्ठः पीठैर्निगद्यते।।२।।
षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः।

श्रीदेव्युवाच–

फलं चास्य प्रयोगं च विशदीकुरु तत्त्वतः।।३।।

ईश्वर उवाच–

नारायणोऽस्यर्षि प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम्।
शिवशक्त्यात्मवर्ण(ऋषी?राशि)र्देवता च सदाशिवः।।४।।
हंसः शक्तिः परा बीजं श्रीबीजं चैव कीलकम्।
पुरुषार्थप्रसाध्ये च विनियोगः प्रकीर्तितः।।५।।

देवी कहती हैं–हे देव! हे वृषध्वज! षोढामातृकान्यास को कृपया कहिये। ईश्वर कहते हैं–गणेशमन्त्र द्वारा प्रथम न्यास ग्रह मन्त्रों से द्वितीय न्यास कहा गया है। नक्षत्र मन्त्रों से तृतीय न्यास, योगिनीमन्त्र से चतुर्थ न्यास राशियों के मन्त्रों से पंचम न्यास एवं पीठ मन्त्रों से षष्टम न्यास करते हैं। इसी का नाम है पोढान्यास। यह सभी कामनाओं को फलीभूत करने वाला है। ईश्वर कहते हैं इस षोढान्यास के ऋषि हैं नारायण। छन्दः है त्रिष्टुप्। वर्ण राशि है शिवशक्त्यात्मक तथा देवता हैं सदाशिव। शक्ति है हंसः, बीज है परा (ह्रीं), कीलक है लक्ष्मीबीज (श्रीं)। इसका प्रयोग पुरुषार्थ सिद्धि हेतु करते हैं।।१-५।।

गूर्ध्नि संचिन्तयेद्देवि श्रीगुरुं शिवरूपिणम्।
रमाबीजं परं पश्चाद्धंसात् स्वराद्यमीरितम्।।६।।
विघ्नेश्वराय वै प्रोच्य श्रियै नमस्ततः परम्।
विघ्नराजादिकानेवं शक्तियुक्तांस्तथैव च।।७।।
विन्यसेन्मातृकास्थाने मातृकङ्कान्वितं शिवे।
विघ्नराजाय देवेशि ह्रियै नमस्तः परम्।।८।।
विनायकाय च तुष्ट्यै शान्त्यै शिवोत्तमाय च।
विघ्नकर्त्रे तथा पुष्ट्यै नम इति प्रविन्यसेत्।।९।।

विघ्नहर्त्रे सरस्वत्यै नम इति प्रविन्यसेत् ।
विनायकाय मेधायै पूर्ववदत्र विन्यसेत् ।।१०।।
एकदन्ताय कान्त्यै च द्विदन्ताय च यामिनीम् ।
गजवक्त्राय मोहिन्यै निरञ्जनजटे तथा ।।११।।
कपर्दिने च तीव्रायै ज्वालिनी दीर्घवक्त्रकः ।
शङ्कुकर्णाय नन्दायै स्वरसा च वृषध्वजः ।।१२।।
गणनाथश्च कामिन्या गजेन्द्रश्च शुभा तथा ।
जयिनी शूर्पकर्णश्च सत्यया च त्रिलोचनः ।।१३।।
लम्बोदराय विघ्नेश्यै महानन्दः स्वरूपिणी ।
कामदया चतुर्मूर्तिः सदाशिवस्ततः परम् ।।१४।।
मदविह्वलया युक्तः आमोदो विकटायुतः ।
दुर्मुखाय च घूर्णायै सुमखो भूतिसंयुतः ।।१५।।
प्रमदाय तथा भूम्यै एकपादा मतिस्तथा ।
द्विजिह्वो रमया युक्तः सुरसेनश्च मानुषी ।।१६।।
मकरध्वजया युक्तो वीरश्च परमेश्वरि ।
षण्मुखाय विकर्णायै वरदोभ्रुकुटीयुतः ।।१७।।
वामदेवाय लज्जायै दीर्घघोणायुतस्ततः ।
वक्रतुण्डो द्विरण्डश्च धनुर्धरायुतः प्रिये ।।१८।।
सेनान्ये चैव यामिन्यै ग्रामणी रात्रिसंयुतः ।
मत्तश्चन्द्रिकया युक्तो विमत्ताय शशिप्रभा ।।१९।।
तथैव परमेशानि लोलया मत्तवाहनः ।
जटिने चपलाक्ष्यै च मुण्डी ऋद्धियुतस्तथा ।।२०।।
खड्गी दुर्भगया युक्तो वरेण्यः सुभगायुतः ।
न्यस्तव्यः परमेशानि शिवया वृषकेतनः ।।२१।।
भक्तप्रियाय दुर्गायै मेघनादाय कामिनी ।
कालकुब्जासमायुक्तो गणेश्वरः प्रकीर्तितः ।।२२।।
गणेशो विघ्नहारिण्या न्यस्तव्यः साधकोत्तमैः ।
सूर्यमुखान् महादेवि न्यसेत् कामदुघानथ ।।२३।।
स्वरान् सर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्वितान् ।
सूर्याय नम उच्चार्य हृदये च प्रविन्यसेत् ।।२४।।
भ्रुवोर्मध्ये तथा सोमंयवर्गेण वर्गेण प्रविन्यसेत् ।
भूपुत्रं लोचनद्वन्द्वे कवर्गेण तथैव च ।।२५।।

बुधं च हृदये देवि चवर्गेण प्रविन्यसेत्।
बृहस्पतिं तथा कण्ठे टवर्गेण प्रविन्यसेत्।।२६।।
भार्गवं तु गले देशे तवर्गेण तथा प्रिये।
पवर्गेण शनिं नाभौ राहुं गुदे शवर्गकैः।।२७।।

हे देवी! मूर्द्धा में शिवरूप गुरुदेव का ध्यान करे। हंस बीज (हं) के पश्चात् रमाबीज तदनन्तर प्रथम स्वर तदनन्तर 'विघ्नेश्वराय' कहकर 'श्रियै: नमः'' कहे। ऐसे ही न्यास करे, (अब श्लोकों का शब्दार्थ न कहकर उनकी प्रक्रिया लिखी जा रही है) न्यास इस प्रकार से करना चाहिए।

हं श्री अं विघ्नेश्वरीय श्रियैनमः, हं श्री आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः, हं श्रीं इं विनायकाय तुष्ट्यै नमः, हं श्रीं ईं शिवोत्तमाय शान्त्यै नमः, हं श्रीं उं विघ्नकर्त्रे पुष्ट्यै नमः, हं श्रीं उं विघ्नकर्त्रे सरस्वत्यै नमः, हं श्रीं ऋं विनायकाय मेघायै नमः, हं श्रीं ॠं एकदन्ताय कान्त्यै नमः, हं श्रीं ऌं द्विदन्ताय यामिन्यै नमः, हं श्रीं लृं गजवक्त्राय मोहिन्यै नमः, हं श्रीं एं निरञ्जनाय जटायै नमः, हं श्रीं ऐं कपर्दिने तीव्रायै नमः, हं श्रीं औं शङ्कुकर्णाय नन्दायै नमः, हं श्रीं अं वृषध्वजाय स्वरसायै नमः, हं श्रीं अः गणनाथाय कामिन्यै नमः, हं श्रीं कं गजेन्द्रय शुभायै नमः, हं श्रीं खं सूर्पकर्णाय नमः, हं श्रीं गं त्रिलोचनाय सत्यायै नमः। हं श्रीं घं लम्बोदराय विघ्नेश्यै नमः, हं श्रीं ङं महानन्दाय स्वरूपिण्यै नमः। हं श्रीं चं चतुर्मूर्त्तये कामदयायै नमः, हं श्रीं छं सदाशिवाय मदविह्वलायै नमः। हं श्रीं आमोदाय विकटायै नमः, हं श्रीं झं दुर्मुखाय घूर्णायै नमः। हं श्रीं ञं सुमुखाय भूत्यै नमः, हं श्रीं टं प्रमदाय भूत्यै नमः। हं श्रीं ठं एकपदाय मत्यै नमः। हं श्रीं डं द्विजिह्वाय रमायै नमः, हं श्रीं ढं सुरसेनाय मानुष्यै नमः। हं श्रीं णं वीराय मकरध्वजायै नमः, हं श्रीं तं षष्मुखाय विकर्णायै नमः। हं श्रीं थं वरदाय भ्रुकुट्यै नमः, हं श्रीं दं वामदेवाय लज्जायै नमः। हं श्रीं धं वज्रतुण्डाय दीर्घधोणयै नमः। हं श्रीं नं द्विरण्डाय धनुर्धरायै नमः, हं श्रीं पं सेनान्ये यामिन्यै नमः, हं श्रीं फं ग्रामण्यै रात्र्यै नमः, हं श्रीं बं मत्राय चन्द्रिकायै नमः, हं श्रीं भं विमत्ताय शशिप्रभायै नमः, हं श्री मं मत्तवाहनाय लोलायै नमः, हं श्रीं यं जटिने चपलाक्ष्यै नमः, हं श्रीं रं मुण्डिने ऋद्धयै नमः, हं श्रीं लं खड्गिने दुर्भगायै नमः, हं श्रीं वं वरेण्याय सुभगायै नमः, हं श्रीं शं वृषकेतनाय शिवायै नमः, हं श्रीं षं भक्तप्रियाय दुर्गायै नमः, हं श्री सं मेघनादाय कामिन्यै नमः, हं श्री हं गणेश्वराय काल कुब्जायै नमः, हं श्रीं क्षं गणेशाय विघ्नहारिण्यै नमः। सूर्य तथा कामदोग्धाओं आदि का भी न्यास करना चाहिए। पहले चन्द्र बिन्दु समन्वित स्वरों को समुद्धृत करके सूर्याय नमः का उच्चारण करके हृदय

में न्यास करे। अब चन्द्र का न्यास भ्रूमध्य में यवर्ग का उच्चारण करके करना चाहिए। नेत्रद्वय में भूमिपुत्र मंगल का न्यास कवर्ग का उच्चारण करते हुए करे। हे देवी! बुध का न्यास हृदय में चवर्ग का उच्चारण करते हुए करे। हे प्रिये! शुक्र का न्यास त वर्ग द्वारा गले में करे। शनि का न्यास प वर्ग द्वारा नाभि में करे। राहु का न्यास गुदादेश में शवर्ग से करे।।२६-२७।।

लक्षाभ्यां पादयोः केतुं न्यसेदेवं विधानतः।
स्वराद्यं च द्वितीयं च अश्विन्यै नम इत्यपि ।।२८।।
ललाटे च प्रविन्यस्य तथाऽन्यानपि विन्यसेत् ।
इंयुतां भरणीं देवी दक्षनेत्रे प्रविन्यसेत् ।।२९।।
ईंउंऊंकृत्तिकां चैव विन्यसेद्वामनेत्रके ।
ऋंॠंलृंलॄंयुतां देवि रोहिणीं दक्षकर्णके ।।३०।।
एंयुतां मृगशीर्षां च वामकर्णे प्रविन्यसेत् ।
ऐंकारेण तथार्द्रां च दक्षनासापुटे न्यसेत् ।।३१।।
ओऔंपुनर्वसुं चैव वामनासापुटे न्यसेत् ।
कंयुतं च न्यसेत् पुष्यं कण्ठदेशे च पार्वति ।।३२।।
खभाभ्यां च तथाश्लेषां दक्षस्कन्धे प्रविन्यसेत् ।
घङाभ्यां च मघां देवि वामस्कन्धे प्रविन्यसेत् ।।३३।।
चम्पूर्वफल्गुनीं चैव दक्षकूर्परके न्यसेत् ।
वामकूर्परके देवि छञ्जंउत्तरफल्गु(णी?नी)म् ।।३४।।
दक्षिणे मणिबन्धे तु झंञंहस्तं च विन्यसेत् ।
मणिबन्धे तथा वामे टंठंचित्रां प्रविन्यसेत् ।।३५।।
डङ्कारेण तथा स्वातीं दक्षहस्ततले न्यसेत् ।
ढणाभ्यां च विशाखां वै वामहस्ततले तथा ।।३६।।
तथाभ्यामनुराधां च न्यसेन्नाभौ समाहितः।
दंधंज्येष्ठां कटौ दक्षे त्रिभिर्मूलं च वामतः।।३७।।
पूर्वाषाढां बकारेण दक्षोरौ विन्यसेत् ततः।
भकारेणोत्तराषाढां वामोरौ तदनन्तरम् ।।३८।।
दक्षजानुप्रदेशे च मंश्रवणं च विन्यसेत् ।
यंरंयुतां धनिष्ठां च वामे जानुनि विन्यसेत् ।।३९।।
शतभिषां लकारेण दक्षजङ्घाप्रदेशके ।
वंशंवर्णस्थितां वामे पूर्वभाद्रपदां न्यसेत् ।।४०।।

तथैवोत्तरभाद्रां च षसहैर्दक्षपादतः।
लक्षाभ्यां बिन्दु (मद्द्धा? मूर्ध) भ्यां रेवतीं विन्यसेत्ततः।।४१।।

अब नक्षत्र न्यास कहते हैं। (इसको भी श्लोकों शब्दार्थ न लिखकर उसमें जिस प्रकार से न्यास बतलाया गया है उसका प्रायोगिक रूप उन श्लोकों के अनुसार दिया जा रहा है।)

अं आं अश्विन्यैनमः–इतिललाटे, इं भरण्यै नमः–इति दक्षनेत्रे। ई उं ऊं कृत्ति-कायै नमः-इति वामनेत्रे, ऋं ॠं ऌं ॡं रोहिण्यै नमः-इतिदक्षकर्णे, एं मृगशिरायै नमः इति वामकर्णे, ऐं आद्रायै नमः इति दक्षनासापुटे, ओं औं पुनर्वसवे नमः इति वाम नासापुटे, कं पुष्पाय नमः इति कण्ठे, खं गं आश्लेषायै नमः इति दक्षकन्धे, घं ङं मघायै नमः इति वामस्कन्धे, चं पूर्व फाल्गुन्यै नमः इति दक्षकूर्परि, घं जं उत्तर फाल्गुन्यै नमः इति वाम कूर्परि, झं ञं हस्तायनमः इति दक्षिणमणिबन्धे, टं ठं चित्रायै नमः इति वाममणिबन्धे, डं स्वात्यैनमः इति दक्षकरतले, ढं णं विशाखायै नमः इति वामकरतले, तं थं अनुराधायै नमः इति नाभौ, दं धं ज्येष्ठायै नमः इति दक्षकट्याम्, नं पं फं मूलाय नमः इति वामकट्याम्, बं पूर्वाषाढायै नमः इति दक्षोरौ, भं उत्तराषाढायै नमः इति वामोरौ, मं श्रवणाय नमः इति दक्ष जानुनि, यं रं घनिष्ठायै नमः इति वामजानुनि, लं शतभिषायै नमः इति दक्ष जङ्घायाम्, वं शं पूर्वाभाद्रपदाय नमः इति वामजङ्घायाम्, षं सं हं उत्तरभाद्रपदाय नमः इति दक्षपादे, लं क्षं रेवत्यै नमः इति वामपादे।।२८-४१।।

रक्ताक्षीं च श्वेतवर्णां पशुभीतिकरां शुभाम्।
खड्गं च चषकं चैव शूलं खट्वाङ्गमेव च।।४२।।
अनुग्रामुग्रदंष्ट्रां च एकास्यां रिपुनाशिनीम्।
पायसान्नप्रसक्तां च स्वरैः कल्पितविग्रहाम्।।४३।।
डाकिनीं भावयेद्देवीं सर्वकामप्रपूरणीम्।
स्वरान् पूर्वं समुद्धृत्य चन्द्रबिन्दुसमन्विताम्।।४४।।
ठान्तद्वयं ततः पश्चात् पाशतुरीयभेदितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजद्वयमुदीरितम्।।४५।।
ठान्तं भान्तं महीबीजं वारुणं वह्निवायवौ।
वामकर्णस्ततो देवि नादबिन्दुकलायुतः।।४६।।
डाकिन्यै नम इत्यन्ते सबोध्य डाकिनीं ततः।
त्वग्धातुगतगत इत्युक्त्वा चतुःषष्टिपदं ततः।।४७।।

लक्षकोटिपदस्यान्ते योगिनीस्वामिनीति च ।
सर्वसत्त्ववशं ब्रूयात् करि शब्द पदं ततः ।।४८।।
आज्ञां मे देहि तत्पश्चान्मम विच्चे पदद्वयम् ।
विशुद्धौ विन्यसेद् देवि राकिनीं चिन्तयेत् ततः ।।४९।।

अब डाकिनी ध्यान करे। डाकिनी रक्ताक्षी है। उसका वर्ण श्वेत है। वह शुभा है तथा पशुओं के लिये भीतिप्रदा है (पशु अर्थात् पशुप्रमाता, जो पशु संज्ञक मनुष्य हैं) उनके हाथों में खड्ग, चषक, शूल तथा खट्वाङ्ग हैं। वे अनुग्रा होकर भी उग्र दंष्ट्रा हैं। वे एक मुखों वाली तथा शत्रु का हनन करने वाली हैं। वे पायस (खीर) को अधिक पसंद करती हैं। उनका शरीर स्वरों से कल्पित विग्रह रूप है। सर्व कामप्रपूरिणी डाकिनी देवी की भावना इस प्रकार से करनी चाहिए। पहले स्वरों को चन्द्र बिन्दु से समन्वित करे (यथा अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः) उसके अनन्तर ठान्तद्वय (डड) कहकर उनमें क्रमशः पाश (आ) तथा तुरीय (ई) लगाये, इन दोनों को नाद बिन्दु (ँ) से युक्त करे (अर्थात् अब होगा डां डीं) अब ठान्त (ड) तथा भान्त (म), महाबीज (ल) वारुणबीज (व) कहें। तदनन्तर वह्निबीज (र) तथा वायुबीज (य) लगाये। हे देवी! अब वाम कर्ण को इसमें लगाकर इसमें नादबिन्दु लगाने से यह होगा 'यूँ' तत्पश्चात् 'डाकिन्यै नमः' कहें। पुनः 'डाकिनी' कहकर 'दुग्धान्नगते' तत्पश्चात् 'चतुःषष्टि' तदनन्तर 'लक्षकोटि' के अन्त में 'योगिनीस्वामिनी' कहकर 'सर्वसत्वशङ्करि' कहकर 'आज्ञां मे देहि' के अनन्तर 'मम विच्चे' कहे। इस प्रकार मन्त्रोद्धार होगा "अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः। डाकिनी दुग्धान्नगते चतुःषष्टिलक्षकोटि योगिनी स्वामिनि सर्वसत्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे"।।४२-४९।।

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां दंष्ट्राभीममुखीं तथा ।
नवीननीरदश्यामां पीनोन्नतपयोधराम् ।।५०।।
शूलं डमरुकं चैव दधतीं वज्रपद्मके ।
शुक्लाम्बरासक्तचित्तां च कठवर्णात्मविग्रहाम् ।।५१।।
कठवर्णांस्ततो रेफे पूर्ववत् स्वरभेदिते ।
ठान्तं हित्वाग्निबीजं च पूर्ववत् तदनन्तरम् ।।५२।।
राकिन्यै नम आभाष्य सम्बोध्य च तथा भवेत् ।
असृग्धातुगते पश्चाद् द्वात्रिंशल्लक्षकोटि च ।।५३।।

अब डाकिनी ध्यान कहते हैं। हृत् पूण्डरीक के मध्य, भीमदंष्ट्रा भीम मुखों वाली, नवीन जल भरे बादलों जैसी श्यामवर्णी, पीनोन्नत स्तन मण्डिता,

डमरु, त्रिशूल, वज्र, कमल धारिणी, शुक्लान्न के प्रति आसक्त, क से ठ पर्यन्त (मातृका) विग्रहा राकिनी का ध्यान करे। अब इनका मन्त्रोद्धार इस प्रकार से करे।

(इस मन्त्रोद्धार का श्लोकार्थ देना निष्प्रयोज्य है, अत: केवल तदनुसार मन्त्रोद्धार लिखा जा रहा है) कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं रां रीं इमलवरयूं रुं राकिन्यै नमः राकिनी असृग् धातुगते द्वात्रिंशल्लक्षकोटियोगिनीस्वामिनी सर्वसत्ववशङ्करि आज्ञां में देहि मम विच्चे॥५०-५३॥

योगिनीस्वामिनि प्रान्ते पूर्ववत् तदनन्तरम् ।
रक्तवर्णां त्रिनेत्रां च देवदेवेशसंयुताम् ।।५४।।
दंष्ट्रिणी मुग्ररूपाभां वज्रं शक्तिं वराभयौ ।
दधतीं चिन्तयेत् देवीं गुडभक्तोत्सुकां पराम् ।।५५।।
एवं ध्यात्वा महेशानीं डफवर्णात्मविग्रहाम् ।
डफवर्णांस्ततो देवि भूबीजद्वितयं तथा ।।५६।।
वह्निं हित्वा मही बीजं पूर्ववदपरं तथा ।
लाकिन्यै नम उच्चार्य सम्बोध्य च तथा व्रजेत् ।।५७।।
मांसधातुगते पश्चात् षोडशलक्षकोटितः।
पूर्ववदपरं सर्वं नाभिपद्मे प्रविन्यसेत् ।।५८।।

अब लाकिनी ध्यान तथा उनका मन्त्र कहते हैं–लाकिनी देवी रक्तवर्णा, त्रिनेत्रा हैं। शिव से संयुक्त हैं। भयानक दांतों वाली तथा भयानक रूप वाली हैं। उन्होंने हाथों में वज्र, शक्ति, वर तथा अभयमुद्रा धारण कर रखा है। गुड़ तथा पका हुआ चावल खानें के लिए उत्सुक परादेवी लाकिनी का ध्यान करें। जिनका विग्रह 'ड' से लेकर 'फ' तक के वर्णों से रचित हैं।

(इनके भी मन्त्रोद्धार के श्लोकों का अर्थ देना निष्प्रयोज्य है, अत: मन्त्रोद्धार तदनुसार लिखा जा रहा है) इनका मन्त्रोद्धार है–डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लां लीं लमवरयूं लं लाकिन्यै नमः लाकिनी मांसधातुगते षोडशलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वतत्ववशङ्करि आज्ञा में देहि मम विच्चे''॥५४-५८॥

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे च काकिनीं परिचिन्तयेत् ।
पीतवर्णां महामत्तां गजकुम्भोपमस्तनीम् ।।५९।।
दध्यन्नासक्तचित्तां च सुरप्रवरवन्दिताम् ।
शूलं डमरुकं चैव पाशं चाभयमेव च ।।६०।।
वहन्तीं परमेशानीं बादिलान्तात्मविग्रहाम् ।
बादिलान्तास्तथा काङ्क्षींकमलवरयूं ततः ।।६१।।

काकिन्यै नम इत्यन्ते सम्बोध्य चैव काकिनीम्।
मेदोधातुगते पश्चात् तथाष्ट लक्ष कोटि च।।६२।।

अब काकिनी ध्यान तथा उनका मन्त्र कहते हैं–इनका ध्यान इस प्रकार से करना होगा–स्वाधिष्ठान संज्ञा वाले कमल में यह पीतवर्ण की देवी स्थित हैं। महामत्ता, गज-कुंभवत् पीन पयोधरा, दधि तथा अन्न के (नैवेद्यार्थ) प्रति आसक्त चित्ता तथा सुरप्रवर द्वारा (इन्द्र द्वारा) वन्दिता हैं। इनके हाथों में त्रिशूल, डमरु, पाश तथा अभयमुद्रा स्थित है। इनका विग्रह 'ब' से लेकर 'ल' तक वर्णों से संगठित है।

(इनके भी मन्त्रोद्धार के श्लोकों का अर्थ न देकर केवल तदनुसार मन्त्रोद्धार देना ही उचित है) इनका मन्त्रोद्धार है–"बं भं मं यं रं लं कां कीं कमलवरयूं काकिन्यै नमः काकिनी मेदोधातुगते अष्टलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वतत्ववशङ्करि आज्ञा मे देहि मम विच्चे"।।५९-६२।।

योगिनीस्वामिनि प्रोच्य पूर्ववदपरं तथा।
पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रा च वह्निभानुस्वरूपिणीम्।।६३।।
चापं बाणं तथा पाशं सृणिं च पुस्तकं तथा।
ज्ञानमुद्रां च हस्ताब्जैर्दधतीं परमेश्वरीम्।।६४।।
मुद्गान्नप्रीतिसंयुक्तां मूलाधारे विचिन्तयेत्।
वादिसान्तास्तथा सांसींसमलवरयूं तथा।।६५।।
साकिन्यै नम इत्यन्ते सम्बोध्य साकिनीं ततः।
अस्थिधातुगते चैव चतुर्लक्षेति कोटि च।।६६।।

अब शाकिनी ध्यान तथा उनका मन्त्रों का मन्त्रोद्धार कहते हैं। अब ध्यान कहते हैं। ये देवी पंचमुखों वाली हैं। हर मुख में तीन नेत्र हैं। ये देवी वन्हि-सूर्य रूपा हैं। इन्होंने हाथों में धनुष-बाण-पाश-अंकुश पुस्तक तथा ज्ञानमुद्रा धारण किया है। इन्हें मूंग का भोजन अति प्रीतिकर लगता है। इनका ध्यान मूलाधार (स्थित कमल) पर करे।

(अब इनका मन्त्रोद्धार कहते हैं पूर्ववत् श्लोकार्थ देना उचित न समझकर केवल मन्त्रोद्धार लिखा जा रहा है) मन्त्र हैं–वं शं षं सं सां सीं समलवरयूँ शाकिन्यै नमः, शाकिनी अस्थिधातुगते चतुर्लक्षकोटिस्वामिनि वरवरदे सर्वसत्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे।।६३-६६।।

योगिनी स्वामिनि प्रान्ते वरवरदपदं तथा।
बिन्दुस्थां शुक्लवर्णां चहक्षवर्णस्वरूपिणीम्।।६७।।

डमरुं चाक्षसूत्रं च कपालं खड्गमेव च।
पुस्तकं ज्ञानमुद्रां च दधतीं बाहुभिः सदा।।६८।।
लोचनत्रयसंयुक्तां षड्वक्त्रां सर्वमोहिनीम्।
हरिद्रान्नप्रसक्तां च मधुमदमुदान्विताम्।।६९।।
देवेन्द्रवन्दितां देवीं भावयेद्धाकिनीं पराम्।
हंक्षंहांहीं च देवेशि हमलवरयूं तथा।।७०।।
हाकिन्यै नम उच्चार्य सम्बोध्यचैव हाकिनीम्।
मज्जाधातुगते पश्चाद् द्विलक्षकोटिशब्दतः।।७१।।
शेषं पूर्ववदुद्धृत्य भ्रुवोर्मध्ये प्रविन्यसेत्।
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां सर्वमुच्यरेत्।।७२।।
यांयीं तु परमेशानि यमलवरयूं तथा।
याकिन्यै नम इत्यन्तेसम्बोध्यैव तु याकिनीम्।।७३।।
शुक्रधातुगते पश्चाद्दशकोटिपदं ततः।
पूर्ववच्च प्रविन्यस्य राशिन्यासमतः परम्।।७४।।

अब हाकिनी का ध्यान तथा उनका मन्त्र कहते हैं। ये बिन्दु पर स्थित, 'ह क्ष' वर्णस्वरूपा हैं। इनके हाथों में डमरु, अक्षसूत्र, कपाल, खड्ग, पुस्तक, ज्ञानमुद्रा स्थित है। ये षड्मुखी हैं और १८ नेत्रों वाली हैं। ये सर्वमोहिनी देवी हल्दी मिश्रित अन्न में आसक्त तथा मधुमद से सर्वदा मुदान्वित रहती हैं। ये देवेन्द्र वन्दिता देवी हैं। इन परादेवी हाकिनी का इस प्रकार से ध्यान करे।

(पूर्ववत् केवल मन्त्रोद्धार दिया जा रहा है श्लोकार्थ निष्प्रयोज्य है) इनका मन्त्र है–'हं क्षं हां हीं हमलवरयूं हाकिन्यै नमः हाकिनि मज्जाधातुगते द्विलक्षकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वतत्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे'। (याकिनी का ध्यान वर्णन मूल में नहीं अंकित है अतः केवल मन्त्रोद्धार दिया जा रहा है)

याकिनी देवी का मन्त्र है–अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं यां यीं यमलवरयूं याकिन्यै नमः याकिनी शुक्रधातुगते दशकोटियोगिनीस्वामिनि सर्वसत्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे।।६७-७४।।

वेदार्णैर्दक्षगुल्फेऽथ मेषं विन्यस्य पार्वति।
दक्षजानौ वृषं त्र्यर्णैर्वृषणे मिथुनं त्रिभिः।।७५।।
द्वाभ्यां कर्कटकं कुक्षौ द्वाभ्यां स्कन्धेऽथ सिंहकम्।
अनुस्वारविसर्गाभ्यां शवर्गेण च कन्यकाम्।।७६।।

दक्षिणे च शिरोभागे विन्यसेद्वीरवन्दिते ।
तथा वामशिरोभागे कवर्गेण तुलां न्यसेत् ।।७७।।
चवर्गेण तथा स्कन्धे वृश्चिकं विन्यसेत् ततः ।
टवर्गेण तथा कुक्षौ धन्विनं विन्यसेत् ततः ।।७८।।
मकरं तु तवर्गेण वृषणे वामके न्यसेत् ।
पवर्गेण तथा कुम्भं वामजानुनि विन्यसेत् ।।७९।।
यवर्गेण क्षकारेण मीनं गुल्फे तु वामके ।
चतुर्थीनतिसंयुक्तं स्थानेष्वेवं क्रमान्न्यसेत् ।।८०।।

अब मेषराशि आदि राशि का न्यास कहते हैं जिसका स्वरूप यह है–

अं आं इं ईं मेषाय नमः-इति दक्षिण गुल्फे।
उं ऊं ऋं वृषायनमः–इति दक्षिण जानुनि।
ॠं ऌं ॡं मिथुनायनमः–इति दक्षिण वृषणे।
एं ऐं कर्कटायनमः–इति दक्षिण कुक्षौ।
ओं औं सिंहायनमः–इति दक्षिण स्कन्धे।
कं खं गं घं ङं तुलायैनमः–इति वामशिरोभागे।
चं छं जं झं ञं वृश्चिकायनमः–इति वामस्कन्धे।
टं ठं डं ढं णं धनुषे नमः–इति वामकुक्षौ।
तं थं दं धं नं मकराय नमः–इति वामवृषणे।
पं फं बं भं मं कुम्भाय नमः–इति वामजानुनि।
यं रं लं वं क्षं मीनाय नमः–इति वामगुल्फे।।७५-८०।।

अथ पीठानिठानि विधिना यथास्थाने प्रविन्यसेत् ।
परापूर्वं च सर्वेषां मातृकां च पृथक् पृथक् ।।८१।।
चतुर्थीनतियुक्तानि मातृकावन्न्यसेत् क्रमात् ।
कामरूपं महापीठं वाराणसीं ततः परम् ।।८२।।
नेपालं च महापीठं पौण्ड्रवर्धनमेव च ।
पुरस्थिरं महादेवि चरस्थिरमतः परम् ।।८३।।
पूर्णशैलं महापीठमर्बुदं च ततः परम् ।
काश्मीरं च तथा पीठं कान्यकुब्जमथो भवेत् ।।८४।।
आम्रातकेश्वरं पीठमेकाम्रं च ततः शिवे ।
त्रिस्रोतः पीठमुद्दिष्टं कामकोट्टमतः परम् ।।८५।।
कैलासं भूतनगरं केदारं पीठमुत्तमम् ।
श्रीपीठं च तथौंकारं जालन्धरमतः परम् ।।८६।।

मालवं च कुलान्तं च देवामातृकमेव च।
गोकर्णं च ततो देवि मारुतेश्वरमेव च।।८७।।
अट्टहासं च विरजं राजगृहमतः परम्।
पीठकोल्लगिरिं चैव एलापुरमतः प्रिये।।८८।।
कालेश्वरमाहपीठं प्रणवं च जयन्तिका।
पीठमुज्जयिनीं चैव क्षीरिकापीठमेव च।।८९।।
हस्तिनापुरकं पीठं पीठमुड्डीशमेव च।
प्रयागं चैव षष्ठीशं मायापुरजलेश्वरौ।।९०।।
मलयं च महापीठं श्रीशैलमथवापि च।
मेरुं गिरिं महेन्द्रं च वामनं चापि विन्यसेत्।।९१।।
हिरण्यपुरकं पीठं महालक्ष्मीपुरं च वै।
उड्डीयानं महापीठं छायापुरमतः परम्।।९२।।

अब पीठ न्यास करना चाहिये। उसकी यह विधि है–पहले परा का उच्चारण करे, अर्थात् पहले "ॐ" का उच्चारण करे (जिन्हें 'ॐ' उच्चारण का अधिकार न हो वे 'ओं' का उच्चारण करे) तदनन्तर मातृकाओं का पृथक्-पृथक् उच्चारण करे। तदनन्तर पीठों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण नमः के साथ करके मातृकावत् न्यास करे। अब पीठों का नाम कहते हैं। कामरूप, वाराणसी, नेपाल, पौण्ड्रवर्धन, पुरस्थित, चरस्थित, पूर्णशैल, अर्बुद, काश्मीर, कान्यकुब्ज, आम्रांतकेश्वर, एकाम्र, त्रिस्त्रोत, कामकोटि, कैलास, भूतनगर, केदार, श्रीपीठ, ओंकारेश्वर, जालन्धर, मालवा, कुलान्ता, देवमातृका, गोकर्ण, मारुतेश्वर, अट्टहास, विरजा, राजगृह, कोल्लगिरि, ऐलापुर, कालेश्वर, प्रणवपीठ, जयन्तिका, उज्जयिनी, क्षीरिका, हस्तिनापुर, उड्डीश, प्रयाग, षष्ठीश, मायापुर, जलेश्वर, मलय, श्रीशैल, मेरव, महेन्द्र, वामन, हिरण्यपुर, उड्डीयन, छायापुर। उदाहरण के लिए पहला न्यास होगा:—

ओं अं कामरूपाय नमः–इतिललाटे।
ओं आं वाराणस्यै नमः–इति मुखवृन्ते।

इसी प्रकार से आगे करे।।८१-९२।।

षोढान्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वपापहरः सदा।
षोढान्यासविहीनो यः प्रणमेद्देवि सुन्दरीम्।।९३।।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते।
एवं न्यस्तशरीरस्तु भवेद् गङ्गाधरः स्वयम्।।९४।।
मन्त्री न चात्र संदेहो निग्रहानुग्रहक्षमः।
न तस्य पूज्यो लोकेऽस्मिन् पितृमातृमुखो नरः।।९५।।

स्वयं च साधकश्रेष्ठो यं कंचन वदन्ते च ।
स मर्त्यो मृत्युमाप्नोति नात्रकार्या विचारणा ।।९६।।
नमस्कारं न कुर्वीत ज्येष्ठस्यापि कदाचन ।
गुरोरपि न पद्येत म्रियते नात्र संशयः।।९७।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नमस्कारं विवर्जयेत् ।
कामं क्रोधं तथा लोभं मायाहङ्कारमेव च ।।९८।।
सङ्कल्पं भोजनालापं न कुर्यात् केनचित्सह ।
भोक्तव्यं योषिता सार्धं यत्किंचित् तत्तयैव हि ।।९९।।
विन्यसेद्देवि युक्तात्मा त्रिकालं च दिवा निशि ।
यथा साभ्यासयोगेन सामर्थ्यं तद्वदाम्यहम् ।।१००।।

इस षोढान्यास को सदा सर्वपापहर कहा गया है। जो इस न्यास से रहित होकर इन त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करता है, वह शीघ्र मर जाता है और तदनन्तर नरक की प्राप्ति होती है। इस प्रकार से षोढान्यास न्यास करने वाला मानो स्वयं गंगाधर हो जाता है। वह मन्त्री निग्रह-अनुग्रह में सक्षम हो जाता है, यह निःसंदिग्ध वचन है। यहाँ तक कि उसे पिता-माता गुरुजनों को भी प्रणाम नहीं करना चाहिये क्योंकि यदि वह उन्हें (सदाचार वशात्) प्रणाम कर दे तो जिसे प्रणाम किया गया वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त होता है, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है। ऐसे न्यास युक्त को किसी को भी प्रणाम नहीं करना चाहिये। वह गुरु तक को प्रणाम न करे। अतः ऐसा साधक सर्व प्रयत्न से प्रणाम को त्याग दे। काम-क्रोध-लोभ-माया-अहंकार का संकल्प त्याग दे। किसी के साथ भोजनालाप न करे। केवल पत्नी के साथ ही भोजनालापदि करे। हे देवी! दिन-रात में त्रिकाल न्यास करे। अब जिस अभ्यास से न्यास से शक्ति होती है उसे कहा जाता है।।९३-१००।।

यत्रायं निवसेद्देवि षोढान्यासी च साधकः।
दिव्यं क्षेत्रं भवेत्तत्र समन्ताच्छतयोजनम् ।।१०१।।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः।
कृत्वा न्यासमिमं देवि यत्र गच्छति साधकः।।१०२।।
तत्र यद्विषये चैव यन्मानं पुरुषैः सह ।
द्यावान्तरिक्षभूशैलजलारण्यनिवासिन ।।१०३।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षकूष्माण्डराक्षसाः।
पश्यन्ति पावकारूढं ये चान्ये हिंसका जनाः।।१०४।।
शत्रुसंहतिसङ्कीर्णे संग्रामेऽथापदेषु च ।
न भयं विद्यते तस्य परत्र शिवतां व्रजेत् ।।१०५।।

ये केचित् पापसङ्घाताः सप्तजन्मान्तरोद्भवाः।
नश्यन्ति न्यासमात्रेण भास्करेण तमो यथा ।।१०६।।
सतताभ्यासयोगेन षण्मासेन च मानवे ।
दह्यते सर्वपापानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।
किंचातिबहुनोक्तेन मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम् ।।१०७।।

जहाँ षोढान्यासी साधक निवास करता है उसके (चतुर्दिक) १०० योजन का स्थान दिव्य हो जाता है। समस्त देवता उसे नमस्कार करते हैं। मैं स्वयं उसे नमन करता हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वह साधक जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ स्वर्ग-अन्तरिक्ष-पृथ्वी, पर्वत-जल-वन निवासी भूत-प्रेत-पिशाच-यक्ष-कूष्माण्ड-राक्षस उसे अग्नि पर आरुढ़ देखते हैं। शत्रुपूर्ण संग्राम भूमि में अथवा आपत्तिकाल में उसे कहीं भी भय नहीं लगता। केवल न्यास द्वारा ही उसके सप्त पूर्व जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है। जो छ मास पर्यन्त न्यास का (विधाननुरूप) अभ्यास करता है उसके ब्रह्महत्यादि जघन्य पाप नष्ट हो जाते हैं। किम्बहुना वह न्यास करने वाला मेरे समान हो जाता है।।१०१-१०७।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे षोढान्यासक्रम-
निरुपणनाम दशमः पटलः ।।१०।।

।। गन्धर्वतन्त्रोक्त पार्वतीश्वर संवादान्तर्गत् षोढान्यासक्रमनिरूपण नामक दशम पटल समाप्त ।।

◆

एकादशः पटलः

नित्यन्यासान्तर्यागविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच–

करशुद्धिर्ऋषिन्यास आसनं च ततः परम्।
कराङ्गयोः षडङ्गानि वशिन्याद्यमतः परम्।।१।।
नव योनिचतुर्व्यूहतत्त्वन्यासादिकं तथा।
मूलवर्णादिविन्यासः सम्मोहनाख्य एव च।।२।।

ईश्वर कहते हैं–करशुद्धि, ऋषिन्यास, आसनन्यास, कराङ्गन्यास, षडङ्गन्यास, वशिनी आदि नवयोनि चतुर्व्यूह तत्वन्यास मूलवर्ण आदि सम्मोहन न्यास नित्य करना चाहिए। अन्य कार्य काम्य कर्म हैं। नित्य कर्म नित्य करना आवश्यक है। काम्य कर्म कामना होने पर ही किये जाते हैं। नित्य कर्म की तरह नित्य नहीं करना होता। केवल अनुष्ठान काल में ही उन्हें करना होता है।।१-२।।

एतदेव हि नित्यं स्यात् काम्यं चान्यत् प्रकीर्तितम्।
करशुद्धिकरीपूर्वं त्रिपुरेति पदं ततः।।३।।
अमृतार्णवशब्दोपर्यासनाय नमो मनुः।
पादयोर्विन्यसेत् पश्चाद्बालान्ते त्रिपुरेश्वरी।।४।।
पीताम्बुजासनायान्ते नमो जानुनि विन्यसेत्।
ह्रींक्लींसौस्त्रिपुरेत्युक्त्वा सुन्दरीति पदं ततः।।५।।
ङेन्तमात्मासनायान्ते नम उच्चार्य प्रविन्यसेत्।
आद्यं मध्यं तथान्तं च कुमार्याः शिवसंयुतम्।।६।।
त्रिपुरवासिनीत्युक्त्वा चक्रासनाय हृत्ततः।
कटिद्वये प्रविन्यस्य शिवं सोमयुतं कुरु।।७।।
एतस्या एव विद्यायास्त्रिपुरश्रीपदं ततः।
सर्वमन्त्रासनायान्ते नमो गुह्ये प्रविन्यसेत्।।८।।
परा च कामबीजं च वारुणं त्विन्द्रसंयुतम्।
योनिमुक्तं सबिन्दुं च त्रिपुरमालिनी ततः।।९।।
साध्यासनाय मूले च नम इति प्रविन्यसेत्।
मायाबीजं रमाबीजं कुमार्याश्च तृतीयकम्।।१०।।
तथा त्रिपुरसिद्धान्ते साध्यसिद्धासनं ततः।
नाभिदेशे प्रविन्यस्य हृदये च प्रविन्यसेत्।।११।।
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम्।
कामराजं कुमार्यास्तु शिवचन्द्रान्वितं कुरु।।१२।।

पृथ्वीबीजात्ततो वह्निं शक्तिबीजे ततः परम् ।
शिववह्नी नियोज्यैव हित्वा सर्गं तु बैन्दवम् ।।१३।।
संयोज्य परमेशानि त्रिपुराम्बापदं ततः।
पर्यङ्क शक्तिपीठाय नमो हृदि प्रविन्यसेत् ।।१४।।
वदन्याशेषबीजान्ते महात्रिपुरभैरवी ।
सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय चालिखेत् ।।१५।।

अब आसन न्यास मन्त्र कहते हैं–पहले करशुद्धिकरी विद्या कहे (अं आं सौः) तदनन्तर 'त्रिपुर' कहकर 'अमृतार्णव' के अनन्तर आसनाय नमः कहकर दोनों पैरों का न्यास करे। मन्त्रोद्धार होगा ''अं आं सौः त्रिपुरामृतार्णवासनाय नमः–इति पादयोः।'' अब बाला बीज (ऐं क्लीं सौः) के अनन्तर 'त्रिपुरेश्वरी' लगाकर पीताम्बुजासनाय' कह कर 'नमः' लगाये। इससे जानु का न्यास होता है। मन्त्रोद्धार है–''ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी पीताम्बुजासनाय नमः–इति जान्वो''। अब 'ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुर' कहकर 'सुन्दरी' कहे तत्पश्चात् ङेऽन्त 'आत्मासनाय नमः' कहकर दोनों उरु का न्यास करना होगा। मन्त्रोद्धार है ''ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी आत्मासनाय नमः–इतिं उर्वों''। अब कुमारी के आदि मध्य अन्त को शिव से युक्त करके 'त्रिपुरवासिनी' कहे। तदनन्तर 'चक्रासनाय' के अनन्तर 'नमः' इससे कटिप्रदेश के दोनो ओर न्यास करके शिव (ह) को सोम से जोड़े। फिर इसी विद्या में 'त्रिपुर श्री' के अनन्तर 'सर्वमन्त्रासनाय' तथा अन्त में 'नमः' कहकर गुह्य प्रदेश में न्यास करे। मन्त्रोद्धार होगा–''ऐं क्लीं स्हौः त्रिपुरा श्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः–इति गुह्यो''।

परा तथा कामबीज, वारुणबीज, इन्द्रबीज, योनि तथा बिन्दु को युक्त करके 'त्रिपुरमालिनी' कहे। तदनन्तर 'साध्यासनाय नमः' कहे। इससे मूलाधार न्यास होगा। मन्त्रोद्धार होगा–''ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनी साध्यासनाय नमः–इति मूलाधारे।''

माया बीज (ह्रीं) रमाबीज (श्रीं) कुमारी बीज (सौः) तदनन्तर 'त्रिपुर सिद्धा' के अन्त में 'साध्यसिद्धासन' लिखकर नाभि प्रदेश में न्यास करे। मन्त्रोद्धार होगा–''ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरसिद्धासाध्यसिद्धासनाय नमः–इति नाभौः''।

अब शिव को चन्द्र से जोड़े, तदनन्तर वाग्भवबीज एवं कामराज बीज लगाये। कुमारी को शिव चन्द्रान्वित करे। शिवबीज, वन्हिबीज को लगाकर विसर्ग हटा दे और बिन्दु को जोड़े। हे परमेशानी! तत्पश्चात् 'त्रिपुराम्बा' पद तदनन्तर 'पर्यंक शक्तिपीठाय नमः' लगाकर हृदय का न्यास करते हैं। मन्त्रोद्धार होगा ''स्त्रैं ह्रैं क्लीं सैं हैं लैं ह्रं त्रिपुराम्बा पर्यङ्कशक्तिपीठाय नमः–इति हृदये।''

तदनन्तर सम्पत्प्रदा भैरवी के पूर्ण बीज के अन्त में 'महात्रिपुरभैरवी सदाशिव महाप्रेत पद्मासनाय' अंकित करके नमः कहकर साधक श्रेष्ठ को इसका न्यास ब्रह्मरन्ध्र में करना होगा। मन्त्रोद्धार होगा–"हस्त्रौ हसकलरीं हसरौ महात्रिपुरभैरवीसदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः–इति ब्रह्मरन्ध्रे"॥३-१५॥

नम इत्यज(बद्धे?रन्ध्रे) तु विन्यसेत् साधकोत्तमः।
वह्निर्वरुणशक्रं च षष्ठस्वरविभूषितम्।।१६।।
नादबिन्दुकलायुक्तं वशिनीति पदं ततः।
वाग्देवता चतुर्थ्यन्ता नमः स्वरैः प्रविन्यसेत्।।१७।।
मादनं शक्रमारूढं महामाया ततः परम्।
इयं कामेश्वरी ज्ञेया कवर्गेण ललाटके।।१८।।
धान्तं वरुणमिन्द्रं च चतुर्थस्वरबिन्दुकम्।
एषैव मोदिनी देवी भ्रुवोर्मध्ये च वर्गके।।१९।।
वायुं पुरन्दरं देवि षष्ठस्वरविभूषितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं विमलेयं समीरिता।।२०।।
न्यस्तव्या कण्ठदेशे तु टवर्गेणैव पार्वति।
छान्तं भान्तं च ज्वलनं तुरीयस्वरबिन्दुकम्।।२१।।
वरुणेयं तु वाग्देवी तवर्गेण हृदि स्मृता।
जयिनी च ततो देवि नकुलिः सोमशक्रकम्।।२२।।
वारुणं वायुबीजं च षष्ठस्वरविभूषितम्।
नाभिदेशे समाख्याता पवर्गेण वरानने।।२३।।
जान्तं भान्तं ततो रेफं वायुबीजसमन्वितम्।
षष्ठस्वरसमायुक्तं नादबिन्दुकलायुतम्।।२४।।
सर्वेश्वरायवर्गेण स्वाधिष्ठानाख्यपङ्कजे।
संवर्तकं महेशानि कालबीजोपरिस्थितम्।।२५।।
वह्निबीजं ततो माया नादबिन्दुकलान्विता।
मूलाधारे शवर्गेण कौलिनी परिकीर्तिता।।२६।।
एता वाग्देवता देवि वशिनीवत् प्रविन्यसेत्।
मूलविद्याद्विरावृत्त्या सर्वाङ्गलितलेषु च।।२७।।
ङेन्तेषु परमेशानि न्यसेदङ्गानि षट् क्रमात्।
नमः स्वाहा वषड् वौषड् हुं फडितिं षडङ्गकम्।।२८।।
करयोरथ विन्यस्य षडङ्गेषु तथा न्यसेत्।
नमोऽन्त हृदयं ङेन्तं स्वाहान्तं च तथा शिरः।।२९।।

शिखा वषट् षट् चतुर्थ्यन्ता हुं ङेन्तं कवचं ततः।
नेत्रत्रयं च वौषट् च अस्त्रं फडन्तमीश्वरि ।।३०।।
हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्यादङ्गुष्ठेन शिखा प्रिये ।।३१।।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम्।
तथैवोक्ताङ्गुलीभ्यां च सशब्दमस्त्रमीरितम् ।।३२।।

अब वाशिन्यादि वाग्देवता न्यास कहते हैं–(यहाँ श्लोकार्थ देना निष्प्रयोज्य है अतः मन्त्रोद्धार उसी श्लोक के अनुसार दिया जा रहा है)। ''ल्ब्रूंअं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनीवाग्देवतायै नमः–इति ब्रह्मरन्ध्रे।''

''क्लीं कं खं गं घं ङं कामेश्वरी वाग्देवतायै नमः–इति ललाटे।''

''क्लीं चं छं जं झं ञं मोदिनी वाग्देवतायै नमः–इति भ्रुवोः।''

''ट्लूं टं ठं डं ढं णं विमलवाग्देवतायै नमः–इति कण्ठे।''

''ज्म्रीं वीं तं थं दं धं नं वरुण वाग्देवतायै नमः–इति हृदये।''

''हं सं लं वं यूं पं फं बं भं मं जयिनीवाग्देवतायै नमः–इति नाभौ।''

''झं मं रं यूं यं रं लं वं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः–इति स्वाधिष्ठान कमले।''

''क्षमरीं शं षं सं हं क्षं कौलिनीवाग्देवतायै नमः–इति मूलाधार पद्मे''। करषडङ्गन्यास इस प्रकार है–हे परमेशानी! मूलविद्या ''हीं कएंलह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं'' की दो आवृत्ति करके समस्त उंगलियों के तली में ङेऽन्त का उच्चारण करके षडङ्ग न्यास करे। अब नमः-स्वाहा-वौषट्-हुं-फट् कहे।

करन्यास इस प्रकार से करना चाहिए–

ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः–इति अङ्गुष्ठयो।

''ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं मध्यमाभ्यां नमः–इति मध्यमयोः।''

''ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं एकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अनामिकाभ्यां नमः–इति अनामिकयोः।''

''ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं कनिष्ठाभ्यां नमः–इति कनिष्ठयोः।''

''ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं करतलपृष्ठाभ्यां नमः–इति करतलपृष्ठयोः।''

तदनन्तर षडंगन्यास करे। वह इस प्रकार है–

"ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हृदयाय नमः।"

"ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं शिरसेस्वाह।"

"ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं कवचाय हुम्।"

"ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्।"

"ह्रीं कएईल ह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ह्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं अस्त्राय फट्।"

न्यास के समय मध्यमा-अनामिका-तर्जनी द्वारा हृदय का स्पर्श करे। मध्यमा तर्जनी द्वारा शिर का न्यास करे। अंगुष्ठ से शिखा का न्यास करे। सभी उंगलियों द्वारा कवच का न्यास करे। मध्यमा-अनामिका-तर्जनी द्वारा नेत्रत्रय का न्यास करे। मध्यमा एवं तर्जनी द्वारा 'फट्' से न्यास करे (अस्त्र से न्यास करे)।।२७-३२।।

पूजा तपोऽर्चनं होमः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ।।३३।।
वशिनीप्रमुखान् देवि विन्यसेत्तदनन्तरम् ।
मूलकूटत्रयेणैवं स्थानेष्वेषु क्रमान्न्यसेत् ।।३४।।
कर्णयोश्चिबुके चैव शङ्खयोर्वदने पुनः ।
नेत्रयोर्नसि विन्यस्य अंसयोर्जठरे ततः ।।३५।।
पुनः कूर्परयोः कुक्षौ जानुनोर्लिङ्गमूर्धनि ।
पादयोर्गुह्यदेशे च पार्श्वयोर्हृदयाम्बुजे ।।३६।।
स्तनयोः कण्ठदेशे च न्यसेदेवं विधानतः ।
चतुर्व्यूहं ततो देवि न्यसेत् पीठसमन्वितम् ।।३७।।

पूजा-तप-अर्चन-होम अंगन्यास रहित स्थिति में करने पर फल नहीं देते। हे देवी! इन न्यास के अनन्तर वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, वरुणा, जायिनी, सर्वेश्वरी, कौलिनी, वागदेवता का तीन मूलकूट से न्यास करे। जहाँ न्यास करना है वे इस प्रकार है–दोनों कान, चिबुक, दोनों शंख, मुख, दोनों नेत्र, नासिका, दोनों स्कन्ध, जठर, दोनों कर्पूर, दोनों कुक्षि, दोनों जानु, लिङ्ग, शिर, पादद्वय, गुह्य, दोनों पार्श्व, हृदय, दोनों स्तन तथा कण्ठ। हे देवी! तदनन्तर चतुष्पीठ न्यास करे।।३३-३७।।

मूलवाग्भवमुच्चार्य अग्निचक्रेपदं ततः।
कामगिर्यालये पश्चान्मित्रेशपदमुद्धरेत् ।।३८।।
नाथात्मकेपदं पश्चात् कामेश्वरीपदं ततः।
रुद्रात्मशक्तिशब्दाच्छ्रीपादुकायै नमो न्यसेत् ।।३९।।
आधारे परमेशानि हृदये च ततः परम् ।
मूलद्वि(त?ती) यमुच्चार्य सूर्यचक्रेपदं ततः।।४०।।
जालन्धरपदात् पीठे षष्ठीशनाथशब्दतः।
आत्मकेपदमाभाष्य वज्रेश्वरीपदं ततः।।४१।।
विष्णवात्मशक्तिशब्दान्ते पूर्ववच्च तदीरितम् ।
शक्तिकूटं समुच्चार्य सोमचक्रेपदं तत ।।४२।।
पूर्णगिरिपदान्ते च पीठपदमतः परम् ।
उड्डीशपरतो देवि नाथात्मकेपदं ततः।।४३।।
तदन्ते योजयेद्देवि भगपूर्वा च मालिनी ।
ब्रह्मात्मशक्तिशब्दान्ते पूर्ववद् द्विदले न्यसेत् ।।४४।।
तुर्यबीजमथोच्चार्य ब्रह्मचक्रेपदात् ततः।
तथैवोड्यानपीठे तु चर्यार्यानाथात्मकेपदम् ।।४५।।
तदन्ते परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरी ।
परब्रह्मात्मशक्त्यन्ते पूर्ववद् ब्रह्मरन्ध्रके ।।४६।।
विन्यस्यैवं महेशानि तत्त्वन्यासं समाचरेत् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलान्तं पुनरेव हि ।।४७।।

चतुष्पीठन्यास–इन श्लोकों के अनुसार मन्त्रोद्धार इस प्रकार से होगा।

(१) "कएईलह्रीं ऐं अग्निचक्रे कामगिर्यालये मित्रेशनाथात्मके कामेश्वरीरुद्रात्म शक्तिश्रीपादुकायै नमः–इति मूलाधारे।"

(२) "हसकहलह्रीं क्लीं सूर्यचक्रे जालंधर पीठे षष्ठीशनात्मके वज्रेश्वरी विष्ण्वात्म-शक्तिश्रीपादुकायै नमः–इति हृदये।"

(३) "सकलह्रीं सौः सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मके भगमालिनीब्रह्मात्म शक्तिश्रीपादुकायै नमः–इति आज्ञाचक्रे।"

(४) "ईं ब्रह्मचक्रे उड्डयानपीठे चर्यानाथात्मके महात्रिपुरसुन्दरी परब्रह्मात्म-शक्ति श्रीपादुकायै नमः–इति ब्रह्मरन्ध्रे।"

हे महेशानी! न्यास करने के अनन्तर तंत्व न्यास करे (यहाँ इंस चौथे न्यास में मूल में तुर्यबीज ऋहा गया है। एक प्रकार से तुर्यबीज 'ई' होता है,

लेकिन यहाँ कूट ऊपर तीनों न्यास में दिये गये हैं अतः यहाँ चतुर्थकूट उचित प्रतीत होता है। साधक गुरुपरम्परा से चतुर्थबीज का निर्धारण करे)॥३८-४६॥

मूलवाग्भवमुच्चार्य आत्मतत्त्वपदं ततः।
ध्यापिकयै चतुर्थ्यन्ता महात्रिपुरसुन्दरी ।।४८।।
नम इति प्रविन्यस्य कामरजामतः परम्।
विद्यातत्त्वपदात् पूर्व पूर्ववद् हृदयावधि ।।४९।।
न्यसेतार्त्तीय यबीजान्ते शिवत्त्वस्वरूपिणीम्।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तदादिभ्रूलतावधि ।।५०।।
ततो न्यसेन्महादेवि विद्याकूटत्रयं पृथक्।
करयोर्मूलमध्याग्रमूलहृद्भ्रूद्युगान्तरे ।।५१।।
मूलविद्यात्रयावृत्त्या स्थानेष्वेषु क्रमान् न्यसेत्।
ब्रह्मरन्ध्रे तुरीयं च तेनैव व्यापकं न्यसेत् ।।५२।।

तत्वादिन्यास का मन्त्रोद्धार इस प्रकार हैं–

'ऐं आत्मतत्वव्यापिकाये महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः–इति मूलादिब्रह्मरन्ध्रांन्तं ब्रह्मरन्ध्रान्मूलाधारान्तम्।'

'क्लीं विद्यातत्वव्यापिकाये महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः–इति हृदयाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रान्तात् हृदयान्तम्।'

"सौः शिवतत्वव्यापिकायैः महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः–इति मूलाधारात् ब्रह्मरन्ध्रान्तं ब्रह्मरन्ध्रात् भ्रूमध्यावधि।"

"ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्त्राय नमः–इति हृदये।"

"ऐं क्लीं विद्याकूटत्रयाय नमः–इति दृशोः।"

"ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः–इति ब्रह्मरन्ध्रे।"

"ऐं क्लीं सौः विद्याकूटत्रयाय नमः–इति व्यापकं कुर्यात्॥४७-५२॥

ब्रह्मरन्ध्रे तथाधारे हृदि नेत्रत्रये तथा।
कर्णयोर्मुखवृत्ते च भुजयोः पृष्ठदेशके ।।५३।।
जानद्वये तथा नाभौ मूलवर्णान् प्रविन्यसेत्।
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा देवीं मन्त्रमयीं यजेत् ।।५४।।
त्रैलोक्यमरुणं ध्यायञ् श्रीविद्यां मनसि स्मरेत्।
योनिमुद्रां महेशानि ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ।।५५।।
ललाटे च प्रविन्यस्य भ्रुवोर्मध्ये च विन्यसेत्।
मुखे कण्ठप्रदेशे तु हृदये तामनुक्रमात् ।।५६।।
न्यासः सम्मोहनाख्योऽयं त्रैलोक्यमोहनक्षमः।

श्रीदेव्युवाच–

अन्तर्यागविधिं ब्रूहि बहिर्यागविधिं तथा ।।५७।।

सम्मोहन न्यास का मन्त्रोद्धार कहते हैं—

१. ऐं क्लीं सौः–इति ब्रह्मरन्ध्रे। २. ऐं क्लीं सौः–इति मूलाधारे।
३. ऐं क्लीं सौः–इति हृदये। ४. ऐं क्लीं सौः–इतिनेत्रत्रये।
५. ऐं क्लीं सौः–इति कर्णयोः। ६. ऐं क्लीं सौः–इति मुखे।
७. ऐं क्लीं सौः–इतिभुजद्वये। ८. ऐं क्लीं सौः–इति पृष्ठदेशे।
९. ऐं क्लीं सौः–जानुद्वये। १०. ऐं क्लीं सौः–इति नाभौ।

साधक स्वयं इस प्रकार से मन्त्रतनु होकर मन्त्रमयी देवी का यजन करे। त्रिलोकी का अरुण वर्ण रूप से ध्यान करे तथा मन से श्रीविद्या का स्मरण करे। हे महेशानी! योनिमुद्रा का ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, भ्रूमध्य, मुख, कण्ठ, हृदय में क्रमानुसार न्यास करे। यह सम्मोहन न्यास त्रिलोकी को सम्मोहित कर लेता है।।५३-५६।।

देवी कहती हैं—कृपया अन्तर्याग विधि-बहिर्याग विधि को कहिए।।५७।।

ईश्वर उवाच–

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यजनं चान्तरं महत् ।
मनोजीवात्मनोः शुद्धिः प्राणायामेन जायते ।।५८।।
अन्तर्गतं यच्च मलं तच्च शुद्धं प्रजायते ।
प्राणायामैर्विना देवि कृतं कर्म निरर्थकम् ।।५९।।
प्राणायामात्परं तत्त्वं प्राणायामात् परं तपः।
प्राणायामात् परं ज्ञानं प्राणायामात् परं पदम् ।।६०।।
प्राणायामात्परं योगं प्राणायामात्परं धनम् ।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति कथितं तव सुव्रते ।।६१।।
वत्सराभ्यासयोगेन ब्रह्म साक्षाद्भवेद् ध्रुवम् ।
चैतन्यावरणं यद्वत् क्षीयते नात्र संशय ।।६२।।
प्राणायामं विना मुक्तिमार्गो नास्ति मयोदितम् ।
प्राणायामेन मुनयः सिद्धिमापुर्न चान्यथा ।।६३।।

अन्तर्याग विधि कहते हैं–ईश्वर कहते हैं–हे देवी! सुनों मैं महत् अन्तर्याग कहता हूँ। मन तथा जीव की शुद्धि प्राणायाम से होती है। अन्तर स्थित मल प्राणायाम से शुद्ध होता है। प्राणायाम के बिना कृत कर्म निरर्थक निष्फल है। प्राणायाम परमतत्व, परमतप, परमज्ञान, परमपद है। यही परमयोग, परमधन है। इससे बढ़कर कुछ नहीं है। एक वर्ष तक इसके अभ्यास योग से ब्रह्मसाक्षात्कार

होता है, यह ध्रुव सत्य है। इससे चैतन्य पर ढका आवरण क्षीण हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। प्राणायाम के अभाव में मुक्ति का कोई भी मार्ग नहीं है। मुनियों ने प्राणायाम द्वारा ही सिद्धि पाया है। अन्य उपाय से नहीं पाया है। प्राणायाम परायण योगी मात्र योगी नहीं है। वह शिव है।।५८-६३।।

प्राणायामपरो योगी न योगी शिव एव सः।
गमनागमनं वायोः प्राणस्य धारणं तथा ।।६४।।
प्राणायाम इति प्रोक्तो योगशास्त्रविशारदैः।
प्राणो वायुरिति ख्यात आयामस्तन्निरोधनम् ।।६५।।
प्राणायाम इति प्रोक्तो योगिनां योगसाधनम् ।
बाह्यादापूरणं वायोरुदरे पूरको भवेत् ।।६६।।
सम्पूर्णकुम्भवद्वायोर्धारणं कुम्भको भवेत् ।
बहिर्यद्रेचनं वायोरुदराद्रेचको भवेत् ।।६७।।
पूरकं च यथाशक्त्या कुम्भकं तच्चतुर्गुणम् ।
कुम्भकार्धं भवेद्रेचः प्राणायामोऽयमीरितः।।६८।।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ।
प्राणायाम स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ।।६९।।
वामया पूरयेद्वायुं शनैः शनैस्तु मध्यया ।
धारयेद्दक्षया मुञ्चेदपरं तत् क्रमोत्क्रमात् ।।७०।।
यावच्छक्यं नियम्यासून्मनसैव स्मरन् पराम् ।
मन्त्रस्य मुखबीजं वा समस्तं वा जपन् प्रिये ।।७१।।

अब प्राणायाम कहते हैं–प्राण का गमनागमन तथा उसे धारण करना योगशास्त्र विशारदों द्वारा प्राणायाम कहा गया है। प्राण का अर्थ है वायु। प्राण+आयाम= प्राणायाम। आयाम का अर्थ है रोकना। यही प्राणायाम है जो योगीगण का योगसाधन है। बाहर से उदर में वायु को खींचकर आपूरण करना पूरक क्रिया है। जैसे भरा हुआ घड़ा रहता है, वैसे वायु को भरे रहना (रोके रहना) कुंभक है। बाहर वायु का रोचन करना (पेट से वायु को नासिका छिद्र द्वारा निकालना) रेचक क्रिया है। पूरक यथाशक्ति करे। उसका चौगुना कुंभक करे। कुंभक का आधा रेचक होता है। यही है प्राणायाम। कनिष्ठा-अनामिका-अंगुष्ठ से नासापुट को पकड़ना प्राणायाम है। वाम (इड़ा) नाड़ी से वायु का क्रमशः पूरक करे। मध्यनाड़ी द्वारा उसे रोके। दाहिनी (पिंगला) नाड़ी द्वारा उसे छोड़े। यथाशक्ति प्राणों का कुंभक करके परादेवी का ध्यान करते हुए मन्त्र के मुख बीज का (प्रणव का) अथवा सम्पूर्ण मन्त्र का जाप करे।।६४-७१।।

मूलाधारे त्रिकोणाख्ये कोटिसूर्यसमप्रभे ।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं नित्यं कालानलशिखोपमाम् ।।७२।।
रक्तां सूक्ष्मां च विश्वस्य सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम् ।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम् ।।७३।।

अब कुण्डलिनी स्वरूप कहते हैं। मूलाधार के त्रिकोण में जो कान्तिमान है, कालाग्नि शिखा के समान स्थिता कुण्डलिनी का ध्यान नित्य करे। यह रक्तवर्णा, सूक्ष्मा, विश्व की सृष्टिस्थितिप्रलय रूपा है। इसका ध्यान विश्व से अतीत, ज्ञानरूपा तथा नीचे से ऊर्ध्व में जाती हुई करना होगा।।७२-७३।।

हूङ्कारोच्चारणेनैव समुत्थाप्य परांशिवे ।
षट्चक्रं च विनिर्भिद्य प्रापयित्वा परं शिवम् ।।७४।।
परानन्देन संयोज्य परमानन्दरूपिणीम् ।
तदभेदसमापन्नामनाकुलमनाः स्मरेत् ।।७५।।
स्रावयित्वा सुधां धारां प्रापयेच्छक्तिमण्डलम् ।
तनैव चक्रभेदेन मूलाधारं समानयेत् ।।७६।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तुस्वरूपिणीम् ।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां ध्यायेन्मन्त्रात्मदेवताम् ।।७७।।

हे शिवे! हुंकार के उच्चारण से इस परा को जगाकर षट्चक्र भेदन द्वारा परमशिव पर्यन्त ले जाये। इस परम आनन्द स्वरूपिणी को परानन्द (शिव) से संयुक्त करके उस भेद रहित हो गई कुण्डलिनी का समाहित मन से स्मरण करें।

स्रवित हो रही अमृतधारा से इसे तृप्त करके इसे शक्तिमण्डल में ले जाना होगा। जैसे यह उर्ध्वोत्थित होकर चक्रभेद से सहस्रार पर्यन्त गई है, उसी क्रम से इसे वापस मूलाधार में लाना होगा। कमल की नाल के सूत्र के समान, उदीयमान सहस्रों सूर्य की आभा वाली मन्त्रदेवता कुण्डलिनी का मूलाधार से ब्रह्मारन्ध्र तक ध्यान करे।।७४-७७।।

कुण्डलीं त्रिविधां तत्र तथा बीजत्रयं त्रिधा ।
तुरीयां कुण्डलीं मूर्ध्न महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।७८।।
वाग्भवं मूलदेशे च द्रवत्स्वर्णनिभं स्मरेत् ।
मूलादिहृदयं यावद् वह्निकुण्डलिनीं तथा ।।७९।।
हृदये कामराजं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
सूर्यकुण्डलिनीं तत्र सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।।८०।।
हृदयाद्गलपर्यन्तं ध्यायेदनाकुलः शिवे ।
भ्रूमध्ये शक्तिबीजं तु चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।।८१।।

भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं चन्द्रकुण्डलिनीं शिवे ।
चन्द्रकोटिसमप्रख्यां स्रवदमृतविग्रहाम् ।।८२।।

देह में त्रिविध कुण्डलिनी (उर्ध्व-मध्य-अध:) तथा त्रिबीज ऐं, क्लीं, सौ: का ध्यान करे। महात्रिपुरसुन्दरी चतुर्थ कुण्डलिनी हैं जो शिरोदेश में स्थित हैं। मूलाधार में पिछले स्वर्ण के समान दीप्तिमान वाग्भव (ऐं) का ध्यान करें। मूलाधार से हृदय पर्यन्त वह्निकुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिए। हृदय में कामराज बीज (क्लीं) का ध्यान करें। यह सूर्यकोटिसमप्रभा है। हृदय से गले तक कोटिसूर्ण के समान प्रभायुता सूर्य कुण्डलिनी का ध्यान अनाकुल मन से करे। भ्रूमध्य में शक्तिबीज (सौ:) का ध्यान करे जो कोटिचन्द्र के समान कान्ति युक्त है। हे शिवे! भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक चन्द्र कुण्डलिनी का ध्यान करे। वह कोटि चन्द्रमा के समान तथा अमृतस्रवा है।।७८-८२।।

बीजत्रयमयीं बिन्दौ तुर्यां बिन्दुत्रयात्मिकाम् ।
देशकालानवच्छिन्नां सर्वतेजोमयीं स्मरेत् ।।८३।।
तुर्यकुण्डलिनीं तद्वत्केवलं ज्ञानविग्रहाम् ।
एवं ध्यात्वा पुनर्विद्यां सम्पूर्णां मनसा स्मरेत् ।।८४।।

बिन्दु स्थान में तीन बीज युक्ता "ऐं क्लीं सौ:" रूपा तीन बिन्दु स्वरूपा चतुर्था कुण्डलिनी का ध्यान करे। यह देश-काल से अनवाच्छिन्न, सर्वतेजोमयी है। यह ध्यान करके पुन: सम्पूर्ण विद्या का स्मरण करे।।८३-८४।।

चिदानन्दमयीं स्वच्छामेकात्मकतया प्रिये ।
सुधावृष्ट्याभिपतन्त्या तर्पयेत् परदेवताम् ।।८५।।

वह विद्या चिदानन्दमयी, स्वच्छ स्वरूपा है। भाखना द्वारा उस बिन्दु से स्त्रवित सुधा द्वारा परादेवता को तृप्ति प्रदान करें।।८५।।

ध्यात्वा ध्यात्वा पुनर्ध्यात्वा सहजानन्दविग्रहाम् ।
बिन्दु(श्रु?स्त्रु) तसुधाभिस्तुतर्पयेच्च पुनः पुनः ।।८६।।
अन्तर्याग इति प्रोक्तो जीवतो मुक्तिदायकः।
मुनीनां च मुमुक्षूणामधिकारोऽत्र केवलम् ।।८७।।

इस सहजानन्द परा देवी का पुन: पुन: बारम्बार ध्यान करे। तथा उसे पुन: पुन: अमृत धारा द्वारा तर्पण प्रदान करे। यही अन्तर्याग है जो जीवितावस्था में मुक्ति देता है। इस अन्तर्याग के अधिकारी हैं केवल मुनिगण तथा मुमुक्षुगण।।८६-८७।।

प्रातः सायं चरेन्नित्यं षोडश प्राणसंयमान् ।
नाशयेत् सर्वपापानि तृणराशिमिवानलः ।।८८।।

सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ।
स्वदेहस्थं यथा सर्पश्चर्मोत्सृज्य निरामयः।।८९।।
प्राणायामात्तथा मुञ्चेदविद्याकामकर्मकम् ।
परोपपापजं पापं परद्रव्यापहारजम् ।।९०।।
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामशतं दहेत् ।
महापातकजातानि ब्रह्महत्यादिकानि च ।।९१।।
सर्वाण्येतानि दह्यन्ते प्राणायामचतुःशतैः।
मनःशक्तिः समाख्याता पञ्चास्याः पञ्च देहगाः।।९२।।
एकरूपं शिवं कृत्वा तदङ्के तां निवेशयेत् ।
शून्यरूपे परे स्थाप्य तावुभौ सममास्थितौ ।।९३।।
चिन्तयेत् साधको नत्वा नादरूपं तयोः क्रमात् ।
तदन्तर्मनसात्मानं ज्योतीरूपं सनातनम् ।
समाधिना समागत्य त्यजेत् संसारबन्धनम् ।।९४।।

रोज सायंकाल तथा प्रातःकाल किया गया १६ प्राणायाम समस्त पापराशि को वैसे ही दग्ध कर देता है जैसे तृण के ढेर को अग्नि दग्ध कर देती है। यही सभी पापों का प्रायश्चित है। जैसे सर्प अपनी केचुल को छोड़कर रोग रहित हो जाता है, वैसे ही प्राणायाम से अविद्या जन्म-कर्म तथा उसके परिणाम से मुक्त हो जाता है। उपपाप, अन्य के द्रव्य के अपहरण से जनित पाप, परस्त्री गमन जनित पाप, साधक द्वारा कृत १०० प्राणायामों से दग्ध हो जाता है। ४०० प्राणायामों से ब्रह्महत्या जैसे महापाप दग्ध हो जाते हैं। मनःशक्ति पंचमुखी है तथा ५ देहों में स्थित कही गयी है। शिव के साथ ऐक्यरूप बनाकर मनःशक्ति को शिवांक में बैठा दे। तब उसे पराशून्य में स्थापित करके शिव-शक्ति का सामरस्य रूप में ध्यान करें। समाधि द्वारा सनातन ज्योतिरूप आत्मा का साक्षात्कार करके साधक संसार बन्धन से छुटकारा पा लेता है।।८८-९४।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे नित्यन्यासान्तर्यागविधिनि
रूपणंनामैकादशः पटलः।।११।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवादान्तर्गत् नित्यन्यास अन्तर्याग
निरूपण नामक एकादश पटल समाप्त ।।

◆

द्वादशः पटलः

ध्यानयोगनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

अथवा परमेशानीं लीलाकलितविग्रहाम्।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां निगृह्येन्द्रियमानसः।।१।।
तन्मनाः साधकवरो मनसा पूजयेच्छिवाम्।
वामकरस्य तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठया।।२।।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामाङ्गुष्ठेन योजयेत्।
उन्नतं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः।।३।।
अङ्गुलीर्योजयेत् पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च।
वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा।।४।।
अधोमुखे तु ते कुर्याद्दक्षिणस्य करस्य च।
रक्तपुष्पं गृहीत्वैवं विधाय पाणिकच्छपम्।।५।।

ईश्वर कहते हैं–श्रेष्ठ साधक अपनी इन्द्रियों तथा मन को वशीभूत करके लीला के लिए शरीरधारिणी, परमेशानी, का हृदयकमल के मध्य में मानस पूजन करे। वाम हाथ की तर्जनी से दक्षिण हाथ की कनिष्ठा को तथा दक्षिण हाथ की तर्जनी से वाम अंगुष्ठ को युक्त करे। दायां अंगूठा उर्ध्वोत्थित रहे, वामहस्त की मध्यमादि उंगलियों को दक्षिण हाथ के पृष्ठ से जोड़े। मध्यमा तथा अनामिका को बायें हाथ के पितृतीर्थ से युक्त करे। यह है कच्छप मुद्रा। इसमें रक्तपुष्प रखे।।१-५।।

कुर्यात्तद् हृदयासन्नं निमील्य नयनद्वयम्।
समकायशिरोग्रीवः कृतासनपरिग्रहः।।६।।
पश्यन्निव ततो देवीमेकाग्रमनसा ततः।
प्रत्यक्षीकृत(त?त्य)हृदये मानसैरुपचारकैः।।७।।
षोडशानां प्रकारैस्तु हृदिस्थां पूजयेच्छिवाम्।
आसनं प्रथमं दद्याद्रत्नसिंहासनं शुभम्।।८।।
पाद्यं चरणयोर्दद्याच्छिरस्यर्घ्यं निवेदयेत्।
परमामृतपानीयं भावपुष्पैः सुवासितम्।।९।।
स्वर्णपात्रे जलं कृत्वा दद्यादाचमनं मुखे।
मधुपर्कं ततो दद्यात् पुनराचमनं ततः।।१०।।
स्ववामे मण्डलं कृत्वा पर्यङ्कं परिभावयेत्।
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा नीत्वा तां स्नानमन्दिरे।।११।।

भद्रासनोपविष्टाया उद्वर्तनं समाचरेत् ।
घृतेनोद्वर्तनं कृत्वा मनसा परिभावयेत् ।।१२।।
कर्पूरागुरुकस्तूर्या तथा मृगमदेन च ।
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रैर्नानागन्धसमन्वितैः ।।१३।।
सुगन्धिदिव्यतैलैश्च स्नापयेत् परमेश्वरीम् ।
देवकन्यासहस्रैस्तु स्वर्णकुम्भसहस्रकैः।।१४।।
नदीभिर्नदराजैश्च अप्सरोगणपन्नगैः।
सिञ्चता वारिणा स्नातां चिन्तयेत् परदेवताम् ।।१५।।

इस रक्त पुष्प वाले हाथ को हृदय पर लाये। दोनों नेत्रों को बन्द करके काय तथा ग्रीवा को सम रखकर आसनासीन हो एकाग्र मन से देवी ध्यान में तत्पर हो जाये। अब हृदय में (भावना से) शिवा देवी को प्रत्यक्ष करके मानसिक षोडश उपचारों द्वारा हृदयस्थ देवी का पूजन करे। अब षोडशोपचार विधि कहते हैं। सर्वाग्र में रत्नमय शुभ सिंहासन प्रदान करना चाहिए। तदनन्तर शिर पर अर्घ्य एवं चरणों में पाद्य प्रदान करे। यह अर्घ्य भावनारूप पुष्पों से सुवासित तथा परम अमृतरूप जल से युक्त हो। मनःकल्पित स्वर्णपात्र में जल भरकर उससे उनके मुख में आचमन प्रदान करे। मधुपर्क निवेदनोपरान्त पुनः आचमन करायें। (मन की भावना द्वारा) अपने वामभाग में मण्डल रचना द्वारा वहाँ भगवती हेतु 'पलंग है' ऐसी भावना करे। रत्न जटित उत्तम पादुका प्रदान करके उन्हें स्नानागर में ले जाये। वहाँ उन्हें भद्र आसन पर आसीन कराये और उबटन लगाये। यह घृत की उबटन है, ऐसी कल्पना करे। तत्पश्चात् कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी, लताकस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम मिश्रित अनेक द्रव्यों से युक्त सुगन्धित मिश्रित दिव्य तैल लगाकर देवी को स्नान करावे। उनका ध्यान करता रहे कि हजारों देवकन्यायें, अप्सरागण, नागकन्यागण उन्हें नदियों तथा नदों से स्वर्णघट में जल लाकर स्नान करा रही हैं।।६-१५।।

दुकूलैर्मार्जितं गात्रं दुकूले परिधाप्य ।
कङ्कतीकेशसंस्कारो विधिवद्बन्धनं तथा ।।१६।।
सूत्रावलीं केशपाशे सिन्दूरं केशमध्यमे ।
ललाटे तिलकं दद्यादलक्तं रदनच्छदे ।।१७।।
नेत्रेषु ह्यञ्जनं कृत्वा गन्धैर्गात्रानुलेपनम् ।
काञ्चनाञ्चितकञ्चूलीशोभनं हृदयोपरि ।।१८।।
विभूषणं ततो दद्यात् सुवर्णरजतादिना ।
शिरः कर्णग्रीवादोषसूज्जवलाभरणानि च ।।१९।।

अब यह भावना करनी है कि दुपट्टे से उनके शरीर को सुखाया गया तदनन्तर दो वस्त्र धारण कराये गये। कंघी से उनके केशों का संस्कार भी किया गया। सूत्रों से केश को जूड़े के रूप में बाँधकर केश मध्य में सिन्दूर दिया गया। यह भावना करे। अब ललाट पर तिलक लगानें की भावना के अनन्तर ओष्ठद्वय अलंकृत करे तथा नेत्रों में अंजन लगाये। तथा शरीर पर गन्धानुलेप करे। इस भावना के अनन्तर हृदय के ऊपर स्वर्ण निर्मित कञ्चुली रखे। तत्पश्चात् उन्हें स्वर्ण-रजत के आभूषण धारण कराये। समुज्वल नूपुर-मोती का हार तथा अन्य आभूषण अर्पित करे (पहनाये)। शिर, कर्ण, ग्रीवा तथा भुजाओं में इन उज्वल आभरणों को पहनायें।।१६-१९।।

नूपुरौ च ततो दद्यान्मुक्ताहारं समुज्ज्वलम् ।
अन्यदाभरणं चैव यत्र येन विराजते ।।२०।।
श्रीरत्नपादुके दत्त्वा चक्रमध्ये समानयेत् ।
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।।२१।।

उज्वल नूपुर-मुक्ताहार तथा जिस अंग में जो आभूषण शोभा पाये वह पहनाना चाहिए। रत्नमयी पादुका प्रदान करके भगवती को भावना द्वारा चक्रमध्य में ले आये। तब गन्ध-पुष्प-धूप-दीप तथा नैवेद्यार्पण करना चाहिए।।२०-२१।।

हेमपात्रगतं दिव्य परमान्नं सुसंस्कृतम् ।
कपिलाघृतसंयुक्तं नानाव्यञ्जनसंयुतम् ।।२२।।
भक्ष्यं भोज्यं तथा लेह्यं पेयं चोष्यं तथैव च ।
क्षीरपानीयसंयुक्तं दधिमधुसमन्वितम् ।।२३।।

भावना द्वारा यह दिव्यान्न का बना सुसंस्कृत किया नैवेद्य स्वर्णपात्र में रखा हो। यह नैवेद्य कपिला गौ के घृत से बना तथा नाना व्यञ्जनों के रूप में होना चाहिए। व्यञ्जन आदि भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय, चोष्य तथा खीर एवं जल से युक्त दधि-मधु युक्त हो।।२२-२३।।

सकर्पूरं च ताम्बूलं मानसं परिकल्पयेत् ।
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि ।।२४।।
यो नरो भक्तिसंयुक्तः स दीर्घायुः सुखी भवेत् ।
माल्यं पद्मसहस्रस्य मनसा यः प्रयच्छति ।।२५।।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
स्थित्वा तव पुरे श्रीमान् सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।।२६।।

तदनन्तर भावना द्वारा कर्पूर आदि से रचा ताम्बूल समर्पण करे। जो व्यक्ति भक्ति से युक्त होकर महादेवी को मन की भावना द्वारा नैवेद्य अर्पित करता है, वह

दीर्घायु एवं सुखी हो जाता है। हे पार्वती! जो व्यक्ति मन:कल्पित सहस्र पद्म की माला देवी को देता है, वह श्रीमान एक सहस्रकोटि कल्प पर्यन्त तुम्हारे लोक में रहकर एक सौ करोड़ वर्षों तक धरती पर सार्वभौम नृपति हो जाता है॥२४-२६॥

मनसा तु महादेव्यै यः कुर्याच्च प्रदक्षिणम्।
स दक्षिणं यमगृहं नरकान्नैव पश्यति ।।२७।।
नमनं मानसं देव्या यो भक्त्या कुरुते नरः।
सोऽपि लोकान्विजित्यैव नरलोके महीयते ।।२८।।

उन महादेवी की परिक्रमा मन:कल्पित रूप से करनी चाहिए। ऐसा साधक दक्षिण दिशा की ओर यमपुरी एवं नरकों को नहीं देखता। जो भक्ति के साथ देवी को मानसिक प्रणाम करता है, वह लोकजित् होकर नरलोक में पूजित होता है॥२७-२८॥

महामायां महादेवीं समर्चयामि शक्तितः।
नानाविधैस्तु नैवेद्यैरिति चिन्ताकुलस्तु यः।।२९।।
नैवेद्यं देहि नितरामिति यो भाषते मुहुः।
सोऽपि लोकान् विभिद्यैव देवीलोके महीयते ।।३०।।

जो इसी चिन्ता से चिन्ताकुल रहता है कि मैं कैसे अनेक नैवेद्य समूह द्वारा महादेवी महामाया की अपनी शक्ति के अनुसार अर्चना करूँ, तथा जो यह बारम्बार प्रार्थना करता है कि "हे देवी मुझे अधिक से अधिक नैवेद्य दो ताकि तुम्हें अर्पित कर सकूँ", वह साधक समस्त लोकों को उत्तीर्ण करके देवीलोक प्राप्त करने पर वहाँ पूजित होता है॥२९-३०॥

बहिर्वच्चक्रपूजां च मनसैव समाचरेत्।
नवावरणशक्तीनां पूजनं मनसैव हि ।।३१।।
इत्थमन्तः समाराध्य मनसैव जपेन्मनुम्।
तदा भवति सिद्धीशो देववद्विहरेत् क्षितौ ।।३२।।

इसी प्रकार नवावरण शक्ति देवताओं की मानसिक पूजा करे। साधक को बाह्य पूजा की भाँति (बाह्य पूजा के पूर्व अन्त: पूजा करनी चाहिए ऐसा तन्त्र में कहा है) अन्त: पूजा भी करनी चाहिए। ऐसी अराधना (मन से) करके साधक मन ही मन मन्त्र जप भी करे। ऐसा करके वह साधक सिद्धीश हो जाता है और पृथ्वी पर देववत विहार करता है॥३१-३२॥

एवमेव महेशानि पूजयामि महेश्वरीम्।
योगिनो मुनयश्चैव पूजयन्ति सदा प्रिये ।।३३।।
केवलं मानसेनैव नैव सिद्धो भवेद्गृही।
साबाह्येन तु तेनैव गृहस्थो मुनिपुङ्गवः।।३४।।

हे महेशानी! मैं भी इसी प्रकार महेश्वरी का पूजन करता रहता हूँ। हे प्रिये! योगी, मुनिगण भी मानसिक पूजन ही करते हैं, लेकिन गृहस्थ को केवल मानसिक पूजन ही नहीं करना चाहिए। उसे मात्र मानसिक पूजन से ही सिद्धि नहीं मिलती। उसे बाह्य पूजा के साथ मानसिक पूजा भी करनी चाहिए। इससे वह गृहस्थ मुनिपुंगव मुनियों में भी श्रेष्ठ हो जाता है।।३३-३४।।

पार्वत्युवाच–

ध्यानयोगं महादेव श्रोतुमिच्छामि हे प्रभो।
सम्पूर्णं कथयेशान येन सिद्धो भवेत् परः।।३५।।

भगवती पार्वती कहती हैं–हे प्रभो! हे महादेव! ध्यानयोग श्रवण करने की इच्छा हो रही है। हे ईशान! कृपया ऐसे सम्पूर्ण योग का उपदेश कीजिए, जिससे साधक पूर्ण सिद्ध हो जाए।।३५।।

ईश्वर उवाच–

विना न्यासैर्विना पूजां विना जप्यपुरुस्क्रियाम्।
ध्यानयोगाद्भवेत् सिद्धोनान्यथा खलु पार्वति।।३६।।
ध्यानयोगादहं सिद्धो विष्णुश्चापि पितामहः।
ध्यानयोगात् परं सिद्धा मानवा अपि पापिनः।।३७।।

ईश्वर कहते हैं–मनुष्य न्यास, पूजा, जप तथा पुरश्चरण के बिना केवल ध्यान योग से ही सिद्ध हो जाता है। ध्यानयोग के बिना सिद्धि नहीं मिलती। मैं, विष्णु, पितामह ब्रह्मा ध्यानयोग के द्वारा ही सिद्ध हो सके हैं। जो महापापी हैं, ऐसे मनुष्य भी ध्यान-योग से ही सिद्ध हो सके हैं।।३६-३७।।

सर्वतन्त्रेषु यद्गुह्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
विना येन सिध्यन्ति वर्षकोटिशतैरपि।।३८।।
ध्यानयोगं प्रवक्ष्यामि सर्वतत्त्वप्रदायकम्।
एकान्ते विजने रम्ये कृतासनपरिग्रहः।।३९।।
निवृत्ताखिलचिद्वृतिर्मुद्रामुद्रितविग्रहः।
कारणानन्दसंदोहैर्बहिरन्तः प्रपूरितः।।४०।।
गुरून् नत्वा विधानेन सोऽहमित्युपरोधतः।
ऐक्यं सम्भावयेद्धीमाञ्जीवस्य ब्रह्मणोऽपि च।।४१।।
कारणे सर्वभूतानां तत्त्वान्यपि च चिन्तयेत्।
बीजभावेन लीनानि व्युत्क्रमात् परमात्मनि।।४२।।

जो सर्वतन्त्रों में गोपित, सर्वसिद्धिप्रद हैं तथा जिसका अभ्यास किये बिना सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी सिद्धि नहीं मिलती, उस ध्यानयोग को कहता हूँ, जो सर्वतत्व प्रदायक है।

एकान्त जनहीन रमणीय स्थान में आसन रखकर आसीन हो जाये तथा चित्त-वृत्तियों से रहित होकर मुद्रा द्वारा शरीर को आबद्ध कर ले। कारणानन्द समूह (मद्यादि से) बाह्याभ्यन्तर को आपूरित करके नियम पूर्वक गुरु को प्रणाम करे और धीमान साधक (अपने) जीव के साथ ब्रह्मैक्य की भावना करे।

सर्वभूतों के कारण भूत तत्व का चिन्तन करे। तदनन्तर व्युत्क्रम से समस्त तत्वों को परमात्मा में लीन कर दे।।३८-४२।।

एवं विचिन्त्य देवेशि पार्थिवांशं जले गतम् ।
जलं तेजसि लीनं च तेजो वायौ विचिन्तयेत् ।।४३।।
आकाशे संहृतं वायुं खं च मनसि लीयते ।
मनोऽहङ्कारवशगं तथाहं महति स्थितम् ।।४४।।
महान्तं प्रकृतौ लीनं चिन्तयेत् परमेश्वरि ।
मुमुक्षुश्चिन्तयेल्लीनां प्रकृतिं परमात्मनि ।।४५।।

(व्युत्क्रम का क्रम यह है पृथ्वी-जल-तेज-पवन-ब्योम-तन्मात्र-अहंकार-बुद्धि-प्रकृति-पुरुष-कारण ब्रह्म) हे देवेशी! अब यह चिन्तना करे कि पार्थिवांश जल में गया, जल तेज में लीन हो गया। तेज वायु में लीन हो गया, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश मन में, मन अहंकार में, अहंकार बुद्धि में, बुद्धि प्रकृति में तथा प्रकृति परमात्मा में लीन हो गयी, यह चिन्तन मुमुक्षु करे।।४३-४५।।

नाहो न रात्रिर्न संध्या न सूर्यो नैव चन्द्रमाः।
इदं तमोमयं सर्वमासीद्भुवनवर्जितम् ।।४६।।
अप्रज्ञातमलक्ष्यं च प्रसुप्तमिव सर्वतः।
चिन्तयित्वा महेशानि न किंचिदपि भावयेत् ।।४७।।

न दिन है, रात्रि भी नहीं है, न सूर्य है न चन्द्र। भुवन वर्जित यह सब तमोमय था। यह अप्रज्ञात अलक्ष्य सब प्रकार से प्रसुप्तवत् था। हे महेशानी! यह चिन्तना करके अब कोई भी भावना न करे।।४६-४७।।

एकमासीत् परं ब्रह्म नित्यं सूक्ष्ममतीन्द्रियम् ।
नित्यानन्दमयं धाम तेजोरूपं सनातनम् ।।४८।।
तदेव प्रकृतिः सा तु तेजोरूपा सनातनी ।
नित्यानन्दवपुर्देवी तद्रूपा तत्प्रकाशिनी ।।४९।।
तयोर्योगादभूद्वृष्टिः परमामृतरूपिणी ।
परिपूर्णमिदं देवि समस्तं प्लावयेत् तथा ।।५०।।

अब ध्यान से सृष्टि क्रम कहते हैं—आदि में एक परब्रह्म ही था जो सूक्ष्म, अतीन्द्रिय, नित्यानन्दमय तेजरूप सनातन था। वही प्रकृति हो गया जो

तेजरूपा, सनातनी, नित्यानन्दमय वपु वाली देवी तद्रूप है। तथा उन ब्रह्म का प्रकाशन करने वाली है। दोनों के योग से परमामृत की वृष्टि होने लगी। साधक उससे सब कुछ का पूर्ण रूप से प्लावित रूप ध्यान करे।।४८-५०।।

तत्राम्भसि स्वमात्मानं चिन्तयेत् साधकोत्तमः।
बुद्बुदं चिन्तयेत्तत्र प्रकृतिं चिन्तयेत् पराम्।।५१।।
प्रकृतेर्हि महान्तं वै अहं च महतस्तथा।
अहङ्कारान्मनश्चैव मनस खं समुत्थितम्।।५२।।
आकाशाद्वायुमुत्कृष्य वायोस्तेजः समुत्थितम्।
तेजसो जलमासाद्य जलाच्च पृथिवीं स्मरेत्।।५३।।

साधक यह चिन्तना करे कि वह भी उस जल से प्लावित है। उसी परम अमृत रूप जल में प्रकृति का ध्यान बुद्बुद् रूपेण करे। तदनन्तर यह ध्यान करना चाहिए कि प्रकृति से महत्तत्व, उससे अहंकार, उससे मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति है।।५१-५३।।

बहिष्कृत्य यथास्थानं निवेश्य विधिना ततः।
हैमं ब्रह्माण्डमेभिः स्याद् भूबीजेन दृढं स्मरेत्।।५४।।
प्रणवेन द्विधा कृत्वा जलौघैः परिपूरयेत्।
ब्रह्माण्डाभ्यन्तरे तोयं तदधो भेकमव्ययम्।।५५।।

इन तत्वों को भावना द्वारा बहिष्कृत करके यथास्थान निवेशित करे। इनसे स्वर्णमयी ब्रह्माण्डोत्पत्ति होती है और तदनन्तर इस ब्रह्माण्ड को भूबीज (लं) से दृढ़ किया जा रहा है, यह चिन्तन करे। तब प्रणव भावना से इस ठोस ब्रह्माण्ड को भागद्वय में विभक्त करके दोनों भाग को जल पूरित करे। ब्रह्माण्ड में जल की भावना करते हुए उसके अधः में अव्यय मेढक (भेक) की भावना करें।।५४-५५।।

तस्य पृष्ठे महादेवि कालाग्निरुद्ररूपकम्।
आधारशक्तिं तत्रैव मूलप्रकृतिरूपिणीम्।।५६।।
ब्रह्मशिलासमारूढां कूर्माकारां शशिप्रभाम्।
पद्मद्वयधरां देवीं मूर्धनि कूर्मधारिणीम्।।५७।।
नीलाभं चिन्तयेत् कूर्ममनन्तं कुन्दसन्निभम्।
तस्य मूर्ध्नि स्थितं देवि श्वेतं वाराहरूपकम्।।५८।।
तमालश्यामलां दन्ते धारयन्तं वसुन्धराम्।
तां च संचिन्तयेत्तत्र नीलेन्दीवरधारिणीम्।।५९।।
चिन्तयेत् सलिलैः पूर्णां चतुसागरमेखलाम्।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवि सुधासागरमद्भुतम्।।६०।।

रक्ताभममृतं तत्र शुद्धलाक्षारसोपमम् ।
तन्मध्ये चिन्तयेद्देवि द्वीपं विद्रुमसन्निभम् ।।६१।।
गिरिराजशताकीर्णं परितेक्षुवनं महत् ।
गिरौ स्वर्णगिरिं चैव कल्पोद्यानं गिरेस्टते ।।६२।।

हे महादेवी! उस मेढक के पृष्ठ देश पर कालाग्निरुद्ररूपिणी आधारशक्ति का ध्यान करे। तदनन्तर ब्रह्मशिला पर बैठी हुई कूर्माकारा शशिप्रभा का ध्यान करना चाहिए, तदनन्तर दो कमल धारिणी, मूर्धा पर कच्छप धारिणी मूल प्रकृति का ध्यान करे। वह अनन्तकूर्म कुछ नीला कन्द पुष्पवत् है। उस कच्छप के शिखर पर भगवान् श्वेतवराह का ध्यान करे, जिन्होंने अपने दाँतों पर चार सागरों की मेखला से युक्त नीलकमल के वर्ण की पृथिवी को धारण कर रखा है। ऐसा ध्यान करे। उस पृथिवी के मध्य में अद्भुद् सुधासागर का ध्यान करे। यह समुद्र रक्ताभ है। उसके मध्य जो अमृत है, वह शुद्धलाक्षरस के समान है। उसके मध्य में विद्रुम मणि के वर्ण के समान एक द्वीप का ध्यान करे। वह द्वीप सौ पर्वतों से घिरा है। चतुर्दिक ईख का वन है जो महत् वन है। वहाँ पर स्वर्णगिरि है और उसके तट पर कल्पवृक्ष का उद्यान है।।५६-६२।।

चम्पकाशोकपुन्नागपाटलैः कुटजैस्तथा ।
लवङ्गमाधवीबिल्वदेवदारुनमेरुभिः ।।६३।।
मन्दारपारिजाताद्यैः कल्पवृक्षैः सुपुष्पितैः।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः।।६४।।
चन्दनैः कर्णिकारैश्च मातुलुङ्गैः करञ्जकैः।
द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्मधुकैराम्रकैरपि ।।६५।।
दाडिमीचूतपनसैः पूगैः कर्पूरकैरपि ।
कदलीकुन्दखर्जूरनारिकेलैरलंकृतम् ।।६६।
कदम्बैः करवीरैश्च तगरैर्नागकेसरैः।
यावन्तीस्वर्णयूथीभिर्वज्रैर्दमनकैरपि ।।६७।।
मालतीमल्लिकाजातीकेतकीशतपत्रकैः ।
अन्यैः सुगन्धिपुष्पाद्यैः शोभितं यूथिकादिभिः।।६८।।

उस कल्पोद्यान में चंम्पा, अशोक, नागकेशर, पाटल, कुटज के वृक्ष हैं। वह लवंग, माधवी लता, देवदारु, रुद्राक्ष, मन्दार, पारिजात आदि सुन्दर पुष्पयुक्त वनों से पूर्ण है। शोभित है। यह सुपुष्पित कल्पवृक्षों से भी भरा है। दिव्यापुष्पयुक्त वृक्ष जैसे चन्दन, अमलतास, बिजौरा नीबू, करञ्ज, अंगूर, केला, जामुन, महुआ, अमड़ा, अनार, आम, कटहल, सुपाड़ी, कपूर, केला, कुन्द,

खजूर, नारीयल के वृक्षों से वह अलंकृत है। यह कदम्ब, कनेर, तगर, नागकेशर, यावन्ती, स्वर्णयुथी, कुश, दोना, मालती, मल्लिका, जायफल, केवड़ा, कमल तथा जूही आदि पुष्पों से शोभित उद्यान है।।६३-६८।।

अन्योन्यासक्तवल्लीभिर्वृक्षषण्डैश्च मण्डितम् ।
सर्वर्तुकुसुमोपेतैर्नमद्भिरुपशोभितम् ।।६९।।
मन्दमारुतसंभिन्नकुसुमामोददिङ्मुखम् ।
उत्फुल्लकुसुमामोदप्रहृष्यद्भृङ्गसंकुलम् ।।७०।।
कूजत्कोकिलसङ्घेन वाचालितदिगन्तरम् ।
कालमेघसमालोकनृत्यद्बर्हिकदम्बकम् ।।७१।।

परस्पर लिपटी लताओं तथा वृक्षों से मण्डित, सर्वऋतुओं में होने वाले पुष्पों के भार से झुके, नत वृक्षों से शोभित है। तथा उनकी सुगन्ध को मन्दमारुत ले जाकर सुगन्धित कर रही है, ऐसा उद्यान, जो खिले पुष्पों के पराग का पान करते-करते प्रसन्न हो गये भ्रमरों से व्याप्त भी है। काल मेघ (भरे बादलों) को देखकर मयूरों का झुण्ड नृत्यरत है। कोयलों की कुंजन से दिशायें व्याप्त हैं।।६९-७१।।

शारिकाशुकबहुलैः कूजत्कलरवैर्युतम् ।
द्वन्द्वभावं प्रकुर्वद्भिर्मृगैर्नानाविधैरपि ।।७२।।
सरित्सरोभिरच्छोदैः शोभितं कुमुदोत्पलैः।
तेषु सरःसु विपुलं महारसामृतम् ।।७३।।
सर्वतोऽलंकृतं दिव्यं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ।
मत्तषट्पदनिर्जुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः।।७४।।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ।
तन्महासरःपुलिने रत्नसोपानमण्डिते ।।७५।।
महारसरसान्दोलवीचिविक्षेपशीतले ।
सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।।७६।।
मौक्तिकैः कुसुमैः स्त्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः।
स्मरेत् कल्पतरुं तत्र तदधो रत्नभूमिकाम् ।।७७।।
विस्तीर्णं सुमनोव्याप्तां तन्मध्ये रत्नमण्डपम् ।
परितः पारिजाताढ्य भास्वरं शशिशीतलम् ।।७८।।
उद्यदादित्यसङ्काशं रत्नसोपानमण्डितम् ।
शतयोजनविस्तीर्णं चतुर्द्वारसमन्वितम् ।।७९।।

बहुल संख्यक तोते तथा सारिका के कुंजन से यह उद्यान शब्दायमान है। इसके नदी तथा सरोवरों में कमल खिले हैं। उनमें से एक बहुत विशाल तालाब

है। उसमें स्वर्ण कमल विकसित हो रहे हैं। उसमें महारस युक्त अमृत आपूरित हैं। वहाँ मत्त भ्रमर, तथा मधुर कूकने वाले पक्षी हैं। हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारसों से तालाब शोभित है। उसके सोपान रत्न से मढ़े हुए हैं। महारस के आन्दोलन से होने वाली लहरों से शीतल कल्पवृक्ष का चिन्तन करे। यह कल्पवृक्ष समस्त दिव्य कामना पूर्ण करने वाला, मोती की मालाओं, पुष्पमालाओं, वस्त्र तथा स्वर्ण तोरण से शोभित है। उसके अधः में रत्नपूर्ण विस्तृत भूमि है। वह सुमनों से व्याप्त है। उसके मध्य में रत्नमण्डप का ध्यान करे। वह रत्नमण्डप चतुर्दिक् पारिजात से सम्पुटित है। वह चन्द्रमा के समान शीतल है। वैसा ही भास्वर है। प्रभात कालीन उदीयमान सूर्य की तरह (देदीप्यमान) उस मण्डल में रत्नों के सोपान निर्मित हैं। वह सौ योजनों वाला मण्डप चार द्वारों से युक्त है।।७२-७९।।

द्वार्षु विद्रुमदेहल्याभातं वज्रकवाटकम्।
रत्नसंक्लृप्तसंशोभिकवाटाष्टकसंयुतम् ।।८०।।
नानारत्नविशोभाढ्यरत्नप्राकारमण्डितम् ।
नवरत्नसमाक्लृप्ततुङ्गप्राकारतोरणम् ।।८१।।
तत्र तत्र विनिःक्षिप्तनानारत्नोपशोभितम्।
महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः।।८२।।
शिखरेष्विन्द्रनोलेषु हेमकुम्भैरलंकृतम्।
चक्षुष्मत्पद्मरागाग्रैर्वज्रभित्तिषु निर्गतैः।।८३।।
जुष्टं विचित्रवैतानै महार्धैं हैंमतोरणैः।
सर्वर्द्ध्युपचयौंरिर्कमणिस्तम्भैर्विराजितम् ।।८४।।

उस मण्डल में हीरे के (हीरे से जड़ित) कपाट लगे हैं। विद्रुम की चौखट है। वह मण्डल रत्नों से जड़ित तथा आठ कपाटों से जो अतीव सुन्दर है। शोभित है। वह नाना रत्न जड़ित प्राकार (चहार दिवार) से मण्डित है। उस पर नवरत्नों से वने उतुङ्ग तोरण लगे हैं। इसमें नाना रत्न जड़ित हैं। महामरकत भूमि पर मूगें से वेदी निर्मित हैं। शिखर नीलमणियों से निर्मित हैं, उन पर स्वर्णघट अलंकृत हैं। हीरों की भित्ति बनी हुई है। यह मण्डप विचित्र वितान तथा अमूल्य हेमतोरणों से युक्त है। सभी ऋद्धियों से युक्त सूर्यकान्त मणिसमूह से निर्मित स्तम्भों से यह मण्डप सुशोभित हो रहा है।।८०-८४।।

हेमदण्डशिखालम्बिध्वजावलिपरिष्कृतम् ।
स्वस्वस्थानकृतातावस्थैर्लोकपालैरधिष्ठितम् ।।८५।।
सिद्धचारणगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।
किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टदिङ्मुखम्।।८६।।

नृत्यसङ्गीतनिरतैरमरस्त्रीगणैर्युतम् ।
नवरत्नसमाबद्धस्तम्भराजिविराजितम् ।।८७।।
सप्तहाटकसंक्लृप्तवातायनमोहरम् ।
नानारत्नांशुकोद्बद्धसुवर्णशतकोटिभिः ।।८८।।
किंकिणी मणिसन्नद्धपताकाभिरलंकृतम् ।
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नचामरभूषितम् ।।८९।।
जातरूपमयै रत्नैश्चित्रितैरतिविस्तृतैः ।
माणिक्यरत्नवैदूर्यस्वर्णमालावलीयुतैः ।।९०।।
अन्तरान्तरसम्बद्धरत्नैर्दृष्टिमनोहरैः ।
विचित्रितैश्चित्रवर्णैर्वितानैरुपशोभितम् ।।९१।।

सिर पर झूलने वाली हेमदण्ड की ध्वजाओं से परिष्कृत मण्डप अपना स्थान ग्रहण करके बैठने वाले लोकपाल गण से अधिष्ठित है। चतुर्दिक् सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, पन्नग, किन्नर तथा अप्सरागण क्रीड़ारत हैं। नृत्य-संगीत में निरत देवाङ्गनाओं से वह मण्डप भरा हुआ है। नवरत्न से मढ़ा हुआ वह शोभित है। वहाँ स्वर्ण निर्मित सात खिड़कियां बनी हैं। जो मनोहर हैं। वह मण्डप नाना रत्न जड़ित वस्त्रों से तथा शतकोटि स्वर्ण की किंकिणी तथा मणियों द्वारा मण्डित पताका समूह से सजा हुआ है। वह माणिक्य, वैदूर्य रत्न लगे चामर से शोभा पा रहा है। वहाँ स्वर्ण तथा रत्नों से चित्रित, अनेक रंग के अति विस्तृत माणिक्य, वैदूर्य तथा स्वर्ण माला समूह से युक्त वितान छाये हुए हैं। इनमें बीच-बीच में रत्न सम्बद्ध हैं। बीच-बीच में लगे रत्न इसे और सुन्दर मनोहर बना रहे हैं॥८५-९१॥

स्थूलमुक्ताफलोद्दामलम्बमारैरलंकृतम् ।
उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ।।९२।।
क्लृप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ।
दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ।।९३।।
दुकूलक्षौमकौ(षे?शे) यैर्नानावर्णैर्विराजितम् ।
स्त्रग्भिर्विचित्रपुष्पाभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।।९४।।
चन्दनागुरुकर्पूरमृगनाभिविलेपितम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरधूपितं सुमनोहरम् ।।९५।।
नानाकुसुमसौरभ्यवाहिगन्धवहान्वितम् ।
नन्दनोद्यानमध्यस्थमधः कल्पतरोरपि ।।९६।।

एवं संचिन्त्य मनसा मण्डपं सुमनोहरम् ।
तन्मध्ये स्फुरितं ध्यायेन्महामाणिक्यमण्डपम् ।।९७।।
शरच्चन्द्रनिभच्छत्रं मुक्तामाणिक्यमण्डितम् ।
हेमदण्डशिखालम्बिश्वेतचामरभूषिताम् ।।९८।।

स्थूल मुक्ता, फलों से लम्बमान, अलंकृत उपर बनाये जो निलय हैं, उनमें पलंग, आसन, तोषक, पंखे, गद्दे चादर आदि बिछाये जाने से वे अतीव मनोहर लग रहे हैं। वहाँ दिव्य उपकरण भी स्थापित हैं। वे सभी काल में सुखप्रद हैं। नाना वर्ण के रेशमी वस्त्रों से वह शोभित हो रहा है। वह विचित्र पुष्पों से निर्मित माला, मधुर गुंजरण करने वाले भ्रमरों से शोभित है। चन्दन-अगुरु-कर्पूर-कस्तूरी से विलेपित, चन्दन-अगुरु-कर्पूर से धूपित है। मनोहारी नाना पुष्पों का सौरभ बहाने वाला पवन वहाँ बह रहा है। यह मण्डप नन्दन कानन के मध्य में हैं, इस पर कल्पतरु भी है। इस प्रकार से इस सुमनोहारी मण्डप की कल्पना करे। उस मण्डप के मध्य में चमकते महामाणिक्य के मण्डप का ध्यान करे जिसमें शरदचन्द्र के समान छत लगे हैं, वह मण्डप मुक्तामाणिक्य से अलंकृत है। उसमें माणिक्य निर्मित जो वेदी है वह रक्तवर्णी है। वह स्वर्णदण्ड में लटकने वाले श्वेतचामर से भूषित है।।९२-९८।।

तदधःस्थां स्मरेद्रक्तां महामाणिक्यवेदिकाम् ।
उद्यदर्केन्दुकिरणां चतुरस्रोपशोभिताम् ।।९९।।
वेदिकां वेदिकास्थाने सिंहासनं ततोपरि ।
तस्याग्नेयादिकोणेषु धर्मादिकास्तु संस्मरेत् ।।१००।।
दिक्ष्वधर्मादिकास्तत्र चिन्तयेद्गात्ररूपिणः।
रक्तश्यामहरिद्रेन्द्रनीलाभान् पादरूपिणः।।१०१।।
वृषके सरिभू तेभरूपान् धर्मादिकान् स्मरेत् ।
प्रसूनतूलिकां तत्र सिंहासनस्य मध्यगे ।।१०२।।

इस वेदी से उगते हुए सूर्य की किरणें निकल रही हैं। वह वेदी चतुरस्र से शोभित है। वेदी के वेदिका स्थान पर सिंहासन स्थित है। उसके आग्नेयादि कोणों में धर्मादि का स्मरण करे। चतुर्दिक् शरीर धारण किए हुए अधर्म आदि का चिन्तन करे। इनके रंग हैं रक्त, श्याम, पीत एवं नील। धर्मादि का रूप है वृष, सिंह, भूत तथा हाथी का। यह ध्यान करना चाहिए। सिंहासन के मध्य में पुष्प तूलिका. स्थापित है।।९९-१०२।।

तन्मध्ये परमं ध्यायेत् सर्वतत्त्वात्मकाम्बुजम् ।
आनन्दकन्दमेवात्र संविन्नालं तथैव च ।।१०३।।

प्रकृतिविकाररूपद्वात्रिंशत्पत्रकेसरम् ।
पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यकर्णिकापरिमण्डितम् ।।१०४।।
कर्णिकायां स्मरेत् सूर्यं तन्मध्ये सोममण्डलम् ।
(सोममण्डलमध्ये तु संस्मरेद्वह्निमण्डलम्) ।।१०५।।

उसके मध्य में सर्वतत्वात्मक कमल का ध्यान करना चाहिए। कमल में आनन्द ही कन्द है, संवित इसकी नाल है, इसके पत्र तथा केसर हैं प्रकृति तथा उसकी विकृति समूह महत् आदि। इनकी संख्या है ३२। यह ५० वर्णों वाली बीज रूप कर्णिका से मण्डित है। कर्णिका में सूर्य का ध्यान करे। उसमें सोममण्डल का ध्यान करें। सोम-मण्डल के मध्य वह्निमण्डल का ध्यान होना चाहिए।।१०३-१०५।।

वह्निमण्डलमध्ये तु सत्त्वं च परिचिन्तयेत् ।
रजश्च तत्र संचिन्त्य तमोऽपि च तन्मध्यतः।।१०६।।
ज्ञानतत्त्वात्मनश्चैव मायातत्त्वात्मनस्तथा ।
विद्यातत्त्वात्मनो देवि कलातत्त्वात्मनो यजेत् ।।१०७।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च महाप्रेताश्चतुर्दिङ्मध्यसंस्थिताः।।१०८।।
सदाशिवोपरिगतं त्रिशृङ्गज्योतिरव्ययम् ।
तस्य मध्ये महापद्मं पीयूषपरिपूरितम् ।।१०९।।
सुधार्णवासने तत्र त्रिपुरां प्रकटेश्वरीम् ।
पीताम्बुजासने तद्वच्चिन्तयेत् त्रिपुरेश्वरीम् ।।११०।।

वह्निमण्डलमध्य में सत्वगुण का, उसके मध्य रजस् का, उसके तमः का चिन्तन करना चाहिए। हे देवी! ज्ञानतत्व, मायातत्व, विद्यातत्व तथा कलातत्व का यजन उसके मध्य में करे।

उस कमल के चतुर्दिक तथा मध्य में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा ईश्वर तथा (मध्य में) सदाशिव स्थित हैं। यह ध्यान करे। सदाशिव के शिर के ऊपर त्रिशृङ्गरूपा अव्यय ज्योति स्थित है। उसके मध्य में पीयूष से पूर्ण महापद्म है। उस सुधार्णव आसन पर त्रिपुरा प्रकटेश्वरी का, तथा वैसे ही पीतकमलासन पर त्रिपुरेश्वरी का ध्यान करे।।१०६-११०।।

चिन्तयेत् साधको भक्त्या गुप्तयोगिन्यधीश्वरीम् ।
आत्मासनगतां तत्र स्मरेत् त्रिपुरसुन्दरीम् ।।१११।।
गुप्ततरेश्वरीं देवीं चक्रासने विचिन्तयेत् ।
त्रिपुरवासिनीं देवीं सम्प्रदायगणेश्वरीम् ।।११२।।
सर्वमन्त्रासने देवि चिन्तयेत् त्रिपुरश्रियम् ।
कुलकौलेश्वरीं देवीं, साध्यासनगतां ततः।।११३।।

त्रिपुरमालिनीं प्राज्ञे निगर्भयोगिनीश्वरीम् ।
सिद्धासने ततः पश्चात् सिद्धां त्रिपुरपूर्विकाम् ।।११४।।
पर्यङ्कशक्तिपीठे तु त्रिपुराम्बां विचिन्तयेत् ।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कसमासीनां परां कलाम् ।।११५।।
रक्तपद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणारुणाम् ।
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ।।११६।।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ।
स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।।११७।।

साधक को चाहिए कि वह भक्ति पूर्वक गुप्त योगिनी अधीश्वरी का ध्यान करे। त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान आत्मासन पर करना चाहिए। चक्रासन में गुप्तेश्वरी का चिन्तन करे। सर्वमन्त्रासन पर सम्प्रदायगणेश्वरी त्रिपुरवासिनी तथा त्रिपुरश्री का चिन्तन करे। तथा यहीं कुलकौलेश्वरी का भी ध्यान करते हैं। हे प्राज्ञे! त्रिपुरश्री तथा निगर्भयोगिनीश्वरी त्रिपुरमालिनी का साध्यासन पर ध्यान करे। त्रिपुरसिद्धा का ध्यान सिद्धासन पर तत्पश्चात् करे। पर्यंक पीठ पर त्रिपुराम्बा का चिन्तन करना चाहिए। पराकला कामेश्वरी कामेश्वर के अंकरूप पर्यङ्क पर समासीन हैं। वे देवी बाल सूर्य की किरणों के समान अरुण हैं। वे जवापुष्प के समान तथा अनार के पुष्प के समान प्रभायुक्त हैं। वे पद्मराग मणि के समान तथा कुंकुम मिले जल के समान हैं। वे मुकुट तथा माणिक्य युक्त किंकिणी से सजी हुई हैं।।१११-११७।।

कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ।।११८।।
किंचिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकधनुराकारसुभ्रुवं परमेश्वरीम् ।।११९।।
आनन्दमुदितोल्लोललीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।।१२०।।
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ।
विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ।।१२१।।
ताम्रविद्रुमबिम्बाभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ।
दाडिमीबीजवज्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।।१२२।।

उनकी अलकें काले भ्रमर के समान कुटिल (घुंघराली) हैं। मुख मण्डल नवीन कमल के समान अरुण है। ललाट उस प्रकार से किंचित् वक्र है जैसे अर्द्धचन्द्र वक्र होता है उनके भ्रूद्वय पिनाक धनुष के समान है। इनसे वे परमेश्वरी सुशोभित हैं। उनके नेत्र आनन्द से उत्फुल्ल तथा चंचल हैं। कर्णद्वय में स्थित स्वर्ण कुण्डलों की किरणों से उनका मुख शोभित हो रहा है। कपोलमण्डल तो

चन्द्रमण्डल को भी लज्जित करने वाले हैं। नासिका ऐसी लग रही है मानों विश्वकर्मा का निर्माण सूत्र है। ओष्ठद्वय ताम्र अथवा विद्रुम वर्ण के अथवा बिम्बाफल के रंग वाले अमृत के समान हैं। दन्तपंक्ति अनार के बीज अथवा वज्राभ (हीरे जैसी आमा वाली) है॥११८-१२२॥

रत्नद्वीपसमुद्भासिजिह्वां मधुरभाषिणीम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ।।१२३।।
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणालललितैर्भुजैः ।।१२४।।
मणिकङ्कणकेयूरभारखिन्नां प्रशोभिताम् ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ।।१२५।।
कराम्बुजनखज्योत्स्नाविराजितनभःस्थलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतपीनोन्नतपयोधराम् ।
त्रिवलीवलनायुक्तमध्येदेशसुशोभिताम् ।।१२६।।

उनकी जिह्वा रत्नद्वीप के समान उद्भासित हो रही है। देवी मधुरभाषिणी हैं। स्मितहास्य का माधुर्य मधुरता के सागर को भी जीत लेने वाला है। उनका चिबुक अद्वितीय गुणों से युक्त है। उनकी ग्रीवा शंख की तरह तथा भुजायें कमल नाल की तरह लालित हैं जो मणिजटित कङ्कणों से भूषित हैं। उनकी हथेली रक्तोत्पलदलाकार सुकुमार है। करकमल की नख ज्योत्स्ना नभःस्थल में विराजित हो रही हैं। मुक्ताहार की माला उनके पीन उन्नत स्तनों के ऊपर शोभायमान है (लटक रही है)। मध्यदेश (कटिप्रदेश) त्रिवली-वलय से सुशोभित है॥१२३-१२६॥

लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ।
अनर्घरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ।।१२७।।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजीवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्भसुकुमारोरुमीश्वरीम् ।।१२८।।
लावण्यकन्दलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ।
गूढगुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।।१२९।।

वे लावण्य की नदी के भंवर की तरह वाली नाभि से विभूषित हैं। नितम्बो पर अमूल्य रत्नों वाली करधनी शोभायमान है और नितम्बों के ऊपर रोमावलि ऐसी लग रही है कि मानों वे नितम्बरूपी हाथी को वश में करने वाले अंकुश हों। वे ईश्वरी केले के ललित खम्भें के समान सुकुमार उरु वाली हैं। लावण्य की कन्दलीद्वय के समान उनके दोनों जंघे शोभित हैं। उनके मजबूत गुल्फ (टखना) युक्त पादद्वय कच्छप को भी लज्जित कर देते हैं॥१२७-१२९॥

नूपुरैर्विलसत्पादपङ्कजातिमनोहराम् ।
ब्रह्मविष्णुशिरोत्ननिर्घृष्टचरणाम्बुजाम् ।।१३०।।
तनुदीर्घाङ्गुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम्।।१३१।।
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां रक्ताभरणभूषिताम् ।।१३२।।

ब्रह्मा विष्णु के शिर का मुकुट उनके चरणों पर घिसता रहता है, (अर्थात् वे उन्हें सदा प्रणाम करते रहते हैं)। उनकी पतली उंगलियों के नख रूपी चन्द्रमा उनकी शोभा की वृद्धि कर रहे हैं। उनका हास्य सैकड़ों चन्द्र की कान्ति की तरह है। वे अपनी लालिमा द्वारा सिन्दूर जवापुष्प तथा अनार के वर्ण को भी जीत ले रही हैं। वे रक्तवस्त्र धारिणी तथा रक्तवर्ण अलंकारों से भूषित हैं॥१३०-१३२॥

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधतीं पराम् ।।१३३।।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।।१३४।।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ।।१३५।।

उन्होंने इच्छा शक्तिमय पाश, ज्ञानशक्तिरूप अंकुश, क्रियाशक्ति रूपी धनुष उन परा देवी ने धारण कर रखा है। उनका मुख कर्पूर मिश्रित ताम्बूल से भरा हुआ है। उनका शरीर कस्तूरी की गन्ध से सुगन्धित तथा अरुण वर्ण का है। उनका वेश सर्वशृङ्गार युक्त है। वे सर्व अलंकारों से भूषित हैं। ये जगत् को अल्हाद प्रदान करने वाली तथा जगत् का रंजन करने वाली हैं॥१३३-१३५॥

जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वदेवमयीं देवीं सर्वमन्त्रमयीं पराम् ।।१३६।।
सर्वलक्ष्मीमयीं साक्षात्परमानन्दरूपिणीम् ।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं त्रिपुरामयम् ।।१३७।।
आत्माभेदेन संचिन्त्य याति तन्मयतां नरः।
साहमित्यस्य सततं चिन्तनात्तन्मयो भवेत् ।।१३८।।
तामेव चिन्तयेद्देवि नान्यत् किंचित्तया विना ।
तत्तेजोभिरिदं सर्वं परिपूर्णं विभावयेत् ।।१३९।।

वे जगत् का आकर्षण करने वाली तथा जगत् की कारण रूपा हैं। इन सर्व-देवमयी, सर्वमन्त्रमयी, सर्वलक्ष्मीमयी, परा तथा साक्षात् परमानन्दरूपा हैं।

इन निर्लेप, निर्गुण, निरंजन, शुद्ध त्रिपुरसुन्दरीमय आत्मा को जानने वाला मनुष्य तन्मय हो जाता है। 'वह मैं ही हूँ।' ऐसा ध्यान करके साधक त्रिपुरामय हो जाता है। हे देवी! उनका सदैव चिन्तन करें। उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उनके तेज से सब व्याप्त है, ऐसी भावना सदैव करे।।१३६-१३९।।

एवं भावनयाविष्टो देववद्विहरेत् क्षितौ ।
ध्यानयोगपरस्यास्य पूज्यो नास्तीह कश्चन ।।१४०।।
स एव सुकृती लोके स पूज्यो न तु पूजकः।
योगात्मा योगविज्ज्ञानी स देवो न तु मानुषः।।१४१।।
संन्यासी स च विन्यासी युक्तात्मा स मुनिर्मतः।
नासाध्यं वर्तते तस्य स सिद्धो योगिपुङ्गवः।।१४२।।

ऐसी भावना से आवेशित साधक संसार में देवता के समान विहार करता रहता है। ध्यानयोग परायण ऐसे साधक के लिए इस जगत् में कोई भी पूजनीय नहीं है। सब उसे ही पूज्य मानते हैं। वही इस लोक में सुकृति है, वह पूज्य है, पूजक नहीं है। ऐसा योगात्मा-योगवेत्ता ज्ञानी भक्त देवता है, मनुष्य नहीं है। वह सन्यासी, विन्यासी, मुक्तात्मा तथा मुनि है। इस पृथ्वी पर उसके लिए असाध्य कुछ नहीं हैं, वही सिद्ध एवं योगिपुङ्गव है।।१४०-१४२।।

इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैस्तोषयेद् भूषयेत् सदा ।
आत्मानमेव सततं पूजयेद् देवताधिया ।।१४३।।
देववद्विहरेन्नित्यं कालयोगपरायणः।
यत् पश्यति यच्छृणोति गीतनृत्यादिकं च यत् ।।१४४।।
परिदधाति यत्किंचित् स्वयं यदनुलिम्पति ।
हस्त्यश्वरथखट्वादि यदारोहति साधकः।।१४५।।
यत् करोति यदश्नाति तत् सर्वं देवताधिया ।
विषयान् विषयी भुङ्क्ते यानेव स्वमनोरथान् ।।१४६।।
तत्तत् समग्रमासाद्य तत्सर्वं देवताधिया ।
जाग्रदादि सुषुप्त्यन्तं सर्वं तद्देवताधिया ।।१४७।।
दिव्य एव भवेत्तत्र न चैवान्यः कदाचन ।
तस्माद् दिव्यपरो यस्तु देवीमानन्दरूपिणीम् ।।१४८।।

साधक स्वयं अपने में देव भावना करके इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले द्रव्य से उनको प्रसन्न करे तथा उन्हें अलंकृत करे। कालयोग में लगा हुआ वह देवता के समान सर्वदा विहार करता है। वह जो कुछ देखता, सुनता है, नृत्यगीत

देखता है, जो पहनता तथा लेप करता है, जिस हाथी, अश्वरथ, खाट आदि पर आरोह करता है, जो करता है, जो खाता है, वह सब देवबुद्धि से ही करता है।

विषयों में विषयी अपने मनोरथ के अनुसार जिन विषयों को भोगता है, उसमें वह स्वयं को भोक्ता मानने लगता है। लेकिन साधक वह सब स्वयं को देवता मानकर उसका भोग सम्पन्न करता है। वह जाग्रत से लेकर सुषुप्ति पर्यन्त जो कुछ करता है, वह सब देवतार्थ करता है। अतः देवता हो जाता है। अतः जो दिव्यभोग चाहता है, उसे आनन्दरूपा देवी परा का पूजन करना चाहिए।।१४३-१४८।।

पूजयेत् सततं भक्त्या महात्रिपुरसुन्दीरम् ।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं ध्यानयोगपरायणः।।१४९।।
तां तु यश्चिन्तयेद्रात्रौ भोगी ध्यानपरायणः।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कसमासीनां परां कलाम्।।१५०।।
सर्वाङ्गसुन्दरीं हृद्यां प्रसादसुमुखेक्षणाम् ।
सकारणामभिध्यायेत् सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ।
चतुर्वर्गं करे तस्य जीवन्मुक्तः स एव हि ।।१५१।।

इस प्रकार से सदैव महात्रिपुरसुन्दरी का पूजन करते रहना चाहिए। इससे मोक्षार्थी ध्यानयोग परायण होकर मोक्ष प्राप्त करता है। यदि भोगी रात्रि काल में ध्यानासीन होकर कामेश्वर की गोद में आसीना पराकला, सर्वाङ्गसुन्दरी, हृदय का हरण करने वाली प्रसन्न मुख वाली सकारणा देवी के सर्वाङ्ग का ध्यान चित्त से करता है तब चतुर्वर्ग उसके लिए हस्तामलकवत् है और वह जीवनमुक्ति प्राप्त कर लेता है।।१४९-१५१।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे ध्यानयोगनिरूपण
नामको द्वादशः पटलः।।१२।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में ध्यानयोग निरूपण
नामक द्वादश पटल समाप्त ।।

◆

त्रयोदशः पटलः

बहिर्यागविधि,विशेषार्घ्यपात्रसाधनानिरूपणम्

श्री पार्वत्युवाच–

बहिर्यागविधिं ब्रूहि साङ्गेन परमेश्वर ।
विशेषार्घस्य संस्थानं नित्याय जनमेव च ।।१।।

भगवती पार्वती देवी कहती हैं–हे परमेश्वर! बहिर्याग की विधि अंगों के साथ, विशेषार्घ्य का संस्थान और नित्या का यजन कहिए।।१।।

ईश्वर उवाच–

तादृशीमम्बिकां ध्यात्वा त्रिधात्मानं च तन्मयम् ।
तेनैव मूलमन्त्रेण शिरोदेशे तदेव हि ।।२।।
स्वकीये कुसुमं दद्यादङ्गन्यासं पुनस्तथा ।
चैतन्यं सर्वभूतानां यद् ब्रह्म सोऽहमीश्वरः।।३।।
सोऽहमित्यस्य सततं चिन्तनाद् देवरूपता ।
आत्मनो जायते सम्यग्भावनान्नात्र संशय ।।४।।

ईश्वर कहते हैं–पहले कही गयी विधि के अनुसार देवी का तथा अपना तीन प्रकार से ध्यान करें जो ध्यान निर्लप, निर्गुण तथा त्रिपुरमयता का ध्यान है। उनके ही मूल-मन्त्र द्वारा अपने शिर पर पुष्प रखकर अङ्गन्यास करे। तदनन्तर यह चिन्तन करना चाहिए (देवरूपता का चिन्तन) जो चैतन्य रूप से सर्वभूतों में स्थित है, वह ईश्वर मैं ही हूँ। वही मैं हूँ (सोऽहं) के सतत् चिन्तन द्वारा देवरूपता हो जाती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यही आत्मस्वरूप की सम्यक् भावना कही जाती है।।२-४।।

पूजोपकरणस्यापि देवत्वमिह जायते ।
सर्वेषां देवतादृष्ट्या जायते शुद्धतापि च ।।५।।
अहं देवोऽथ नैवेद्यं पुष्पगन्धादिकं च यत् ।
देवाधारो ह्यहं देवो न देवो मत्परः क्वचित् ।।६।।
देवमेव यजे चाहं देवदेवोऽहमेव च ।
यदि बाह्यार्चनद्रव्यसम्पत्तिरपि विद्यते ।।७।।
विशेषार्घ्यादिकं देवि तदा कुर्यादतन्द्रितः।
पूजार्घ्यपात्रं नैवेद्याद्याधारपानपात्रकम् ।।८।।
सर्वं ताम्रमयं कुर्याद्यत्किंचिदिह पूजने ।
ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाःस्थिताःसदा।।९।।

इस भावना द्वारा पूजा सामग्री में भी देवरूपता का अनुभव होने लगता है। सब सामग्री में देवदृष्टि रहने से वे स्वयं शुद्ध हो जाती हैं। मैं ही देवता हूँ। नैवेद्य, पुष्प, गन्ध आदि सब देवता ही है। मैं ही देवाधार भी हूँ। देवता भी मुझसे भिन्न नहीं है। मैं (आत्मस्वरूप) देवता की ही पूजा कर रहा हूँ। मैं ही देवाधिदेव हूँ। यह आन्तर पूजा की बात है। हे देवी! तथापि यदि बाह्यपूजार्थ द्रव्य की शक्ति हो तब आलस्य से रहित होकर विशेषार्घ्य प्रभृति प्रदान करे। पूजार्घ्यपात्र, नैवेद्य का पात्र तथा पानपात्र, आधार पात्रादि सभी ताम्र का होना चाहिए। ताम्र से देवता प्रसन्न हो जाते हैं समस्त देवता ताम्र में रहते हैं।।५-९।।

देवीप्रीतिकरं ताम्रं तस्मात् ताम्रं प्रयोजयेत् ।
शङ्खशुक्तिरजतस्वर्णैर्दिव्यानां पात्रमिष्यते ।।१०।।
महाशङ्खैस्तु वीराणां फलजं वनवासिनाम् ।
अष्टाङ्गुलस्य न न्यूनं नाधिकं सार्धपाणितः।।११।।
सर्वेषामेव पात्राणां मानमेवं विधीयते ।
पञ्चरत्नैर्महादेव्याः पञ्च पात्राणि कारयेत् ।।१२।।

ताम्र देवी को प्रिय लगता है, तभी ताम्र पात्र का प्रयोग किया जाता है। दिव्य भाव (दिव्याचारी) के साधकों के पात्र शंख-मोती अथवा स्वर्ण के होते हैं। वीराचारी (वीर-भावापन्न) साधकों के पात्र नरकपाल के होते हैं। वनवासियों के पात्र फल के होते हैं (जैसे नारियल, गोल लौकी की तुम्बी आदि)। पात्र का परिमाण अष्ट अंगुल से कम लम्बाई वाला और बारह अंगुल से दीर्घ नहीं होना चाहिए। सभी पात्रों हेतु यही नियम है। पंचरत्नों से महादेवी के पात्र बनाये (प्रतीत होता है कि इनमें से किसी भी का पात्र बना ले)। ये पंचरत्न हैं पन्ना, माणिक्य, हीरा, वैदूर्य तथा नीलम ।।१०-१२।।

सामान्यं च विशेषं च पाद्यमाचमनीयकम् ।
कुम्भं चापि प्रयत्नेन रत्नैः कुर्याद्विभूतये ।।१३।।
रत्नं गगनसंज्ञं च स्वर्गरत्नं तथैव च ।
मर्त्यपातालरत्ने च नागरत्नं तथैव च ।।१४।।
गारुडं चैव माणिक्यं वज्रं वैदूर्यमेव च ।
नीलं च क्रमतो विद्यात् पञ्च रत्नानि योजयेत् ।।१५।।
बीजपञ्चकमेतेषां क्रमाद्वक्ष्ये सुदुर्लभम् ।
गसौ च(स?प)मनाः पञ्चादिन्द्रस्थाः क्रमतः प्रिये ।।१६।।
नादबिन्दुकलायुक्ता वामकर्णविभूषिताः।
तर्पणार्थं विशेषेण चक्रपूजानिवेदने ।।१७।।

श्रीपात्रं साधयेद्धीमान् विधिना साधकोत्तमः।
योनिमुद्रां विधायादौ कुर्यादर्घ्यस्य साधनम् ।।१८।।
आत्मश्रीचक्रयोर्मध्ये चतुरस्त्रं तु कारयेत् ।
तन्मध्ये चैव षट्कोणं तन्मध्ये वृत्तमुत्तमम ।।१९।।
त्रिकोणं तत्र संलिख्यं चन्दनेन वरानने ।
मण्डलं तं समभ्यर्च्य साधयेदासनं ततः।।२०।।

सामान्य, विशेष, पाद्य, आचमनीय तथा घट इन पात्रों को रत्न द्वारा विभूति हेतु बनाये। रत्न हैं गगनरत्न, मर्त्यरत्न, पातालरत्न, नागरत्न, गरुड़रत्न (पन्ना), माणिक, हीरा, वैदूर्य तथा नीलम। इनसे पात्रों को योजित करे। अब इन पात्रों हेतु सुदुर्लभ बीज क्रम को कहता हूँ। ग, स, प, म, न को इन्द्र (ल) से युक्त करके नाद-बिन्दु, कला तथा वामकर्ण (ऊ) से मण्डित करने पर पंच बीजों का उद्धार हो जाता है। ये बीज हैं 'ग्लूं', 'स्लूं', 'प्लूं', 'म्लूं', न्लूं। तर्पणार्थ एवं विशेष रूपेण चक्रपूजा निवेदनार्थ धीमान साधक विधि द्वारा श्रीपात्र (विशेषार्घ्यपात्र) की व्यवस्था करे। योनिमुद्रा बनाकर अर्घ्यपात्र का साधन करे। अपने (जहाँ साधक बैठा हो और जहाँ श्रीचक्र स्थित है, उन दोनों के बीच) और श्रीचक्र के मध्य चतुरस्त्र मण्डल निर्माण करे। उसमें षट्कोण बनाकर षट्कोण के बीच में उत्तम वृत्त बनाये। हे वरानने! उसमें मध्य में त्रिकोण बनाये। यह लेखन कार्य चन्दन से होना चाहिए। मण्डल की विधि पूर्वक पूजा करके वहाँ आसन स्थापित करे।।१३-२०।।

बालाबीजत्रयं देवि ततस्त्रिपुरसुन्दरी ।
अर्घ्यपात्रासनं चैव साधयामीति साधयेत् ।।२१।।
तथैवास्त्रेण तु तथा सामान्यार्घ्योदकेन तु ।
प्रक्षाल्य परमेशानि मण्डले स्थापयेत्ततः।।२२।।
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।
पूर्ववत् परमेशानि पात्रं प्रक्षाल्य साधकः ।।२३।।
विशेषार्घ्यपदात् पात्रं प्रतिशब्दादनन्तरम् ।
स्थापयामीति मनुना संस्थाप्य तदनन्तरम् ।।२४।।
सूर्यमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।
पूजयेत्तं विधानेन बिन्दुस्तुततसुधामयैः।।२५।।

तदनन्तर मन्त्र पढ़ना चाहिए जो इस प्रकार हैं–"ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी अर्घ्यपात्रं साधयामि।" यह मन्त्र पढ़ते हुए अर्घ्यपात्र हथेली पर रखकर 'फट्' का उच्चारण करते-करते सामान्य जल से उसे स्वच्छ करे। हे परमेशानी! अब उस अर्घ्य-पात्र को मण्डल पर रखे। वह्नि की दस कलाओं द्वारा उसका पूजन करना

चाहिए। वे है धूर्माचि, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्री, कपिला, हव्यवाहना, कव्यवाहना। हे परमेशानी! तदनन्तर पहले वाले पात्र के लिए कही गयी विधि के साथ दूसरे पात्र को "ऐं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरि विशेषार्घ्यपात्रं प्रतिष्ठापयामि" मन्त्र से स्थापित करना होगा। यह पात्र सूर्यमण्डल रूप है, इस भावना अमृत से सूर्य की द्वादश कला की बूँद-बूँद से गिरने वाले अमृत से पूजन करे। वे कलायें हैं तपिनी, तापिनी, धूम्रा, मरीचि, ज्वालिनी, रुचि, सुषुम्ना, भोगदा, विश्वा, बोधिनी, धारिणी, क्षमा॥२१-२५॥

मातृकां प्रतिलोमेन मूलाभिमन्त्रितामृतैः।
आदिमैः पूरयेद्वापि तथा पुष्पासवैरपि॥२६॥
कपिलायास्तथा क्षीरैर्नारिकेलामृतैरपि।
इक्षुरसैः सुगन्धैश्च मधुरत्रितयेन वा॥२७॥
पूरयेत् तन्महापात्रं नानाद्रव्यैः कदाचन।
अधिकारिप्रभेदेन द्रव्यभेदा भवन्ति हि॥२८॥
स्वयम्भूकुसुमं तत्र कर्पूरागुरुचन्दनैः।
रोचनाकुङ्कुमैर्मिश्रं कस्तूरीपरिभावितम्॥२९॥
निक्षिपेत् परमेशानि शर्करां मधुसंयुताम्।
पूर्वोक्तमण्डलं तत्र संचिन्त्य साधकोत्तमः॥३०॥
अङ्कुशमुद्रया पश्चात् तीर्थं वै प्रार्थयेत् ततः।
ऋजुमध्यामध्यपर्वाक्रान्ता तर्जन्यधोमुखी॥३१॥
विज्ञेयाङ्कुशमुद्रेयं कुञ्चिता मध्यपर्वतः।
सौरमण्डलतः पश्चात् तीर्थमावाहयेत् तथा॥३२॥
गङ्गावतारमन्त्रेण सर्वैस्तीर्थगणैः सह।
गङ्गापि यमुनायाति पूजापात्रजलं प्रति॥३३॥

अब आकार आदि मातृकाओं का प्रतिलोम उच्चारण करे तथा द्रव्यों को मूल-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उनसे ही उस पात्र को भरे। वे द्रव्य हैं पुष्पासव, कपिला गौ का दुग्ध, नारियल की गिरी, ईख का रस, त्रिमधुर सुगन्ध तथा नाना द्रव्य। साधक के अधिकार भेद से द्रव्य का निर्धारण होता है। हे परमेशानी! कपूर, अगुरु, चन्दन, गोरोचन, कुंकुम को कस्तूरी, स्वयंम्भुकुसुम मधु, शर्करा में मिलाकर उस पात्र में छोड़े।

तदनन्तर साधक उस पात्र में तीर्थावाहन अंकुश मुद्रा के द्वारा करे तथा प्रार्थना भी करे। अंकुश मुद्रा में मध्यमा ऊँगली सीधी होती है, मध्य पर्व पर ऋजु होती है। अनामिका अधोमुखी होती है। तत्पश्चात् सौर-मण्डल से तीर्थ का

आवाहन किया जाता है, इसे गङ्गावतार मन्त्र से करें जो ऋग्वेद संहिता १०/७५/५ में इस प्रकार है–

"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽकीये शृणुह्या सुषोमया।।"

गंगा के साथ ही यमुना का भी आगमन इस उत्तम पात्र में होता है।।२६-३३।।

मीनमुद्रां विधायाथ हस्ताभ्यां पात्रमुत्तमम् ।
आच्छाद्य परमेशानि चिन्मयं तीर्थमागतम् ।।३४।।
अधोमुखावुभौ हस्तौ स्वस्वोपरि च संस्थितौ ।
पार्श्वद्वयगताङ्गुष्ठौ मीनमुद्रेयमीरिता ।।३५।।
माणिक्यं मौक्तिकं देवि विद्रुमं गारुडं तथा ।
पुष्परागं तथा वज्रं नीलं गोमेदकं शुभम् ।।३६।।
वैदूर्यं नवरत्नानि तत्राम्भसि नियोजयेत् ।
रत्नेशीं पूजयेत्तत्र सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।३७।।

अब मीनमुद्रा द्वारा उत्तम पात्र को आवरित करके उस पात्र में यह भावना करें कि वहाँ चिन्मय तीर्थ का आगमन हो गया है। मीनमुद्रा में दोनों हथेलियों को अधो-मुखी करके एक के ऊपर दूसरी हथेली को रखना चाहिए। पात्र के जल में माणिक्य, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद तथा वैदूर्य रखे। इसी पात्र में सर्व-पापप्रणाशिनी रत्नेश्वरी देवी की पूजा करे।।३४-३७।।

श्रीबीजं च पराबीजं तथैव बीजपञ्चकम् ।
पूर्वबीजे विलोमेन तत्पश्चाद्विनियोजयेत् ।।३८।।
द्रव्यदोषहरा देवी रत्नेशीयं नवाक्षरी ।
षडङ्गानि च षट्कोणे पूर्वोक्तानि प्रपूजयेत् ।।३९।।
तन्मध्ये च परेशानि वृत्तं पूर्णेन्दुसन्निभम् ।
चन्द्रमण्डलरूपं तममृतं परिचिन्तयेत् ।।४०।।

अब पात्र में रत्नेश्वरी आदि का पूजन विधान करते हैं। श्री बीज (श्री), परा-बीज (ह्रीं) तथा पहले कहे गये ५ बीज 'ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं' कहकर पूर्व दो बीज को उल्टा अर्थात् 'ह्रीं श्रीं' कहें। मन्त्रोद्धार होता है "श्रीं ह्रीं ग्लूं स्लूं प्लूं म्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं" यह नवाक्षरी रत्नेश्वरी समस्त द्रव्यों के दोष को विदूरित करती हैं। षडङ्ग की पूजा छ कोणों में करे। हे परमेश्वरी! उसके मध्य में पूर्णचन्द्र के समान वृत्त का चन्द्र मण्डल रूप अमृत में ध्यान करे।।३८-४०।।

कलाभिस्तं प्रपूज्याथ चिन्तयेन्मध्यमण्डलम् ।
अकथादित्रिरेखाढ्यं हक्षाभ्यन्तरमध्यगम् ।।४१।।

तदग्रे कामरूपं च जालन्धरं च वामतः।
दक्षे पूर्णगिरिं चैव मध्ये चैवोड्डियानकम् ।।४२।।

अब यह ध्यान करके उस वृत्त की पूजा के पश्चात् मध्यम मण्डल में चन्द्र की अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा तथा अमृता रूप षोडश कला का चिन्तन करे। वहाँ अकथादि त्रिरेखा होती हैं। मध्य में 'ह क्ष' वर्ण रहते हैं। उस वृत्त के आगे कामरूप, वामभाग में जालंधर, दक्ष भाग में पूर्णगिरि तथा मध्य में उड्डीयान पीठ है।।४१-४२।।

तत्र तत्र यजेद् देवीं चतुर्व्यूहस्वरूपिणीम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोट्ययुतप्रभम् ।।४३।।
तथा दशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
खड्गखट्वाङ्गपट्टीशमुद्गरं शूलकुन्तकम् ।।४४।।
बिभ्रतं खेटकं शक्तिं वरदाभयपाणिकम् ।
तस्योत्सङ्गे सुरा देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ।।४५।।
हिमकुन्देन्दुधवलां पूर्वायुधकरोद्यताम् ।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् ।।४६।।

इन-इन पीठ स्थान में चतुर्व्यूहस्वरूपिणी देवी की अर्चना करे। वहीं करोड़ों सूर्य के समान तेजोमय तथा दस हजार करोड़ चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त, दश-भुजा तथा पाँच शिर से युक्त तथा तीन नेत्र युक्त देव का ध्यान करना चाहिए। जिन्होंने खट्वाङ्ग, पट्टीश, मुद्गर, शूल, बरछा, खेटक, शक्ति, वरद एवं अभय मुद्रा बाहुओं में धारण किया है। उनके अंक में कोटि चन्द्रमा की प्रभावाली, हिमकुन्देन्दु धवल, उक्त आयुध समूह को धारण किये हुए भगवती सुरादेवी बैठी हैं जो देवदेव के सम्मुखीन हैं। यह ध्यान प्रयोज्य है।।४३-४६।।

एवं ध्यात्वा समावाह्य कुलाकुलमयीं विभुः।
अमृतीकरणं कुर्यान्मुद्रया धेनुसंज्ञया ।।४७।।
अवगुण्ठ्य ततो मन्त्री नीरजायतलोचने ।
सकलीकरणं कुर्यात् षडङ्गेन च पूर्ववत् ।।४८।।

इस प्रकार से ध्यानोपरान्त उन कुलाकुलमयी विभु का यह ध्यान करके साधक धेनुमुद्रा द्वारा उन सुरादेवी का अमृतीकरण करे। हे नीरजायत लोचने! तदनन्तर उसका अवगुण्ठन करके मन्त्री साधक पूर्ववत् षडङ्ग द्वारा उसका सकलीकरण करे।।४७-४८।।

परमीकरणं कुर्यान्महामुद्रिकया ततः।
मुसल लमुद्रिकां योनिं गालिनीं च प्रदर्शयेत् ।।४९।।

वाममुष्ट्यन्तरेऽङ्गुष्ठे दक्षिणे सरला ङ्गुलीः।
वामाङ्गुष्ठं स्पृशेदग्रे योजिता दक्षिणादधः(?)।।५०।।
मुष्टी कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी।।५१।।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ भुग्नौ करयोरितरेतरम्।
तर्जनीमध्यमानामाः संहता भुग्नवर्जिताः।।५२।।

तदनन्तर महामुद्रा प्रदर्शन द्वारा उसका परमीकरण करना चाहिए। तत्पश्चात् मन्त्री साधक सुरादेवी के समक्ष मुसलमुद्रा, योनिमुद्रा तथा गालिनी मुद्रा का प्रदर्शन करें। मूसल मुद्रा हेतु दक्ष अंगुष्ठ को वाम मुष्टि के अन्दर करके दक्ष ऊँगलियों को सीधा करके वाम अंगुष्ठ को बाँधे। यह मूसल मुद्रा है।

इस मुद्रा से विघ्न भाग जाते हैं। उभय हथेली की कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ को एक दूसरे पर झुका दे। तर्जनी मध्यमा अनामिका को मिलाये लेकिन झुकाये नहीं। यही गालिनी मुद्रा है। यह परमामृत प्रदायिका है।।४९-५२।।

मुद्रेयं गालिनी प्रोक्ता परमामृतदायिनी।
शिवचन्द्रौ मातृकान्तं कालशक्रा कालशक्राम्बु वह्नयः।।५३।।
वायुश्च वामकर्णेन योजिता बिन्दुनादिनः।
बीजमेतत् समुच्चार्य तथा चानन्दभैरवम्।।५४।।
ङेन्तं शिखामन्त्रयुतं पुनर्बीजानि संलिखेत्।
चन्द्रं हित्वादितः कुर्यात्कर्णे वामाक्षि योजयेत्।।५५।।
स्वधा?सुरा देव्यै ततो वौषडिमानन्दभैरवी।
अनेन तौ तु संयोज्य परमानन्दनन्दितौ।।५६।।
तदामृते तयोर्योगादमृतं क्षरतेऽचिरम्।
तयोः पञ्चोपचारेषु ऋचः पञ्च नियोजयेत्।।५७।।
प्रथमप्रकृतेर्हंसः प्रतद्विष्णुरनन्तरम्।
त्रैयम्बकस्तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तत्पदादिकः।।५८।।
विष्णुर्योनिं-पदादिस्तु पञ्चमः परिकीर्तितः।
दशधा प्रजपेद्विद्यां संस्पृश्यामृतमद्रिजे।।५९।।

शिव (ह), चन्द्र (स), मातृकान्त (क्ष), काल (म), शक्र (ल), अम्बु (व) वह्नि (र), वायु (य), वामकर्ण (उ) को लिखकर उसमें नाद बिन्दु (ँ) जोड़ना चाहिए। तदनन्तर "आनन्द भैरव" को ङेन्त लिख अर्थात् 'आनन्द भैरवाय। तदनन्तर शिखा मन्त्र (वषट्) लिखे। मन्त्रोद्धार होगा 'हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वषट्"। अब चन्द्र को छोड़कर वामकर्ण के स्थान पर वामक्षि

लिखे। तदनन्तर 'सूरादेव्यै' तत्पश्चात् वौषट् लिखे यह आनन्द भैरवी का मन्त्र है। इनका संयोजन करने से परम आनन्द रूप अमृत का क्षरण होने लगता है। इसका पञ्चोमचार से पूजन करते समय पंचर्ऋक् का पाठ करे। यथा–

प्रथमर्ऋक्— हंसः शुचिषट् वसुरन्तक्षिसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद् वरसदृतसद् व्यामसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्।
द्वितीयर्ऋक्— प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न मीनः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरूषं त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियान्ति भुवनानि विश्वा।
तृतीयर्ऋक्— त्र्यम्बकं यजामहे सुगधिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।
चतुर्थर्ऋक्— तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
पञ्चमर्ऋक्— योनिष्ठ इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः॥

हे अद्रिजे! तदनन्तर अमृत का स्पर्श करते हुए दशबार विद्या (जिस मन्त्र से अमृतीकरण होता है) का जप करे॥५३-५९॥

वाग्भवं कामबीजं च सर्गवान् मनुयुग् भृगुः।
तथामृते पदं ब्रूयात् पश्चादमृतोद्भवे तथा ॥६०॥
अमृतेश्वरि तथेत्युक्त्वा पश्चादमृतवर्षिणि ।
अमृतं स्राव वययुगं वह्निजायावधिर्मनुः॥६१॥

यह अमृतीकरण मन्त्र इस प्रकार है–वाग्भव (ऐं), कामबीज (क्लीं) तथा मनु (औ) से युक्त भृगु (स) अर्थात् सौ को विसर्ग युक्त (सर्गवान करे) करे अर्थात् 'सौः'। तदनन्तर 'अमृते' कहकर 'अमृतोभ्रुवे अमृतेश्वरि' कहकर 'अमृतवर्षिणी अमृतं' के अनन्तर दो बार 'स्रावय' तथा वह्निजाया (स्वाहा) कहे मन्त्रोद्धार होता है–'ऐं क्लीं सौः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरी अमृतवर्षिणी अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा॥६०-६१॥

वाग्भवं वदयुग्मं च वाग्वादिनि च वाग्भवम् ।
कामबीजं क्लिन्ने चोक्त्वा क्लेदिनि क्लेदयेति च ॥६२॥
महाक्षोभं कुरुयुगं कामबीजमतः परम् ।
तार्तीयं मोक्षमित्युक्त्वा कुरुयुग्मं वदेत्ततः॥६३॥
शक्तिबीजं पुनश्चान्ते संदीपनमनुः प्रिये ।
संदीपनादिकं कृत्वा बोधिन्या बोधयेत् ततः॥६४॥

अब सन्दीपन मन्त्र कहते हैं–वाग्भव (ऐं) दोबार 'वद' तदनन्तर 'वाग्वादिनी' तदनन्तर वाग्भव बीज (ऐं) तदनन्तर कामबीज (क्लीं) कहकर 'क्लिन्ने' कहने के उपरान्त 'क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं' तदनन्तर 'कुरु कुरु' लगाकर कामबीज की

तृतीय बीज (सौः) को लगाकर पुनः 'मोक्षं' के अनन्तर 'कुरु कुरु' लगाये। अन्त में शक्ति-बीज (ह्सौः) लगाये। अब हो जाता है ''ऐं वद वद वाग्वादिनी ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्ष कुरु कुरु हसौः''। हे प्रिये! संदीपन मन्त्र के उपरान्त बोधिनी मन्त्र से बोधन करे। हे वरानने! तदनन्तर कृतांजलिबद्ध हो मन्त्र का स्मरण करना चाहिए।

(प्रकारान्तर से यह मन्त्र है-''यार्द्रं ज्वलन्ति ज्योतिरेवाहं ब्रह्माहमस्मि साहमस्मि अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा'' यह ग्रन्थ में नहीं है, अतः गुरु आज्ञा लेकर ही इसका प्रयोग करे) ॥६२-६४॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा स्मरेन्मन्त्रं वरानने।
एवं पात्रचतुष्कं च वटुकादेः पुनर्भवेत्॥६५॥
गुरूणां च त्रयं चैकमेकमेवात्मनो भवेत्।
एवं भवन्ति पात्राणि नवैव ह्युत्तमानि च॥६६॥
पञ्चपात्रं भवेन्मध्ये मध्यमं त्वेकपात्रकम्।
गुरवे गुरु पुत्राय तत्पन्त्यै तत् समर्पयेत्॥६७॥

बटुक भैरव आदि के लिए चार पात्र कहे गये हैं। गुरुगण हेतु तीन तथा अपनी आत्मा हेतु एंक पात्र होते हैं। (एक पात्र पहले स्थापित है जो सुरापात्र है) इस प्रकार सब मिलाकर नौ पात्र हों गए)। ये ही ९ पात्र उत्तम हैं। पंच पात्र मध्य में होतें हैं। उनके भी मध्य वाला जो पात्र है, वह गुरु, गुरु पुत्र तथा गुरु पत्नी का होता है॥६५-६७॥

वीररशक्त्यै वरं वीर पात्रं निवेद्यात्मनि योजयेत्।
एवमेवार्चनाद देवि भवेदमृतमुत्तमम्॥६८॥
कुशाग्रेण समादाय अमृतं सर्वपावनम्।
गुरुत्रयं च सन्तर्प्य वटुकादीन् प्रतर्प्य च॥६९॥
प्रलयानलसङ्काशे चिदग्नौ जुहुयात् ततः।
आत्मनः कुण्डलिन्याश्च हूत्वा वै ब्रह्मरन्ध्रके॥७०॥

वीरशक्ति हेतु वीरपात्र का निवेदन करके एक पात्र अपने लिए लेना चाहिए। हे देवी! इस विधान से पूजन से वह उत्तम हो जाता है। (उस पात्र की सुरा उत्तम हो जाती है)। सर्व पावन अमृत को कुशाग्र द्वारा गुरु-गुरुपुत्र तथा गुरु पत्नी तथा बटुक भैरव आदि को प्रदान करके उन्हें तृप्त करना चाहिए। तत्पश्चात् प्रलयानल के समान चिदग्नि में उसका हवन कर देना चाहिए। तदनन्तर आत्मा तथा कुण्डलिनी का हवन ब्रह्मरन्ध्र में करे॥६८-७०॥

बीजत्रयेण त्रिः प्राश्य मुद्रया तत्त्वसंज्ञया।
विशुद्धान्तर्मनाः पूतो योग्यः स्याद्यागकर्मणि॥७१॥

अमृतत्वं कवित्वं च प्राश्यामृतं लभेन्नरः।
भ्रंशनादस्य पात्रस्य भूमौ बिन्दुनिपातनात् ।।७२।।
अशुभं स्यात् तदा तस्य होमाच्छान्तिर्न चान्यतः।
प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं मूलेन वारुणेन वा ।।७३।।
पूजोपकरणं चापि त्रिरभ्युक्ष्य तथैव हि।
अमृतैः प्रोक्षितं यत्तु सर्वं ब्रह्ममयं भवेत् ।।७४।।
यदन्यद् दीयते द्रव्यमलङ्कारादिकं च यत्।
वरुणस्यैव बीजेन तेषां प्रोक्षणमाचरेत् ।।७५।।
सर्वेषां देवमुच्चार्य मूलमुच्चार्य पूर्वतः।
अर्घ्यपात्रस्थतोयेन प्रतिनाम्ना निवेदयेत् ।।७६।।
अन्यतोयैस्तु संसृष्टमर्घ्यपात्रस्थितेतरैः।
तन्न गृह्णातीष्टदेवी दत्तं विधिशतैरपि ।।७७।।

तदनन्तर 'ऐं क्लीं सौः' से तीन बार तत्व मुद्रा द्वारा प्राशन करके साधक अन्तर्वाह्य पवित्र हो जाता है, ऐसा साधक (पवित्र होकर) यज्ञ कर्म का अधिकारी हो जाता है। वह अमृतत्व, कवित्व को इस अमृत का प्राशन करके प्राप्त कर लेता है। यदि अमृतपात्र शब्द (आघात जनित शब्द) से टूट जाये और इस अमृत की एक बूँद भी पृथ्वी पर पड़ जाये, तब यह साधक के लिए अशुभ है। इस अशुभ की शान्ति होती है होम द्वारा। अन्य उपाय है ही नहीं। अब अमृतप्रोक्षण कहते हैं–उस अमृत से अपना प्रोक्षण वारुण बीज तथा मूल मन्त्र को पढ़कर करे। पूजन सामग्री का भी प्रोक्षण तीन बार ऐसे ही करे। अमृत द्वारा जो कुछ भी प्रोक्षित होता है, वह सब ब्रह्ममय हो जाता है। जो कुछ भी द्रव्य, अलंकार आदि दिए जाएं उसका वारुण बीज द्वारा ही प्रोक्षण करे। सर्वप्रथम मूल मन्त्र कहकर उसके अनन्तर समस्त देने वाली वस्तुओं को कहकर अर्घ्यपात्र में रखे। जल से सबका नाम लेकर उनका निवेदन करे। अर्घ्य पात्र के जल को न लेकर अन्य जल से जो कुछ भी संसृष्ट होता है, उसे इष्ट देवता अनेक विधान से भी देने पर स्वीकार नहीं करते॥७१-७७॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे बहिर्यागविधौ
विशेषार्घ्यपात्रादिसाधनक्रमनिरूपणं नाम त्रयोदशः पटलः।।१३।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद के बहिर्यागविधि सम्बद्ध विशेषार्घ्य
पात्रसाधना निरुपण नामक त्रयोदश पटल समाप्त ॥

◆

चतुर्दशः पटलः

बहिर्यागविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच–

आधारशक्तिमारभ्य कामेश्वरान्तमद्रिजे ।
पूजयेत् साधको भक्त्या पीठं मन्त्रमयं पुरः ।।१।।
ओंकारबिन्दुमध्यस्थं नामधेयाद्यमक्षरम् ।
देवतानां स्वबीजं तत्पूजायामृद्धिसिद्धिदम् ।।२।।
कामपीठं ततो ध्यात्वा पूजयेत् साधकस्तथा ।
देवं कामेश्वरं तत्र ह्येकवक्त्रं चतुर्भुजम् ।।३।।

ईश्वर कहते हैं–हे पार्वती! साधक आधार शक्ति से प्रारम्भ करके कामेश्वरी पर्यन्त की पूजा भक्ति युक्त होकर करे। पहले मन्त्रमय पीठ का पूजन करना चाहिए। यह ओंकार बिन्दु के मध्यस्थ है। आद्य अक्षर (ॐ) ही इसका नामाक्षर है। यह देवताओं का स्वबीज है। पूजन में ऋद्धि-सिद्धि प्रदाता है। तदनन्तर साधक कामपीठ का ध्यान करके देव कामेश्वर का पूजन करे। ये एक मुख तथा चार भुजा से युक्त हैं॥१-३॥

भस्माञ्चितं मध्यहृदि रक्तारक्तं च कुङ्कुमैः।
त्रिशूलं च पिनाकं च वामहस्तद्वये धृतम् ।।४।।
उत्पलं बीजपूरं च दक्षिणद्वितये तथा ।
श्वेतपद्मोपरिस्थं च ध्यात्वा मध्ये प्रपूजयेत् ।।५।।

ये सम्पूर्ण शरीर में भस्म का लेप किए हुए हैं। हृदय के मध्य में कुंकुम लगा होने से वह स्थान किंचित रक्ताभ है। इन्होंने वाम हस्तों में त्रिशूल तथा पिनाक धनुष धारण किया है। दोनों दक्षिण हाथों में रक्तकमल तथा बिजौरा नीबू है। इनका पूजन श्वेतकमल पर आसीन पीठ मध्य में करे॥४-५॥

शक्त्या युक्तो यदा देवि साधकः परिचिन्तयेत् ।
आयुधा नास्वा रूपं च मूलदेव्या समं निशि ।।६।।
शाम्भवेन यजेद् देवं पूर्वोक्तेन च साधकः।
सप्तम्या मूलमुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरी ।।७।।
अमृतपदमुच्चार्य चैतन्यमूर्तिमादितः।
कल्पयामीति मनुना मूर्ति संचिन्तयेत् तथा ।।८।।

हे देवी! यदि साधक शक्ति से युक्तावस्था में निशाकाल में मूलदेवी के साथ-साथ उनके शस्त्रों के स्वरूप का भी ध्यान करे तब साधक को ‘कएकलह्रीं’ इस

शांभव मन्त्र से भगवान् कामेश्वर की अर्चना करनी चाहिए। अब साधक सप्तमी मूलमन्त्र (ऐं क्लीं सौः) का उच्चारण करके 'महात्रिपुरसुन्दरी अमृत' का उच्चारण करके ''चैतन्य मूर्त्ति कल्पयामि'' का उच्चारण करे। मन्त्रोद्धार है ''ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दर्यमृतचैतन्यमूर्त्ति कल्पयामि''॥६-८॥

देवीं कामेश्वराङ्कस्थां परमानन्दनन्दिताम् ।
साधकाय प्रयच्छन्तीं पुरुषार्थचतुष्टयम् ।।९।।
आनन्दालसया दृष्ट्या वीक्षन्तीं करुणार्द्रया ।
नाराचमुद्रया पश्चाद्रक्षां मन्त्रेण कारयेत् ।।१०।।

इस मन्त्र से देवी का चिन्तन करे। ध्यान है कि देवी कामेश्वर की गोद में स्थित हैं। यह देवी परमानन्द से नन्दित होकर साधक को पुरुषार्थ चतुष्ठय प्रदान कर रही हैं। वे साधक की ओर अतीव आनन्दालस्य से करुणार्द्र दृष्टि से अवलोकन कर रही हैं। ध्यानोपरान्त साधक मन्त्री नाराचमुद्र बनाकर मन्त्रोच्चार के साथ रक्षा करे॥९-१०॥

अवगुण्ठ्य ततो मन्त्रीकुर्याद् दिग्बन्धनं ततः।
प्राणायामं ततः कृत्वा गृह्णीयात् कुसुमाञ्जलिम् ।।११।।
पुष्पाञ्जलिं विना देवीं नावाहयेत् कदाचन ।
ततो ध्यायेन्महादेवीं यथोक्तां परमेश्वरीम् ।।१२।।
प्रत्यक्षीकृत्य हृदये जितप्राणोऽथ साधकः।
ऐक्यं संचिन्तयेद् देव्या बाह्यान्तर्मूर्तियुग्मयोः।।१३।।

अब मन्त्री अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा दिक् बन्धन करे। तब प्राणायामोपरान्त पुष्पांजलि ले। पुष्पांजलि के बिना देवी का आवाहन कदापि नहीं करना चाहिए। अतः पुष्पांजलि द्वारा उन परमेश्वरी का ध्यान करे। प्राणजित साधक देवी का (हृदय में देवी का) प्रत्यक्ष (ध्यान भावना से) करके बाह्यमूर्त्ति तथा हृदयस्थ मूर्त्ति में ऐक्य का चिन्तन करे॥११-१३॥

ततस्तु वायुबीजेन वहन्नासापुटेन तु ।
तच्चैतन्यं विनिःसार्य पुष्पाञ्जलौ निवेशयेत् ।।१४।।
नासिकावायुनिःसारात् पुष्पस्था देवता भवेत् ।
यावत् संस्थापयेद् देवीं स्वहस्तं न वियोजयेत्।।१५।।

तत्पश्चात् वायुबीज (यं) के द्वारा नासापुट से उस चैतन्य को बाहर पुष्पांजलि में स्थापित करे। नासिका की वायु से बाहर निकल कर देवता पुष्पांजलि में स्थित हो जाते हैं। जब तक देवी की स्थापना न हो जाये अपने हाथों से पुष्पों को न हटाये॥१४-१५॥

कृते वियोगे हस्तस्य पुष्पात् तस्मान्महेश्वरि ।
गन्धर्वैः पूज्यते देवी पूजकैर्नाप्यते फलम् ।।१६।।
त्रिखण्डामुद्राय तस्मात् तामावाहनविद्यया ।
निर्गमय्यातिदीप्ताभां श्रीपीठान्तर्निधारयेत् ।।१७।।

इसी बीच यदि वह पुष्प हथेली से हट जाये तब गन्धर्वगण देवी पूजन करने लगते हैं। पूजक को फल नहीं मिलता इसी कारण त्रिखण्डा करने लगते हैं। पूजक को फल नहीं मिलता इसी कारण त्रिखण्डा मुद्रा द्वारा आवाहन मन्त्र से उन देवता को पुष्पांजलि से बाहर करके श्रीपीठ में स्थापित करे।।१६-१७।।

पाणिद्वयं समं सम्यक् परिवर्तनयोगतः।
योजयित्वा तर्जनीभ्यामनामे धारयेत् ततः।।१८।।
मध्यमे योजयेन्मध्ये कनिष्ठे तदधस्ततः।
अङ्गुष्ठावपि संयोज्यौ त्रिधा युग्मक्रमेण त ।।१९।।
त्रिखण्डेयं महामुद्रा त्रिपुराह्वानकर्मणि ।
हंसबीजसमारूढा बाला चाग्न्यासनस्थिता ।।२०।।

अब त्रिखण्डा मुद्रा कहते हैं–दोनों हाथों को सम करके परिवर्तन योग से जोड़-कर दोनों तर्जनी से उभय अनामिकाओं को धारण करे। दोनो मध्यमा को मध्य से जोड़कर उसके नीचे कनिष्ठिकाद्वय को रखे। दोनों अंगुष्ठों को भी सिद्ध करे। तीन प्रकार से दो-दो उंगलियों को युक्त करने से त्रिपुरसुन्दरी का आवाहन करने वाली त्रिखण्डा महामुद्रा हो जाती है। हंस बीज (हं) पर समारुढ़ा बालादेवी अग्निबीज (रं) पर आसनासीन हैं।।१८-२०।।

अनया मूलमुच्चार्य मुद्रया च त्रिखण्डया ।
महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे ।।२१।।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।।२२।।
अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु ।
एहि देवि प्रभावात् ते शुभदे भयनाशिनि ।।२३।।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।
कामेशि त्वमिहागच्छ सर्वैः परिकरैः सह ।।२४।।
पूजाकर्मणि सांनिध्यमिह कल्पय कामिनि ।
कामेश्वरि समागच्छ कामेशाङ्कनिषेदुषि ।।२५।।
अव्युच्छिन्नां मतिं शुद्धां वाचं कण्ठस्य देहि मे ।
एवं कृते महादेवि स्थितिस्तस्याः प्रजायते ।।२६।।

अब मूलमन्त्र का उच्चारण करके त्रिखण्डा मुद्रा से देवी का आवाहन किया जाता है। आवाहन मन्त्र है 'हे महापद्म वनस्था करणानन्द विग्रहा समस्त प्राणिगण के हित में रत परमेश्वरी मा। आईये, आईये। हे देवेशी! भक्तसुलभे, अल्प परिवार के साथ इस विग्रह में आगमन करो। मुझ पर कृपा करके यहाँ स्थित हो जाओ। जब तक मैं पूजा करता रहूँ आप सुस्थिर होकर रहो। हे कामेश्वरी! इस पूजन कर्म में सन्निहित हो जाईये। हे कामेश्वर के अंक में स्थिता कामेश्वरी! आप आकर अव्युच्छिन्न मति शुद्धावाणी कण्ठ में दो। हे महादेवी! इस प्रकार से उस विग्रह में महात्रिपुरसुन्दरी स्थित हो जाती हैं।।२१-२६।।

सम्यक् सम्पूरितः पुष्पैः काराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा सर्वार्थसाधिका ।।२७।।
अधोमुखीकृता सैव सदा वै स्थापनी भवेत्।
मिलितं मुष्टियुगलं सन्निधापनरूपिणी ।।२८।।
अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु सन्निरोधानरूपिणी।
एतस्या एव मुद्रायास्तर्जन्यौ प्रसृते यदा ।।२९।।
अवगुण्ठनमुद्रेयं सर्वरक्षाकरी मता।
अमृतीकरणं कुर्यात् साधको धेनुमुद्रया ।।३०।।
परिवर्त्य करौ पश्चात् तर्जनीमध्यमे युगे।
कनिष्ठानामिकायुग्मं परस्परयुतं कुरु ।।३१।।
धेनुमुद्रेयमाख्याता अमृतीकरणे प्रिये।
अङ्गमन्त्रान् न्यसेत् देवि देव्यङ्गे साधकोत्तमः।।३२।।
सकलीकरणांम मुद्रेयं व्याप्तिरूपिणी।
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितपराङ्गुलिः।।३३।।
महामुद्रेयमाख्याता परमीकरणे शिवे।
ततोऽवगुण्ठयेद् देवीमवगुण्ठनमुद्रया ।।३४।।

दोनों हथेली की अंजलि को पूर्णतः पुष्प से पूरित करे। यही है आवाहनी मुद्रा। इसे सर्वसाधिका कहा गया है। जब इसी मुद्रा को अधोमुखी कर देते हैं, तब वही है स्थापना मुद्रा। दोनों मुष्टियुगल को मिला देने पर सन्निधापिनी मुद्रा होतीं है। इस मुद्रा को यथावत् रखते हुए, दोनों तर्जनी फैला दे। यह है अवगुण्ठनी मुद्रा। इसे भी सर्वरक्षाकारी कहा गया है। धेनुमुद्रा द्वारा साधक अमृतीकरण करे। धेनुमुद्रा का स्वरूप है-दोनों हथेली को परिवर्त्तित करके तर्जनीद्वय, मध्यमाद्वय एवं कनिष्ठा, अनामिका को परस्पर युक्त करें। हे प्रिये!

इसे ही अमृतीकरण की धेनुमुद्रा कही गयी है। हे देवी! तदनन्तर देवी के अंगों में अंग मन्त्रों का न्यास करना चाहिए। इसे सकलीकरण कहते हैं। इसे व्याप्तिरूपा मुद्रा भी कहते हैं। दोनों अंगुष्ठों को युक्त करे तथा उंगलियाँ प्रसारित हो तब परमीकरण में इसे महामुद्रा कहती हैं। तदनन्तर अवगुण्ठनी मुद्रा द्वारा देवी का अवगुण्ठन करे॥२७-३४॥

आवाहनं भवेद् देवि दूरादाह्वानमेव च।
संस्थापनं भवेद् देवि निश्चलत्वोपपादकम्॥३५॥
नैकट्यावस्थितित्वं च सन्निधानमितीरितम्।
अनन्यचित्तत्वयाच्आ सन्निरोधनमुच्यते॥३६॥
सम्पूर्णावस्थितेयाच्आ सकलीकरणं प्रिये।
अयोग्यदृष्ट्यविषयपा(दो?त) नमवगुण्ठनम्॥३७॥
आनन्दपूर्णावस्थ त्वमृतीकरणं शिवे।
सर्वापराधजातानां सहिष्णुत्वप्रकाशकम्॥३८॥
परमीकरणं नाम सम्प्रार्थनमिहोच्यते।
सम्मुखमुद्रया देवीं सम्मुखं प्रार्थयेत् ततः॥३९॥
मुष्टिद्वयस्थिताङ्गुष्ठौ सम्मुखौ च परस्परम्।
संश्लिष्टावुच्छितौ कुर्यात्सेयं सम्मुखमुद्रिका॥४०॥
मूलविद्यां समुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरी।
श्रीपादुकां ततः पश्चात् पूजयामीति भक्तितः॥४१॥
देवीपादाम्बुजद्वन्द्वे पुष्पाञ्जलित्रयं दिशेत्।
तथैव तर्पयाम्यन्ते मुद्रया तर्पयेत् त्रिधा॥४२॥

हे देवी! आवाहन अर्थात् दूर से आह्वान करना। संस्थापन अर्थात् स्थिरीकरण। निकट अर्थात् सन्निधान। सन्निरोधन अर्थात् अनन्य चित्तता। परमीकरण अर्थात् सम्प्रार्थना। तत्पश्चात् सम्मुख मुद्रा द्वारा देवी के समक्ष प्रार्थना करे। दोनों मुष्टि तथा दोनों अंगूठे सामने स्थित हों। दोनों युक्त तथा उत्थित हों। इसे सम्मुख मुद्रा कहा जाता है। मन्त्र इस प्रकार हैं–"ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरी श्री पादुकां पूजयामि" मन्त्र द्वारा देवी को भक्ति पूर्वक ३ पुष्पांजलि प्रदान करे। इसी प्रकार ३ बार तर्पण करे। मन्त्र हैं–"ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरी श्री पादुकां तर्पयामि"॥३५-४२॥

प्रार्थनमुद्रया पश्चाद्भ्यर्थयेदनेन तु।
प्रसादसम्मुखे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥४३॥
पूजाभागं गृहाणेमं मामकं भक्तवत्सले।
अहं यद्यपि देवेशि दुर्बलोऽप्यल्पसाधनः॥४४॥

भक्त्या करोमि पूजां ते कृपयानुगृहाण माम् ।
प्रसृताङ्गुलिकौ हस्तौ मिथःश्लिष्टौ च सम्मुखौ ।।४५।।
कार्यौ च हृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका ।
संदर्शयेत् स्वस्वबीजपूर्वं मुद्रास्ततोतो नव ।।४६।।
सङ्क्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्ततः क्रमात् ।।४७।।
एता मुद्रा महेशानि बन्धूक ककुङ्कुमप्रभाः।
स्वस्वमुद्राकरा सर्वाः श्रीविद्यासम्मुखी(ः)स्मरेत् ।।४८।।

तदनन्तर प्रार्थना मुद्रा द्वारा इस मन्त्र से देवी की अभ्यर्थना करना चाहिए। प्रार्थना मन्त्र है "हे प्रसाद सम्मुखे देवी! आप प्रसन्न हो जाईये। हे सुन्दरी! भक्तवत्सले! मेरे पूजा भाग को ग्रहण करो। हे देवी! मैं दुर्बल, अल्पसाधन होकर भी भक्ति से तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ। कृपया अनुग्रह कीजिए।"

प्रार्थना मुद्रा इस प्रकार है— दोनों हाथों की उंगलियाँ प्रसारित हों। दोनों परस्पर युक्त हाथ हृदय के सामने हों। यही है प्रार्थना मुद्रा। तदनन्तर स्व-स्व बीज के साथ निम्नलिखित नव मुद्राओं को दिखलाये। वे मुद्रा हैं संक्षोभिणी, द्रावणी, आकर्षणी, वशीकरणी, उन्मादकरणी, महाङ्कुशा, खेचरी, बीजमुद्रा, योनिमुद्रा । हे महेशानी! इन मुद्राओं का वर्ण कुंकुम तथा बन्धूक पुष्प के समान है। स्व-स्व मुद्राकरण कर इन्हें श्रीविद्या के समक्ष स्मरण करे।।४३-४८।।

अथैवं परमेशान्या उपचारान् निवेदयेत् ।
भक्त्त्यैव ते कृता देवि साधकं देवसन्निधिम् ।।४९।।
चारयन्ति यतस्तस्मादुच्यन्ते चोपचारकाः।
समीपे चारणाद्वापि बालिकान्ते कान्ते तथोदिताः।।५०।।

अब उपचार समर्पण कहते हैं। अब परमेशानी को उपचार निवेदित करना चाहिए। हे देवी! भक्ति से दिए गए ये सब उपचार साधक को देव सन्निधि में ले जाते हैं। तभी इन्हें उप अर्थात् समीप, चार अर्थात् ले जानें वाला। ये भगवती के पास ले जानें वाले हैं, तभी उपचार पदवाच्य हैं।।४९-५०।।

नमोऽन्तमासनं दद्यात् स्वागतं दर्शनं भवेत् ।
नमोऽन्तं पादयोः पाद्यमर्घ्यं नमोन्तमेव च ।।५१।।
स्वधेत्याचमनं प्रोक्तं मधुपर्कस्तथैव च ।
तेनैव मनुनाचामं नमोऽन्तं स्नानमेव च ।।५२।।
नमोऽन्ते वाससी प्रोक्ते तथाङ्गाभरणानि च ।
नमोऽन्तमर्पयेत् गन्धे पुष्पं च वौषडन्तकम् ।।५३।।

पुष्पं समर्पयेद् देव्यै मुद्रया ज्ञानसंज्ञया ।
अङ्गुष्ठतर्जनीयोगाज् ज्ञानमुद्रेयमीरिता ।।५४।।
नमोऽन्तं च तथा धूपं दीपं माला तथैव च ।
नैवेद्यं च ततो दद्याद्यथोक्तं वै चतुर्विधम् ।।५५।।

आसन को अन्त में नमः लगाकर अर्पित करें जैसे 'इदमासनं समर्पयामि नमः'। स्वागत-दर्शन के लिए भी नमः लगाकर करना चाहिए। पाद्य, अर्घ्य को भी अन्त में नमः कहकर प्रदान करे। स्नानार्थ जल, वस्त्रद्वय, अलंकारों को भी नमः कहकर प्रदान करना चाहिए। आचमन तथा मधुपर्क को भी उसी मन्त्र से कहकर अर्पित करे। गन्ध-पुष्प को अन्त में वौषट् लगाकर अर्पित करना चाहिए। हे देवी! ज्ञानमुद्रा प्रदर्शन करते हुए पुष्पार्पण करे। अंगुष्ठ तथा तर्जनी योग से ज्ञानमुद्रा बनती है। धूप, दीप, माला 'नमः' द्वारा समर्पित करना चाहिए। चतुर्विध नैवेद्य भी 'नमः' द्वारा अर्पण किया जाता है।।५१-५५।।

पानार्थं मधुरं वारि दद्यादाचमनं पुनः।
कर्पूरसहितं देव्यै ताम्बूलं च निवेदयेत् ।।५६।।
तर्पणानि पुनर्दद्यात् त्रिपुरातत्त्वमुद्रया ।
अङ्गुष्ठानामिकायोगात् तत्त्वमुद्रेयमीरिता ।।५७।।
अङ्गुष्ठ शिवमित्याहुरनामा शक्तिरुच्यते ।
तर्पणं तु तयोर्योगादमृतैर्वामपाणिना ।।५८।।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ मुद्राः संदर्शयेत् क्रमात् ।
स्तुत्वा प्रणम्य विधिवज्जपेद्विध्यामनन्यधीः।।५९।।
जपान्ते जुहुयादग्निं होमान्ते बलिमुत्सृजेत् ।
बलिदानावसाने तु निवेद्यानि निवेदयेत् ।।६०।।
दशाङ्गाद्यैस्ततो धूपैः पुनर्देवीं प्रधूपयेत् ।
दीपमालाः प्रदर्श्याथ पादाल्ललाटकावधि ।।६१।।
वीरेश्वराय वौषट् च सिन्दूरं दर्पयेदथ ।
अङ्गरागेषु सिन्दूरं पानेषु मदिरां तथा ।।६२।।
वस्त्रेषु रक्तकौशेयं त्रिपुराप्रीतिदायकम् ।
नेत्राञ्जनं निवेद्याथ दर्शयेद् दर्पणं तथा ।।६३।।

पानार्थ मधुर जल, तदनन्तर आचमन प्रदान करे। तदनन्तर देवी को कर्पूर के साथ ताम्बूल प्रदान करे। तदनन्तर तर्पण को त्रिपुरा की तत्वमुद्रा से सम्पन्न करना चाहिए। अंगूठा तथा अनामिका योग से तत्वमुद्रा बनती है। अंगुष्ठ

है शिव, अनामिका है शक्ति। इनके योग से अमृत (सुरा) द्वारा तर्पण सम्पन्न किया जाता है। अब योनि-मुद्रा प्रदर्शनोपरान्त अन्य मुद्रा प्रदर्शन करे।

स्तुति, प्रणाम के अनन्तर अनन्यधी साधक विद्या का जप करे। जपान्त में अग्नि में होम करे। होम के अन्त में बलिदान करे। बलिदान के अन्त में नैवेद्य निवेदित करे। इसके अनन्तर दशांग धूप द्वारा देवी को पूजित करे। आपादमस्तक दीपमाला दिखला कर 'वीरेश्वराय वौषट्' मन्त्र द्वारा सिन्दूर प्रदान करना चाहिए। अंगराग के रूप में सिन्दूर, पेय में मदिरा, वस्त्रों में से रेशम का वस्त्र त्रिपुरसुन्दरी को प्रिय है। नेत्रांजन निवेदित करके दर्पण कर दिखला दे॥५९-६३॥

मूर्ध्नि च्छत्रं निधायाथ वीजयेद्रक्तचामरैः।
सितैर्वा परमेशानीं न तु कृष्णैः कदाचन ।।६४।।
वादयेच्छङ्खघण्टे च पुनः पुनः प्रधूपयेत् ।
ततः सन्तोषयेद् देवीं गीतवादित्रनिः स्वनैः।।६५।।
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।
नटनर्तकसङ्घैश्च वेश्याभिरपि पार्वति ।।
आत्मना सर्वभावेन निवेद्य तन्मयो भवेत् ।।६६।।

हे परमेशानी! शिरपर छत्र लगाये। रक्त चामर अथवा श्वेतचामर से पंखा झले। काले चामर का उपयोग न करे। शंख-घण्टा का वादन करे। पुनः पुनः स्थान धूपित करे। तदनन्तर गीत-वाद्य से देवों को सन्तुष्ट करे। हे देवी! नानाविध वाद्य से, क्रीड़ा, मंगलमय अभिनय, नटनर्तक वेश्याओं के साथ स्वयं को भी देवी को समर्पित करके देवोमय हो जाये॥६४-६६॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे बहिर्यागविधिनिरूपणं
नाम चतुर्दशः पटलः।।१४।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वरसंवाद में बहिर्यागविधिनिरुपण
नामक चतुर्दश पटल समाप्त ॥

◆

पञ्चदशः पटलः

पूजोपचारतत्फलवर्णनम्

श्रीदेव्युवाच–

उपचारान् कथं देव फलं तेषां च कीदृशम् ।
यच्च प्रियतमं देव्यास्तत् सर्वं वद शङ्कर ।।१।।

श्री देवी कहती हैं–हे देव! उपचार से कैसे एवं कैसा फल मिलता है? हे शंकर! त्रिपुरसुन्दरी देवी का जो सबसे प्रिय उपचार है, उसे कहिए।।१।।

ईश्वर उवाच–

उपचारान् प्रवक्ष्यामि शृणु षोडश पार्वति ।
यैः साक्षात् तुष्यते देवी विधानैर्विहितेर्वि भुः।।२।।
सौवर्णं राजतं वास्त्रं तथा रत्नविनिर्मितम् ।
आसनं प्रथमं दद्यात् पौष्पं दारवमेव वा ।।३।।
न पत्रमासनं दद्यात् कदाचिदिह पूजने ।
यथोक्तविधिना देव्यै रक्तकम्बलमेव वा ।।४।।
सुमेरुपादपीठान्ते पद्मकल्पित आसने ।
भोगमोक्षप्रदे मातस्तिष्ठ त्वं परमेश्वरि ।।५।।
अनेनैवासनं देव्यै यो दद्याद्विहितं शिवे ।
भुक्तिमुक्ती करे तस्य सर्वत्र स्थानवान् भवेत् ।।६।।

ईश्वर कहते हैं–हे देवी! सुनों। मैं षोडशोपचार कहता हूँ। विधि विहित उपाय से उपचार करने पर देवी प्रसन्न होती हैं। सबसे प्रथम देवी हेतु सोना, चाँदी, वस्त्र, रत्न, पुष्प, काष्ठ का आसन प्रदान करे। पूजनार्थ पत्तों का आसन प्रदान न करे। देवी के लिए शास्त्रोक्त उपाय के अनुसार लाल रंग का कम्बलासन भी प्रदान किया जा सकता है। देवी को आसन देते समय यह कहना चाहिए "हे परमेश्वरी सुमेरुपाद पीठ के अन्त में पद्मकल्पित आसन पर जो भोग-मोक्ष प्रद है, उस पर आप स्थित हो जाइये।" जो इस प्रकार से देवी को आसन प्रदान करता है, उसके लिए मुक्ति-भुक्ति हस्तामलकवत् है। वह सर्वत्र स्थानवान हो जाता है।।२-६।।

पादा र्थमुदकं पाद्यं चन्दनागुरुसंयुतम् ।
सुशीतलं मया देवि सुखाय तव पादयोः।।७।।
तत्तैजसेन पात्रेण शङ्खेनाथ प्रदापयेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां संस्थानं पाद्यमिष्यते ।।८।।

पाद्यमन्त्रो मया प्रोक्तस्त्व नेनैव निवेदयेत् ।
अर्घ्येण लभते कामानर्घ्येण लभते धनम् ।।९।।
पुत्रायुः सुखमोक्षादिदानादर्घ्यस्य वै लभेत ।
पूर्वसंस्थापितेनैव शङ्खेन विधिना स्वयम् ।।१०।।
श्वेतसर्षपमुद्गाभ्यां तिलक्षीरैस्तथा यवैः।
रक्तचन्दन पुष्पैश्च त्रिपुरायै महेश्वरि ।।११।।
निधाय पुरतो दद्यादर्घ्यमन्त्रेण साधकः।
अर्घ्यमर्घ्यमिदं देवि मया भक्त्या निवेदितम् ।।१२।।

अब पाद्य कहते हैं--"पैर प्रक्षालनार्थ यह जल चन्दन अगुरु से युक्त है। हे देवी! आपके चरणों के सुख हेतु यह पाद्य समर्पित कर रहा हूँ" यह पाद्यमन्त्र है। इसे जपते हुए तैजस पात्र अथवा शंख में जल भरकर पाद्य अर्पित करे। यह चतुर्वग (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) प्रदाता है।

अब अर्घ्य कहते हैं–अर्घ्य देने से साधक की कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। वह धनलाभ करता है। अर्घ्यदान द्वारा पुत्र-आयु-मोक्ष प्राप्त करता है। हे देवी! पहले से स्थापित शंख से विधानानुसार स्वयं सफेद सरसों, मूंग, तिल, दूध, जौ, लाल चंदन, तथा पुष्प द्वारा त्रिपुरसुन्दरी को अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्य मन्त्र यह है "हे देवी! मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक प्रस्तुत इस शंख पात्रस्थ जल को आप अपनी मूर्धा पर लगायें॥७-१२॥

सुजलं शङ्खपात्रस्थं गृहीत्वा मूर्ध्नि योजय ।
उदकं दीयते यत्तु संगन्धं फेनवर्जितम् ।।१३।।
आचमनार्थं देवाय तदाचमनमुच्यते ।
कर्पूरवासितैर्वापि कालागुरुप्रधूपितैः।।१४।।
यथा तथा सगन्धैर्वा प्रसन्नैः फेन वर्जितैः।
दद्यादाचमनीयं तु सगन्धसलिलैः शुभैः ।।१५।।
तैजसेन तु पात्रेण शङ्खेनाप्यथवा प्रिये ।
आयुर्बलयशोवृद्धिं प्रदायाचमनीयकम् ।।१६।।
लभते साधको नित्यं कामांश्चैव यथेप्सितान् ।
सगन्धाचमनं देवि मया भक्त्या निवेदितम् ।।१७।।
आयुर्बलयशोवृद्ध्यै तदिदं प्रतिगृह्यताम् ।
दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सिताभिश्चापि सेक्षुभिः।।१८।।
प्रोच्यते मधुपर्कस्तु देवीप्रीतिप्रदायकः।
जलं च नारिकेलोत्थं सिता दधि घृतं समम् ।।१९।।

सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत् ।
तद्दद्यात् कांस्यपात्रेण रौप्यपात्रेण वा पुनः ।।२०।।
ज्योतिष्टोमाश्वमेधादौ यत् पुण्यं लभते नरः ।
सर्वं तत् परमेशानि मधुपर्के प्रतिष्ठितम् ।।२१।।
आज्यं दधि मधून्मिश्रं जलं चापि सशर्करम् ।
मधुपर्कं रौप्यपात्रे गृहीत्वा भुङ्क्ष्व सुन्दरि ।।२२।।
मधुपर्कं विना पूजा साधकक्षयकारिणी ।
मधुपर्कमदृष्ट्वैव साधकं भक्षयेत् परा ।।२३।।

अब आचमन कहते हैं–फेन रहित जो जल आचमन के लिए देवता को दिया जाये वही आचमनीय जल कहलाता है। कपूर से सुवासित काले अगुरु से प्रधूपित सर्व गन्ध मिश्रित फेनवर्जित शुभ जल को तैजस पात्र अथवा शंख द्वारा देवी को आचमन प्रदान करे। हे प्रिये! इससे आयु, बल, यश की वृद्धि होती है तथा साधक की इच्छित कामनाओं की पूर्ति भी हो जाती है। आचमन मन्त्र 'सगन्धाचमनम्' से लेकर 'प्रति-गृह्यताम्' पर्यन्त है। अर्थ है–"हे देवी! मैं भक्ति युक्त होकर सुगन्धयुक्त आचमन प्रदान कर रहा हूँ इसे मेरे आयु-बल-यशोवृद्धि हेतु ग्रहण करिए"। अब मधुपर्क कहते हैं–दधि, घृत, जल, मधु, ईख की चीनी को मिलाने से मधुपर्क बनाये। इससे देवी प्रसन्न हो जाती हैं। अन्य मधुपर्क यह है–नारिकेल का जल, चीनी, दही तथा घृत, सबको लेकर (समान मात्रा में) मिश्रित करे। तदनन्तर सबके इतना शहद मिलाये। यह अन्य मधुपर्क है। इसे कांसा अथवा चाँदी के पात्र में अर्पित करे। इसका मन्त्र है 'आज्यं' से लेकर 'भुङ्क्ष्व सुन्दरि' पर्यन्त। अर्थ है–"हे सुन्दरी! मधु-युक्त घृत, दधि, शर्करा एवं जल मिश्रित मधुपर्क को चाँदी के पात्र में भक्षण करो।" मधुपर्क के बिना जो पूजा होती है, उससे साधक का नाश हो जाता है। जब त्रिपुरसुन्दरी को पूजा में मधुपर्क नहीं मिलता तब वे साधक का भक्षण कर लेती हैं (दण्डित करती हैं)।।१३-२३।।

कर्पूरागुरुकस्तूरीरोचनाकुङ्कुमं तथा ।
नारिकेलजलं क्षौद्रं तथेक्षुरसमुत्तमम् ।।२४।।
सिता च पञ्चगव्यं च सर्वौषधिगणं तथा ।
प्रान्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं त्रिपुराप्रियम् ।।२५।।
भृङ्गारेणाथवा शङ्खैस्त्रिपुरायै निवेदयेत् ।
साधकः स्नानदानात्तु हयमेधफलं लभेत् ।।२६।।

अब स्नान कहा जाता है–त्रिपुरसुन्दरी का वह प्रिय स्नानीय जल है जिसमें कपूर, अगुरु, कस्तूरी, गोरोचन, कुंकुम, नारियल का जल, मधु, ईख

का रस, शर्करा, पञ्चगव्य तथा सर्वौषधि हो। यह सब किसी पात्र अथवा शंख से प्रस्तुत करके निवेदित करना चाहिए। इसके निवेदन से साधक को अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। (स्नानीय द्रव्य एक साथ जल में मिलाकर स्नान न कराये। एक-एक को जल में मिलाकर स्नान कराये। अन्त में सुगन्धित जल से स्नान कराना होगा।)॥२४-२६॥

दीर्घायुः कामभोगी च महापातकहा भवेत्।
प्रत्येकं सर्ववस्तूनां सहस्रपलमानतः।।२७।।
महास्नानं भवेद्देवि मध्य पलशतेन तु।
कनिष्ठं वै भवेत् स्नानं पलैः दशभिरीरितम्।।२८।।
मिश्रीकृतैस्तु सर्वेषां स्नानमानं न विद्यते।
स्नपयेत् प्रथमं देवीं त्रिपादिति ऋचा पुनः।।२९।।
मूलेनापि ततः पश्चादमुना च निवेदयेत्।
त्वमापः पृथिवी चैव ज्योति स्त्वंवायुरेव च।।३०।।

वह साधक दीर्घायु, इच्छानुसार भोग प्राप्त करने में समर्थ तथा महान् पातकों से रहित हो जाता है। इनमें से प्रत्येक वस्तु एक-एक हजार पल वजन का लेना चाहिए। इसे महास्नान कहते हैं। १०० पल (प्रत्येक वस्तु) लेकर जो स्नान है, वह मध्यम तथा प्रत्येक वस्तु १० पल लेकर जो स्नान है, वह अधमकोटि का स्नान माना गया है। सभी द्रव्यों को एक में मिलाकर स्नान करना उचित नहीं है। उससे कोई फल नहीं मिलता। पहले देवी को त्रिपादऋचा पढ़कर स्नान कराये यथा–

"त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साक्षनाशनेऽअभि।।"

तदनन्तर मूलमन्त्र 'ऐं क्लीं सौः' से स्नान कराने के अनन्तर मूल में लिखित "त्वमापः" से लेकर "स्नपयाम्यहम्" तक पढ़कर स्नान करना होगा। श्लोकार्थ है–"हे देवी! आप जल हैं, आप पृथिवी, अग्नि तथा वायु भी हैं। मैं भक्तिपूर्ण होकर आपको स्नान कराता हूँ"॥२७-३०॥

केवलं भक्तिभावेन देवि त्वां स्नपयाम्यहम्।
स्नपयित्वा महादेवीं वस्त्रं यदि न दापयेत्।।३१।।
स निर्लज्जः परः पापः प्रपतेद्वृ जिनार्णवे।
वस्त्राभावे ततो दद्याद्रक्तपद्मं तथा जपाः।।३२।।
स्नपयित्वा महादेवीं वस्त्रमुत्तममुच्यते।
वस्त्रेणह्रियते लज्जा वस्त्रेण ह्रियते त्वघम्।।३३।।

अब वस्त्र कहते हैं– स्नानोपरान्त जो साधक देवी को वस्त्र अर्पण नहीं करता वह निर्लज्ज है। वह परमपापी पाप के सागर में पतित हो जायेगा। वस्त्र के अभाव में देवी को लाल रंग का कमल अथवा जवापुष्पार्पण करे। देवी को स्नानोपरान्त उत्तम (दो वस्त्र) वस्त्र प्रदान करे। वस्त्र के निवेदन द्वारा लज्जा तथा पाप विदूरित होते हैं॥३१-३३॥

सर्वभूषणवर्गेषु वस्त्रमुत्तममुच्यते ।
देवीप्रीतिकरं वस्त्रं चतुर्वर्गप्रदं शुभम् ।।३४।।
निर्दशं मलिनं जीर्णं छिन्नं गात्रावलिङ्गितम् ।
परकीयं ह्याखु दष्टं सूचीविद्धं तथोषितम् ।।३५।।
सत्पताकावितानादौ सूचीविद्धं प्रयोजयेत् ।
केशान्वितमधौतं च श्लेष्ममूत्रादिदूषितम् ।।३६।।
वह्निदग्धं कुचैलं च महादेव्यै न दापयेत् ।
चित्रवस्त्रं दुकूलं च देवीप्रीतिकरं परम् ।।३७।।

सभी अलंकरणों में से वस्त्र सर्वोत्तम अलंकरण है। देवी को प्रीतिकर शुभ वस्त्र अर्पण करने से वे चतुर्वग का फल देती हैं। गोटहीन, मलिन, पुरातन, कटे-फटे, उपयोग किये गये, अन्य व्यक्ति का, मूषक द्वारा कांटा गया, सिलाई युक्त, जला वस्त्र कदापि अर्पित न करे। रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र देवी को प्रिय लगते हैं॥३४-३७॥

सर्वसिद्धिप्रदं वस्त्रं वह्निष्टोमफलप्रदम् ।
विद्यातन्तुसमायुक्ते मन्त्रवर्णसमन्विते ।।३८।।
विद्याविद्धे जप शोणवाससी तव सुन्दरि ।
उद्यदादित्यसङ्काशं वासोयुग्मं सुनिर्मलम् ।।३९।।
नूतनं गात्रसुखदं परिधत्स्व सुरेश्वरि ।
किरीटं च शिरोरत्नं कुण्डलं च ललाटिका ।।४०।।
तालपत्रं च हारश्च ग्रैवेयकमथोर्मिका ।
सूत्रावलीकेशपाशेता टङ्कवलयाङ्गदाः।।४१।।
पादाङ्गुली यकं सूत्रं नूपुरं क्षुद्रघण्टिकाः।
अलङ्काराः समाख्याता अलङ्कारेषु षोडश ।।४२।।
चतुवर्गप्रदं नित्यं भूषणं सर्वसौख्यदम् ।
तुष्टिपुष्टिकरं देव्यै यथाशक्त्या निवेदयेत् ।।४३।।
नवरत्नसमायुक्ता द्रुतहाटककल्पिताः।
गात्राणि शोभयन्त्वेते अलङ्कारास्तु सुन्दरि ।।४४।।

कामेशि कामरूपे त्वं सर्वकामफलप्रदे।
भूषणं गृह्ण चार्वङ्गि मया भक्त्या निवेदितम् ।।४५।।

वस्त्र सर्वसिद्धिप्रद है तथा अग्निष्टोभ का फल प्रदान करता है। वस्त्रार्पण का मन्त्र है–

''विद्यातन्तुसमायुक्ते मन्त्रवर्णसमन्विते। विद्याविद्ये जपा शोणवाससी'' से लेकर-परिधस्त्व सुरेश्वरी-पर्यन्त पढ़कर वस्त्रार्पण करें। इसका अर्थ है–हे सुरेश्वरी! विद्यातन्तु से युक्त मन्त्रवर्ण से समन्वित तुम्हारे वस्त्रद्वय विद्या-अविद्या रूप हैं। ये जवाकुसुमवत् रक्तवर्ण हैं। उदीयमान सूर्य के समान रक्तवर्ण स्वच्छ शुद्ध नये हो गये शरीर को सुखद प्रतीत होने वाले वस्त्रों को धारण करो। अब अलंकार विधान कहते हैं–अलंकार ये हैं किरीट, शिरोरत्न, कुण्डल, ललाटिंका, तालपत्र, हार, ग्रैवेयक, ऊर्मिका, सूत्रावलि, केशपाश, ताटङ्क, वलय, अङ्गद, पादाङ्गुलीयक, नूपुर तथा क्षुद्रघण्टिका। ये १६ अलंकार प्रदान करने से साधक को चतुर्वग, सभी प्रकार का सुख, तथा तुष्टि-पुष्टि की प्राप्ति होती है। इन्हें यथाशक्ति देवी को अर्पित करना चाहिए। अलंकरण अर्पण-मन्त्र है ''नवरत्न समायुक्ता'' से लेकर ''भक्त्या निवेदितम्''। इसे पढ़ते हुए अलंकार का अर्पण करे।।३८-४५।।

चूर्णीकृतो वा घृष्टो वा दाहाकर्षित एव वा।
रसः सम्मर्दजो वापि प्राण्यङ्गोद्भव एव वा ।।४६।।
गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवीप्रीतिप्रदायकः।
प्रशस्तगन्ध तु गन्धचूर्णानि यानि च ।।४७।।
तानि गन्धाह्वयानि स्युः स गन्धः प्रथमः स्मृतः।
घृष्टो मलयजो गन्धः शबलश्च नमेरुणा ।।४८।।
अगुरुतिश्चापि यस्य पङ्कः प्रदीयते।
अगुरुदेवदार्वादि यो दग्ध्वा गृह्यते रसः।।४९।।
स दाहाकर्षितो गन्धस्तृतीयः परिकीर्तितः।
सगन्धगन्धिनीबिल्वतिलकं शतत्रिकाम् ।।५०।।
निष्पीड्य गृह्यते योऽसौ सम्मर्दजः स उच्यते।
मृगनाभिसमुद्भूतस्तत्कोशोद्भव एव वा ।।५१।।
गन्धः प्राण्यङ्गजः प्रोक्तः पञ्चमस्तु स उच्यते।
गन्धस्य विस्तरो भेदो दिङ्मात्रं समुदाहृतम् ।।५२।।
सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ।।५३।।

अब गन्धार्पण विधान कहते हैं–गंध पंचविध कहा गया है, यथा–चूर्णीकृत, घिसी हुई, आग लगाकर उत्पन्न, मलकर निकाली गई, तथा प्राणियों के अंग से उद्भूत जैसे कस्तूरी। इन पाँचों गन्ध से देवी तुष्ट हो जाती हैं। प्रशस्तगन्ध युक्त जो गन्ध चूर्ण होते हैं उनसे कुछ के चूर्ण में सुगन्धित इत्र आदि छोड़ देने से उनमें से अच्छी गन्ध निःसृत होने लगती है। यह प्रथम कहे गये हैं। मलयाचल के शुद्ध चन्दन को घिसने के पश्चात् नमेरु में मिलाने से द्वितीय गन्ध मिलती है। अगरु आदि को जल में पीस कर आर्द्र कर देने से अथवा अग्नि में गर्मकर दग्धाकर रस निकालने पर तृतीय गन्ध मिलती है। बिल्व, तिलक शतपत्र आदि को निचोड़ने से चतुर्थ गन्ध मिलती है। इसे सम्मर्दक गन्ध कहते हैं। मृगनाभि से निःसृत कस्तूरी आदि की गन्ध पंचम गन्ध है। गन्ध के अनेक भेद हैं, यहाँ केवल कुछ दृष्टान्त मात्र दिये गये। मलय से उत्पन्न गन्ध सर्वोत्तम है। अतः सर्व प्रयत्न द्वारा मलयज गन्ध प्रदान करें।।४६-५३।।

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरमलयोद्भवैः ।
समीकृतैस्तु यो गन्धस्त्रिपुराप्रीतिदायकः।।५४।।
कुचन्दनंसितं चैव कालीयकसमन्वितम् ।
अनुलेपनमुख्यं तु देव्याः प्रीतिकरं परम् ।।५५।।
अलक्त नखरागेषु देवीप्रीतिकरं तथा ।
गन्धेन लभते कामान् गन्धो धर्मप्रदः सदा ।।५६।।

कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर, मलय चन्दन को सम मात्रा में मिलाने से जो गन्ध होती है वह त्रिपुरादेवी को प्रीतिकर होती है। श्वेत कुचन्दन को कालीयक के साथ पीसकर जो लेप है वह मुख्यतः देवी को प्रीतिकर है। अलक्तक (आलता से) देवी के नखों के रंगना देवी के लिए प्रीतिकर है। गन्धार्पण करने से अर्चक की कामनायें पूर्ण होती हैं। गन्धार्पण धर्मप्रद है।।५४-५६।।

अङ्गानां साधको गन्धो मोक्षे चापि प्रतिष्ठितः।
शरीरं ते न जानामि चेष्टां श्चैव महेश्वरि ।।५७।।
मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम् ।
गन्धैः सुतोषिता देवी चतुर्वर्गप्रदा भवेत् ।।५८।।
अनेनैव महेशानि गन्धान् देव्यै निवेदयेत् ।
घृततैलादियोगेन स्वर्णादौ दीपवह्निना ।।५९।।
यदञ्जनं प्रजायेत कृत्वा कर्पूरमिश्रितम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाय त्रिपुरायै निवेदयेत् ।।६०।।

विधवा नाञ्जनं कुर्यान्महामायार्थमद्रिजे ।
न मृत्पात्रे गतं कुर्यात् साधको नेत्ररञ्जनम् ।।६१।।

गन्ध धर्माङ्ग (धर्म-अर्थ-काम) का साधक है तथापि यह मोक्ष में भी प्रतिष्ठित करता है। हे महेश्वरी! इस मन्त्र द्वारा देवी को गन्ध प्रदान करे। मन्त्र है "शरीरं ते" से लेकर "भवेत" पर्यन्त। इसका अर्थ है–हे महेश्वरी! मैं आपकी चेष्टा तथा आपके विग्रह (देह) को नहीं जानता। अतः मेरे द्वारा अर्पित गन्धों को अपने शरीर में लगाईये। इन गन्धों से संतुष्ट देवी धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष देती हैं।

अब अञ्जन कहते हैं–घृत तैल आदि के योग से स्वर्ण-चाँदी आदि के पत्तर पर दीपक की ज्वाला से जो अंजन बनता है, उसमें कर्पूर को मिलाये। इसे धर्मार्थ काम मोक्षार्थी त्रिपुरसुन्दरी को समर्पित करे। लेकिन हे पार्वती! इस अंजन को विधवा स्त्री न बनाये। साधक को चाहिए कि मिट्टी के पात्र में रखकर अंजन अर्पित न करे, अन्यथा पूजन फल नहीं मिले ॥५९-६१॥

न पूजाफलमाप्नोति मृत्पात्रेविहिताञ्ज(लैः?नैः) ।
परकीयांस्तथा घ्रातान् स्तेयं कृत्वा भिमर्दितान् ।।६२।।
पुष्पं धूपं च गन्धं च नोपच रेत् तथापरान् ।
घ्रातान् निवेद्य देवेशि नरो नरकमाप्नुयात् ।।६३।।
नैव पर्युषितैः पुष्पैः पत्रैश्चापि महेश्वरीम् ।
पूजयेत् परमेशानि महात्रिपुरसुन्दरीम् ।।६४।।
सर्वं पर्युषितं वर्ज्यं पत्रं पुष्पं फलं तथा ।
पद्मानि सितरक्तानि कुमुदान्युत्पलानि च ।।६५।।
एषां पर्युषिताशङ्का कार्या पञ्चदिनोर्ध्वतः।
अन्येषां कुसुमानां च यावद्गन्धविपर्ययः।।६६।।
बिल्वपत्रे महेशानि नास्ति पर्युषितात्मना ।
बकुलं केसरं वज्रं माल्यां कुन्दं च शाल्मलम् ।।६७।।
करवीरं चार्कपुष्पं बन्धूककमले तथा ।
मालती मल्लिका जाती यूथिका माधवी तथा ।।६८।।
तगरः कर्णिकारश्च द्रोणश्चोत्पलचम्पकौ ।
अशोकः कुमुदश्चैव शेफालिकाकदम्बकौ ।।६९।।
केतकी वनमाला च कुसुम्भकिंशुकौ तथा ।
कह्लारबकुले चैव लवङ्गनागकेसरौ ।।७०।।
सर्वेषु पुष्पजातेषु त्रिपुरायाः सदैव हि ।
एतान्येव प्रियाणि स्युर्न पत्रैरर्चयेच्छिवाम् ।।७१।।

पत्रेषु बिल्वपत्रं च तथा मदनपल्लवम्।
दूर्वाङ्कुरं तथा प्रोक्तं नान्यत् पत्रं प्रयोजयेत्।।७२।।

अब पुष्पविधान कहते हैं–पुष्प काम में लाया हुआ, सूँघकर रखा गया, चोरी करके लाया गया, मसला हुआ तथा जिसे जिन देवता के लिए निषिद्ध माना गया, उसे प्रदान न करे। हे देवेशी! आघ्राण किये पुष्प देवी पर चढ़ाने से साधक नरक प्राप्त करेगा। हे महेश्वरी! परमेशानी! त्रिपुरसुन्दरी का पूजन बासी पुष्प-पत्र से न करे। तब समस्त पत्र-पुष्प-फल बासी माने जाते हैं जब उनमें गन्ध परिवर्तन हो जाये। तथापि बिल्वपत्र कभी बासी नहीं होता। श्वेत कमल, रक्तकमल, कुमुद पाँच दिनों पश्चात् वासी हो जाते हैं।

(मौलसिरी) बकुल, केसर, कुश, गजरा, कुन्द, सेमर, कनैर, मदार, बन्धूक, कमल, मालती, मल्लिका, चम्पा, जूही, माधवी, तगर, करवीर, द्रोण, उत्पल, चम्पा, अशोक, कुमुदिनी, शेफालिका, कदम्ब, केतकी, वनमाला, कुसुम्भ, पलाश, कल्हार, लवंग, नागकेशर, देवी को अत्यधिक प्रिय हैं। पत्तों से महात्रिपुर का पूजन कदापि न करे।

पत्तों में बेलपत्र, धतूरे का पत्ता, दूर्वा का अंकुर ही देवी को चढ़ावे। अन्य पत्ते वर्जित हैं।।६२-७२।।

मल्लिका मालती कुन्दो द्रोणश्चाथ सिताम्बुजम्।
शुक्लपक्षे महादेवि त्रिपुरायै निवेदयेत्।।७३।।
सर्वेषां पुष्पजातीनां रक्तपद्मं तथा जपा।
देवीप्रीतिकरं प्राज्ञे सर्वकामफलप्रदम्।।७४।।
रत्नपुष्पं च देवेशि तथा स्वर्णादिनिर्मितम्।
रक्तपद्मेन वज्रेण तुलां नायाति कर्हिचित्।।७५।।

हे महादेवी! शुक्लपक्ष में मल्लिका, मालती, कुन्द, द्रोण, श्वेतकमल देवी को अर्पित करे। हे प्राज्ञे! पुष्पों में से रक्तकमल तथा जवा कुसुम देवी को प्रीतिकर तथा साधक के लिए सर्वकाम-फलप्रद हैं।

हे देवेशी! रत्न निर्मित पुष्प तथा स्वर्णादि से निर्मित पुष्प भी रक्तवर्ण कमल तथा कुश के पुष्प की समानता नहीं कर सकते।।७३-७५।।

एतेषां पुष्पजातानां येन केन विनिर्मिताम्।
मालां कृत्वा महादेव्यै यत् फलं लभते नरः।।७६।।
अपि वक्त्रसहस्रैस्तद्वक्तुं नालं ततः प्रभुः।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः।।७७।।

पुष्पाग्रेऽहं स्थितो नित्यं सर्वे देवाः स्थिताः दले ।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्पवसाः स्मृताः।।७८।।

अब पुष्पमाला कहते हैं–उपर कहे गये पुष्पों से किसी भी पुष्प की माला देवी को अर्पित कर सकते हैं। महादेवी के लिए माला बनाकर चढ़ाने से साधक वह फल प्राप्त करता है, जिसका महत्व शिव भी हजारों मुख से कहनें में असमर्थ हैं। पुष्प के मूल में ब्रह्मा स्थित हैं। मध्य में केशव की स्थिति है। अग्रभाग में मैं (शिव) स्थित रहता हूँ। उस पुष्प के दलों में देवता नित्य रहते हैं। समस्त चराचर पुष्प वासी है।।७६-७८।।

परं ज्योति पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति ।
भोगमोक्षप्रदं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोददम् ।।७९।।
पुष्पैर्देवी प्रसन्ना स्याद् धर्मकामार्थदायिनी ।
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवीं नित्यं भक्तियुतो नरः।।८०।।

परमज्योति पुष्पगत है। वह परमज्योति पुष्प से ही सुप्रसन्ना होती है। पुष्प भोग-मोक्ष देता है। वह तुष्टि-श्री तथा पुष्टि एवं आनन्ददाता भी हैं। पुष्पार्पण से देवी सुप्रसन्ना होकर धर्म-अर्थ-काम प्रदान करती हैं। अतः मनुष्य भक्तियुक्त होकर देव्याराधन पुष्पों द्वारा करे।।७९-८०।।

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां पुष्पमेव सदा प्रियम् ।
तत्ते मातः प्रयच्छामि पवित्रं प्रतिगृह्यताम् ।।८१।।
उग्रगन्धमगन्धं च कृमिकेशादिदूषितम् ।
अशुद्धपात्रपाणिस्थं वासोभिः कुत्सितात्मभिः।।८२।।
आनीतं नार्पयेद् देव्यै प्रमादादपि दोषकृत् ।
स्नाता नीतैः पर्युषितैर्याचितैः कृष्णवर्णकैः।।८३।।
स्वयं विकासितै र्मुक्तैः स्वयं च पतितैर्भुवि ।
नार्चयेत् कलिकाभिश्च विना चम्पकपङ्कजैः।।८४।।

इस मन्त्र से देवी को पुष्प अर्पण करे–"ब्रह्मविष्णु शिवादीनां" से लेकर 'प्रति-गृह्यताम्' पर्यन्त मन्त्र है। अर्थ है–"हे माता ब्रह्मा-विष्णु-शिव को पुष्प प्रिय रहता है। वह पवित्र रूप पुष्प आपको अर्पित कर रहा हूँ। इसे ग्रहण कीजिए।।"

उग्रगन्ध वाला, गन्धहीन, कृमि-केशादि द्वारा दूषित, अशुद्ध पात्र अथवा अशुद्ध हाथों में रखा, गन्दे वस्त्रों में रखा हुआ गृहीत करके, इस प्रकार का दूषित पुष्प कदापि देवी को प्रदान न करे। इसे भूल से भी चढ़ाना पापाचार है। मध्याह्न स्नान करके तोड़कर लाये गये, बासी, कहीं से मांगकर लाये गये,

काले रंग वाले, स्वयं भूमि पर पतित हो चुके तथा पुष्प कलिकाओं से कदापि देवी पूजन न करे। कली से भी पूजा न करे, तथापि चम्पा एवं कमल की कली चढ़ा सकते हैं।।८१-८४।।

पुष्पं वा यदि पत्रं फलं नेष्टमधोमुखम् ।
दुःखदं तत् समाख्यातं यथोत्पन्नं तथार्पणम् ।।८५।।
चित्रपूजासु सर्वासु न विरुद्धं न दूषणम् ।
अधोमुखार्पणं नेष्टं पुष्पाञ्जलिविधिं विना ।।८६।।
किंचातिबहुनोक्तेन सामान्येनेदमुच्यते ।
उक्तानुक्तै स्तथा पुष्पैर्जलजै स्थलजैरपि ।।८७।।
पत्रै सर्वैर्यथालाभं भक्तिमान् सततं यजेत् ।
पुष्पाभावे यजेत् पत्रैः पत्रालाभे च तत्फलैः।।८८।।
अक्षतैर्वा जलैर्वापि न पूजां व्यतिलङ्घयेत् ।
एतेषामप्यलाभे तु मानसीं भक्तिमाश्रयेत् ।।८९।।

पुष्प, पत्र, फल को अधोमुखी अर्पित करना अनिष्टप्रद है तथा दुखदायक है। अतः जैसे पौधे अथवा वृक्ष में उत्पन्न होता है, उसी प्रकार से चढ़ाना चाहिए। चित्र पूजन में न कोई विरोध है न दूषण ही है। केवल पुष्पाञ्जलि में ही अधोमुखी स्थिति में इन्हें चढ़ाया जा सकता है। अन्य स्थिति में अधोमुखी न चढ़ाये। अधिक कहने से क्या लाभ। यह सामान्य रूप से कहा गया है। पहले कहे गए पुष्प के अतिरिक्त जो नहीं कहे गये हैं, वे यदि मिले तब उनसे भक्तिमान पूजा करे, भले ही पुष्प जल में हो अथवा स्थलज। यदि पुष्प उपलब्ध न हो तब पत्तों से, पत्ते न मिले तब फल से, वह भी न मिले तब अक्षत से, अथवा वह भी न मिले तब केवल जल से पूजा करे। पूजा में लंघन (व्यक्तिक्रम) कदापि न करे। यदि जल भी न मिले, तब मानस पूजन ही करे।।८५-८९।।

दह्यमानस्य काष्ठादेर्निस्तापो यस्य जायते ।
नासादिरन्ध्रसुखदः सगन्धोऽतिमनोहरः।।९०।।
स धूप इति विज्ञेयो देवीप्रीतिप्रदायकः।
पत्रं मुस्तं नखं कुष्ठं जटामांसी च शैलजम् ।।९१।।
सरलं देवकाष्ठं च जतु सर्जसचन्दनम् ।
कपिलाघृतकर्पूरशर्करागुरुमिश्रितम् ।।९२।।
षोडशाङ्गो महाधूपः षोडशीप्रीतिदायकः।
न भूमौ वितरेद् धूपं नासने कलशे नतु ।।९३।।

यथा तथाधारगतं कृत्वा तं तु निवेदयेत्।
वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।।९४।।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
अथ दीपं प्रवक्ष्यामि ज्योतिष्टोमफलप्रदम्।।९५।।
घृतदीपस्तु प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः।
सार्षपश्चाधमः प्रोक्तस्तदन्यो निन्दितः स्मृतः।।९६।।

अब धूप विधान कहते हैं–जल रहा जो काष्ठ आदि निस्ताप हो (अर्थात् जिसका धूम आनन्द देने वाला तथा मन को मोहने वाला हो, वह धूप है। उससे देवी प्रसन्न होती हैं। तेजपत्ता, मुस्ता, नखी, कूट, खस, जटामासी, शिला, जातु, सर्ज, देवदारु, लाक्षा, सरल, चन्दन, कपिला गौ का घृत, शक्कर तथा अगुरु–यह सब मिलाने से षोडशाङ्ग धूम को भूमि आसन तथा कलश दिखलाये। आधार पात्र (धूपदानी आदि) में जलाकर देवी को दिखलाये। इसका मन्त्र 'वनस्पति' से लगाकर 'प्रतिगृह्यताम्' पर्यन्त तक है। अर्थ है–हे देवी! वनस्पतियों के रस से पूर्ण उत्तम गन्ध वाली समस्त देवताओं के लिए आघ्रेय धूप आप ग्रहण करें।

अब दीपविधान कहते हैं–अब दीप के सम्बन्ध में कहता हूँ जो कि ज्योतिष्ठोम का फल देता है। घृत दीप पहला है। यह प्रथम है। मध्यम है तिल तैल का दीपक जबकि सरसों तैल का दीपक अधम है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार का दीप निन्दित माना गया है।।९०-९६।।

पद्मसूत्रभवा चाद्या कार्पाससम्भवा परा।
दर्भगर्भभवा चापि वर्तिका परिकीर्तिता।।९७।।
कोशजं रोमजंवास्त्रं तूलं पर्युषितं तथा।
वर्तिकार्थं न चादद्यात् साधको भूतिमिच्छुकः।।९८।।
तैजसं पार्थिवं लौहं दीपपात्रं प्रशस्यते।
दीपवृक्षाश्च कर्तव्यास्तैजसाद्याः पृथक् पृथक्।।९९।।

सर्वोत्तम है कमलनाल की बत्ती। तदनन्तर कपास की बत्ती का स्थान है। कुशागर्भ से भी बत्ती बनती है। धन-सम्पत्ति कामनार्थ कदापि रेशम, ऊन, वस्त्र तथा अति पुरातन रुई की बत्ती न बनाये। दीपक भी स्वर्ण, रौप्य, मृत्तिका तथा लौह का प्रशस्त होता है। पृथक्-पृथक् दीप वृक्ष भी स्वर्णादि से पृथक्-पृथक् बनाये।।९७-९९।।

वृक्षे दीपः प्रदातव्यो नतु भूमौ कदाचन।
कुर्वन्तं पृथिवीतापं यो दीपमुत्सृजेन्नरः।।१००।।
तामिस्रं नरकं घोरमाप्नोत्येव न संशयः।
नेत्राह्लादकरः स्वर्चिर्दूरतापविवर्जितः।।१०१।।

सशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः।
दीपवृक्षस्थिते पात्रे शुद्धस्नेहप्रपूरिते ।।१०२।।
दक्षिणावर्तवर्त्या वै चारुदीप्तः प्रदीपकः।
उत्तमः प्रोच्यते सोऽत्र त्रिपुराप्रीतिदायकः।।१०३।।
वृक्षेण वर्जितो दीपो मध्यमः परिकीर्तितः।
विहीनः पात्रतैलाभ्यामधमः परिकीर्तितः।।१०४।।

दीपों को वृक्ष (दीप का स्टैण्ड) पर रखकर अर्पित करे। भूमि पर दीप न रखे। जो पृथ्वी पर तापित (गर्म) दीप रखता है, वह घोर तमस् नरक में जाता है। नेत्रों को आल्हाद देने वाला, सुन्दर शिखा वाला, दूर तक ताप न प्रसारित करने वाला, शिखा युक्त, शब्द रहित, धूम्र रहित, अति लघु न हो, वह दीपक उत्तम है। जिसको दीपदान पर रखा गया हो, शुद्ध घृत अथवा तैल भी हो, दक्षिणावर्त्त वत्ती युक्त हो, सुन्दर तथा ज्वलित दीपक उत्तम है। जो दीपक दीपदान पर न रखा हो वह मध्यम, पात्र एवं तैल रहित दीपक अधम है।।१००-१०४।।

दीपमाला प्रकर्तव्या नैकदीपः कदाचन ।
त्रयो दीपा प्रदातव्याः पञ्च वा परमेश्वरि ।।१०५।।
इतो न्यूनं न दातव्यं त्रिपुरायै कदाचन ।
त्रयो दीपाः प्रदातव्यो विधूतः श्रीविवृद्धये ।।१०६।।
न मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपस्नेहान् घृतादिकान् ।
कृत्वा मिश्रीकृत्य दद्यात् तु दीपस्नेहान् घृतादिकान् ।
कृत्वा मिश्रीकृतस्नेहं रौरवं नरकं व्रजेत् ।।१०७।।

अब प्रदीपमाला कहते हैं–देवी हेतु दीपमाला बनाये। अकेला एक दीपक कभी न दिखलाये। हे परमेशानी तीन अथवा पाँच दीपक दे। त्रिपुरा को इससे कम नहीं देना चाहिए। तीन दीप प्रदान करने से श्रीवृद्धि होती है, लेकिन हिलती स्थिति का दीपक न लगाये। एक ही दीपक में कई प्रकार का घृत तैल आदि का मिश्रण छोड़कर दीपक लगाना वर्जित है। मिश्रित घृत-तैल (मिश्रित स्नेहयुक्त) दीपक लगाने वाला रौरव नरक जाता है।।१०५-१०७।।

नैव निर्वापयेद् दीपं देवार्थमपि कल्पितम् ।
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।।१०८।।
न तेन व्यवहारोऽपि कर्तव्यः साधकोत्तमैः।
सूर्याचन्द्रमसोर्ज्योतिर्विद्यु (द?तोऽ) ग्नेस्तैव च ।।१०९।।

देवतार्थ अर्पित दीप को कदापि न बुझाये। जो दीपक चुराता है वह अन्धा होता है तथा दीपक निर्वापित करने वाला काना हो जाता है। ऐसे लोगों

के साथ मेल-जोल नहीं रखना चाहिए। दीपदानार्थ मन्त्र है–'सूर्यचन्द्र' से लेकर 'प्रतिगृह्यताम्' तक। अर्थ है–"हे देवी! सूर्य-चन्द्र-विद्युत-अग्नि आदि की जो ज्योति है, वह आप हैं। अतः इस दीपार्पण को स्वीकार करिये"॥१०८-१०९॥

त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
दीपं दक्षिणतो देव्याः पुरतो नतु वामतः ।।११०।।
वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा नतु दक्षिणे ।
निवेदयेत् पुरोभागे गन्धं पुष्पं च भूषणम् ।।१११।।
नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो वा न पृष्ठतः।
गात्रे दातुं च यद्योग्यं यन्त्रेष्वेव निवेदयेत् ।।११२।।

नैवेद्यम्

दद्यादयोग्यं पुरतो नैवेद्यं भोजनादिकम् ।
मदिरां पृष्ठतो दद्यादन्यपानं तु वामतः।।११३।।
या विद्या चेह देवेशि श्रीविद्यामनासवा ।
फलहीना समाख्याता साभिचाराय कल्पते ।।११४।।

दीप को देवी के समक्ष अथवा दाहिने रखे। बायें कदापि न रखें। धूप वाम भाग में रहे। दाहिने अथवा समक्ष न रहे। जो वस्तु शरीर पर रखने योग्य है (वस्त्र, अंग-राग, वस्त्र, आभूषण आदि) उसे यन्त्र पर रखे यन्त्र देवी शरीर हैं)। जो शरीर पर नहीं रखा जाता, नैवेद्य, भोजन, पानीय जल आदि उसे देवी के समक्ष रखना चाहिए। मदिरा पीछे तथा अन्य पानक को देवी के वाम भाग में रखें। हे देवेशी! आसवरहित श्री विद्या की पूजा निष्फला है। उससे तो अभिचरोत्पत्ति होती है॥११०-११४॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पूजोपचारतत्फलवर्णनं नाम पञ्चदशः पटलः सम्पूर्णः।।१५।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वरसंवाद में पूजोपचारतत्फलवर्णन नामक पन्द्रहवां पटल समाप्त ॥

◆

षोडशः पटलः

उपचारफलविधिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

इक्षुरसं समादाय पर्युषितं सुसंस्कृतम् ।
सहकाररसं तत्र निक्षिपेन्मधुना सह ।।१।।
बादरं जाम्बवं चैव रसं खार्जूरमेव च ।
नारिकेलोद्भवं तत्र द्राक्षारसमनुत्तमम् ।।२।।
मोहिनीफलजं चूर्णं जातीकोषरजस्तथा ।
कनकबीजचूर्णं च जातीफलसमुद्भवम् ।।३।।
त्रिजातं त्रिसुगन्धिं च त्रिकटुं त्रिफलान्वितम् ।
तथान्येषां च द्रव्याणां सुगन्धीनां रजः शिवे ।।४।।
किंचित् किंचिच्च निक्षिप्य कर्पूरैरधिवासयेत् ।
स्वर्णे वा राजते पात्रे काचपुटेऽथवाप्रिये ।।५।।
स्थापयित्वा सितां तत्र निक्षिपेत् परमेश्वरि ।
निक्षिप्य लोहितैर्देवि वस्त्रैराच्छाद्य यत्नतः।।६।।
सप्तरात्रोषितं तत्तु जायते ह्यमृतोपमम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्धूपयित्वा निवेदयेत् ।।७।।
एषा सर्वोत्तमा प्रोक्ता देवीप्रियतमा सदा ।
मदिरेति समाख्याता परमानन्ददायिनी ।।८।।

ईश्वर कहते हैं— ईंख का बासी रस लेकर उसे छानकर सुसंस्कृत करे। उसमें आम का रस, मधु, वेर, जामुन, खजूर, नारियल, अंगूर का उत्तम रस मिलाना चाहिए। हे शिवे! तदनन्तर मोहिनी फल चूर्ण, जायफल चूर्ण, धतूरे की बीज का चूर्ण, जावित्रि का चूर्ण, तेजपत्ता-इलायची-दालचीनी का चूर्ण, केसर-कस्तूरी-मलयगिरि के चन्दन का चूर्ण, सोठ-पीपल-काली मिर्च का चूर्ण, हर्रा-बहेड़ा-आवला का चूर्ण तथा अन्य सुगंधित समूह का चूर्ण किंचित मात्रा में छोड़कर कर्पूर से उसे अधिवासित करे। हे प्रिये! स्वर्ण, रजत अथवा काच पात्र में उसे रखे। हे परमेश्वरी! उसमें मिश्री भी संयुक्त करे। हे देवी! तदनन्तर उस पात्र को रक्त वस्त्र से आवरित करे। सात रात्रि तक इस प्रकार आवरित रखने से वह अमृतवत् हो जाता है। उसे चन्दन कर्पूर से धूपित करे। तदनन्तर देवी को अर्पित करे। यह सर्वोत्तमा देवी की प्रिय वस्तु मदिरा कही जाती है। जो परम आनन्द प्रदात्री हैं।।१-८।।

एनां निवेद्य सुन्दर्यै सर्वसिद्धिमुपालभेत् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा ततो राजा क्षितौ भवेत् ।।९।।

तत्रापि चानयाराध्य कैवल्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।
सविकल्पस्य देवेशि विहितैषा न चान्यथा ।।१०।।
निर्विकल्पस्य देवेशि सुरै(रव) विहितागमे ।
अमृतं च तदेव स्यान्मद्यं चापि तदेव हि ।।११।।

साधक इस मदिरा को त्रिपुरसुन्दरी को निवेदित करके सर्वसिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह देवीलोक में चिरकाल वास करके जन्म लेने पर राजा होता है। वह पृथ्वी पर भी इन देवी की आराधना द्वारा कृपापात्र होकर पुनः कैवल्यप्राप्त कर लेता है। यह मदिरा निर्विकल्प स्थिति वाले के लिए ही है। सविकल्प मनुष्य के लिए नहीं है। हे देवेशी' निर्विकल्प के लिए ही आगमों में इसे विहित कहा गया है सविकल्प को। यह मदयुक्त करती है तथा निर्विकल्प के लिए यह अमृत भी है।।९-११।।

नापद्यपि द्विजो मद्यं दद्याद् देव्यै कदाचन ।
मोहाद्यदि ददेन्मद्यं ब्राह्मण्यादेव हीयते ।।१२।।
ब्रह्मघाती स एव स्यात्तस्मान्मद्यं विवर्जयेत् ।
मद्यमेव पुरा सेव्यमासीत् कमललोचने ।।१३।।

ब्राह्मण आपत्ति काल में भी देवी को मद्य न चढ़ाये। मोहवशात् देवी को मद्य प्रदान करने वाला ब्राह्मणत्व से च्युत माना गया है। वह ब्रह्महत्या पाप का भागी हो जाता है। अतः मद्य का वर्जन करे। हे कमललोचने! प्राचीन काल में सबके लिए मद्य विहित था।।११२-१३।।

पीत्वा मद्यं पुरा शुक्र आत्मानं चापि चापिण्यस्मरत् ।
पीत्वा मत्तो निशानाथः पत्नीं तां जगृहे गुरोः।।१४।।
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः।
ब्रह्मा च मुनिभिः सार्धमिदमेव पुरा जगौ ।।१५।।
महादेव्यै द्विजो मद्यं यो दद्याज्ज्ञानविह्वलः।
पशुभावे स्थितो यश्च स महापातकी भवेत्।।१६।।

शुक्राचार्य मद्यपान करके स्वयं को भूल गये (पुत्र का मांसभक्षण कर गए)। मद्यपान के प्रभाव से (व्यामोह से) चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी का अपहरण.कर लिया। उन्हें मुनि का दारुण शाप मिला। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने मुनियों को बतलाया था कि जो ब्राह्मण मद्य प्रदान करेगा, ज्ञानी होकर भी देवी को मद्य निवेदित करेगा। वह उसी प्रकार महापातकी होगा, जैसा पशुभावापन्न देवी को मद्यदान करके महापातकी होता है।।१४-१६।।

शेषयोर्विहितं मद्यं निर्विकल्पकयो पुनः।
नाद्यस्य विहितं तेन ब्रह्मघाती भवेच्च सः।।१७।।

केवल शेष दो वर्ण हेतु (क्षत्रिय-वैश्य) के लिए मद्यदान विहित है। वह ब्रह्मणार्थ विहित नहीं है। देवी को मद्य अर्पित करने वाला ब्रह्महत्या का दोषी होता है।।१७।।

तेनेदं पृथिवीक्षेत्रे वर्ज्यमासीत् सुलोचने।
ज्ञानिनां सिद्धिदा चेयममृतत्वप्रदायिनी।।१८।।
ज्ञानेन संस्कृता चेयं महापातकनाशिनी।
ब्रह्महत्या-सुरापान-स्वर्णस्तेयादिपातकान्।।१९।।
नाशयेत् पूजनाद्देवि निर्विकल्पो भवेद्यदि।
निर्विकल्पो यदा मद्यं महादेव्यै निवेदयेत्।।२०।।
अश्वमेधसहस्रस्य अग्निष्टोमशतस्य च।
राजसूयशतस्यापि फलमाप्नोत्यसंशयम्।।२१।।

हे सुलोचने! तभी पृथ्वी पर मद्य निवेदन वर्जित किया गया है। आत्मतत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी हेतु, यह सिद्धिप्रदा तथा अमृतत्व प्रदा है। ज्ञान से संस्कृता मद्य महापातक नाशिनी हो जाता है। यदि निर्विकल्प व्यक्ति देवी को मद्यार्पण करता है, तब इसके द्वारा की गई देवी पूजा द्वारा ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण चोरी आदि महापातक नष्ट हो जाते हैं। निर्विकल्प साधक जब महादेवी को मद्य निवेदित करता है, तब हजार अश्वमेघ, सौ अग्निष्टोम, १०० राजसूय का फल उसे निश्चित मिलता है।।१८-२१।।

अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको जायतेऽचिरात्।
सविकल्पो यदा देवि पापभाङ् नात्र संशयः।।२२।।
सुरे चानघधामासि स्वाहा त्वं च दिवौकसाम्।
स्वधा त्वं पितृमुख्यानां मनुष्याणां च सिद्धिदा।।२३।।
क्षीराब्धि मथने पूर्वमुद्धृता देवसंसदि।
आनन्दभैरवी सार्धमानन्दभैरवेण तु।।२४।।
त्वयि प्रसादं यातायां सिद्धिरेव न संशयः।
विमुखी चेत्तदा तस्य कुलज्ञानविनाशिनी।।२५।।
प्रसन्ना खलु देवानां गन्धर्वाणां तथैव च।
विमुखी त्वं च दैत्यानामसकृत् सर्वनाशिनी।।२६।।
त्वां दद्यां वरदे देव्यै मयि चित्स्फुरणं कुरु।
एवं स्तुत्वा सुरां देव्यै पूर्वोक्तेन च संस्कृताम्।।२७।।
त्रिपुरायै निवेद्यैव निग्रहानुग्रहक्षमः।
चर्व्यं चोष्यं तथा लेह्यं पेयं चेति चतुर्विधम्।।२८।।

सर्वयज्ञमयं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानदं कामदं पुण्यं बलारोग्यमयं तथा।।२९।।

वह व्यक्ति अति शीघ्रता से अष्ट सिद्धियों का नायक हो जाता है। लेकिन सविकल्प व्यक्ति पाप का भागी होगा, यदि वह देवी को मद्यार्पण करेगा। देवी को मद्यार्पण के पूर्व सुरा की स्तुति करनी चाहिए। स्तुति 'सुरेचानघ' से लेकर 'चित्स्फुरणं कुरु' पर्यन्त है। अर्थ है–हे सुरे! तुम निष्पाप हो। तुम देवों के लिए स्वघा हो। पितृगण की स्वधा हो। मनुष्यगण के लिए सिद्धिदा हो। पूर्वकाल में क्षीरसमुद्र के मंथन से तुम देवसंसद में उद्धृत की गयी। तुम आनन्दभैरव की अर्द्धाङ्गिनी आनन्द भैरवी हो। तुम्हारे प्रसन्न हो जाने पर निःसंदिग्ध रूपेण सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अप्रसन्न हो जाने पर तुम कुलज्ञानविनाशिनी हो जाती हो। तुम देव गन्धर्वगण पर सदा प्रसन्न रहती हो। तुम सदा दैत्यों से विमुख रहकर उनका सर्वनाश करने वाली हो। हे वरदे! मैं (मदिरा को) देवी को अर्पण कर रहा हूँ। तुम मुझमें चैतन्य का स्फुरण करो। निग्रह अनुग्रह समर्थ साधक इस प्रकार स्तुति करके पहले से ही संस्कृत करके संस्कृत मदिरा को देवी को अर्पित करे।। अब नैवेद्य प्रकार कहते हैं–नैवेद्य को चर्व्य, चोष्य, लेह्य तथा पेय रूपेण चतुर्विध कहा है। यह सर्वयज्ञमय तथा सर्वतुष्टिप्रद होता है। यह ज्ञान देने वाला, कामप्रद, पुण्यरूप, बल आरोग्यमय है।।२२-२९।।

नैवेद्येन लभेत् स्वर्गं नैवेद्येनामृतं भवेत्।
धमार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिताः।।३०।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन नैवेद्यं खलु दापयेत्।
मनसापि महादेव्यै नैवेद्यं दीयते यदि।।३१।।
यो नरो भक्तिसंयुक्तो दीर्घायुः स सुखी भवेत्।
हविः सुसंस्कृतं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम्।।३२।।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं चन्द्रबिम्बसमप्रभम्।
लसत्तण्डुलजं देवि चारुगन्धसहं मृदु।।३३।।
सुगन्धिशालिजं चारु मधुमांससमन्वितम्।
अपूपपायसं क्षीरमन्नं देव्याः प्रशस्यते।।३४।।

नैवेद्य अर्पण करने से साधक स्वर्ग प्राप्त करता है। नैवेद्य दान द्वारा अमृत रूप हो जाता है। नैवेद्य में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्रतिष्ठित हैं। अतः सर्वप्रयत्न द्वारा, देवी को नैवेद्य प्रदान करे। जो मन से देवी को नैवेद्य प्रदान करता है वह नैवेद्य अर्पित करने वाला दीर्घायु एवं सुखी हो जाता है। सुसंस्कृत हवि, दिव्य घृत शर्करा से युक्त शुद्धस्फटिकवत् चन्द्र बिम्ब समप्रभ, चावल से

शोभित, सुगन्धित साटी-चावल से नैवेद्य बनाये। मधु-मांस की भी हवि देते हैं। हलुआ, खीर, अन्न (पका हुआ) भी देवी हेतु प्रशस्य है॥३०-३४॥

बलिदानेषु विहिता य एव मृगपक्षिणः।
तेषां मांसानि मत्स्यानि देयानि विविधानि च ॥३५॥
सर्वं सुरभिगन्धाढ्यं व्यञ्जनं सुमनोहरम्।
यथा यथा भवेद्भक्ष्यं यत्नाद् देय तथा तथा ॥३६॥
संस्कृत्य वेशवाराद्यैर्महादेव्यै निवेदयेत्।
यत्पूतिगन्धसंयुक्तं दग्धं भोगबहिष्कृतम् ॥३७॥
तदुक्तमपि न दद्यात् त्रिपुरायै कदाचन।
कालशाकं कलायं च पालकं चापि पोतिकाम् ॥३८॥
सार्षपं मूलकं चापि वास्तूकं च कलम्बिकाम्।
शाकानेतान् महादेव्यै यो दद्याद्भक्तिसंयुतः॥३९॥
सोऽतुलां श्रियमाप्नोति देवीलोके महीयते।
माषमुद्ग मसूराद्यैर्व्यञ्जनं लवणान्वितम् ॥४०॥
हिङ्गुजीरमरीचाद्यैरार्द्रकैश्चापि संस्कृतम्।
तितिण्डीखण्डसंयुक्तं भक्तियुक्तो निवेद्य च ॥४१॥

जो मृग तथा पक्षी बलिदान हेतु प्रशस्य हैं, उनका मांस तथा अनेक प्रकार की मछलियां भी नैवेद्यार्थ दे। सभी मनोहर, सुगन्धयुक्त व्यञ्जन जैसे खाये जा सकें, उस रूप में पकाकर प्रस्तुत करे। उन सबका संस्कार करके महादेवी हेतु निवेदित करे। दुर्गन्ध युक्त, दग्ध भोग लगाकर बहिष्कृत, को पूर्वोक्त द्रव्यों में गव्य होने पर भी त्रिपुरापूजनार्थ कभी प्रदान न करे। उन-उन ऋतुओं में पैदा होने वाले उन-उन ऋतुओं के शाक जैसे मटर, पालक, पोय, सरसों का साग, मूली का साग, बथुआ, करेमू का साग साधक भक्ति पूर्वक देवी को प्रदान करता है, वह अतुल श्री प्राप्त करके देवीलोक को प्राप्त करता है। उड़द, मूंग, मसूर से बने व्यञ्जनों में नमक, हींग, जीरा, काली मिर्च, अदरख मिलाने के अनन्तर इमली के टुकड़ों को भी मिलाये। जो इसे भक्तियुक्त हो देवी को अर्पित करता है, वह ज्योतिष्टोम यज्ञ फल पाकर देवीलोक को प्राप्त करता है॥३५-४१॥

ज्योतिष्टोमफलं लब्ध्वा देवीलोकमवाप्नुयात्।
नानाविधानि पेयानि व्यञ्जनानि बहून्यपि ॥४२॥
क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिषाणि च सर्वशः।
आमिक्षां परमेशान्यै दधि चापि सशर्करम् ॥४३॥
पायसं शर्करापूपं कपिलाघृतसंयुतम्।
पक्वान्नमतिमिष्टं च सिताकर्पूरसाधितम् ॥४४॥

शर्करालोलितान् कृत्वा वटकान् कुङ्कुमारुणान् ।
सशर्करं पक्वदुग्धं कदल्यादिफलान्वितम् ।।४५।।
सितोपदंशं मद्यं च स्वर्णपात्रे निवेदयेत् ।
अथवा रौप्यपात्रे च ताम्रपात्रेऽथवा पुनः।।४६।।
अभावात् पद्मपत्रे वा अन्यथा नरकं व्रजेत् ।
आममन्नं महादेव्यै नैव दद्यात् कदाचन ।।४७।।
मन्त्रकालाविशुद्धानि नैवेद्यानि कदाचन ।
देवेभ्यो नोपयुञ्जीत गुरो हिते रतः।।४८।।
सितासंमिश्रितां दत्त्वा सुरां मधुसमन्विताम् ।
देवीलोके चिरं स्थित्वा कैवल्यं मुक्तिमाप्नुयात् ।।४९।।

नानाविध पेय व्यञ्जन, गाय के दूध का छेना, दही तथा शक्कर के साथ प्रदान करे। खीर-शक्कर मिश्रित मालपूआ, जो कपिला के घृत में पकाया हो, अन्य मधुर पकवान जो कर्पूर-मिश्री युक्त हो, कुंकुम के वर्ण का बड़ा, जो शर्करा से लिप्त हो, पका दूध जिसमें केला-अंगूर आदि फल पड़े हों, तथा मिश्री मिश्रित मद्य को स्वर्णपात्र में निवेदित करें। अथवा रौप्यपात्र अथवा ताम्रपात्र में रखकर देवी को अर्पित करे। अन्य प्रकार के पात्रों में अथवा भूमि पर रखकर निवेदन करने से साधक नरकगामी होगा। महादेवी को अपक्व अन्न का निवेदन कदापि न करे। जो अपना हित चाहता हो, ऐसे साधक को चाहिए कि बिना मन्त्र के अथवा समय से शुद्ध बिना किये गये नैवेद्य का अर्पण देवता तथा गुरु को कदापि न करे। जो साधक शर्करा तथा मधु से युक्त सुरा देवी को अर्पित करता है, वह देवीलोक में चिरकाल स्थित रहने के अनन्तर कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है।।४२-४९।।

आमिक्षया समं दत्त्वा सलिलं नारिकेलजम् ।
क्षीराज्य मधुकर्पूरसितादधिसमन्वितम् ।।५०।।
त्रिजातत्रिकटूनां च लवङ्गेन द्वयोरपि ।
तथान्येषां च वस्तूनां चूर्णैर्गन्धवतीं शिवे ।।५१।।
साधयित्वा प्रकारेण वासितां गन्धरेणुभिः।
यस्तैजसेन पात्रेण पेयं देव्यै निवेदयेत् ।।५२।।
भक्तिप्रवणचित्तेन तस्य पुण्यफलं शृणु ।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।।५३।।
स्थित्वा देवीपुरे श्रीमान् सार्वभौमो भवेत् क्षितौ ।
ततः परं तु कैवल्यमाप्नोति च यथेच्छया ।।५४।।

समान मात्रा में आभिक्षा से नारियल का पानी, दूध, घृत, मधु, कर्पूर, मिश्री मिलाये। उसमें लवङ्ग, तेजपत्ता, इलायची, दालचीनी, सोंठ, पीपल,

कालीमिर्च तथा अन्य वस्तुओं का चूर्ण बनाये। इसे अन्य सुगंध से युक्त करके जो पेय बने, उसे स्वर्ण के पात्र में भक्तियुक्त होकर देवी को निवेदित करें। ऐसा साधक एक हजार एक सौ कोटि कल्प पर्यन्त देवीलोक में निवास करके पुनः जन्म लेकर सार्वभौम नृपति बन जाता है। जब इच्छा होती है, तब कैवल्य को प्राप्त हो जाता है।।५०-५४।।

केवलं नारिकेलाम्बु दत्त्वा देव्यै महेश्वरि ।
अग्निष्टोमफलं लब्ध्वा नरलोके महीयते ।।५५।।
ग्राम्यारण्यैः फलैर्देवीं सकलैः परिपूजयेत् ।
बलिप्रियं च नैवेद्यं कशेरुकविषादिकम् ।।५६।।
ऋते श्लेष्मातकं बिल्वं शौनकं च विशेषतः।
फलान्ययत्नपक्वानि निसर्गमधुराणि च ।।५७।।
सुपक्वानि सुगन्धीनि मनोहराणि यानि च ।
एवमेतानि शस्तानि नान्यानि शुभदानि च ।।५८।।
सौवर्णे राजते वापि ताम्रे वा प्रस्तरेऽपि च ।
पद्मपत्रेऽथवा दद्यान्नैवेद्यं त्रिपुराप्रियम् ।।५९।।

हे महेश्वरी! जो केवल नारिकेल फल देवी को निवेदित करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है और मनुष्य लोक में उसकी महिमा होती है। देवी का पूजन वन के तथा ग्राम के फलों से करे। तदनुसार कशेरु, कमलनाल आज बलिप्रिय नैवेद्यों को भी पूजार्थ उपयोग करे। लसोड़ा, बेल तथा शौनक को छोड़कर अन्य पक्व, स्वभावतः मधुर फल देवी पूजनार्थ विहित हैं। त्रिपुरादेवी के प्रिय नैवेद्य समूह को स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, पत्थर के पात्र अथवा कमल के पत्ते पर रखकर अर्पित करे।।५५-५९।।

निराच्छादं समालोक्य भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
वायुबीजेन संशोष्य संदहेद्वह्निना तथा ।।६०।।
वारुणेन सुचावृष्ट्या प्लावयेद्धेनुमुद्रया ।
अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य मूलेनैवाभिषिच्य तु ।।६१।।

अब नैवेद्य अर्पण विधान कहते हैं–अर्पण से पूर्व आवरित रखे गये नैवेद्य को अर्पणार्थ खोले तथा भक्ति श्रद्धा समन्वित होकर उसका अवलोकन करे। अब उसका शोधन वायुबीज 'वं' से करने के पश्चात् अग्निबीज 'रं' द्वारा उसकी अशुद्धियों को दग्ध कर दे। तदनन्तर उसे वरुणबीज (वं') द्वारा अमृत से प्लावित करे। यह कार्य धेनु मुद्रा से करें। 'अस्त्राय फट्' द्वारा रक्षणोपरान्त 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से उसका अभिषेचन करना होगा।।६०-६१।।

मूलदेव्याः स्वनामान्ते नैवेद्यमिति चोच्चरेत् ।
गृहाण वह्निजायान्तो नैवेद्यमनुरीरितः ।।६२।।
अन्नं चतुर्विधं देवि रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
मया निवेदितं भक्त्या तदिदं प्रतिगृह्यताम् ।।६३।।
लेह्यचोष्यानुपानादिभक्ष्यभोज्यानि यानि च ।
मयाहृतानि यत्नेन कृपया देवि भुज्यताम् ।।६४।।

अब प्रधान देवता (मूलदेवी) का नाम लेकर उसके अन्त में 'गृहाण' कहने के उपरान्त वह्निजाया (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार होगा–'ॐ त्रिपुरसुन्दरी नैवेद्यं गृहाण स्वाहा'। अब 'अन्नचतुर्विधं' से लेकर 'भुज्यताम्' पर्यन्त मूलोक्त श्लोकों को पढ़कर नैवेद्य का अर्पण करे। अर्थ है–हे देवी! मैंने चतुर्विध अन्न छः प्रकार के रसों से युक्त करके आपको भक्तिपूर्वक समर्पित किया है। आप ग्रहण कीजिये। मैंने जो भी लेह्य-चोष्य अनुपानादि को आपके हेतु यत्नतः आहृत किया है, उसे कृपया ग्रहण करिये।।६२-६४।।

जातीलवङ्गकक्कोलवासितं स्वर्धुनीजलम् ।
मुखवासकरं पुण्यं गृहीत्वाचाम सुन्दरि ।।६५।।
मूलमन्त्रेण देवेशि हुनेत् पञ्चाहुतीः क्रमात् ।
प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम् ।।६६।।

अब आचमन कहते हैं। मूलोक्त 'जातीलवङ्ग' से लेकर 'सुन्दरी' पर्यन्त पढ़े। अर्थ है–जावित्री, लौंग, कंकोल से सुगन्धित (गंगा) स्वर्ग गामिनी का यह जल मुख को सुवासित करने वाला तथा स्वच्छ है। हे देवी! सुन्दरी! इससे आचमन कीजिए।

हे देवेशी! मूलमन्त्र से पाँच आहुति देवी के मुख में क्रम से छोड़े। आहुतियों के स्वरूप हैं पंचप्राण। यथा–प्राण-अपान-व्यान-उदान तथा समान।।६५-६६।।

एतत्स्वरूपं जानीयादाहुतीनां च पञ्चकम् ।
पञ्चाङ्गुलीभिरेव स्यात् क्रमात् पञ्चाहुतीः प्रिये ।।६७।।
पुनराचमनं दत्त्वा मुखवासं निवेदयेत् ।
ताम्बूलं गन्धसंयुक्तं कर्पूरादिसुवासितम् ।।६८।।

यह ऐसे करे— ऐं क्लीं सौः प्राणाय स्वाहा।
ऐं क्लीं सौः अपानाय स्वाहा।
ऐं क्लीं सौः व्यानाय स्वाहा।
ऐं क्लीं सौः उदानाय स्वाहा।
ऐं क्लीं सौः समानाय स्वाहा।

हे प्रिय! इन आहुतियों को पाँचों ऊंगलियों से देना चाहिए। पुनः आचमन प्रदानोपरान्त मुखसुगन्धि ताम्बूलादि का अर्पण करे।

गन्धयुक्त कर्पूरादि से सुगन्धित अनेक द्रव्यों से युक्त सुसंस्कृत ताम्बूल देवी को प्रदान करे॥६७-६८॥

संस्कृत्य विविधैर्द्रव्यैर्गन्धवद्भिर्निवेदयेत्।
स्तुवन् नानाविधैः स्तोत्रैर्भक्तिभावसमन्वितः।।६९।।
प्रणमेत् परमेशानीं विधिना साधकोत्तमः।
देवमानुषगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।।७०।।
नमस्कारेण तुष्यन्ति महात्मानः समन्ततः।
नमस्कारेण लभते चतुर्वर्गं महोदयम्।।७१।।

अब नमस्कार कहा जा रहा है—साक भक्ति से नानाविध स्त्रोत्र को पढ़ते हुए साधक श्रेष्ठ को चाहिए कि वह परमेशानी को विधि पूर्वक प्रणाम करे। देवता-मनुष्य-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नग—ये सभी नमस्कार से प्रसन्न हो जाते है। समस्त महात्मागण भी नमस्कार से तुष्ट हो जाते हैं। साधक नमस्कार द्वारा महान (सौभाग्य-उन्नति) उदय वाला चतुर्वर्ग प्राप्त करता है॥६९-७१॥

सर्वत्र सर्वसिद्ध्यर्थं नतिरेव प्रशस्यते।
नत्वा विजयते लोकान् नत्वा धर्मः प्रवर्तते।।७२।।
नमस्कारेण दीर्घायुरच्छिन्ना लभते प्रजाः।
चतुर्वर्गं लभेद्भक्तो न चिरादेव साधकः।।७३।।
नमस्कारो महायज्ञः प्रीतिदः सर्वतः सदा।
नमस्कुरु महादेवीं प्रदक्षिणं च भक्तितः।।७४।।

(संसार में) सर्वत्र सर्वकार्य सिद्धि हेतु नमस्कार (नमन) को ही प्रशस्त मानते हैं। नत होकर साधक समस्त लोक को जीत लेता है। नत होने से धर्म प्रवर्त्तित होता है (नत अर्थात् अहंकार रहितावस्था)। नमस्कार द्वारा दीर्घ आयु मिलती है। न छिन्न होने वाली उत्तराधिकारी (पुत्र-पौत्रादि) परम्परा प्राप्त होती है। भक्ति पूर्वक नमस्कार द्वारा साधक शीघ्र चतुर्वर्ग प्राप्त करता है। यह सदैव आनन्दप्रद महायज्ञ कहा गया है, जो सर्वदा प्रीतिप्रद है। अतएव साधक को चाहिए कि महादेवी को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उनकी प्रदक्षिणा करे॥७२-७४॥

मनसापि महादेव्या यो भक्त्या कुरुते नतिम्।
सोऽपि लोकान् विनिर्जित्य देवीलोके महीयते।।७५।।

जो महादेवी को मन से भी नमस्कार कर लेता है वह सर्वलोकजित् होकर देवीलोक को प्राप्त करता है॥७५॥

कायिको वाग्भवश्चैव मानसस्त्रिविधः स्मृतः।
नमस्काराश्च विज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः।।७६।।

कायिकैस्तु नमस्कारैर्देवास्तुष्यन्ति सर्वतः।
नमस्कारेषु सर्वेषु कायिकः प्रथमः स्मृतः।।७७।।
जानुभ्यामवनीं गत्वा संस्पृश्य शिरसा क्षितिम्।
क्रियते यो नमस्कारः स एव कायिकः स्मृतः।।७८।।
पुटीकृत्य करौ शीर्षे नमस्कारः प्रदीयते।
अस्पृष्ट्वा जानुशीर्षाभ्यां क्षितिं सोऽधम उच्यते ।।७९।।

अब नमस्कार भेद कहा जा रहा है–नमस्कार तीन प्रकार का कहा गया है। कायिक-वाचिक तथा मानसिक। यह उत्तम-मध्यम-अधम भेद से भी तीन प्रकार का होता है। कायिक (देह से) नमस्कार से देव तुष्ट हो जाते हैं। वह इस प्रकार का है–दोनों घुटने पृथिवी पर रखे तथा झुककर शिर से धरती का स्पर्श करे। यदि जानु तथा शिर पृथ्वी का स्पर्श न करे तथा केवल दोनों हाथ जोड़कर शिर पर लगाये, तब यह है अधम नमस्कार।।७६-७९।।

जानुभ्यां क्षितिमस्पृष्ट्वा शिरसास्पृस्य मेदिनीम्।
क्रियते यो नमस्कारो मध्यमः कायिकस्तु सः।।८०।।
पौराणिकैस्तान्त्रिकैर्वा मूलमन्त्रेण वा पुनः।
प्रदक्षिणं प्रणामं च कुर्याद्धर्मार्थसाधनम्।।८१।।

जब घुटने पृथिवी का स्पर्श न करे, केवल शिर से पृथिवी स्पर्शित हो, तब यह मध्यम नमस्कार है। पौराणिक साधक तथा तांत्रिक साधक, दोनों को धर्मार्थकाममोक्ष प्राप्ति हेतु देवी की प्रदक्षिणा तथा प्रणाम साधन अवश्य करना चाहिए।।८०-८१।।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिरः पुनः।
दक्षिणं दर्शयन् पार्श्वं भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।८२।।
सकृत् प्रदक्षिणं कृत्वा बर्तुलाकृति साधकः।
स च प्रदक्षिणो ज्ञेयः सर्वदेवौघतुष्टिदः।।८३।।
अष्टोत्तरशतं यस्तु देव्या कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
स सर्वकामानासाद्य पश्चान्मोक्षमवाप्नुयात्।।८४।।

अब प्रदक्षिणा बतलाते हैं–दाहिने हाथ को प्रसारित करके उससे दायें पार्श्व को दिखलाता हुआ शिर झुकाकर भक्ति तथा श्रद्धा समन्वित साधक (जो देव प्रतिमा अथवा चक्र अथवा मन्दिर अथवा गुरुजन) गोलाई में घूमे, यही प्रदक्षिणा है जो सर्वदेवों को तुष्ट करती है। जो साधक देवी की १०८ प्रदक्षिणा करता है, वह देहान्तोपरान्त मोक्ष लाभ करता है।।८२-८४।।

त्रिकोणमथ षट्कोणमर्धचन्द्रं प्रदक्षिणम्।
दण्डमष्टाङ्गमुग्रं च सप्तधा नतिलक्षणम्।।८५।।

दक्षिणाद्वायवीं गत्वा दिशं तस्माच्च शाम्भवीम् ।
ततोऽपि दक्षिणा गत्त्वा नमस्कारस्त्रिकोणवत् ।।८६।।
त्रिकोणाख्यो नमस्कारिस्त्रिपुराप्रीतिदायकः।
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा वायव्याः शाम्भवीं तथा ।।८७।।
ततोऽपि दक्षिणां गत्वा तां त्यक्त्वाग्नौ प्रविश्य च ।
अग्नितो राक्षसीं गत्वा कौबेरीं च ततो विशेत् ।।८८।।
आग्नेयीं च ततो गत्वा नमस्कारः प्रकीर्तितः।
षट्कोणाख्यो नमस्कारो दुर्गायाः प्रीतिदायकः।।८९।।
दक्षिणाद्वायवीं गत्वा तस्माद्व्यावृत्य दक्षिणम् ।
गत्वा योऽसौ नमस्कार सोऽर्धचन्द्रो मम प्रियः।।९०।।
नमस्कारेषु जानीयादासां प्राकृतमद्रिजे ।
त्यक्त्वा स्वमासनस्थानं पश्चाद्गत्वा नमस्कृतः।।९१।।
निपत्य दण्डवद् भूमौ निपत्य हृदयेन् च ।
तथैव दण्डवद् भूमौ दण्ड इत्युच्यते बुधैः।।९२।।
चिबुकेन मुखेनाथ नासया हनुकेन च ।
चक्षुषा वाथ कर्णाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रेण चैव हि ।।९३।।
तदष्टाङ्गमिति प्रोक्तं यद्भूमिं स्पृशते क्रमात् ।
ब्रह्मरन्ध्रेण संस्पर्शः क्षितेर्यस्या नमस्कृतेः।।९४।।

अब नमस्कार लक्षण कहते है—नमस्कार को सप्त प्रकार का कहते हैं। यथा—त्रिकोण, षट्कोण, अर्द्धचन्द्र, प्रदक्षिणा, दण्ड, अष्टांग तथा उग्र। दक्षिण से वायवीकोण से ईशानकोण जाना, वहाँ से दक्षिण जाना, यह त्रिकोण नमस्कार है। इससे देवी त्रिपुरा प्रसन्न होती हैं। दक्षिण से वायव्य, वहाँ से ईशान, वहाँ से दक्षिण, वहाँ से अग्निकोण, वहाँ से नैरॠत, वहाँ से उत्तर, वहाँ से अग्निकोण जाना, यह षट्कोण नमस्कार कहा गया है। इससे दुर्गा देवी प्रसन्न होती हैं। दक्षिण से वायव्य, वहाँ से पुनः दक्षिण आना यह मुझे (शिव को) प्रसन्न करने वाला नमस्कार है। इसे अर्द्धचन्द्र नमस्कार कहते हैं। प्रदक्षिणा पूर्व में वर्णित है। दण्ड की भाँति पृथिवी पर लेट जाना, हृदय की टेक से पुनः दण्ड की तरह उत्थित होना, इसे विद्वत्गण दण्ड नमस्कार कहते हैं।

चिबुक (ठोढ़ी), मुख, नासिका, हनु, चक्षु, कर्ण, ब्रह्मरन्ध्र के सहयोग से जो नमस्कार है, वह है अष्टांग नमस्कार। साधक जिस नमस्कार में क्रम से भूमि स्पर्श करता है, जिस नमस्कार में भूमि का स्पर्श ब्रह्मरन्ध्र से करता है, वह विष्णु को प्रसन्न करने वाला उग्र नमस्कार कहा गया है।।८५-९४।।

स उग्र इति विज्ञेयो विष्णोस्तुष्टिप्रदायकः।
यत् स्वयं गद्यपद्याभ्यां घटिताभ्यां नमस्कृतिः।।९५।।
क्रियते भक्तियुक्तेन वाचिकस्तूत्तमः स्मृतः।
पौराणिकैर्वैदिकैर्वा तान्त्रिकैः क्रियते नतिः।।९६।।
स मध्यमो नमस्कारो भवेद्वाचनिकः सदा।
परेषां गद्यपद्याभ्यां नमस्कारो यदा भवेत्।।९७।।
स वाचिकोऽधमो ज्ञेयो नमस्कारेषु सर्वतः।
इष्ट मध्या निष्टगतैर्मनोभिस्त्रिविधं भवेत्।।९८।।
नमनं मानसं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम्।
विविधे च नमस्कारे कायिकश्चोत्तमः स्मृतः।।९९।।

मुख से अपने रचित गद्य-पद्यात्मक वाक्यों को कहकर जो नमस्कार (स्त्रोत्रादि द्वारा) किया जाता है, वह उत्तम वाचिक नमस्कार है। पौराणिक, वैदिक तथा तांत्रिकगण जो नमस्कार करते हैं उसे मध्यम वाचिक नमस्कार कहा गया है।

अन्य के द्वारा रचित गद्य-पद्यात्मक (स्तुति वचनों से) वाणी से जो नमस्कार है, वह अधम नमस्कार है। जब मन इष्ट में लगा हो, तब का नमस्कार उत्तम नमस्कार है। जब मन न पूरी तरह इष्ट में हो न पूरी तरह संसार में तब का नमस्कार मध्यम नमस्कार है। जब मन पूर्णतः इष्ट में न लगा हो (संसार में लगा हो) तब के नमस्कार को अधम कहते हैं। कायिक नमस्कार वाचिक एवं मानसिक से श्रेष्ठ है।।९५-९९।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे उपचारफलविधिनिरूपणं
नाम षोडशः पटलः सम्पूर्णः।।१६।।

।। गन्धर्व तन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद का उपचार फलविधि निरुपण
नामक षोडश पटल समाप्त ।।

◆

सप्तदशः पटलः

प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरुपणम्

श्रीदेव्युवाच–

प्रकटाद्याः कथं देव पूज्यन्ते परमेश्वर ।
तत् सर्वं कथयेशान मुद्राविरचनं तथा ।।१।।

श्रीदेवी कहती हैं। हे देव! परमेश्वर! प्रकटा आदि देवियों का पूजन कैसे होता है? हे ईशान! उसके साथ मुद्रारचनादि भी बताईये ।।१।।

ईश्वर उवाच–

तास्तु प्रपूजयेद्धक्त्याः सृष्टिस्थितिलयक्रमैः।
मोहनं क्षोभणं चक्रं दक्षवर्तक्रमांद्यजेत् ।।२।।
वामावर्तक्रमेणैव शेषचक्राणि पूजयेत् ।
आरभ्य पश्चिमाद् देवि वायव्यन्तं समापयेत् ।।३।।
रश्मिवृन्दानि ते देवीं पूजयामि विधानतः।
आज्ञापय जगन्मातर्यत(स्त?स्त्व)मेव तानि(व?च) ।।४।।

ईश्वर कहते हैं–उन देवीगण की पूजा भक्ति भावना के साथ सृष्टि क्रम, स्थिति क्रम तथा लयक्रम से करे। दक्षिणावर्त्त क्रम से मोहन तथा क्षोभण चक्रों की पूजा करे। शेष चक्रों की पूजा वामावर्त्तक्रमेण करे। हे देवी! पश्चिम से पूजा प्रारम्भ करके उसका समापन वायव्य कोण में करना होगा। पूजा के पूर्व देवी की आज्ञा इस मन्त्र से लेना होगा। मन्त्र मूलोक्त 'रश्मिवृन्दानि' से लेकर 'तानि च' तक होता है। अर्थ है "हे देवी! तुम्हारी रश्मि का पूजन मैं सविधान करने जा रहा हूँ। हे जगन्माते! आप ही रश्मि समूह रूप हैं, कृपया पूजनार्थ आज्ञा प्रदान करिए।।२-४।।

कृताञ्जलिर्महेशानि देव्याज्ञां साधकोत्तमः।
गृहीत्वा पूजयेत् तुष्टः प्रागुक्तक्रमयोगतः।।५।।
पूजावरणशक्तीनां गन्धपुष्पाद्भिरक्षतैः।
ज्ञानमुद्रान्वितैर्देवि तर्पणं तत्त्वमुद्रया ।।६।।

हे महेशानी! तदनन्तर साधक श्रेष्ठ इस मन्त्र से देवी की अनुज्ञा लेकर धैर्य-पूर्वक पूर्वोक्त बतलाये क्रम से पहले आवरण देवी शक्तिगण का पूजन गन्ध-पुष्प-जल-अक्षत द्वारा ज्ञानमुद्रा प्रदर्शन के साथ सम्पन्न करे। तदनन्तर तत्वमुद्रा द्वारा तर्पण सम्पन्न करना होगा।।५-६।।

महायोगीश्वर देवं योगिनं करुणामयम् ।
वारुणं पूर्वमुद्धृत्य दक्षकर्णेन्दुभूषितम् ।।७।।
बुद्धाय नम इत्युक्त्वा पूजयेज्जगदीश्वरम् ।
पश्चिमादिचतुर्दिक्षु पूजयेदणिमादिकाः।।८।।

वायव्यादिषु कोणेषु वशित्पमुखा(न्? खाः)यजेत् ।
पाप्तिसिद्धिमधोभागे सर्वकामां तथोद्‌र्ध्वके ।।९।।
मायालक्ष्मीसमायोगं कृत्वा पूर्वं महेश्वरि ।
तथैव सिद्धिशब्दान्ते श्रीपादुकां ततो वदेत् ।।१०।।
पूजयामीति मनुना पूजयेदुक्तमार्गतः।
तथा द्वितीयरेखायां ब्रह्माण्याद्याः प्रपूजयेत् ।।११।।

आवरण की पूजा में पहले करुणामय देव महायोगीश्वर का पूजन करें। उनका मन्त्र है पहले वारुणबीज का उद्धार करे तदनन्तर उसे दक्षकर्ण (उ) तथा इन्दु (ँ) से भूषित करना होगा। तदनन्तर "बुद्धाय नमः" इस मन्त्र से महायोगीश्वर का पूजन करे। मन्त्रोद्धार है–बुं बुधाय नमः। पश्चिमार्द चार दिशाओं में अणिमा-महिमा-लघिमा-गरिमा की पूजा करे। वायव्यादि चतुःकोण में वशित्व आदि सिद्धियों का पूजन करे। 'प्राप्ति' सिद्धि की पूजा अधोभाग में करनी चाहिए। सर्वकामत्व का पूजन तदूर्ध्व में होता है। इस प्रकार से पूजन करे–पहले माया (ह्रीं) तदनन्तर लक्ष्मी (श्रीं) का योग करे। हे महेशानी! तदनन्तर 'सिद्धि' कहकर 'श्रीपादुका' कहे। अन्त में पूजयामि कहे, यथा—

"ह्रीं श्री अणिमासिद्धि श्री पादुकां पूजयामि नमः" इसी प्रकार महिमा, लघिमा, गरिमा, वशित्व, ई शित्व, प्राप्ति तथा सर्वकामत्व का मन्त्र करे। अब द्वितीय पंक्ति में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा महालक्ष्मी का पूजन करे। तदनन्तर अष्टभैरव पूज्य हैं। इनके नाम हैं असिताङ्ग,रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार भैरव ।।७-११।।

असिताङ्गं रुरुं चैव चण्डं क्रोधं तथैव च ।
उन्मत्तं च तथा देवि भैरवं च कपालिनम् ।।१२।।
भीषणं चैव संहारं ताभिः सह प्रपूजयेत् ।
सर्वसङ्क्षोभिणीमुख्यास्तथा तृतीयरेखगाः।।१३।।
करशुद्धिकरीं पूर्वे पूजयेच्चक्रनायिकाम् ।
दक्षिणे पूजयेद् देव्या मुद्रां सङ्क्षोभकारिणीम् ।।१४।।
अणिमां पूजयेद्वामे बुद्धं तस्याः पुरः पुनः।
मध्यमे मध्यतः कृत्वा कनिष्ठेऽङ्गुष्ठ रोधिते ।।१५।।
तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा सर्वसङ्क्षोभकारिणी ।।१६।।

तृतीय पंक्ति में सर्वसंक्षोभिणी, सर्वविद्राविणी, सर्वाकर्षिणी, सर्ववशङ्करी, सर्वोन्मादिनी, सर्वमहाङ्कुशा, सर्वखेचरी, सर्वयोनि तथा सर्वत्रिखण्डा का पूजन

करना चाहिए। लेकिन सबसे पहले इस चक्र की नायिका करशुद्धिकरी की पूजा करके तब सर्वसंक्षोभिणी का पूजन करके आगे देवियों का पूजन करे। देवी के दाहिनें इन सर्वसंक्षोभिणी का पूजन होता है। बायें अणिमा का तथा सामने बुद्ध का पूजन करना चाहिए।। प्रथम मुद्रा सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा कही जाती है। दोनों मध्यमा उंगलियों को बीच में करके दोनों कनिष्ठा को अंगूठों से पकड़े। तर्जनीद्वय को दण्ड के समान करके मध्यमा के ऊपर दोनों अनामिका को स्थापित करे। यही प्रथम मुद्रा है।।१३-१६।।

धान्तं वह्निसमारूढं द्वितीयस्वरभूषितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजं तस्याः प्रकीर्तितम्।।१७।।
आदाय दक्षहस्तेन विशेषार्घ्योदकं ततः।
बीजद्वयं समाभाष्य म्तथैताः प्रकटास्ततः।।१८।।
योगिन्यश्च समुद्राश्च ससिद्धयश्च सायुधाः।
तथा सपरिवाराश्च सर्वोपचारकैस्तथा।।१९।।
त्रैलोक्यमोहने चक्रे त्रिपुराधिष्ठिते तथा।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु देव्या हस्ते निवेदयेत्।।२०।।
एवमखिलचक्रस्थयोगिनीनां महौजसाम्।
यथावदुक्त वाक्येन चक्रपूजां निवेदयेत्।।२१।।

इसको बीजोद्धार कहते हैं—क्षान्त (द), वह्नि पर आरुढ़ (र) तथा द्वितीय स्वर से भूषित (आ) नादबिन्दु कलायुक्त इसका बीज है अर्थात् 'द्रां'। दाहिने हाथ से विशेष अर्घ्योदक लेकर 'द्रां' बीज का दो बार उच्चारण करके तब 'एताः प्रकटा' कहकर ''योगिन्यः समुद्रा ससिद्धय सायुधाः' तदनन्तर 'सपरिवाराः सर्वोपचारकैः' तथा 'पूजितास्तर्पितः सन्तु' कहकर देवी के हाथ में अर्घ्य प्रदान करे (भावना करे कि देवी अर्घ्य ग्रहण कर रही हैं)। अर्घ्यमन्त्र उपरोक्त विधि से यह होगा—द्रां द्रां एताः प्रकटाः योगिन्यः समुद्राः संसिद्धयः सपरिवाराः सर्वोपचारकैस्त्रैलोक्यमोहन चक्रे त्रिपुराधिष्ठिते पूजितास्तर्पिताः सन्तु''। पूरे चक्र में अत्यन्त ओजस्विनी योगिनीगण का पूजन इस मन्त्र से करना होगा ।।१७-२१।।

मायालक्ष्मीकलाभिस्ता नित्याः कलाः प्रपूजयेत्।
ब्रह्मा कमण्डलुधरश्चतुर्वक्त्रश्चतुर्भुजः।।२२।।
राजहंससमासीनः प्रांशुस्तुङ्गांस उन्नतः।
सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणे च सरस्वती।।२३।।
सर्वे देवाः स्थितास्त्वग्रे वेदाः सर्वेऽग्रतः स्थिताः।
वर्णेन रक्तगौराङ्गौ जपमाला लसत्करः।।२४।।

वराभयप्रदो देवः सर्वलोकपितामहः।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मणे नम आलिखेत्।।२५।।

माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं) कला (ईं) बीज से करे। अब ब्रह्मा का ध्यान तथा मन्त्र कहते है। वे कमण्डलुधारी, चतुर्बाहुयुक्त, चतुरानन हैं तथा राजहंस पर समासीन हैं। वे ऊँचे हैं तथा उनके कन्धे भी उन्नत हैं। वामपार्श्व में सावित्री हैं। दाहिनें पार्श्व में सरस्वती आसीन हैं। उनके आगे समस्त वेद तथा देवगण स्थित हैं। उनका वर्ण रक्त गौराङ्ग है। हाथ में जपमाला स्थित है। उन्होंने वरद तथा अभय मुद्रा धारण किया है। वे देव सर्व-लोक पितामह भी हैं। उनका पूजा मन्त्रोद्धार इस प्रकार से है—पहले प्रणव लगाये तदनन्तर 'ब्रह्मणो नमः' कहे। मन्त्रोद्धार है—'ॐ ब्रह्मणे नमः'।।२२-२५।।

अनेन मनुना देवि ब्रह्माणं परिपूजयेत्।
बालया योजितां कृत्वा पूजयेच्चक्रनायिकाम्।।२६।।
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां तत्तद्बीजपुरस्कृताम्।
(खा?था)न्तं वह्निसमारूढं तुर्यस्वरविभूषितम्।।२७।।
नादबिन्दुकलायुक्तं द्राविणीबीजमुत्तमम्।
सर्वसङ्क्षोभमुद्राया मध्यमे सरले यदा।।२८।।

हे देवी! यह ब्रह्मा की पूजनार्थ मन्त्र है। चक्रनायिका का पूजन बालाबीज से करें। द्राविणी मुद्रा का इस (कार्य में) प्रदर्शन करे। द्राविणी बीज है—थान्त (द), वह्निबीज (र) के उर्ध्व में आरुढ़ तृतीय स्वर (ई) से भूषित तथा नादबिन्दुकला युक्त। मन्त्रोद्धार है—द्रीं। सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा बनाकर उसमें भी दोनों मध्यमा उंगलियों को ऋजु कर दें। हे परमेशानी! इसे ही सर्वविद्राविणी मुद्रा कहते हैं।।२६-२८।।

क्रियते परमेशानि सर्वविद्राविणी तदा।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्।।२९।।
व्याघ्रचर्मस्थिते पद्मे पद्मासनगतं सदा।
संश्लिष्यन्तमुमां देवीं चामरोत्पलधारिणीम्।।३०।।
द्विभुजां स्वर्णगौरीङ्गीं सौम्यातिसौम्यरूपिणीम्।
लीलारविन्दंवामेनपाणिना बिभ्रतीं सदा।।३१।।
शुक्लं तु चामरं घृत्वा शिवस्याङ्गेऽथ दक्षिणे।
विन्यस्य दक्षिणं हस्तं तिष्ठन्तीं परिचिन्तयेत्।।३२।।

अब उमामहेश्वर ध्यान तथा मन्त्र बतलाते हैं। वे शुद्ध स्फटिक के समान पंच वक्त्र तथा त्रिलोचन हैं। वे सदा व्याघ्र चर्म स्थित पद्म पर पद्मासनस्थ हैं। उनके साथ में देवी उमा दाहिने हाँथ में चामर (जो श्वेतवर्ण हैं) धारण किये हुए

हैं। वामहस्त में लाल वर्ण का कमल है। इनका दाया हाथ शिव के दक्षिणाङ्ग पर है। ऐसा ध्यान करे॥२९-३२॥

त्रैलोक्यजननीं देवीं त्रैलोक्यजनकं शिवम्।
उमामहेश्वरं ध्यात्वा मोहयेज्जगतीमिमाम्॥३३॥
कामं शक्रं यथाकाशं तुरीयमनुभूषितम्।
नादबिन्दुकलायुक्तं द्वयं बीजं तयोः क्रमात्॥३४॥
उमाङेन्ता तथा ङेन्तो महेश्वरो हृद हृदन्वितः।
मन्त्रराजः समाख्यातश्चतुर्वर्गफलप्रदः॥३५॥

त्रैलोक्य माता देवी तथा त्रैलोक्य पिता शिव का यह ध्यान करके साधक समस्त संसार को मोहित कर देता है। इनके पूजा-मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है। काम (अ), शक्र (ल), आकाश (ह) को चतुर्थ मन्त्र(फट्) से भूषित करके दोनों बीजों को नादबिन्दु कला (ँ) से युक्त करें। अब ङेऽन्ते ‘उमा’ (उमायै) तथा ङेऽन्ते ‘महेश्वर (अर्थात् ‘महेश्वराय’) के अनन्तर हृदय मन्त्र (नमः) कहे। यह मन्त्रराज चतुर्वर्गफलप्रद है। मन्त्रोद्धार है–“अं लं हं फट् उमायै महेश्वराय नमः।” इस मन्त्र से उमामहेश्वर की अर्चना सर्वसंक्षोभण चक्र में करे॥३३-३५॥

अनेन तौ समभ्यर्च्य सर्वसङ्क्षोभके ततः।
अनङ्गकुसुमां पूर्वे कवर्गेणैव पूजयेत्॥३६॥
चवर्गेण च देवेशि दक्षिणेऽनङ्गमेखलाम्।
अनङ्गमदनां देवि टवर्गेण च पश्चिमे॥३७॥
तवर्गेणोत्तरे भागे पूजयेन्दमदनातुराम्।
तथैवानङ्गरेखांतु पवर्गेण हुताशने॥३८॥
यवर्गेण च देवेशि नैर्ऋतेऽनङ्गवेगिनीम्।
शवर्गेण च वायव्येऽनङ्गाङ्कुशां च पूजयेत्॥३९॥
लक्षाभ्यां परमेशानि ईशे चानङ्गमालिनीम्।
प्रोक्तस्थाने समावाह्य पूजयेच्चक्रनायिकाम्॥४०॥

अनङ्गकुसुममादि का पूजन कहते हैं–अब चक्र के पूर्वभाग में अनङ्गकुसुमा का पूजन कवर्ग का पूजन करे। हे देवेशी! दक्षिण में चवर्ग द्वारा अनंग मेखला का पूजन करे। हे देवी! पश्चिम में टवर्ग द्वारा अनंगमदना का पूजन करें। उत्तरभाग में तवर्ग द्वारा मदनातुरा का पूजन सम्पन्न करें। अग्निकोण में पवर्ग द्वारा अनङ्गरेखा का पूजन किया जाता है। हे देवेशी! नैर्ऋतकोण में अनङ्गवेशिनी का पूजन यवर्ग से करे। वायव्यकोण में शवर्ग द्वारा अनङ्गांकुशा का पूजन करे। हे परमेशानी! अनंगमालिनी का पूजन ईशानकोण में ‘हक्ष’ द्वारा करे। इस चक्र में षोडशी त्रिपुरसुन्दरी चक्रनायिका का आवाहन करना चाहिए॥३६-४०॥

कामबीजं पुरस्कृत्य मुद्रां संदर्शयेत् ततः।
मध्यमानामिकाभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।।४१।।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां तु मध्यमे परमेश्वरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षकारिणी ।।४२।।

कामबीज (क्लीं) को कहकर वहाँ आकर्षिणी मुद्रा से पूजनार्चन करे। मध्यमा और अनामिका सम रहे। हे परमेश्वरी! मध्यमाद्वय को अंकुशकृति रखे। यह त्रैल्योक्य को आकर्षित करने वाली आकर्षिणी मुद्रा है।।४१-४२।।

सर्वसौभाग्यदे चक्रे भास्करं परिचिन्तयेत् ।
पद्मरागप्रतीकाशं किरीटाङ्गदभूषणम् ।।४३।।
पद्मासनसमासीनं स्वशक्त्यालिङ्गितं विभुम् ।
दधानं बाहुभिर्देवं रक्तपद्मे वराभयौ ।।४४।।
प्रागुक्तेन तु मन्त्रेण भास्करं परिपूजयेत् ।
सम्प्रदायाः प्रपूज्यैव पूजयेच्चक्रनायिकाम् ।।४५।।
वारुणं चेन्द्रबीजस्थं वाम कर्णविभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं बीजं वश्यकरं महत् ।।४६।।

अब सूर्य पूजन कहते हैं। अब सर्वसौभाग्यचक्र में भास्कर ध्यान करे। वे पद्मराग प्रतीकाश हैं। किरीट-अंगद आभूषणधारी हैं। वे पद्मासीनावस्था में स्वशक्ति द्वारा आलिंगित हैं। उनके चतुर्भुजा में क्रमशः २ लाल कमल, वरद एवं अभय मुद्रा है। इनका पूजामन्त्र इस प्रकार से है–वारुण बीज (क), इन्द्रबीज (ल), को वामकर्ण भूषित करके नादबिन्दु कला युक्त करने से 'क्लीं' का मन्त्रोद्धार होता है। यह है महावशीकरण मन्त्र।।४३-४६।।

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यङ्कुशरूपिणी ।
परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ।।४७।।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिके ह्यपे ।
संयोज्य निविडाः कार्याः सर्वा अङ्गुष्ठदेशतः।।४८।।
मुद्रैषा परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ।
सर्वार्थसाधके चक्रे बाह्ये दशारके ततः।।४९।।
मणिमयमहा रत्नपङ्कजेऽतिमनोहरे ।
पीठे तस्मिन्निविष्टस्य प्रद्योतनशतद्युतेः।।५०।।
तप्तकाञ्चनवर्णा भवैनते यस्य पार्वति ।
आसीनमुन्नतांसे. च विष्णुं विद्रुमसन्निभम् ।।५१।।
स्ववामोरुगतां पद्मां श्लिष्यन्तमरुणेक्षणम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं (च?स)स्मितं चारुभूषणम् ।।५२।।

शङ्खचक्रगदापद्मं दधानं बाहुभिः सदा।
चिन्तयित्वा महेशानि पूजयेज्जगदीश्वरम्।।५३।।

दोनों हाथ का पुटक (अंजलि) बनाकर तर्जनी को अंकुश जैसा वक्र करके मध्यमाद्वय को उलटा कर उसके नीचे ले जाना चाहिए। हे देवी! अनामिका को उसी क्रम से ले जाकर सबको युक्त करके उनका योजन अंगुष्ठ से करे। हे परमेशानी! यही है सर्ववशङ्करी मुद्रा। इस मुद्रा द्वारा सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करे। (इनका नाम इसी ग्रन्थ में पहले लिया गया है)। हे पार्वती! अब विष्णु का ध्यान तथा मन्त्र कहते हैं–इसके पश्चात् बाह्य दशारचक्र में सर्वार्थ साधक विष्णु का ध्यान करे। ये भगवान् अत्यन्त मनोहारी मणिमय रत्नमय कमलपीठ पर १०० विद्युतों के समान तप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाले गरुड के ऊँचे कंधों पर बैठे हैं। इनका वर्ण है विद्रुमवत्। इन्होंने वामोरु पर आसीन पद्मा का आलिंगन किया है। इनके नेत्र अत्यन्त अरुण हैं। ये पीत परिधान तथा आभूषण धारी हैं। भुजाओं में शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किया है। हे महेशानी! जगदीश्वर का इस प्रकार से करना चाहिए। तथा पूजन करे। वे स्मित हास्य के साथ सुन्दर आभूषण धारी हैं।।४७-५३।।

मन्त्रमस्य प्रवक्ष्यामि चतुर्वर्गप्रदायकम्।
कामबीजं समुद्धृत्य हृषीकेशमतः परम्।।५४।।
ङेन्तं च नतिसंयुक्तमनेन तं प्रपूजयेत्।
कुलकौलः प्रपूज्यैव पूजयेच्चक्रनायिकाम्।।५५।।
सर्वोन्मादकरीं मुद्रां दर्शयेद्बीजपूर्विकाम्।
ससर्गो भृगुरेतस्या बीजमेतदुदाहृतम्।।५६।।
सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यगेऽन्त्यजे।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम्।।५७।।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशगौ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम्ना क्लेदिनी सर्वयोषिताम्।।५८।।

अब इनका चतुर्वर्ग प्रदाता मन्त्र कहा जा रहा है। पहले कामबीज (क्लीं) कहे। तदनन्तर हृषीकेश को ङेऽन्त नति के साथ कहे। मन्त्रोद्धार है "क्लीं हृषीकेशायनमः"। हे महेशानी! जगदीश्वर विष्णु का ध्यान इनकी कलाओं के साथ करे। कलाये हैं जरा, शान्ता, रति, वरदा, प्रीति, पालिनी, मरीचि, कामिका, ह्लादिनी तथा दीर्घा। अब चक्रनायिका पूजन कहते हैं। अब कुल कौल चक्रनायिका का पूजन करे। यहाँ बीज का उच्चारण पहले करे। तदनन्तर सर्वोन्मादकरी मुद्रा दिखलाये। विसर्ग (:) के साथ भृगु (सः) इसे उन्मादिनी मुद्रा

का मन्त्र कहा गया है। दोनो हथेली को सम्मुख करे। कनिष्ठाद्वय मध्यमा के मध्य हो, अनामिकाद्वय ऋजुरूप में ऊर्ध्वोत्थित हों। तर्जनी-द्वय बाहर हों। तदनन्तर अंगुष्ठद्वय को दण्डाकार करके मध्यमा के नख के पास करे। यही उन्मादिनी मुद्रा है जो स्त्रियों का क्लेदन करने वाली है।।५४-५८।।

सर्वरक्षाकरे चक्रे तथान्तर्दशकोणके ।
त्रैलोक्यमोहनं विष्णुं ध्यायेद्बन्धूकसन्निभम् ।।५९।।
जापाकुसुमसङ्काशं दाडिमीकुसुमप्रभम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशं रत्नसिंहासनेऽम्बुजे ।।६०।।

त्रैलोक्यमोहन विष्णुध्यान तथा मन्त्र—अन्तर्दशार सर्वरक्षाचक्र में त्रैलोक्य मोहन बन्धूक वर्ण वाले विष्णु का ध्यान करे। उनका वर्ण जवापुष्प, अनारपुष्प अथवा उदीयमान सूर्य के समान है। वे रत्नसिंहासनस्थ कमल पर पद्मासनासीन हैं।।५९-६०।।

पद्मासनसमासीनं भुजैश्चतुर्भिरायतैः ।
पाशाङ्कुशौ च दधतं पुष्पबाणेक्षुकार्मुकम् ।।६१।।
अरुणायतलोलाक्षियुगलं मदघूर्णितम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यं किरीटाङ्गदभूषितम् ।।६२।।
रक्तमालाम्बरधरं रक्तगन्धानुलेपिनम् ।
स्ववामोरुगतां शक्तिं श्लिष्यन्तीं दक्षपाणिना ।।६३।।
वामेन पाणिना पद्मं धारयन्तीं शुचिस्मिताम् ।
रुचिराङ्गदभूषाढ्यां शुद्धक्षौमविराजिताम् ।।६४।।

वे अपनी चार भुजाओं में पाश-अंकुश-पुष्पबाण तथा ईंख का धनुष धारण करते हैं। नेत्रद्वय अरुण वर्णी तथा चंचल हैं। मदघूर्णित हैं। समस्त शृंगार से सज्जित उनका वेश है। किरीट तथा अंगद से वे भूषित हैं। वे रक्तवर्ण की माला रक्तगन्धानुलोप लगाये हुए हैं। वे अपनी शक्ति को अपनी वाम जंघा पर बैठाये हुए हैं। शक्ति ने उन्हें वाम हाथ से आलिंगित किया हुआ है। वे शुचिस्मिता हैं।वे वाम हस्त में कमल धारण किये हुए हैं। वे रुचिर अंगद आभूषित हैं। उन्होंने शुद्ध रेशम का वस्त्र पहना हैं।।६१-६४।।

मदनोत्तप्तहृदयां क्लिद्यद्योनिं परमेश्वरीम् ।
कलाकलितममाधुर्यां तरुणीं यौवनान्विताम् ।।६५।।
सकार्मुकभुजेनैव श्लिष्यन्तं सुदृढं तथा ।
तज्ज नितपरानन्दनन्दितं परमेश्वरम् ।।६६।।
नागगन्धर्वदेवानामङ्गनाभिः समावृतम् ।
मदनोल्ललिताङ्गाभिर्भूषिताभिर्विभूषणैः ।।६७।।

वे कामोत्तप्त हृदया हैं तथा इसी कारण उनकी योनि दूषित हो रही है। कला कलित होने के कारण वे अतीव मधुर हैं तथा तरुणी हैं ऐसे यौवन से सम्पन्ना हैं। अपने कार्मुकधारी हस्त से विष्णु भी उनका दृढ़ आलिंगन करके उससे जनित आनन्द से नन्दित हैं। वे नाग-गन्धर्व की स्त्रीगण तथा देवांगनाओं से समावृत हैं। वे स्त्रीगण मदनोल्लास से उल्लसित तथा आभूषणों से विभूषित हैं। इस प्रकार के देवाधिदेव जगदगुरु त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान करने वाला भी त्रैलोक्य को मोहित करने वाला हो जाता है॥६५-६८॥

आत्मभेदे यो ध्यायेद् देवदेवं जगद्गुरुम् ।
त्रैलोक्यमोहनं विंष्णुं त्रैलोक्यमोहनो भवेत् ।।६८।।
बीजमस्य प्रवक्ष्यामि लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।
ब्रह्मा पुरन्दरः पश्चान्मायास्वरमतः परम् ।।६९।।
श्रुतिषु मथितसारंदेवताकण्टकारिं
त्रिभुवनवशकारं श्री धनाद्यर्थकारम् ।
शमनभयविनाश सर्वशङ्काप्रपाशं
भवजलधिविशोषं मानसांन्ध्य प्रकाशम् ।।७०।।

अब मैं उनका लक्ष्मी नारायणात्मक बीज कहता हूँ। ब्रह्मा (क), पुरन्दर (ल), उसके बाद माया स्वर (ह) को नाद आदि से विभूषित करे। यह विष्णुबीज है। मन्त्रोद्धार है 'क्लीं'। इस बीजोच्चारणोपरान्त मूलोक्त यह श्लोक कहे, "श्रुतिषु" से लेकर 'प्रकाशम्' पर्यन्त। इसका अर्थ है–वेदों का मंथन करके उसकी शरण लेने वाला, देवतओं के लिए जो कण्टक है उस कण्टक के शत्रु, त्रिभुवन वश करने वाले, लक्ष्मीप्रद-धनैश्वर्यप्रद, शत्रुभयविनाशक, समस्त शंकाओं का नाश करने वाले, भवजलाधि के शोषक, मन के अन्धकार को विदूषित करने वाले विष्णु का ध्यान करे॥६९-७०॥

अनेन तं समभ्यर्च्य निगर्भः योगिनीः यजेत् ।
नायिकां तत्र सम्पूज्य मुद्रां सन्दर्शयेत् तथा ।
तस्यास्त्व नामिकायुग्ममधःकृत्वाङ्कुशाकृति ।।७१।।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इयं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकार्यार्थसाधिका ।।७२।।
कामदेवोऽग्निमारूढो बिन्दुनादकलान्वितः।
त्रयोदशस्वरोपेतो मुद्राबीजमितीरितम् ।।७३।।

अब निगर्भ योगिनी पूजा कहते हैं–उक्त मन्त्र से त्रैलोक्य को मोहित करने वाले विष्णु के पूजनोपरान्त निगर्भयोगिनीगण का पूजन करे। यहाँ

चक्रनायिका पूजनोपरान्त मुद्रा प्रदर्शित करे। यह मुद्रा महाकुंशाकृति है। दोनों अनामिका को नीचे करके अंकुशाकृति करे। वैसे ही तर्जनीद्वय को भी रखे। यही है यह मुद्रा। यह समस्त कार्य साधिका है। इसका बीजोद्धार है कामदेव (क) अग्नि पर (र) आरुढ हो तथा बिन्दुनादकला (ँ) युक्त होकर त्रयोदश स्वर (ओ) से युक्त हो जाये। मन्त्रोद्धार है 'क्रों'।।७१-७३।।

अष्टकोणे महेशानि रहस्ययोगिनीर्यजेत्।
वशिनीप्रमुखाः सर्वाः पूर्ववद्बीजसंयुता।।७४।।
पादुकां पूजयामीति न्यासादेव विशेषतः।
चक्रेश्वरीं यजेच्छक्तिंभुक्तिसिद्धिं च वामतः।।७५।।
त(दङ्के?द्दक्षे) खेचरीमुद्रां तां च संदर्शयेत् ततः।
सव्यं 'दक्षिणदेशे तु दक्षिणं वामदेशतः।।७६।।
बाहुं कृत्वा महेशानि हस्तौ सम्परिवर्त्य च।
कनिष्ठानामिके देवि युक्त्वा तेन क्रमेण तु।।७७।।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे।
अङ्गुष्ठौ च महेशानि कारयेत् सरलाविह।।७८।।
इयं सा खेचरी मुद्रा नाम्ना सर्वोत्तमा प्रिये।
रचितेयं महामुद्रा सर्वतेजोपहारिणी।।७९।।
शिवं चन्द्रं तथा कान्तं पान्तं वह्निसन्वितम्।
एकादशस्वरोपेतं बीजं तस्याः प्रकीर्तितम्।।८०।।

अब रहस्ययोगिनी पूजा कहते हैं–हे परमेशानी! अष्टार चक्र में रहस्ययोगिनी-गण की अर्चना करे। इन वशिनी आदि का नाम (पूर्ववत्) बीज से संयुक्त करे तथा तत्पश्चात् उस बीज में 'पादुकां पूजयामि' यह लगाये। न्यास के पश्चात् चक्रेश्वरी शक्ति की वाम में तथा मुक्तिसिद्धि का पूजन दाहिने करे। तदनन्तर उसे खेचरी मुद्रा प्रदर्शित करे। दाहिने हाथ को बाँयी ओर तथा बायें हाथ को दाहिनी ओर करना होगा। हथेली को उलटा रखना होगा। अब कनिष्ठा एवं अनामिका को युक्त करके तर्जनीद्वय से उसे दबाये। मध्यमाद्वय तथा अंगुष्ठद्वय को सबसे ऊपर सीधा रखे। हे प्रिये! यह खेचरी मुद्रा सर्वोत्तम है जो सर्वतेजोपहारिणी महामुद्रा है। इसका बीजोद्धार इस प्रकार है–शिव (ह), चन्द्र (स), कान्त (ख), पान्त (फ) को अग्नि (र) से जोड़े। ग्यारहवें स्वर (ए) को युक्त करके मन्त्र होता है "हसखफ्रें"।।७४-८०।।

मध्यत्रिकोणचक्रे च अग्रदक्षोत्तरे शिवे।
ता एव पूजयेद्देवि विन्यासोक्तविधानतः।।८१।।

पादुकां पूजयामीति विशेषोऽत्र प्रकाशितः।
त्रिपुराम्बांतु चक्रेशी मिच्छासिद्धिं च वामतः।।८२।।

अब रहस्ययोगिनी पूजन कहते हैं–हे शिवे! हे देवी! मध्यत्रिकोण चक्र में अग्र तथा दाहिनी विधानानुसार न्यासोक्त 'श्री पादुकां पूजयामि' कहकर अर्चना करे। सामने वामभाग में त्रिपुराम्बा चक्रेश्वर तथा इच्छा सिद्धि का पूजन करे॥८१-८२॥

परिवर्त्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत् ततः।।८३।।
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत्।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके।।८४।।
बीजमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका।
सदाशिवस्य बीजाढ्या दर्शयित्वा विधानतः।।८५।।

अब बीजमुद्रा कहते हैं–हे प्रिये! दोनों हाथों को परिवर्त्तित करके तर्जनी एवं अंगुष्ठ को अर्द्धचन्द्राकृति बनाये। कनिष्ठाद्वय को नीचे कनिष्ठाद्वय से आबद्ध करे। उंगलियों के सर्वातिनिम्न में अनामिकाद्वय को वक्र करके नीचे लगाये। यह सर्वोत्कृष्ठ मुद्रा है तथा त्रिलोकी की माता कही गयी है। इसके प्रदर्शन से पहले सदाशिव बीज (हसौः) का उच्चारण करे॥८३-८५॥

सर्वानन्दमये चक्रे ब्रह्मविष्णवीशरूपिणीम्।
पूजायित्वा विधानेन चक्रेशीमपि भैरवीम्।।८६।।
ज्ञानेच्छादिक्रियारूपां मोक्षसिद्धिं च वामतः।
सिंहं च पुरतो देव्या जगदाधारमर्चितम्।।८७।।

अब चक्रेश्वरी पूजन कहते हैं–अब सर्वानन्दचक्र में ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपिणी चक्रेश्वरी, भैरवी का पूजन करके वामभाग में इच्छा-ज्ञान-क्रियारूपा मोक्षसिद्धि की पूजा करे। देवी के समक्ष जगदाधर सिंह का पूजन करे, जो सदैव देवी के मुख की ओर देखता रहता है॥८६-८७॥

पूजयेत् सततं भक्त्या पश्यन्तमम्बिकामुखम्।
वाग्बीजं पूर्वमुद्धृत्य योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।।८८।।
अनामिकायुगं देवि परिवर्तनयोगतः।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां तर्जनीभ्यां तु धारयेत्।।८९।।
मध्यमे कुरु तन्मध्ये कनिष्ठिके तथाविधे।
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ कनिष्ठोपरिसंस्थितौ।।९०।।
योनिमुद्रेयमाख्याता परा त्रैलोक्यमातृका।
अत्रपदं समाभाष्य सर्वानन्दमयात् ततः।।९१।।

चक्रराजपदस्यान्ते ब्रह्मस्वरूपमालिखेत् ।
संविन्मय पदं ब्रूयाद्बिन्दुचक्रे ततः परम् ।।९२।।
एषा परापरशब्दाद्रहस्ययोगिनी ततः।
ब्रह्मस्वरूपिणी पश्चान्महात्रिपुरसुन्दरी ।।९३।।
समुद्रा सायुधा चैव सवाहना तथैव च ।
तथा सपरिवारान्ते सर्वोपचारकैस्तथा ।।९४।।
पूजितास्तु तथा देवी तर्पितास्त्विति पूर्ववत् ।
पुष्पाञ्जलिभिरभ्यर्च्य तर्पयेद्विधिना ततः।।९५।।

अब वाग्बीज 'ऐं' का उच्चारण करके योनिमुद्रा दिखलाये। हे देवी! दोनों अनामिका को परिवर्त्तनपूर्वक अंकुशाकृति तर्जनी से बद्ध करे। अंगुष्ठद्वय कनिष्ठद्वय के ऊपर दण्डाकृति में सीधे स्थित करे। यह परात्रैलोक्य मातृका मुद्रा है। अब पुष्पाञ्जलि लेकर पहले 'अत्र' तदनन्तर 'सर्वानन्दमय' के पश्चात् 'चक्रराज' तदनन्तर 'ब्रह्मस्वरूप' कहकर 'संविन्मय' कहे, तत्पश्चात् 'बिन्दुचक्रे' तथा 'एषा परापर' के साथ 'रहस्ययोगिनी' तदनन्तर 'ब्रह्मस्वरूपिणी' के पश्चात् 'महात्रिपुरसुन्दरी समुद्रा सायुधा सवाहना' कहकर 'सपरिवारा' कहे। तत्पश्चात् 'सर्वोपचारकै' के अनन्तर ''पूजितास्तु तर्पिताऽतु नमः'' कहने के पश्चात् उस पुष्पाञ्जलि से पूजा निवेदन करके तर्पण करे।

मन्त्रोद्धार है—अत्र सर्वानन्दमयचक्रराज ब्रह्मस्वरूपसंविन्मयबिन्दुचक्रे एषा परापररहस्ययोगिनी ब्रह्मस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी समुद्रा सायुधा सवाहना सपरिवारा सर्वोपचारकैः पूजिताऽस्तु तर्पिताऽस्तु नमः॥८८-९५॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरूपणं नाम सप्तदशः पटलः सम्पूर्णः।।१७।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में प्रकटाप्रकटादिदेवीपूजनक्रमनिरुपण नामक सत्रहवां पटल समाप्त ॥

* * *

अष्टादशः पटलः

जपादिविधिनिरूपणम्

ईश्वर उवाच–

प्रसादसुमुखीं देवीं भाववान् प्रजपेन्मनुम्।
सर्वयज्ञेषु सर्वत्र जपयज्ञः प्रशस्यते।।१।।
जपात्तुष्यन्ति देवाश्च जपात् सिध्यन्ति साधकाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जपनिष्ठापरो भवेत्।।२।।

ईश्वर कहते हैं–कृपा एवं प्रसाद से सुन्दर मुख वाली देवी के सम्बन्ध में भक्तिपूर्ण भाव से साधक को उनके मन्त्र का जप करना चाहिये। जप यज्ञ सभी यज्ञों में से श्रेष्ठ है। जप से देवता सन्तुष्ट होते हैं और जप से साधकों को सिद्धि मिलती है। अतएव सर्व प्रयत्न से जपनिष्ठापर होना चाहिये।।१-२।।

जपः स्यादक्षरावृत्तिद्रुतं न विलम्बितम्।
पूजा ध्यानं जपो होम इति धर्मचतुष्टयम्।।३।।
प्रत्यहं साधकः कुर्यात् स्वयं चेत् सिद्धिमिच्छति।
जपस्यान्ते शिवं ध्यायेद् ध्यानस्यान्ते पुनर्जपेत्।।४।।
जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति मन्त्रवित्।
जपरूपा सदा शक्तिर्ध्यानरूपः सदा शिवः।।५।।
तयोर्योगाद्भवेत् सिद्धिर्नान्यथा खलु पार्वति।
संयुक्तं संयुतं कृत्वा यदयुक्तं न योजयेत्।।६।।
यथासिद्धिस्तथा माला मालाङ्गं जपकर्मणि।
मालया जपतो नित्यं सिद्धिरेव न संशयः।।७।।

न जल्दी न धीरे इस प्रकार से अक्षरों की पुनः-पुनः आवृत्ति को जप कहा जाता है। सिद्धिकामी साधक को चाहिए कि वह पूजा, ध्यान, जप होम रूप धर्मचतुष्ठय को नित्य स्वयं करे। जपान्त में शिव का ध्यान करके ध्यानान्त में पुनः जप करना चाहिये। जो मन्त्री जप-ध्यान से समायुक्त है, उस मन्त्रविद् को त्वरित सिद्धि मिलती है। जपरूपा शक्ति हैं। ध्यान रूप हैं शिव! दोनों के योग से सिद्धि मिलती है। हे पार्वती! अन्य उपाय से सिद्धि का मिलना असम्भव है। जप में अयुक्त को न जोड़े, जो युक्ति पूर्वक है, उसे जोड़े। जो सिद्धि है, वही माला है। जप कर्म माला का अंग है। नित्य माला द्वारा जप करने से सिद्धि मिलती है। इसमें सन्देह नहीं है।।३-७।।

आशुसिद्धिकरी माला वर्णमयी समीरिता।
अनुलोमविलोमार्णैर्मातृकायाः सबिन्दुकैः।।८।।
सुमेरुकैः सदा कार्या माला सर्वसमृद्धिदा।
अष्टाधिकाष्टवर्गैस्तु पुनरेव समापयेत्।।९।।
वर्णेनान्तरितमस्त्रं कृत्वा जप्येत्तु साधकः।
मालाभावे ततः स्वासु अङ्गुलीषु जपेद्बुधः।।१०।।

अब माला का स्वरूप कहते हैं। वर्णमयी माला शीघ्र सिद्धिप्रदा कही जाती है। बिन्दुयुक्त मातृकाओं की अनुलोम क्रमेण (अं से क्षं तक) तथा विलोम क्रमेण (क्षं से अं पर्यन्त) सुमेरु के साथ (सुमेरु अलग से) माला बनाये। यह माला सर्व समृद्धि देती है। आठो वर्ण के आठ अक्षरों को जोड़कर माला सम्पूर्ण करे। वर्णों से 'अस्त्र (फट्)' को अन्तरित करके (सम्पुटित) करके साधक को जप करना चाहिये। माला के अभाव में अपनी उंगलियों पर बुद्धिमान साधक को जप करना चाहिए॥८-१०॥

नित्यं जपं करे कुर्यान्न तु काम्यं कदाचन।
आरभ्यानामिकामध्यात् प्रादक्षि प्रादक्षिण्ये न वै क्रमात।।११।।
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेन्नवसु पर्वसु।
तर्जन्यग्रे तथा मध्ये जो जपेत् मतिमान्नरः।।१२।।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम्।
अनामामध्यपर्वं तु मेरुं कृत्वा न लङ्घयेत्।।१३।।

जप को नित्य करना चाहिए। काम्य कर्म का जप उंगलियों पर करना वर्जित है। कर (उंगलियों द्वारा) माला जप का विधान यह है कि अनामिका की बीच वाली रेखा (पर्व) से प्रारम्भ करके प्रदक्षिण क्रम से तर्जनी के मूल तक दस पर्वों पर जप का विधान है। जो बुद्धिमान साधक (प्रमादवश) तर्जनी के अगले भाग तथा मध्यभाग में जप करता है, उसकी आयु नष्ट हो जाती है। विद्या-यश-बल भी नष्ट हो जाती है। अनामिका का मध्य पर्व सुमेरु होता है। उसका कदापि अतिक्रम (उलंघन) न करे॥११-१३॥

मेरुं प्रदक्षिणं कुर्वन्नानामामूलपर्वतः।
अङ्गुलीर्नापर्वभिर्मन्त्रं जपन् रेखां न संस्पृशेत्।।१४।।
अङ्गुलीर्नापयुञ्जीत किंचिदाकुञ्चिताः तले।
अङ्गुलीनां वियोगे तु च्छिद्रेण स्रवते जपः।।१५।।

सुमेरु की प्रदक्षिणा करके अनामिका के मूल पर्व से लगाकर अन्य उंगलियों के पर्व से मन्त्र का जप करे लेकिन पर्वों को बाटने वाली उंगलियों की रेखा का कदापि स्पर्श नहीं करना चाहिए। उंगलियों को कुछ भीतर की ओर

तनिक झुकाकर तल की ओर करना चाहिए ताकि उंगलियों के बीच में जगह खाली न बचे। अन्यथा इस खाली जगह से जप निम्न प्रदेश में चला जाता है। निष्फल हो जाता है।।१४-१५।।

स्फटिकादिभिरप्यत्र माला जपसमृद्धिदा ।
निधाय पुरतो मालां सव्यहस्तगतां च वा ।।१६।।
जपादौ पूजयेन्मालां तोयैरभ्युक्ष्य यत्नतः।
इष्टमन्त्रेण मालायाः प्रोक्षणं परिकीर्तितम् ।।१७।।

स्फाटिक आदि की माला जप प्रभाव को बढ़ाती है। जप के पूर्व माला को अपने समक्ष आसन पर अथवा अपने बायीं ओर बायें हाथ से रखकर अपने इष्ट मन्त्र द्वारा दाहिने हाथ से उसका प्रोक्षण इष्ट मन्त्र द्वारा करें।।१६-१७।।

ऐं मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ।।१८।।
चन्द्रचन्दनकस्तूरीरोचनागुरुकुङ्कुमैः ।
पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद् दक्षपाणिना ।।१९।।

अब माला की प्रार्थना करनी चाहिए जो मूलोक्त 'ऐं मां' से लेकर 'सिद्धिदा भव' पर्यन्त है। अर्थ है–हे माले! हे महामाये! हे सर्वशक्ति स्वरूपे चतुर्वर्ग तुममें स्थित है। अतः तुम मेरे लिए सिद्धिदा हो जाओ। प्रार्थना के उपरान्त कर्पूर-चन्दन-कस्तूरी-गोरोचन-अगुरु-कुंकुम से माला का पूजन करके उसे दाहिने हाथ में ग्रहण करे।।१८-१९।।

बीजं गणपतेः पूर्वमुच्चार्य तदनन्तरम् ।
अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णीयादित्यनेन तु ।।२०।।
यथा हस्तान्न च्यवते जपतः स्त्रक् तथाचरेत् ।
हस्ताच्च्युतायां विघ्नं स्याच्छिन्नायां मरणं भवेत् ।।२१।।
यत्नात् सङ्गोपयेदेनां भ्रमयेन्न विधूनयेत् ।
गुरुं प्रकाशयेन्नैव यन्त्रं मन्त्रं कदाचन ।।२२।।

सर्वांग में गणपति बीज (गं) कहकर तदनन्तर 'अविघ्नं कुरु माले त्वं' (अर्थात् गं अविघ्नं कुरु माले त्वं) का उच्चारण करके दक्षिण कर में माला धारण करे। वह हाथ से न सरके (जपकाल में), यह ध्यान रहे। क्योंकि हाथ से गिरने पर विघ्न आते हैं तथा जप करते समय भग्न हो जाने पर जापक की (शीघ्र) मृत्यु हो जाती है। यत्न से रखना (हाथ में धारण करना) चाहिए। न तो इसे घुमाए और न अधिक हिलाये। यन्त्र तथा मन्त्र गुरु को भी बताना वर्जित है।।२०-२२।।

अक्षमालां च मुद्रां च गुरवेऽपि न दर्शयेत् ।
भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगन्धर्वचारणाः ।।२३।।

हरन्ति प्रकटं यस्मात् तस्माद्गुप्तं जपेत् सदा ।
मालां स्वहृदयासन्नां दक्षिणस्य करस्य च ।।२४।।

अक्षमाला तथा मुद्रा गुरु को भी न दिखाये। जो माला प्रकट (अनावरित) रहती है, उस माला द्वारा कृत जपफल, का जप का हरण भूत-राक्षस-बेताल-सिद्ध-गन्धर्व-चारण आदि कर लेते हैं। अत: जपमाला गुप्त रखें। माला को जपकाल में दाहिने हाथ से हृदय के पास ले जाकर जप करना उचित है।।२३-२४।।

मध्यमाया मध्यभागे वर्जयित्वा तु तर्जनीम् ।
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युताया नम्रभागतः।।२५।।
स्यापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गतम् ।
प्रत्येकं बीजमादाय कुर्याद्वामेन न स्पृशेत् ।।२६।।

जप में तर्जनी को अलग छोड़कर मध्यमा मध्य स्थल में अनामिका तथा कनिष्ठा का योजन करके अनामिका, कनिष्ठा दोनों को किंचित नत करे तथा माला पकड़े, अंगुष्ठ के अग्रभाग से माला के मनकों को फिराता रहे। बायें हाथ से माला का स्पर्श करना पूर्णत: वर्जित है।।२५-२६।।

प्रतिवारं पठेन्मन्त्रं शनैरोष्ठं न चालयेत् ।
तर्जन्या न स्पृशेन्मालां मुक्तितो गणनाक्रमः।।२७।।
अङ्गुष्ठपर्वमध्यस्थापरिवर्त्तं समाचरेत् ।
अङ्गुष्ठेन विना कर्म कृतं भवति निष्फलम् ।।२८।।
अङ्गुष्ठं मोक्षदं देवि तर्जनी शत्रुनाशिनी ।
मध्यमा धनसिद्धौ स्याच्छान्तिकर्मण्यनामिका ।।२९।।
कनिष्ठाकर्षणे ज्ञेया जपकर्मणि सिद्धिदा ।
मालाबीजं तु जप्तव्यं स्पृशेन्नहि परस्परम् ।।३०।।

प्रत्येक मनके को फिराते समय मन ही मन मन्त्र का उच्चारण करना होगा। मन्त्र जप में ओष्ठ न हिलाये। तर्जनी से माला का स्पर्श विहित नहीं है। एक माला जप पूर्ण होने पर एक माला जप की गणना होती है। माला को अंगूठे के पर्व मध्य में रखकर माला का परिवर्त्त (घुमाना) होता है। जो जपकर्म ऐसे अंगुष्ठ प्रयोग को छोड़कर किया जाये, वह निष्फल कहा गया है। हे देवी! अंगुष्ठ मोक्षप्रद है। तर्जनी शत्रुनाशक है। मध्यमा धन सिद्धिदा है। शान्तिकर्मार्थ अनामिका, आकर्षणार्थ कनिष्ठा का प्रयोग करे। माला के दानों से ही जप करे। परस्पर (दानों को) छुलाना नहीं चाहिए।।२७-३०।।

पूर्वबीजं जपन् यस्तु परबीजं तु संस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठेन भवेत्तत्र निष्फलस्तस्य तज्जपः।।३१।।

किटिशब्दान्विता माला च्छिन्नभिन्नापि वा भवेत् ।
वामोरौ दक्षपादं च विन्यस्य परमेश्वरि ।।३२।।
बद्धवीरासनो मन्त्री दिशश्चानवलोकयन् ।
गुरुदैवतमन्त्राणा मैक्यं सम्भावयन् धिया।।३३।।
अथवा चिन्तयेन्मूर्ध्नि गुरुं वर्णादिभेदतः।
मन्त्रं च कण्ठतो ध्यात्वा चिन्तयन् हृदि देवताम् ।।३४।।

माला के पहले दाने पर जप करता हुआ साधक उस बीजमन्त्र का पूरा उच्चारण (मानसिक) सम्पन्न किये बिना यदि दूसरे दानें का स्पर्श कर लेता है तब उसका जप निष्फल है। यदि जप करते समय (परस्पर रगड़ के कारण) दानों से (मनकों से) किट-किटाहट की आवाज हो, माला छिन्न हो, तब भी जप निष्फल हो जायेगा। जपक्रिया वर्णन–हे परमेश्वरी! वाम जंघा को दाहिने पैर पर वीरासन बद्ध हो मन्त्री स्थिति हो जाये। चारों ओर न देखे। मन ही मन यह भावना करें कि गुरु, मन्त्र तथा मन्त्र देवता एक हैं। अथवा अपनी मूर्द्धा पर गुरु का ध्यान करे। अपने मन्त्र के जो अलग-अलग वर्ण हैं (जिन वर्णों के संयोग से मन्त्र गठित है) मन्त्र का उनके साथ चिन्तन करना (कण्ठ में) चाहिए। देवता का चिन्तन हृदय में करना होगा।।३१-३४।।

निगदेनोपांशुना वा(?थ) मानसेनाथवा प्रिये ।
जपारम्भं सुधीः कुर्याद् देवताभावतत्परः।।३५।।
निःशङ्कः परमेशानि स्पष्टवाचा निगद्यते ।
अव्यक्तः प्रस्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्तितः।।३६।।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरपदातिमकाम् ।
उच्चरेदनुसंस्मृत्य सप्रोक्तो मानसो जप।।३७।।

हे परमेश्वरी! निशंक (शंका रहित होकर) होकर मन्त्र का जप प्रारम्भ वाणी से अथवा मन से देवता भाव में तत्पर होकर सुधी साधक को करना चाहिए। या तो जप स्पष्ट उच्चारण से करे (उचित तो है कि जप का शब्द मुख से बाहर अन्य को न सुनाये) अथवा मन ही मन करे। जो जप स्पष्ट वाणी से करते हैं वह निःशङ्क जप है। जो केवल अव्यक्त प्रस्फुर रूप है, उसे उपांशु जप कहते हैं। वर्ण-स्वर-पद रूप अक्षरों के साथ मन ही मन जो चिन्तन रूप उच्चारण किया जाता है, वह मानस जप है।।३५-३७।।

सौषुम्नाध्वन्युच्चरितं ध्वनिमात्रं विभावयेत् ।
मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोतानि च विभावयन् ।।३८।।
तामेव परमे व्योम्नि परमामृतबृंहितः।
दर्शयत्यात्मसद्भावं पूजाहोमादिभिर्विना ।।३९।।

(जप काल में) यह भावना करनी चाहिए कि जप केवल ध्वनिरूप में सुषुम्ना में उच्चारित होता जा रहा है। यह भावना होनी चाहिए कि मन्त्राक्षर (ध्वनि रूप में) चित् शक्ति में समाते जा रहे हैं। वह चित् शक्ति में परमव्योम में लीन हो रही है। इस ध्यान द्वारा साधक परमाकृत बृहित हो जाता है। वह साधक पूजा होम आदि बाह्य उपचारों के बिना भी चित् शक्ति तादात्म्य भावना कर सकेगा॥३८-३९॥

मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थगतमानसः।
न द्रुतं न विलम्बं च जपेन्मौक्तिकपङ्क्तिवत्॥४०॥
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने।
उपांशूच्चारणेनैव तुल्यं भवति शैलजे॥४१॥
उपांशुलक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे।
मानसोच्चारणात्तुल्यमेकेन वरवर्णिनि॥४२॥

साधक मन को संहृत करके, विषयों से विमुख होकर मन्त्रार्थ की भावना करे। साधक शीघ्र गति अथवा अत्यन्त रुक-रुककर जप न करके मोती के दानें के समान (समरूप से) जप तत्पर रहे। हे वरानने! वाचिक जप (मुख से शब्दोच्चार के साथ) यदि एक लाख करे, हे शैलजे! वह उपांशु जप की एक माला (१०८) के ही बराबर होगा। हे कमलेक्षणे! एक लाख उपांशु जप मानस जप की एक माला (१०८) के ही बराबर माना गया है॥४०-४२॥

विशेषात् त्रिपुरातन्त्रे प्रशस्तो मानसो जपः।
मनसा च स्मरेत् स्तोत्रं वचसा वा जपेन्मनुम्॥४३॥
उभयं निष्फलं तस्य भिन्नभाण्डोदकं यथा।
उत्तमो दशसाहस्रः सहस्रो मध्यमः स्मृतः॥४४॥
अधमस्तु विजानीयादष्टोत्तरशतं शिवे।
इतो न्यूनं महेशानि न शस्तं जपकर्मणि॥४५॥

विशेषतः त्रिपुरा तन्त्रों में मानस जप को ही श्रेष्ठ मानते हैं। यदि साधक स्त्रोत्र को मन ही मन पढ़े तब वह निष्फल है। जो बोलकर जप करता है, वह भी उसी प्रकार निष्फल है जैसे भग्न हो गये घट में जल छोड़ना। किसी भी मन्त्र का नित्य १००० जप उत्तम मानते हैं। हे शिवे! नित्य एक हजार जप करना मध्यम कोटि का जप है। नित्य मात्र १०८ जप करना अधम कोटि का जप माना गया है। हे महेशानी! इस १०८ से कम जप न करे॥४३-४५॥

यथाशक्ति जपं कुर्यात् संख्ययैव प्रयत्नतः।
असंख्यातं चयज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥४६॥
गृह्णन्ति राक्षसा तेन गणयेत् सर्वथा बुधः।
नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवस्त्राकुलोऽपि वा॥४७॥

यथा शक्ति श्रम संख्या रखकर करना चाहिए। जो जप गणना रहित किया गया है। वह निष्फल जप है। बिना गिने जप को राक्षस ग्रहण कर लेते हैं। अतः विद्वान जप गणना अवश्य करे। केवल एक वस्त्र (अधोवस्त्र) पहनकर जप कदापि न करें। (एक उत्तरीय अथवा गमछा भी कन्धे पर रखकर जप करना चाहिए यह नियम है)।।४६-४७।।

अप्रावृतको वापि शिरसा प्रावृतोऽपि वा ।
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्रुद्धो वापि त्वरान्वितः।।४८।।
निर्बोधोऽप्रीतचित्तो न न रुग्णो न क्षुधान्वितः।
तथा चान्यन्मना भूत प्रलपन्न जपेन्मनुम् ।।४९।।
अनासीनः शयानो वा गच्छन् भुञ्जान एव च ।
यथाविधि जपं कृत्वा मन्त्रेणार्घ्योदकेन च ।।५०।।
जपं तं च महादेव्या वामहस्ते समर्पयेत् ।
तेजोरूपं जपफलं शिवया स्वीकृतं स्मरेत् ।।५१।।

शरीर को अनावरित रखकर अथवा शिर पर पगड़ी टोपी आदि रखकर कदापि जप न करे। चिन्ताकुल, क्रोधित, त्वरा अवस्था (जल्दबाजी) में किया जप उचित नहीं होता। निर्बोध, अप्रीतिकर चित्त स्थिति वाला, रोगी, भूखा रहने वाला जप न करे।

मन न लगने की स्थिति, बीच-बीच में बात करने वाली स्थिति में जप नहीं करना चाहिएं। मन लगाकर तथा लोगों से बातचीत बिना किये जप करना चाहिए। बिना बैठे, सोकर, चलते-फिरते, खाना खाते जप न करें। विधान के अनुसार संकलित (उस दिन की) जप संख्या पूर्ण करके उसी मन्त्र द्वारा विशेषार्घ्य जल समर्पित कर देना चाहिए। यह भावना करे कि इस जप के तेजदीप्त फल को भगवती शिवा ने स्वीकार कर लिया है।।४८-५१।।

श्रीबीजेनैव पाणिभ्यामवतार्यस्वशीर्षतः।
सारस्वतेन बीजेन हस्ताभ्यां स्थापयेत् ततः।।५२।।
जपकर्मणि मालायाः प्रतिपत्तिरियं प्रिये ।
एवं यः कुरुते मालां जाप्यं च साधकः प्रिये ।।५३।।
स प्राप्नोतीप्सितं देवि हीनस्यायुर्विपर्ययः।
निःसेतुं च यथा तोयं क्षणान्निम्नं प्रसर्पति ।।५४।।
मन्त्रस्तथैव निःसेतुः क्षणात् क्षरति मन्त्रिणाम् ।
तस्मात् सर्वेषु मन्त्रेषु सर्वे वर्णा द्विजादयः।।५५।।
पार्श्वयोः सेतुमादध्युः जपकर्मणि साधकाः।
अकारं चाप्युकारं च मकार च प्रजापतिः।।५६।।

वेदत्रयात् समुद्धृत्य प्रणवं निर्ममे पुरा।
जपादौ जपकर्मान्ते प्रणवं सेतुरूपकम्।।५७।।

यहाँ यह विशेष बात बतलाई गयी है कि जप निष्पन्न करने के तत्काल पश्चात् जप माला को साधक अपनी ग्रीवा में धारण करें। तदनन्तर ही जप फल समर्पण किया जाये। जप फल तथा जप समर्पण के उपरान्त श्रीबीज (श्रीं) पढ़ते हुए माला को गले से उतारकर (सिर की ओर से) , उच्चारण करें तत्पश्चात् उसे यथास्थान सुरक्षित रखे। हे प्रिये! इस विधि से जप कर्म में माला के सम्बन्ध में ज्ञान दिया। जो साधक इस विधि से माला द्वारा जपकर्म सम्पन्न करता है, उसे यथोप्सित फल प्राप्त होता है। हे देवी! जो इस विधि से रहित होकर जप तत्पर होता है, उसकी आयु क्षीण हो जाती है। ओंकार युक्त जपविधि बिना वह सेतु (बांध) आदि के जल जैसे एक क्षण में नीचे की ओर बह जाता है। उसी प्रकार से सेतु रहित मन्त्र भी एक क्षण में क्षरित हो जाता है। तभी सभी वर्णों वाला साधक जपकर्म में दोनों पार्श्वों में सेतु बनाये। पुराकाल में प्रजापति ने वेदत्रयी से 'अ' 'उ' तथा 'म' को समुदधृत करके प्रणव का निर्माण किया। हे महेशानी! सर्व कार्य सिद्धि हेतु जापक को जप के प्रारम्भ में तथा अन्त में मन्त्र को प्रणव युक्त करना चाहिए।।५२-५७।।

नियोजयेन्महेशानि सर्वकार्यार्थसिद्धये।
जपान्ते जुहुयादग्निं दशांशं जपमानतः।।५८।।
तत्तु देव्याः पुरोभागे साधकः परमेश्वरीम्।
होमयेत् संस्कृते वह्नौ तत्र देवीं धिया स्मरन्।।५९।।
इदं तस्यै समाभाष्य मूलमन्त्रेण सुन्दरि।
स्वाहान्तेन च होतव्यं पायसैर्मधुराप्लुतैः।।६०।।

साधक जप के अन्त में जप का दशमांश होम करे। यह होम देवी के समक्ष संस्कार की गयी अग्नि में करना चाहिए। देवी का ध्यान करते हुए यह होम करे। हे सुन्दरी! मूलमन्त्र के उच्चारण के साथ "इदं पायसं तस्यै स्वाहा" कहकर होम करे। होमद्रव्य शर्करा, मधु प्रभृति मधुर द्रव्य की खीर से बनाये।।५८-६०।।

व्यस्ताव्यस्तं ततो हुत्वा सम्भवे चान्यदेवताः।
षडाहुतीः षडङ्गेन नित्यहोमोऽयमीरितः।।६१।।
एकतः सर्वकर्माणि चैकतो जपहोमकम्।
सर्वाधिकं होमकर्म होमात् किंवा न साध्यते।।६२।।
अनया दीक्षितो मन्त्रो यदि होमविवर्जितः।
त्रिविधं दुखमाप्नोति नित्यहोमपरो भवेत्।।६३।।

अन्य देवताओं को यदि वहाँ अवस्थित माना गया है, तब उनको पृथक रूप से अथवा षडङ्ग से षड़ाहुति प्रदान करे। यह नित्य होम है।

समस्त कर्म की तुलना में जप होम का महत्व अत्यधिक है। होम से क्या सिद्ध होना शेष रह जायेगा? यदि त्रिपुरसुन्दरी (मन्त्र से) दीक्षित मन्त्र के जपान्त में दशांश होम सम्पन्न नहीं किया गया है, तब उस जापक को तीनों प्रकार का अर्थात् दैहिक-दैविक एवं भौतिक दुख मिलता है। अतः यह कर्म नित्य करे। (जितना जप सम्पन्न हो उसका दशांश होम करे)।।६१-६३।।

अकुर्वतामग्निहोत्रमग्निर्भूत्वा महेश्वरी ।
धनानि शीघ्रं ग्रसति गृहक्षेत्रपशूनपि ।।६४।।
बहुदुःखेनार्जितानि संचितान्यचिरेण तु ।
आत्मप्राणाधिकान्याशु भूत्वाग्निःग्रसतीश्वरी ।।६५।।

जो होम नहीं करते, उनके अत्यन्त कष्ट उठाकर संग्रहीत धन, गृह, खेत, पशु आदि को भगवती महेश्वरी अग्निरुपिणी होकर जला देती हैं। उसके प्राणों से भी प्रिय इन वस्तुओं को ईश्वरी इस प्रकार से ग्रस लेती हैं।।६४-६५।।

अग्निहोत्रं सदा कुर्यात् यस्मादग्निमयीश्वरी ।
अग्निहोत्र विधानेन सम्पदां भाजनं भवेत् ।।६६।।
अग्निहोत्रपरस्येह वह्निर्भवति शीतलः।
गृहक्षेत्रादिवित्तेषु वर्धते जाठरः परः।।६७।।
अग्निरेव मुखं देव्यास्तस्मादग्नौ हुनेत् सदा ।
पक्षतो मासतो वापि वर्षतो वा यथाविधि ।।६८।।

साधक को चाहिए कि सदा अग्निहोत्र करे। वे अग्निमयी ईश्वरी हैं। वह साधक अग्निहोत्र विधान द्वारा सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है। अग्निहोत्र करने वाले साधक के लिए अग्नि भी शीतल रूप हो जाता है। अर्थात् नाश नहीं करता। जो अग्निहोत्र से विमुख है, उसके गृह, खेत आदि सम्पत्ति को दग्ध करने के लिए अग्नि और बढ़ जाता है। देवी का मुख स्वरूप है अग्नि। साधक उसमें सदैव होम करे। यह हवन वर्ष में, अथवा पक्ष में अथवा मास में एक बार अवश्य सम्पन्न करे।।६६-६८।।

होमाशक्तौ जपेद्विद्यां होमद्विगुणसंख्यया ।
स्तुवन्नानाविधै स्तोत्रैः प्रणमेत् सप्रदक्षिणम् ।।६९।।
एवं नानाविधैर्देवीं सन्तोष्य साधकोत्तमः।
भक्तिप्रवणचित्तेन निवेद्यानि निवेदयेत् ।।७०।।

होम के पश्चात् के कृत्य–होम में असमर्थ साधक (जितना होम उसे करना था उसका) द्विगुणित जप करे। तदनन्तर अनेक स्तुतियों को देवी को सुनाकर प्रदक्षिणा

के उपरान्त नमस्कार करे। साधक श्रेष्ठ ऐसे नाना प्रकार से देवी को प्रसन्न करे। तत्पश्चात् भक्ति से भरे मन द्वारा देवी को नैवेद्यार्पण करना चाहिए।।६९-७०।।

अनुलेपं च सिन्दूरं नेत्राञ्जनमनुत्तमम्।
धूपामोदं प्रदीपांश्च दर्पणं व्यजनं तथा।।७१।।
छत्रं च चामरं चैव घण्टानादमनुत्तमम्।
वाद्यं गीतं तथा नृत्यं क्रीड़ाकौतुकमङ्गले।।७२।।

तदनन्तर अनुलेप, सिन्दूर, उत्तम नेत्रांजन, धूप, प्रदीप, दर्पण, पंखा, छत्र, चामर अर्पित करने के पश्चात् घण्टा बजाये। देवी के समक्ष वाद्य-गीत-नृत्य, क्रीड़ा, कौतुक तथा अन्य मांगलिक आयोजन करना चाहिए।।७१-७२।।

निर्मञ्छनं च सिद्ध्यर्थैर्दीपावलिभिरेव च।
दूर्वार्पणं शिरोदेशे साक्षतं च शनैः शनैः।।७३।।
भक्तिप्रवणचित्तं च दास्यमात्मनिवेदनम्।
एवं निवेदयेद् देव्यै निवेद्यानि तथा बुधः।।७४।।

सिद्धिप्रदा दीपों से देवी का नीरांजन करे। देवी के शिर पर धीरे-धीरे (झटके से अथवा फेककर नहीं) अक्षत एवं दूर्वा अर्पित करे। तदनन्तर भक्ति प्रवण मन से देवी के सम्मुख दास्य भावना एवं आत्मनिवेदन से चिन्तन करे। विद्वान साधक इस विधान से देवी के समक्ष नैवेद्यार्पण करे।।७३-७४।।

स धन्यः सर्वलोकानां नान्यः पूज्यश्च भूतले।
देवतानामृषीणां च दैत्यानामथ रक्षसाम्।।७५।।
गन्धर्वाणामशेषाणां नागादीनां महात्मनाम्।
अस्माकं चापि सर्वेषां माननीयः सुरासुरैः।।७६।।
सार्वभौमपदं लब्ध्वा कैवल्यं लभते ततः।
अनुलिप्य महादेवीं वासयेज्जगतीमिमाम्।।७७।।
सिन्दूरैस्तिलकं देव्यै वश्या सर्वाश्च योषितः।
दिव्यज्ञानं भवेत्तस्य दत्त्वाञ्जनमनुत्तमम्।।७८।।
माल्यादीनां प्रदानेन महालक्ष्मीः स्थिरा गृहे।
ताम्बूलस्य प्रदानेन पानीयस्यापि शोभने।।७९।।
सदानन्दमयो भूयात्सदा दुःखविवर्जितः।
धूपैः प्रधूपिता देवी दीपैश्चापि निराजिता।।८०।।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च धरां भूतिमरोगिताम्।
धान्यं चाप्यखिलान् कामान्मतिं धर्मे तथा शुभाम्।।८१।।

ऐसा साधक सभी लोकों में धन्य हो जाता है। पृथ्वी पर उसकी अपेक्षा पूज्य कोई नहीं रहता। वह देवता, ऋषि, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, नाग, महात्मा

वर्ग का, यहाँ तक कि मेरा (शिव का) भी तथा समस्त सुर-असुर का माननीय हो जाता है। वह सार्वभौम पद प्राप्त करने के पश्चात् कैवल्य की प्राप्ति करता है। अब उपचार निवेदन फल बतलाते हैं–महादेवी को सुगन्धित लेप लगाकर (मानों साधक) समस्त जगत् को उपलिप्त कर देता है। सिन्दूर का तिलक लगाने के फल-स्वरूप समस्त स्त्रीगण उसके वशं में हो जाते हैं। देवी के नेत्रों हेतु उत्तम नेत्रांजन अर्पित करने से साधक को दिव्य ज्ञानोपलब्धि होती है। माल्यार्पण के फल से साधक की लक्ष्मी स्थिर हो जाती हैं। ताम्बूल का अर्पण करने से तथा आचमनीय प्रदान करने से साधक सदानदमय एवं दुःखविवर्जित हो जाता है। धूप से प्रधूपिता तथा दीपक द्वारा नीराजिता देवी साधक को धन-पुत्र-भूमि-आरोग्य तथा ऐश्वर्य देती हैं। उस साधक को देवी धन्य-धान्य, कामनापूर्ति तथा धर्म में शुभमति प्रदान करती हैं।।७५-८१।।

दर्पणं दर्शयित्वैव सारूप्यं लभते विभो ।
व्यजनैश्चामरैर्वापि व्यजयित्वा महेश्वरीम् ।।८२।।
तं व्यजयेन्महालक्ष्मीश्चामरद्वयधारिणी ।
निमेषार्धं महादेव्याश्छत्रं चोपरि धारयेत् ।।८३।।
तस्योपरि महच्छत्रं परिपूर्णेन्दुसोदरम् ।
लोकपालैः सहागत्य धारयेत् त्रिदशेश्वरः ।।८४।।
घण्टाशङ्खनिनादेन तोषयेद्यो महेश्वरीम् ।
भेरीदुन्दुभिवाद्यैश्च मरुत्वांस्तमनुव्रजेत् ।।८५।।
योऽपिनो वादयेद् घण्टां शङ्खं वा स्वयमेव हि ।
स निर्लज्जः कथं ब्रूते पूजयामि महेश्वरीम् ।।८६।।

साधक द्वारा देवी को दर्पणावलोकन कराने से, उसे सारुप्य मुक्ति प्राप्त होती है। जो देवी को पंखा झलता है, उसे लक्ष्मी देवी अपने दोनो चामर से उसे पंखा झलती हैं अर्थात् उस पर कृपा वर्षा करती हैं। जो निमेष मात्र के लिए भी महादेवी के शिर पर छत्र चढ़ाता है, उस पर इन्द्र लोकपालों के साथ आकर पूर्णचन्द्र के समान महाछत्र चढ़ाते हैं। घण्टा तथा शंख की ध्वनि से जो महेश्वरी को प्रसन्न करते हैं, स्वयं मरुत उस साधक का भेरी-दुदुंभि बजाते उसका अनुसरण करते हैं। जो व्यक्ति देवी के समक्ष घण्टा-शंख वादन नहीं करता, वह किस मुख से यह कहेगा कि मैं देवी पूजन कर रहा हूँ।।८२-८६।।

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चान्ये सर्वे शङ्खादिवादिनः।
शङ्खघण्टादिकांस्तस्माद् वादयेद्देवसन्निधौ ।।८७।।
वाद्यं य कारयेद्देव्यै गीतं नृत्यं तथैव च।
तुम्बुरुर्नारदश्चैव हाहा हूहूस्तथैव च ।।८८।।

प्रसादयन्ति तं नित्यं विद्याधर्योऽप्सरादयः।
सुवासिन्यो मदप्रौढा वेशयित्वा यथाविधि ।।८९।।
वेश्यास्त्वलंकृताः सर्वाः क्रीडयेयुरलं यदि ।
देवीमुद्दिश्य पुरतस्तस्य पुण्यफलं शृणु ।।९०।।
उर्वशीप्रमुखास्तं च क्रीडयेयुरलं मुदा ।
कौतुकं कारयेद्देव्यै हास्यानन्दाय यद्भवेत् ।।९१।।
तेन प्रमुदितो नित्यं देवीलोके महीयते ।
मङ्गलानि महादेव्यै कारयित्वा यथाविधि ।।९२।।
विमानवरमारुह्य ब्रह्मविष्णुपुरःसरम् ।
सर्वकामसुखं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ।।९३।।

ब्रह्मा-विष्णु-शिव, ये त्रिदेव तथा अन्य देवगण देवी के समक्ष शंखादि बजाते हैं। अतः साधक को भी देव सन्निधि में इनका वादन करना चाहिए। जो देवी के समक्ष गीत, वाद्य का आयोजन करता है, उसे तुम्बुरु-नारद-हाहा-हूहू गन्धर्व, विद्याधर, अप्सरादि नित्य सन्तुष्ट रखते हैं। यदि सुगन्धियों से सुवासित मद प्रौढ़ायें तथा वेश्यायें यथाविधि अलंकृत होकर देवी की प्रीति के लिये देवी के लिए क्रीड़ादि करती हैं, उसका पुण्यफल सुनो। उर्वशी आदि अप्सरागण भी सानन्दित स्थिति में उस भक्त के साथ क्रीड़ा करने लगती हैं। कौतुकादि, हास्यानन्द आदि जो कुछ भी है, उसे देवी के लिए ही करना चाहिए। उससे साधक प्रमोदित स्थिति प्राप्त करने के अनन्तर देवीलोक में भी पूजित होता है। देवी के हेतु मांगलिक कृत्य कराने वाला, (देहान्त के पश्चात्) श्रेष्ठ विमान पर बैठकर देवीलोक जाता है। उसकी आगवानी ब्रह्मा-विष्णु करते हैं वह सर्व कामनाओं की पूर्ति के सुख से सुखी तथा सर्वरत्न समन्वित हो जाता है।।८७-९३।।

अनुव्र जितमिन्द्राद्यैःसपत्नीकै सवाहनैः।
देवीलोके समायान्तं समागत्य सुराङ्गनाः।।९४।।
अरुन्धत्यथ सावित्री तमहल्या शची तथा ।
अनुसूयादितिश्चैव मातरश्च सहानुगाः।।९५।।
निर्मञ्छ्य मौक्तिकैर्दिव्यै रत्नदीपैर्निवेद्य च ।
अक्षयं मङ्गलं शीर्षे तर्पयन्ति मुदान्विताः।।९६।।

तब इन्द्र आदि (लोकपाल) अपनी पत्नी तथा वाहनों के साथ उस साधक का अनुगमन करते हैं। उसे देवीलोक में समागत देखकर अरुन्धती, सावित्री, अहल्या, शची, अनुसूया, अदिति की अनुगामिनी मातायें तथा सुरांगनायें

उसका दिव्य मुक्ता रत्नदीपों से नीरांजन करके मुदित हो उसके मस्तक पर मांगलिक अक्षत डालकर उसे तृप्त कर देती हैं।।९४-९६।।

गोश्रृङ्गोपरि यत्कालं तिष्ठेत्सर्षपमर्पितम् ।
तावच्चित्ते महादेव्यै भक्तिं कृत्वा नरः प्रिये ।।९७।।
पूयते सर्वपापेभ्यः पापात्मा पापकृद्यदि ।
पितृमातृकुलैः सार्धं स्वर्गलोके महीयते ।।९८।।
ततः पुनरिहागत्य चिरेण भक्तिमान् प्रभुः।
सार्वभौमपदं लब्ध्वा कैवल्यमाप्नुयात् ततः।।९९।।

देवी भक्ति का फल यह है–हे प्रिये! गौश्रृंग पर जितनी देर सरसों का दाना ठहर जाये, यदि व्यक्ति उतने समय भी मन में देवी भक्ति कर लेता है, तब वह सर्व पाप से युक्त तथा पापात्मा भी हो, तब भी पितृ-मातृ कुल के साथ स्वर्गलोक प्राप्त करता है। पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर चिरकाल के लिए भक्तिमान प्रभु होकर सार्वभौमपद प्राप्त करके कैवल्य मुक्ति प्राप्त करता है।।९७-९९।।

प्राचुर्यादय भक्तेस्तु जगन्मा तुः पदं प्रति ।
अनुमेयमनेनैव बहुना वचसा च किम् ।।१००।।
भक्तिः पुनर्महेशानि यदिहानन्यचित्तता ।
भजनं सर्वभावेन सेव्यसेवकवर्त्मना ।।१०१।।
जगन्मातुर्महादेव्या दासोऽहमिति भाषते ।
सकृद्यस्तस्य भूयास्ते पुरन्दरमुखाः सुराः।।१०२।।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जगत् माता के प्रति भक्ति की प्रचुरता के कारण उसका पद कितने काल तक (आनन्ददायक) बना रहेगा। हे महेशानी! भक्ति है अनन्यचित हो जाना, उनका भजन सर्वभाव से करना, सेव्य-सेवक भाव से उनकी सेवा में रत हो जाना। यह भावना करनी चाहिए कि जगन्माता हैं महादेवी। मैं उनका नित्य दास हूँ। जिसकी यह भावना है, इन्द्रादि भी उसके दास हो जाते हैं।।१००-१०२।।

पितृमातृमुखान् विप्रान् गाश्च भृत्याननेकशः।
हत्वा निवेदयेद्यस्तु आत्मानं तत्पदाम्बुजे ।।१०३।।
शुद्धो गुणमयं देहं परं ब्रह्माधिगच्छति ।
अहं पुनरिदं विश्वं ब्रह्माण्डं ब्रह्मणा सह ।।१०४।।
भित्त्वा छित्त्वा तथा लोकान् सन्तोष्य परमेश्वरीम् ।
तस्यै निवेद्य चात्मानं यास्यामि ब्रह्म शाश्वतम् ।।१०५।।
तस्माद्यत् क्रियते कर्म ममेति च यदा भवेत् ।
आत्मानं तत्पदाम्भोजे महामन्त्रेण चार्पयेत् ।।१०६।।

तर्पणानि पुनर्दत्त्वा नवमुद्राः प्रदर्शयेत् ।
मुदं रान्ति च ता यस्मात् तेन मुद्राःप्रकीर्त्तिताः ।।१०७।।
कामं मोक्षं तथा धर्ममर्थ मुद्रान्विता स्वयम् ।
ददाति साधकायाशु देवी गन्तुं समुत्सुका ।।१०८।।
सङ्क्षोभद्राविण्याकर्षवश्योन्मादमहाङ्कुशाः ।
खेचरीबीजयोन्याख्या नव मुद्रास्मृताः क्रमात् ।।१०९।।
दर्शितास्वासु मुद्रासु भवेत् पूजासमापनम् ।
स्वस्वबीजेन मुद्राया बन्धनं परिकीर्त्तितम् ।।११०।।

जो पिता-माता-ब्रह्मगण-गौ-भृत्य की अनेक बार हत्या करके उस पाप से ग्रस्त होकर भी देवी के चरणों में आत्मसमर्पण कर देता है, उसे शुद्ध सत्वगुण युक्त देह की प्राप्ति होती है, तथा वह परब्रह्मरूप हो जाता है। अर्थात् अद्वय भावना प्राप्त हो जाता है। जिसकी भावना यह है कि "मैं ब्रह्मा के साथ विश्व-ब्रह्माण्ड का भेदन-छेदन करके (उत्तीर्ण करके), परमेश्वरी को सन्तुष्ट करके, स्वयं को उनके चरणों में अर्पित करके शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति करूँगा, अतः जो भी कर्म होता है, वह सब मेरा ही कार्य है।" इस भावना से महामन्त्र का जप करते-करते स्वयं को देवी के पदाम्भोज में अर्पण करे। तदनन्तर तर्पण के पश्चात् नवमुद्राओं का उनके समक्ष प्रदर्शन करे। मुद्राफल–मुझे (शिव को) आनन्द देने के कारण ये मुद्रा कही जाती है। देवी स्वयं मुद्रान्विता होकर साधक के पास जाने के लिए उत्सुक हो जाती हैं। उसे शीघ्रता से चतुर्वर्ग प्रदान करती हैं। मुद्रायें हैं संक्षोभिणी, उन्मादकरणी, महाङ्कुशा, खेचरी, आकर्षिणी, वशीकरणी, द्राविणी, बीज तथा योनिमुद्रा। इन मुद्रा प्रदर्शनोपरान्त पूजा का समापन हो जाता है। इन्हें इस क्रम से करें। क्रम यह है–प्रथमतः संक्षोभिणी, तदनन्तर द्राविणी, तदनन्तर आकर्षिणी, तदनन्तर वशीकरणी, तदनन्तर उन्मादकरणी, तदनन्तर महाङ्कुशा, तदनन्तर खेचरी, तदनन्तर बीजमुद्रा। सर्वान्त में योनिमुद्रा प्रदर्शन करे। अपने-अपने बीजों के साथ मुद्राओं का बन्धन इस तन्त्र में पहले-पहले कहा गया है।।१०३-११०।।

दर्शनं मूलमन्त्रेण त्यागः क्रोधोद्भवेन च ।
मुद्रानुष्ठानमज्ञात्वा यो मुद्रां धारयेद्बुधः ।।१११।।
विफलं तस्य तत्सर्वं जीवहीनं वपुर्यथा ।
पूजादौ दर्शितास्वासु देव्यास्तु सन्निधिर्भवेत् ।।११२।।

इन मुद्राओं का प्रदर्शन मूलमन्त्र द्वारा तथा त्याग क्रोधबीज 'हुं' से करे। बिना मुद्रा अनुष्ठान का ज्ञान किये जो बुद्धिमान मुद्राबन्धन करता है, उसका कर्म उसी प्रकार से व्यर्थ हो जाता है जैसे जीवरहित शरीर व्यर्थ है। पूजा के पूर्व इन मुद्राओं के प्रदर्शन से देवी की सन्निधि प्राप्त हो जाती है।।१११-११२।।

भक्तेः प्राचुर्यमत्रैव श्रद्धयाभ्यर्चनं तथा।
निर्जनश्चात्मशुद्धिश्च दोषराहित्यता तथा ।।११३।।
पूजोपकरणस्येह बाहुल्यं च पवित्रता।
सौरभेणातिसौरभ्याच्चमत्कारकृतिस्तथा ।।११४।।

इस प्रकार की प्रक्रिया से साधक में भक्ति का प्राचुर्य हो जाता है। उसकी अर्चना श्रद्धापूर्वक होने लगती है। साधक एकान्त प्रिय निर्जन प्रिय हो जाता है। आत्मा शुद्ध होने लगती है। उसमें दोष रहित हो जाता है। वह साधक पूजन सामग्री बहुलता से जुटाने लगता है। उसमें सर्वत्र पवित्रता का संचार हो जाता है। शरीर से सौरभ निकलने लगता है। उससे चमत्कार घटित होने लगते हैं।।११३-११४।।

संस्थानं पौरुषेणैव मनोहारित्वमात्मनः।
सौमुख्यं च सुवेशश्च यष्टुःकाकूक्तिरेव च ।।११५।।
पूजाविधिषु दाक्ष्यं च तथैवानन्यचित्तता।
स्तुतिर्नतिर्जपश्चैव बलिः पेयं तथैव च ।।११६।।
हेतुरत्र समाख्यातो देवीसांनिध्यकारकः।
मद्यस्ताव्यं तु सिन्दूरे स्वाङ्गरागेषु कुंकुमम् ।।११७।।
इति यो यत्र सम्प्रोक्तो विशेषस्त्रिपुरार्चने।
एभिर्विशेषैः सहितं त्रिपुरातन्त्रगोचरम् ।।११८।।

उसके संस्थान स्थान पौरुष से भरा तथा मनोहारी प्रतीत होने लगता है। उसका मुख, सुन्दर वेषभूषा रमणीय प्रतीत होने लगता है। उसके वचन रहस्यावृत हो जाते हैं। उसे देवी पूजन में (अनायास) कुशलता, अनन्य चित्तता आने लगती है। मन में से स्तुतिवाणी निकलने लगती है। प्रणामेच्छा होती है। बलि तथा देवी के मनोनुकूल पेय उन्हे अर्पित करने से देवी का सामीप्य मिलता है। देवी को सुरा में सिन्दूर मिलाये। अंगरागों में कुंकुम लगाये। जहाँ जो विशेष त्रिपुरार्चन कहा गया है, उसका पूजन में उसी प्रकार प्रयोग करे। यह सब विषय त्रिपुरातन्त्र में मिलता है।।११५-११८।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे जपादिविधिनिरूपणं
नामाष्टादशः पटलः सम्पूर्णः।।१८।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर सम्प्रदाय में जपादिविधि निरूपण
नामक अट्ठारहवां पटल समाप्त ।।

❀

एकोनविंशः पटलः

बटुकादिबलिविधिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

अथ वक्ष्ये महेशानिं वटुकादिविधिं श्रृणु।
येनानुष्ठितमात्रेण साधकः सिद्धिमाप्नुयात्।।१।।
बलिभिस्तर्पिता ह्येते पूजिता यस्य सुव्रते।
सिद्धयः सकलास्तस्य करस्था नात्र संशयः।।२।।
अन्यथा रुषितैस्तैर्हि स विघ्नैः परिभूयते।
तस्मात् तेभ्यः प्रयत्नेन बलिं कुर्वीत हेतुना।।३।।

ईश्वर कहते हैं। हे महेशानी! मैं अब बटुकादि विधि का वर्णन करता हूँ, सुनो। इसे अनुष्ठित करने मात्र से साधकों को सिद्धि मिल जाती है।

हे सुव्रते! जहाँ इनका बलि तथा तर्पणादि किया जाता है, वहाँ समस्त सिद्धि समूह उस साधक के करस्थ हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं है। बटुक आदि का तर्पण न करने पर वे रुष्ट हो जाते हैं तथा साधक को विघ्न से आक्रान्त तथा त्रस्त कर देते हैं। तभी सर्व प्रयत्न से उन्हें बलि प्रदान करे।।१-३।।

मांसेन साधितं भक्तं खण्डं दधि सपिष्टकम्।
मांसानि विविधान्यत्र सुदग्धं मीनमेव च।।४।।
श्रीचक्रमभितो देवि मण्डलानां चतुष्टयम्।
ईशान-वह्नि-नैर्ऋत्यवायुकोणेषु पार्वति।।५।।

बलि हेतु मांस मिश्रित पका चावल, खांड, दही तथा पिष्टक, नाना प्रकार के मांस, भुजा हुआ मत्स्य प्रदान करे। हे देवी! श्रीचक्र के चतुर्दिक चार मण्डल बनायें। हे पार्वती! इनका निर्माण ईशान वह्नि-नैर्ऋत तथा वायुकोणों में करे।।४-५।।

ध्येयो देव्यास्तदा विष्णुः पुत्रोऽयं बटुरूपधृक्।
बटुकः कमलाक्षस्तु स्वर्णगौरश्चतुर्भुजः।।६।।
गदां शङ्खं च पद्मं च चक्रं चापि दधत्करैः।
विद्रुतः पुरतो देव्याः खगेन्द्रासनसंस्थितः।।७।।
वारुणं शक्रयुक्तं च चतुर्दशस्वरान्वितम्।
सहितं चन्द्रबिन्दुभ्यां वटुकाय नमोऽन्ततः।।८।।

ध्यान एवं मन्त्रोद्धार–तत्पश्चात् देवीपुत्र विष्णु का ही बटुकरुपेण ध्यान करे। वे कमलाक्ष हैं, स्वर्णवत् गौर तथा चतुर्भुज हैं। गदा-शंख, पद्म-चक्रधारी हैं। वे देवी के समक्ष स्थित गरुड़ पर आसीन हैं। इनका मन्त्रोद्धार कहते हैं–वारुण (क), शक्र (ल़) से युक्त चतुर्दश स्वर (औ) से विभूषित चन्द्र बिन्दु युक्त कहकर

"बटुकायनमः" कहें। मन्त्रोद्धार है–'क्लौं बटुकाय नमः'। हे देवी! इस मन्त्र द्वारा बटुक का पूजन गन्धादि से करे॥६-८॥

अनेन मनुना देवि गन्धाद्यैः पूजयेत्ततः।
तदग्रे परमेशानि पात्रं चान्नोदकान्वितम्॥९॥
कृत्वा च विधिवत्तत्र बलिं मन्त्रेण दापयेत्।
एह्येहि देवीपुत्रान्ते बटुकान्तेऽथ नाथ च॥१०॥
कपिलान्ते जटाभारभास्वरान्ते त्रिनेत्र च।
ज्वालामु ख च सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय॥११॥
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्णद्विधापदम्।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो बटुकस्य उदाहृतः॥१२॥
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां बलिं तस्मै निवेदयेत्।
अस्यैवाराधनं कृत्वा मन्दभाग्योऽपि सुव्रते॥१३॥
सर्वबाधाविनिर्मुक्तः सम्पदां भाजनं भवेत्।
यजनं चास्य देवस्य साङ्गेन कथितं पुरा॥१४॥

अब बलिदान विधि कहते हैं–हे परमेशानी! तब उनके आगे शुद्ध पात्र में अन्न जल समन्वित विधिवत् बलिमन्त्र से अभिमंत्रित बलि प्रदान करे। बलि का मन्त्र हैं–'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिल जटाभार-भास्कर त्रिनेत्रज्वालामुख विघ्नान्नाशयनाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।'

वाम अंगूठे तथा अनामिका से बलि बटुक को प्रदान करे। हे सुव्रते! इस प्रकार से अराधन करके मन्दभाग्य वाला भी सर्वबाधा रहित होकर सम्पदा प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। इन देव की अंगसहित अराधना पहले कही गयी है। अतः हे शिवे! इस कारण केवल बलि प्रदान प्रसंग को ही कहा गया। तदनन्तर डाकिनी आदि का बलि द्वारा तृप्त करे॥९-१५॥

बलिप्रदानमात्रं तु प्रसङ्गात्कथितं शिवे।
डाकिनीप्रमुखाः पश्चाद्बलिना तर्पयेत् ततः॥१५॥
तथैव वामतो देव्या मण्डले योगिनीः स्मरेत्।
अथवा चिन्तयेदेता योगिन्यः सर्वसिद्धिदाः॥१६॥
योगिन्यः कामरूपाश्च तप्तकाञ्चनभास्वराः।
मत्ताः कङ्कालमालाढ्याः कटीतटभरानताः॥१७॥
गलद्रुधिरगन्धाढ्या रक्तवस्त्रोत्तरीयकाः।
लिङ्गं पाशं कपालं च बिभ्रत्यश्च सृणिं करैः॥१८॥
स्वभक्तानामभिमतं संददाना मुदान्विताः।
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य बलिं मन्त्रेण दापयेत्॥१९॥

योगिनी ध्यान, बलिमन्त्रोद्धार–उसी प्रकार से देवी के वाममण्डल में योगिनी गण का सर्वसिद्धिप्रदारुपेण ध्यान करे। ये कामरूप (मनमानारूप धारण करने वाली) तप्त स्वर्ण के समान भास्वर, मत्त, कंकालों की माला से शोभित, एवं कटि के भार से कुछ नत, बहुत रक्त की गन्ध वाली, रक्तवर्ण वस्त्र तथा उत्तरीय धारिणी, हाँथों में लिंग, अपना विशेष चिह्न पाश, कपाल तथा सृणि धारिणी हैं। वे भक्तों को उनकी इच्छित वस्तु देने वाली तथा मुदित आनन वाली हैं। गन्धादि से पूजनोपरान्त उन्हें बलि अर्पित करे॥१६-१९॥

यामात्मकं समुच्चार्य योगिनीभ्यस्ततः परम्।
भ्यसन्तं सर्ववर्णान्ते योगिनीपदमालिखेत्॥२०॥
कवचं चास्त्रमालिख्य वह्निजायां पुनर्लिखेत्।
अनेन मनुना वापि योगिनीनां बलिं हरेत्॥२१॥

बलिमन्त्रोद्धार इस प्रकार है–'यामात्मक' को कहकर 'योगिनिभ्यः' तदनन्तर 'सर्ववर्णाभ्य' कहे। तत्पश्चात् 'योगिनी' कहकर कवच (हुँ) अस्त्र (फट्) तथा वह्निजाया (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार है–'यामात्मकयोगिनीभ्यः सर्ववर्णाभ्यः योगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से योगिनीगण को बलि प्रदान करना चाहिए॥२०-२१॥

अङ्गुष्ठमध्यमानामा योन्याकारेण योजयेत्।
कृताञ्जलिस्ततो देवि संम्प्रार्थयेदनेन तु॥२२॥
ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले वा भूतले निस्तले वा
पाताले वा सलिलपवनयोर्यत्रकुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः॥२३॥

अंगुष्ठ, मध्यमा तथा अनामिका द्वारा योनि आकृति की रचना करे। यह मुद्रा प्रदर्शित करके नमस्कार करे। तदनन्तर मूलोक्त श्लोक अंजलिबद्ध स्थिति में ''उर्ध्वं ब्रह्माण्डतो' से लगाकर ''वीरेन्द्रवन्द्याः' पर्यन्त पढ़कर स्तुति करे। इस स्तुति का अर्थ कहा जा रहा है–ब्रह्माण्ड के उर्ध्व, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूतल, निस्तल, पाताल, अग्नि, जल, वायु में जिस किसी भी क्षेत्र में, पीठ, उपपीठ में स्थान ग्रहण करने वाली, वीरेन्द्रवन्द्या (वीराचारी साधक द्वारा वन्दनीय) देवीगण धूप-दीप आदि तथा शुभ बलि विधि से मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायें॥२२-२३॥

क्षेत्रपालं महादेव्या वामतः परिचिन्तयेत्।
अपराजितवल्लीभिर्वेष्टितस्य महात्मनः॥२४॥
आरक्तवर्णैः सततं कुसुमैरुपशोभिते।
तितिण्डीकल्पवृक्षस्य सच्छाये रत्नभूषिते॥२५॥

नीलाञ्ज नचयप्रख्यं दधानं करपङ्कजैः।
कृपाणं च कृपालं च शूलं डमरुमेव च।।२६।।
ध्यायेच्च सममत्यर्थं दंष्ट्राभिन्नाधरं परम्।
पूजयित्वा विधानेन बलिं मन्त्रेण दापयेत्।।२७।।
षड्दीर्घस्वरसंभिन्नं क्षकारं विलिखेत् प्रिये।
ततः क्षेत्रपदं पाल धूपदीपादि वा लिखेत्।।२८।।
सहितं बलिमालिख्य गृह्ण गृह्ण ततो वदेत्।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः क्षेत्रपालस्य पार्वति।।२९।।
वाममुष्टिं विधायादौ तर्जनीं सरलां कुरु।
अनया मुद्रया देवि बलिं तस्मै निवेदयेत्।।३०।।

अब क्षेत्रपाल का ध्यानादि कहते हैं—महादेवी के वाम में क्षेत्रपाल का चिन्तन करना चाहिए। अपराजिता की लताओं से वेष्ठित तितिण्डी कल्पवृक्ष के रक्तवर्ण कुसुमों से शोभित सत् छाया के नीचे नीलाञ्जन के समान वर्ण वाले, हांथों में कृपाण, त्रिशूल कपाल तथा डमरुधारी, दांतों से ओष्ठ को दबाये हुये, क्षेत्रपाल का विधान पूर्वक पूजन करके इस मन्त्र से बलि प्रदान करे। अब मन्त्रोद्धार कहते हैं—हे प्रिये! क्षकार को षड्दीर्घ से जोड़े (क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः)। तदनन्तर 'क्षेत्र' तथा 'पाल' कहकर 'धूपदीपादि' कहें। 'सहितं बलि' कह्कर 'गृह्ण-गृह्ण' कहे। सर्वान्त में बन्हिजाया (स्वाहा) लगाये। यह मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः क्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।' हे पार्वती! पहले वाम मुष्टिका बांधकर तर्जनी को सीधा रक्खे। यही बलि मुद्रा है।।२४-३०।।

चतुर्थमण्डले देव्याः पुरतो दक्षभागतः।
नवीननीरदश्यामं सर्वाभरणभूषितम्।।३१।।
तुन्दिलं गजवक्त्रं च चतुर्बाहुं दिगम्बरम्।
वामदक्षोर्ध्वपाणिभ्यां पाशाङ्कुश धरं विभुम्।।३२।।

अग गणपति ध्यान, मन्त्रोद्धार कहते हैं—चौथे मण्डल में देवी के सम्मुख दाहिनी ओर गणेश का ध्यान किया जाता है। उनका स्वरूप नवनीरद श्याम है, वे सर्वभरण-भूषित हैं, वे तुन्दिल हैं, गज के समान मुख वाले हैं, दिगम्बर हैं। उन विभुके बायें तथा दाहिने ऊपर वाले हांथों में पाश एवं अंकुश है।।३१-३२।।

दक्षिणाधः करेणैव मधुपूर्णकपालकम्।
सिन्दूरसदृशाकारामुद्दाममदविह्वलाम् ।।३३।।
धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशम्।
आलिङ्ग्य वामहस्तेनतस्या मदनमन्दिरम्।।३४।।

दाहिने नीचे वाले हांथ में मदिरा भरा नरकपाल धारण किये हुये हैं। उनके अंक में सिन्दूर के समान अरुण वर्णी उद्दामरूपेण मद विह्वला शक्ति आसीन हैं। इन शक्ति ने एक हांथ में कमल धारण किया है तथा अपने दूसरे हाथ से गणेशदेव के लिंग का स्पर्श कर रही हैं। इन शक्ति का आलिंगन करते हुये तथा बायें हांथ से उस शक्ति की योनि का स्पर्श करते हुये इन परमेश्वर का इस प्रकार से ध्यान करके पूजन करे।।३३-३४।।

स्पृशन्तं परमेशानं ध्यात्वा तं परिपूजयेत् ।
गाङ्गींगूंत्रयमालिख्य ङेन्तं गणपतिं ततः।।३५।।
वरान्ते परदान्ते च सर्वान्ते जनमालिखेत् ।
मे वशं चानय प्रोच्य बलिं गृह्ण द्विधापदम् ।।३६।।
वह्निजायान्वितो मन्त्रो गणपस्य ह्युदाहृत ।
मुष्टिमध्यस्थितां देवि अङ्गुलीं दण्डवत् कुरु ।।३७।।
गजतुण्डा महामुद्रा गणपस्य सदा प्रिया ।
एतदन्ते महेशानि सर्वभूतबलिं हरेत् ।।३८।।
सुरा नराश्च पितरो यक्षरक्षःपिशाचकाः।
एते भूताः समुद्दिष्टा बलिभिस्तान् पप्रतर्पयेत् ।।३९।।

अब इनका मन्त्रोद्धार कहते हैं–पहले ''गां गीं गूं' कहकर 'गणपति' का ङेन्त उच्चारण करे। 'वर' कहकर अन्त में 'वरद' कहकर तदनन्तर 'सर्व' तथा उसके अन्त में 'जनं' कहना चाहिए। अब 'मे वशमानय' कहकर 'बलिं' के पश्चात् 'गृह्ण' 'गृह्ण' कहे। अन्त में 'वह्निजाय' (स्वाहा) युक्त करके गणपति मन्त्रोद्धार होता है।

इस प्रकार मन्त्र है–'गां गीं गूं गणपतये वर वरद सर्वजनं में वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।' हे देवी! मुष्टिका मध्य में मध्यमा उंगली को दण्डवत सीधी करे। यह गजतुण्डा मुद्रा है। यह सर्वदा गणेश को प्रिय है। अब सर्वभूत बलिदान कहते हैं– हे महेशानी! तदनन्तर सर्वभूतबलि प्रदान करे। देवता, नर, पितर, दक्ष, राक्षस, पिशाच, इन भूतों को बलि देकर प्रसन्न करे।।३५-३९।।

बलिभिस्तर्पितास्त्वेते यान्ति यज्ञे सहायताम् ।
अतर्पिता यदा तस्मिंस्ते वै विघ्नस्वरूपिणः।।४०।।

बलि से तर्पित हो जाने पर ये सभी यज्ञ में सहायता करते हैं। यदि अतृप्त रहते हैं तब यज्ञ में विघ्न करते हैं।।४०।।

आत्मानं च क्रियाः सर्वा महामन्त्रेण पार्वति ।
ततो ब्रह्मस्वरूपिण्यै विशेषेण समर्पयेत् ।।४१।।

वारत्रयमितः पूर्वं प्राणबुद्धि ततः परम् ।
देहधर्माधिकारान्ते जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।।४२।।
मनसा च ततो वाचा कर्मणा च ततः परम् ।
हस्ताभ्यां च ततः पद्भ्यामुदरेण ततः परम् ।।४३।।
शिश्ना च यत् स्मृतं पश्चाद्यदुक्तं यत्कृतं भवेत् ।
मां मदीयं ततो देवि सकलं च ततः परम् ।।४४।।
तथैव त्वयि-शब्दान्ते ब्रह्मण्यर्पितमस्त्विति ।
स्वाहान्तो मनुरित्युक्तो मन्त्रः स्वात्मसमर्पणे ।।४५।।

हे पार्वती ! तदनन्तर अपने को तथा स्वयं कृत समस्त क्रिया समूह का अर्पण महामन्त्रोच्चार के साथ ब्रह्मस्वरूपा देवी को समर्पित करना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है–पहले "इतः पूर्व प्राणबुहिदेहधर्माधिकार"कहे। तदनन्तर "जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिसु मनसा" कहकर तदनन्तरं 'वाचा कर्मणा' तदनन्तर 'हस्ताभ्याम' कहने के पश्चात् 'पद्भ्यामुदरेण' तत्पश्चात् 'शिश्ना यत् स्मृत' कहकर 'यदुक्तं यत्कृतं भवेत् मां मदीयं' कहे। हे देवी! तत्पश्चात् 'सकलं त्वयि' कहकर 'ब्रह्मण्यर्पितमस्तु स्वाहा' कहने से आत्म-समर्पण मन्त्र होता है। मन्त्रोद्धार है– "इत पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिश्ना यत् स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं भवेत् मां मदीयं सकलं त्वयि ब्रह्मण्यर्पितमस्तु स्वाहा।" इस मन्त्र को तीन बार कहे।।४१-४५।।

एतदन्ते महामन्त्रा नियतः समुदीरयेत् ।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।।४६।।
पूजाभागं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुत्क्षिप्य भुजमुच्यते ।।४७।।
कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चारेण भूतनामन्तस्त्वमेव संस्थिता ।।४८।।
यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
आवेदितं च नैवेद्यं तद्ग्रहाणानुकम्पया ।।४९।।
विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
यदक्षरपरिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।।५०।।
अनङ्गव्यवधानादि अपराधशतानि च ।
क्षन्तुमर्हसि मे देवि त्वमेव शरणं यतः।।५१।।
त्वयि मे हृदयं चास्तु त्वयि चित्तं मनस्त्वयि ।
त्वत्पूजायां महामाये संवर्धन्तां प्रयोजिताः।।५२।।

ये पुनर्विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु त्वदाज्ञया।
मन्त्रेषु पठितेष्वेषु स्व यंदेवी प्रसीदति ।।५३।।
दातुं देवी चतुर्वर्गमित्येतन्नात्र संशयः।
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशि स्तुत्वा नुत्वातिभक्तितः।।५४।।
प्रधानदेवतामूर्तौ परिवारान् समर्पयेत्।
तस्या एव महेशान्या शरीरे सर्वदेवता ।।५५।।
विलीनाः सन्तु मूलेन देव्यङ्गे मीलिता स्मरेत्।
अथ कामकलारूपमात्मानं परिचिन्तयेत्।।५६।।

इसके पश्चात् निम्नांकित मन्त्रों को कहे। मूलोक्त श्लोक 'आवाहनं न जानामि' से लेकर 'त्वदाज्ञया' पर्यन्त पढ़ना चाहिए। मन्त्रार्थ है–हे देवी मैं न तो आवाहन जानता हूँ, न विसर्जन जानता हूँ। मैं आपका पूजा भाग भी नहीं जानता। हे परमेश्वरी! आप इस सबकी गति हैं तथा मेरी भी गति हैं। यह सत्य है, पुनः सत्य हैं, यह मैं उर्ध्वबाहु होकर कहता हूँ। काया तथा मन, वाणी से अतिरिक्त मेरी गति नहीं है। आप प्राण के माध्यम से ही सर्व प्राणियों में स्थित हैं। मैंने आपको पत्र-पुष्प-फल-जल जो कुछ भी भक्ति के साथ अर्पित किया है, तथा जो नैवेद्य है, उसे भी ग्रहण करिये। यह पूजा विधिहीन, क्रियाहीन तथा भक्तिहीन रूप से मेरे द्वारा अनुष्ठित हुई है। इस पूजा में जो मन्त्राक्षर अथवा स्तुति के अक्षर अशुद्ध तथा मात्राहीन मेरे द्वारा कहे गये हैं, हे देवी! अनंग व्यवधानरूप जो सैकड़ों अपराध मैंने किये हैं, आप उनको क्षमा कर दीजिये। आप ही मेरी शरण भी हैं। मेरा हृदय आपका हो जाये, मेरा चित्त सदैव आप में लगा रहे। हे महामाया! ये सभी आपकी पूजा में वर्द्धित होते रहें। इस पूजा में विघ्न करने वाले आपकी आज्ञा से नष्ट हो जायें।

इन मन्त्रों को पढ़ने वालों पर देवी प्रसन्न हो जाती हैं तथा चतुर्वंग देने के लिये उद्यत हो जाती हैं। यह निःसंदिग्ध है। हे देवेशी! इस प्रकार से प्रार्थना करके स्तुति करे तथा भक्ति पूर्वक देवी को भक्ति के साथ प्रणाम करके यह भावना करे कि महेश्वरी की देह में वे सभी अंग देवता आदि परिवार देवता आदि विलीन हो जायें। यह मूलमन्त्र जप करते समय स्मरण रहे। तत्पश्चात् कामकला रूप से स्वयं का चिन्तन करे।।४६-५६।।

ततस्तां परमेशानीं विसृजेद् हृदयाम्बुजे।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे ।।५७।।
तव कृत्यमिदं सर्वमिति मातः क्षमस्व मे।
उद्वास्य परमेशानीं खेचर्यात्मनि योजयेत्।।५८।।

अनेनैव तु मन्त्रेण ध्यायतां स्थापयेद् हृदि ।
तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि ।।५९।।

अब विसर्जन बतलाते हैं–तदनन्तर परमेशानी का अपने हृदयकमल में विसर्जन करे। विसर्जन मूलोक्त–'ज्ञानतो' से लगाकर 'क्षमस्व मे' पर्यन्त है। अर्थ है "हे शिवे! जाने-अनजाने भी मेरे द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह सब आपका ही कार्य है। माता! उन्हें क्षमा करो।" परमेश्वरी को उद्वासित करके 'खेचरी' में युक्त करे। तब इस मन्त्र को पढ़कर उन्हें हृदय में स्थापित करे।

"तिष्ठ देवि परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरी"

"हे देवी! परमेश्वरी! आप अपने उत्तमोत्तम स्थान में बैठिये"।।५७-५९।।

विसृज्यैवं महेशानीं ततः पूरकवायुना ।
संहारमुद्रयादाय समाघ्राय गुरूक्तया ।।६०।।
तच्चैतन्यं स्वमूलेनमूल एव निवेशयेत् ।
प्राणायामैस्तु सन्तर्प्य यजेन्निर्माल्यधारिणीम् ।।६१।।

तदनन्तर उनका विसर्जन करके पूरक वायु द्वारा गुरु से कही गयी संहारमुद्रा में सूंघकर उस चैतन्य को अपने मूल (मन्त्र) द्वारा मूलाधार में निवेशित करे। प्राणायामों से उन निर्मल्यधारिणी को तृप्त करे।।६०-६१।।

निर्माल्यं निक्षिपेद्भूमौ नीत्वा तां चित्कलां पुरा ।
अस्या जगन्मयी सैव सा चैव शेषिका परा ।।६२।।
तत्परं नहि वस्त्वेव तत्त्वज्ञानादहं प्रभु ।
महापद्मवनान्तः स्थशृङ्गाटोदरसंस्थिताम् ।।६३।।
देवीं परां समालोक्य आत्मानं तु विचिन्तयेत् ।
उन्मन्यन्ते शिवो भूत्वा तिष्ठेदानन्दनिर्भरः।।६४।।
शिवेनैक्यं समासाद्य यावदन्ते मनोलयः।
निवर्तितसमाधिस्तु गुरुवे मूर्धवासिने ।।६५।।
आललाटं नमस्कुर्यान्निवेद्यार्घ्यं तदाज्ञया ।
ऐशान्यां मण्डलं कृत्वा द्वारपद्मविवर्जितम् ।।६६।।

उतारी गयी माला को भूमि पर फेंके। लेकिन इससे पूर्व उस चित्कला (चैतन्य) को ग्रहण कर ले। (जिस चैतन्य को मूलाधार में निवेशित करना है, वह काम कर ले तब निर्माल्य फेंके) वे ही जगन्मयी तथा पराशेषिका हैं। इस विश्व में उनसे परे कुछ भी नहीं है। (उन्हीं के) तत्वज्ञान के कारण मैं प्रभु हूँ, साधक यह भावना रखे। अब साधक को चाहिए कि महापद्मवन के अन्तःस्थ मूलशृङ्गाटक के उदर में स्थित देवी परा का दर्शन करके उन्हें आत्मा में देखे।

उन्मना का भेद करने के अनन्तर साधक स्वयं शिव होकर आनन्द निर्भर होकर रहता है। शिवैक्य सम्पादित करके जब तक मनोलय नहीं हो जाता तब तक आनन्द पूर्वक रहे। समाधि स्थिति में उन्नत होकर मूर्द्धा में स्थित गुरु को ललाट नमस्कार करना चाहिए। उनकी आज्ञा लेकर ईशान दिशा में मण्डल निर्माण के द्वारपद्म को छोड़कर ईशान में यह निर्माण करना चाहिए।।६२-६६।।

शेषिकां सुन्दरीं तत्र निर्माल्येन प्रपूजयेत् ।
लेह्यचोष्यान्नपानादि ताम्बूलमनुलेपनम् ।।६७।।
नैर्माल्यं भोजनं तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया ।
अनेन मनुना देव्या यजेन्निर्माल्यधारिणीम् ।।६८।।

उस मण्डल में शेषिका सुन्दरी की पूजा देवी के निर्माल्य से करे। पूजामन्त्र मूलोक्त 'लेह्यचोष्या' से लगाकर 'श्रीशिवाज्ञया' से पूजा करे। अर्थ है मैं शिव की आज्ञा से तुमको लेह्य-चोष्य अन्न-पान-ताम्बूल-अनुलेप नैर्माल्य भोजन दे रहा हूँ।।६७-६८।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे बटुकादिबलिविधिनिरूपणं
नामैकोनविंश पटलः सम्पूर्णः।।१९।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वरसंवाद में बटुकादिबलिविधिनिरूपण नामक
उन्नीसवां पटल समाप्त ।।

विंशः पटलः

शेषिकाविद्याक्रमनिरुपणम्

देव्युवाच–

कथं सा परमेशानी शेषिकापूज्यते शिवे।
कीदृशी सा महादेवी तदशेषं वद प्रभो।।१।।

देवी कहती हैं–हे शिव! उन परमेश्वरी देवी शेषिका का पूजन कैसे किया जाता है, यह कैसी हैं, कृपया पूर्णरूप से मुझसे कहिये।।१।।

ईश्वर उवाच–

शेषिकां सुन्दरीं वक्ष्ये देवीं गुह्यतमां प्रिये।
उच्छिष्टपूर्विकां देवीं मातङ्गी सर्वसिद्धिदाम्।।२।।
सर्वापत्तारिणीं विद्यां सर्वदोषविवर्जिताम्।
यया विज्ञातया देवि क्षयं गच्छन्ति चापदः।।३।।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चाङ्गजं विषम्।
विद्येयं नाशयेद् देवि स्वपराङ्गसमाश्रितम्।।४।।

ईश्वर कहते हैं–हे प्रिये! मैं शेषिका सुन्दरी का वर्णन करूँगा जो गुह्यतमा हैं। इन देवी को उच्छिष्ट मातंगी भी कहा जाता है जो सर्वसिद्धिदा, सर्वविपत्ति तरीणी विद्या हैं तथा सभी दोषों से रहित हैं। इन्हें जान लेने पर विपत्तियां क्षयीभूत हो जाती हैं। यह विद्या स्थावर, जंगम विष, कृत्रिम विष, अंगोत्पन्न विष, स्वयं के तथा अन्य के अंगों में उद्भूत विष का नाश कर देती है।।२-४।।

इयं विद्या महाविद्या सर्वपापापहारिणी।
स्वर्गदा मोक्षदा चेयं राज्यसौभाग्यदा तथा।।५।।
इयं देवी मया पूर्वं साधिता देवि निर्जने।
सकृदुच्चारिता विद्या ब्रह्महत्याविनाशिनी।।६।।

यह विद्या है महाविद्या। यह सर्वपापहारिणी विद्या है। यह सर्व देने वाली, मोक्ष देने वाली, राज्य-सौभाग्य देने वाली है। हे देवी! मैंने पहले पूर्वकाल में निर्जन प्रदेश में इस विद्या की सिद्धि किया था। एक बार उच्चारित होने मात्र से यह विद्या ब्रह्महत्या का नाश कर देती है।।५-६।।

य उच्छिष्टमुखो भूत्वा स्मरेद् देवीं कदाचन।
तदाचान्तो भवेद् देवि विनैवाचमने कृते।।७।।
निर्धनो धनमाप्नोति मूर्खो विद्यामवाप्नुयात्।
मन्त्रं शृणु महादेव्या यथावत् कथयामि ते।।८।।

उच्छिष्टशब्दमुच्चार्य तथा चण्डालिनीति च ।
सुमुखीति ततो देवि महापिशाचिनीति च ।।९।।
मायाबीजं ततः पश्चात् ठकारद्वितयं तथा ।
सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।१०।।

जो व्यक्ति जूठे मुह की स्थिति में इन देवी को याद करता है, वह आचमन रहित होकर भी शुद्ध है। इनकी उपासना द्वारा निर्धन को धन तथा मूर्ख को विद्या प्राप्त हो जाती है। देवी का मन्त्रोद्धार–मैं तुमको यथावत महादेवी का मन्त्र बतला रहा हूँ। इस मन्त्र का प्रथम रूप है–पहले 'उच्छिष्ट' कहकर 'चाण्डालिनि' तदनन्तर 'सुमुखि' कहे। हे देवी! तदनन्तर 'महापिशाचिनी' के बाद 'ह्रीं' कहकर दो बार 'ठ' कहे। मन्त्रोद्धार है–''उच्छिष्ट चाण्डालिनी सुमुखि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः''। यह सर्वसिद्धिदाता मन्त्र है।।७-१०।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं परमदुर्लभम् ।
वाङ्मायाकमलाबीजं नमो भगवतीति च ।।११।।
मातङ्गेश्वरि सर्वान्ते जनवशङ्करीति च ।
वह्निजायान्वितो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।।१२।।

अब मैं परमदुर्लभ मन्त्र को कह रहा हूँ। वाग्बीज (ऐं) मायाबीज (ह्रीं), कमला बीज (श्रीं), के बाद 'नमो भगवति मातङ्गेश्वरी सर्व' के अनन्तर 'जनवशङ्करी तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) कहे। यह सर्वसिद्धिप्रद मन्त्र कहा गया है। मन्त्रोद्धार हैं–'ऐं ह्रीं श्रीं भगवती मातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा'।।११-१२।।

नारिदोषोऽत्र देवेशि न विघ्नो नियमस्तथा ।
अङ्गन्यासकरन्यासौ नाङ्गी चैवास्य देवता ।।१३।।
यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं स भवेत् सुरपादपः।
ध्यानमस्या प्रवक्ष्यामि यथावदखिलेश्वरि ।।१४।।

हे देवेशि! इसमें (मन्त्र में) आदि दोष नहीं होता। इसे जपने में किसी विघ्नादि का भय भी नहीं होता, न कोई नियम ही है। इसके लिये अङ्गन्यास करन्यासादि का नियम नहीं है। इस मन्त्र का कोई भी अङ्गी देवता नहीं है। जिसके पास यह मन्त्र है मानों उसके पास कल्पवृक्ष आ गया है। हे अखिलेश्वरी! अब इसका ध्यान कहता हूँ।।१३-१४।।

शवोपरि समासीना रक्ताम्बरपरिच्छदा ।
रक्तालङ्कारभूषाढ्या गुञ्जाहारविराजिता ।।१५।।
नवयौवनसम्पन्ना पीनोन्नतपयोधरा ।
कपालकर्तृकाहस्ता परमज्योतीरूपिणी ।।१६।।

ध्यान पूजनविधि–मातंगीदेवी शव पर आसीन हैं। वे रक्त वस्त्र से ढकी हैं। रक्तवर्ण अलंकारों से भूषिता तथा गुञ्जाहार से शोभित हैं। वे नवयौवनसम्पन्ना, पीन उन्नत स्तनों वाली, हाथ में कपाल तथा कैंची धारण करने वाली परम ज्योतिरूपा हैं॥१५-१६॥

विधानं चात्र वक्ष्यामि शृणु देवि मनोहरम् ।
भोजनान्तरं देवि विनैवाचमने कृते ।।१७।।
बलिं कृत्वा प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः।
ततो मन्त्रं जपेद् ध्यात्वा जपेदयुतमानतः ।।१८।।
उच्छिष्टेनैव कर्तव्यो जपोऽस्या सिद्धिमिच्छता ।
अपरं च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि फलप्रदम् ।।१९।।

अब पूजाविधान कहता हूँ- हे देवी! उसका मनोहर विधान सुनो। हे देवी! स्वयं भोजन करके बिना मुहँ धांय साधक मूलमन्त्र से बलि प्रदान करे। तदनन्तर १००० जप करे। जप प्रारम्भ के पूर्व उपरोक्त ध्यान करना होगा। सिद्धिकामी साधक इनका जप उच्छिष्ट मुख से ही करे। हे देवी! अब मैं अन्य उपाय बता रहा हूँ। उस फलप्रद उपाय को सुनो॥१७-१९॥

होमसन्तर्पणं चैव सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा चतुरस्रं सबिन्दुकम् ।।२०।।
पूजयेन्मण्डलं देव्या मूलमन्त्रेण साधकः।
तत्र देवीं समावाह्य वह्निरूपव्यवस्थिताम् ।।२१।।

स्थण्डिल पर मण्डल निर्माण करे यह मण्डल बिन्दु युक्त चतुरस्र हो। तदनन्तर देवी के मूलमन्त्र से मण्डल पूजा करनी होगी। तदनन्तर मण्डल पर वह्निरूप व्यवस्थित देवी का आवाहन करे॥२०-२१॥

सम्पूज्यैव चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलैः।
सहस्रैकविधानेन राजा भवति वश्यगः।।२२।।
मार्जारस्य तु मांसेन देव्यै होमं समाचरन् ।
स प्राप्नोति परां विद्यां शस्त्रशास्त्रवशीकृताम्।।२३।।

अब होमविधि कहते हैं–आवाहनोपरान्त दधि, सफेद सरसों तथा तण्डुल (चावल) से होम करना होगा। सहस्र होम से साधक राजा होता है। जो साधक बिल्ली के मांस द्वारा होम करता है, उसे शस्त्र तथा शास्त्र वशीभूत करने वाली परांविद्या प्राप्त हो जाती है॥२२-२३॥

कुर्याच्छागस्य मांसेन होमं मधुघृतान्वितम् ।
सहस्रैकप्रमाणेन भवन्ति फलसिद्धयः।।२४।।

विद्याकामश्चरेद् होमं मधुना सह सर्पिषा ।
अयुतै कप्रमाणेन सिद्धिरिष्टा भवेद् ध्रुवम् ।।२५।।
सद्यो मार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह ।
चाण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणं महत् ।।२६।।
शशकस्य तु मांसेन मधुनालोडितेन च ।
कृत्वा होममवाप्नोति विद्यावसुवरस्त्रियः ।।२७।।

बकरे के मांस में मधु तथा घृत मिश्रित करे। इससे एक सहस्र हवन करने से अनेक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। विद्याकामी साधक को मधु मिश्रित घृत से हवन करना चाहिए। १००० हवन द्वारा इष्ट सिद्धि मिलना निश्चित है। बिल्ली का ताजा मांस, मधु एवं घृत तथा चाण्डाल के बाल-इन सबको मिलाकर मूलमन्त्र से हवन करने पर साधक महा आकर्षण सिद्ध हो जाता है। यदि साधक शशक मांस मधु मिलाकर हवन करे तो विद्या प्राप्ति-धनप्राप्ति तथा सुन्दर स्त्री मिलती है।।२४-२७।।

धत्तूरकाष्ठयोगेन चितावह्नौ तु मन्त्रवित् ।
कोकिलाकाकपक्षैश्च होमैः शत्रून् विनाशयेत् ।।२८।।
उच्चाटनाय शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने ।।२९।।
उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमं निरन्तरम् ।
द्वेषयेद् द्विष्टमन्योन्यकलहाकुलसंकुलम् ।।३०।।

मन्त्रवित् साधक धतूर की लकड़ी को चिता की आग से जलाकर कोयल तथा कौवे के पंखों से हवन करे तब शत्रु विनाश को प्राप्त हो जाता है। पूर्वोक्त विधान से चिता की लकड़ी की आग में हवन करने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है। उल्लू तथा कौवे के पंख से हवन करने पर दो मित्रों में पारस्परिक द्वेष हो जाता है। उनमें कलह हो जाता है।।२८-३०।।

उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत् स्त्रिया ।
बिल्वपत्रैः सुमध्वक्तैर्मासमेकं निरन्तरम् ।।३१।।
सहस्रैकप्रमाणेन कृत्वा होमं समाहितः।
अपि वन्ध्या लभेत् पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम् ।।३२।।

उलूक पंख का होम करने पर स्त्री का गर्भपात हो जायेगा। मधु से लपटे बिल्व पत्रों से प्रतिदिन एक हजार होम एक माह तक करने पर बन्ध्या भी पुत्रवती हो जाती है।।३१-३२।।

बन्धूककुसुमं हुत्वा रक्तं मधुसितान्वितम् ।
दुर्भगा चैव या नारी सुभगा सा न संशयः।।३३।।

हठादागत्य कामार्ता बलादालिङ्ग्यन्ति तम् ।
इयं देवी महेशानी वामाचारफलप्रदा ।।३४।।
दक्षिणाचारयोगेन न भवेत् फलदायिनी ।
भोजनानन्तरं चास्या बलिं दद्याद् दिने दिने ।।३५।।
उच्छिष्टेन जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं शिवे ।
उटजे वा श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे ।।३६।।
बलिप्रदानतो देवी प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ।
अनयैवाभिसम्मन्त्र्य ओषध्यः सर्वसिद्धिदाः ।।३७।।

लाल रंग के बन्धूक पुष्प, मधु तथा मिश्री मिलाकर हवन करने से दुर्भगा नारी भी सुभगा हो जाती है। जो पुरुष यह होम करता है उसके पास कामार्त्ता स्त्रीगण हठात् आकर आलिंगन करने लगती हैं। हे महेशानी! यह देवी वामाचार प्रक्रिया से ही फल देती हैं। दक्षिणाचार विधि से इसमें फल नहीं मिलता। भोजन के उपरान्त उन्हें प्रतिदिन बलि प्रदान करे। हे शिवे! उच्छिष्ट स्थिति में ही १०८ मन्त्र जपना चाहिए। कुटी, श्मशान, शून्य गृह में अथवा चौराहे पर बलि प्रदान करने पर प्रत्यक्ष दर्शन देती है। इस मन्त्र से (जो श्लोक ८ से १० में दिया गया है) अभिमन्त्रित करने पर औषधि सर्वसिद्धिप्रद हो जाती है।।३३-३७।।

चन्द्री चक्री तथा वज्री त्रिशूला मुद्गरी तथा ।
देहस्था समरे पुंसां सर्वायुधविदारिणी ।।३८।।
गृहीतं पुष्यनक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम् ।
लेपमात्रेण धीराणां सर्वायुधनिवारणम् ।।३९।।

यदि चन्द्री, चक्री, वज्री, त्रिशूला तथा मुद्गरी देवियाँ मनुष्य देह में स्थित होती हैं, तब ये समस्त आयुधों को नष्ट कर देती हैं। पुष्य नक्षत्र में अपामार्ग की जड़ ले आये। इसे कूटकर शरीर पर लेप करने से सब आयुधों का निवारण हो जाता है।।३८-३९।।

अर्जुनं च नारजं चैव चम्पकोन्मत्तकःकुहूः ।
लेपमात्राज्जयी युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ।।४०।।
खर्जूरी मुखमध्यस्था कटीबद्धा च केतकी ।
भुजदण्डस्थितस्तालः सर्वायुधनिवारणः ।।४१।।
दक्षबाहुस्थितश्चार्को वामे तु हृदयेऽथवा ।
रुद्रः पुष्पगतो युद्धे वज्रदेहो भवेन्नरः ।।४२।।

अर्जुन, नारद, चम्पा, धतूरा तथा कुहू को पीसकर लेप करने से व्यक्ति वज्रदेही होकर युद्ध में विजय पा लेता है। इसी प्रकार से खजूर को मुख में रखने

से, केतकी को कमर में बद्ध करने से, ताड़ को भुजा में बांधने से समस्त अस्त्र-शस्त्र का निवारण हो जाता है।।४०-४२।।

त्रिलोहवेष्टिं कृत्वा रसं वज्राभसंयुतम् ।
रणस्थस्य करस्थं च सर्वायुधनिवारणम् ।।४३।।
गिरिकर्णीं शमीं दूर्वां गुञ्जां वेतां समाहरेत् ।
चन्दनेनान्विताः सर्वास्तिलकाद्विजयी रणे ।।४४।।

पारद को त्रिलौह से वेष्टित करके उसमें हीरा लगाना चाहिए। जिसके हाथों में यह रहता है, उसके लिये समस्त आयुधों का निवारण हो जाता है। गिरिकर्णी, शमी, दूर्वा, गुञ्जा तथा बेंत को समान मात्रा में लाये। इसे चन्दन के साथ पीसकर तिलक लगाने वाला रण में विजयी हो जाता है।।४३-४४।।

अधःपुष्पा शिखी चैव श्वेता च गिरिकर्णिका ।
गोरोचनासमायुक्ता तिलकं शत्रुमोहनम् ।।४५।।
कनकार्को(?) वह्निरिन्द्रदु पञ्चमस्तथा ।
करोति तिलकं यस्तु पश्येत्तं पञ्चधा रिपुः ।।४६।।
कृष्णसर्पकरालं तु रसं मृत्तिकयान्वितम् ।
सितगुञ्जां वपेत् तत्र तस्या मूलं समाहरेत् ।।४७।।
हरीतक्या समायुक्तं तिलकं शत्रुमोहनम् ।
कृततिलकं भटं दृष्ट्वा पश्येत् स्वं श्वावृतं रिपुः ।।४८।।
श्वगणैर्भक्ष्य माणस्तु पतत्येव ततो भुवि ।
छाया यस्य जले याति संग्राह्यः कासमर्द्दकः ।।४९।।
अनेन तिलकेनारिः कूपवापीं प्रपश्यति ।
ब्रह्मदण्डी च कौमारी ईश्वरी वैष्णवी तथा ।।५०।।
वाराही वज्रिणी चान्द्री महालक्ष्मीस्तथैव च ।
एताश्चौषधयो दिव्यास्तथैता मातरः स्मृताः ।।५१।।

इन द्रव्यों को गोरोचन से युक्त करके तिलक लगाने से शत्रु सम्मोहित हो जाता है। कनक (धतूरा), अर्व्य (मदार), बह्नि (चिनक), इन्द्रायण तथा द्रुनामक (?) औषधि को साथ पीसकर जो तिलक लगाता है, उसे शत्रु (एक नहीं) ५ देखते हैं। कृष्ण कराल सर्प को सम मात्रा के पारद को मिट्टी में मिलाकर उसमें श्वेत गुंजा बीज बो दे। जब पौधा निकल आये तब उसकी जड़ को हरीतकी के साथ मिलाकर तिलक लगाये। उसे जब योद्धा देखते हैं, तब उन्हें प्रतीत होता है कि वह स्वयं कुत्ते से घिरा है। वह कुत्तों से खा लिये जाने के भय के कारण भूमि पर पतित हो जाता है। ऐसा कासमर्दक लाये जिसकी छाया जल में

परिलक्षित हो रही हो। इसे पीसकर तिलक लगाये। उसके शत्रु गण को लगता है कि वह कूप अथवा तालाब है, और भय से दूर भाग जाते हैं। ब्रह्मदण्डी, घृतकुमारी सहदेई, विष्णुक्रान्ता, वराहीकन्द, वज्र-वल्ली, बकुची तथा महालक्ष्मी दिव्यौषधि हैं तथा माता भी हैं॥४५-१५॥

कृतताडी करे बद्धा सर्वशत्रुनिवारिणी ।
बहुना तु किमुक्तेन सङ्क्षेपात् कथ्यतेऽधुना ।।५२।।
षट्कर्मशालिनी विद्या प्रयोगात् सर्वसिद्धिदा ।
मूलविद्याप्रयोगेन सिद्धिहानिर्भवेद् ध्रुवम् ।।५३।।

इन्हें ताली बजाकर हांथ में बांधने से सर्वशत्रु निवारण हो जाता है। किम्बहुना इसका लाभ संक्षेप में कहता हूँ, यह षट्कर्म शालिनी विद्या प्रयोग करने पर सर्वसिद्धि प्रद हो जाती है। केवल मूलविद्या प्रयोग करने से सिद्धिहानि होना निश्चित है॥५२-५३॥

प्रयोगेच्छा सदा देवि तदैनांच प्रयोजयेत् ।
अनयाखिलकर्माणि साधयेत् साधकोत्तमः ।
प्रसङ्गात् कथितं देवि गोपनीयं प्रयत्नतः ।।५४।।

हे देवी! प्रयोगेच्छा होने पर ही इसका प्रयोग करें। इसके द्वारा साधक सभी कर्म सिद्ध कर लेता है। हे देवी! मैंने यह प्रसंगवत् कहा है। इसे प्रयत्न पूर्वक गोपित रखना॥५४॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शेषिकाविद्याप्रयोगक्रमनिरूपणं नाम विंशः पटलः सम्पूर्णः ।।२०।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वरसंवाद में शेषिकाविद्या प्रयोग-क्रम निरूपण नामक बीसवां पटल समाप्त ॥

◆

एकविंशः पटलः

पूजासम्पूरणाद्युपायविधिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

ततो वै मूलमन्त्रेण महेशानीं धिया स्मरन् ।
अप्राश्य चैव निर्माल्यं पादोदकपुरः सरम् ।।१।।
शिरसा धारयेद्यस्तु भूमौ बिन्दूंस्तु पातयेत् ।
ब्रह्महा स तु विज्ञेयो यद्भक्त्या चात्मसाकृतम् ।।२।।
शिवं गन्धं समादाय शङ्खतोये विलोकयेत् ।
सव्यहस्ते समादाय दक्षहस्तेन मन्त्रवित् ।।३।।
सप्तधा मन्त्रितं कृत्वा सर्वतीर्थमयं स्मरेत् ।
प्रोक्षयेत् तेन चात्मानं मूलदेवीं हृदि स्मरन् ।।४।।

ईश्वर कहते हैं—तदन्तर मूलमन्त्र द्वारा महेशानी को हृदय में स्मरण करके पादोदक तथा निर्माल्य का प्राशन किये बिना उसे शिखर पर रखे। उनका एक बिन्दु भी पृथ्वी पर न गिरे। जो इनका बिन्दुमात्र भी पृथिवी पर गिरा देता है, वह ब्रह्महत्यारा है। शिवगंध लेकर शंख के जल में अवलोकन करे। तदनन्तर उसमें के जल को बायीं हथेली पर रखकर दाये हाथ से उसे स्पर्श करते हुये उसे मूलमन्त्र से अभिमंत्रित करे। अब यह जल सर्वतीर्थ युक्त हो गया है,यह भावना करनी चाहिये। सात बार अभिमंत्रित करने से वह जल सर्वतीर्थमय हो जाता है। तदनन्तर हृदय में मूल देवी का चिन्तन करते हुये इस जल से प्रोक्षण करे।।१-४।।

पादोदकं पिबेद् भक्त्या शेषं मूर्धनि योजयेत् ।
सर्वाङ्गलेपनं कृत्वा यन्त्रलेपादिकं च यत् ।।५।।
निर्मञ्छेत् कामबीजेन मूलमन्त्रेण चात्मनः।
अनामिकाग्रपर्वेण ललाटमपि संस्पृशेत् ।।६।।

अब भक्तिभाव से देवी का पादोदक पीकर शेष जल को भक्तिपूर्वक शिर पर लगाये। भगवती के विग्रह का सर्वाङ्गलेपन करके यन्त्र लेपन भी करे। तत्पश्चात कामबीज (क्लीं,) तथा मूलमन्त्र द्वारा उसका निर्मञ्छन करना चाहिये। साथ ही अनामिका के अग्रपर्व से ललाट का स्पर्श करे।।५-६।।

निर्माल्यं शिरसा धार्य सर्वाङ्गेष्वनुलेपनम् ।
मन्त्रेण भास्करायार्घ्यमच्छिद्रार्थं निवेदयेत् ।।७।।
जानुभ्यामवनीं गत्वा पठित्वा मन्त्रमीरितम् ।
एकाग्रमनसा वाग्भिरच्छिद्रमवधारयेत् ।।८।।

यज्ञच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।
सर्वं तदच्छिद्रमस्तु मार्तण्डस्य प्रसादतः।।९।।

निर्माल्य को शिर से स्पर्श कराये। अपने समस्त अंगो में उसका लेप करे। समस्त अर्चन जो अबतक किया, वह दोषरहित हो जाये, इसके लिये मूलमन्त्र द्वारा सूर्यार्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर जानुओं से पृथ्वी पर बैठकर नीचे लिखे मन्त्र को एकाग्रमन तथा एकाग्रवाणी से उच्चारित करके अच्छिद्रता की भावना करे। मन्त्र मूलोक्त "यज्ञाच्छिद्र" से लेकर 'मार्त्तण्डस्य प्रसादतः' तक है।।७-९।।

मार्तण्डभैरवं पश्चात् प्रणम्य च विलोकयेत्।
आदावन्ते च देवस्य नमस्कारविलोकने।।१०।।
कुर्याच्च सर्वदा भक्त्या धर्मकामार्थसिद्धये।
यज्ञाधिकारिता चादौ पश्चात्सम्पूर्णता विधेः।।११।।
विधेर्विपर्ययात् तस्य कृतं हरन्ति राक्षसाः।
तमुद्यन्तं विलोक्यैव यजेदस्तमितं ततः।।१२।।

तदनन्तर मार्तण्ड भैरव को प्रणाम करके उनका दर्शन करे। इसे सदा भक्तिपूर्वक धर्मार्थकामसिद्धि हेतु करना चाहिये। लेकिन इसमें प्रारंभ मे तथा अन्त में सूर्यदेव को प्रणाम करें अन्यथा अनुष्ठान की सम्पन्नता का हरण राक्षस कर लेते है। तभी सूर्यदेव को उगता देखकर (पूजा करे) तदनन्तर अस्त होता देखकर प्रणामोपरान्त पूजा समाप्त करे।।१०-१२।।

उभयोरेकतां मत्वा तमुद्यन्तं पुनस्ततः।
स एवादौ स चान्तस्थः सोऽनन्तो ह्यन्त एव सः।।१३।।
आद्यमन्तं विदित्वैव सर्वकर्मफलं लभेत्।
ततस्तु पुष्पनैवेद्यतोयपात्रादिकं च यत्।।१४।।
मायाबीजेन तत्सर्वं पुनरेव विलोकयेत्।
हस्तेन चक्षुषा वापि यत्र यश्च कृतः पुरा।।१५।।
पात्रन्यासस्तस्य तस्य विसृष्टिरमुना भवेत्।
तोयैरभ्युक्ष्य तत्स्थानं मार्जयेत् तदनन्तरम्।।१६।।

भास्कर के उदय तथा अस्त को एक ही समझकर ध्यान तत्पर रहे। वह आदि तथा अन्त मे हैं अनन्त होकर भी शान्त हैं। आदि-अन्त को ही समझकर ही सर्वकर्मफल प्राप्त होता है। तदनन्तर वहां के पुष्प, नैवेद्य, जल, पात्रादि को 'ह्रीं' मन्त्र द्वारा (उच्चारण करते) पुनः अवलोकन करे। इस प्रकार हाथ तथा नेत्र द्वारा जहां-जहां पात्र न्यस्त हैं, उन सबका विसर्जन समाप्त हो जाता है। तदनन्तर

वहां जल छिड़ककर स्थान का मार्जन कर दे। तदनन्तर उस निर्माल्य जल को जलाशय आदि तथा वृक्ष आदि के मूल में गिरा देना चाहिए॥१३-१६॥

उदके तरुमूले वा निर्माल्यं तत्र संत्यजेत् ।
नैवेद्यादीनि सर्वाणि गुरवे गुरुशक्तये ।।१७।।
समर्प्योपायनं भक्तया शिवाय गुरुरूपिणे ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणमेद् दण्डवत् प्रिये ।।१८।।
आदाय गुरुणा दत्तं स्वीकुर्यात्तु विधानतः।
तयोरभावतो दद्यात् कुमारीभ्यो यथाविधि ।।१९।।

नैवेद्य आदि समस्त पदार्थों को गुरु तथा गुरुशक्ति को समर्पित करे। हे प्रिये! शिवरुपी गुरुदेव को अर्पित करने के पश्चात् पृथ्वी पर जानुओं पर बैठकर उन्हे दण्डवत् हो प्रणाम करे॥ तब गुरुदेव जो कुछ दें, उसे विधान के साथ स्वीकार कर ले। यदि गुरु एवं गुरुशक्ति वहां न हों,तब कुमारी कन्याओं द्वारा विधिवत् प्रसाद ग्रहण करे॥१७-१९॥

अमृतं भक्षयेद् देवो भुक्त्वा देवत्वमालभेत् ।
अमृतं तद्विजानीयादुत्सृष्टं दैवतेन यत् ।।२०।।
परदैवतनैर्माल्यं विनान्यत् स्वीकृतं नहि ।
अनिवेद्य-शिवायैव यत्किंचित् स्वीकृतं प्रिये ।।२१।।
च पशुर्मृतं भुङ्क्ते लोकद्वययुतं प्रिये ।
पुरा सर्वे मनुष्याद्या भुक्त्वा मृतमिदं नतु ।।२२।।
देवत्वं चालभन् यस्मात्तन्नैव भक्षयेत् क्वचित् ।
दिव्यभावविशुद्धात्मा भक्षयेदमृतं यदि ।।२३।।

साधक कों देवता रुप होकर अमृत (सुरा आदि) का भक्षण करना चाहिये। इससे वह देवत्व प्राप्त कर लेता है। जो देवताओं को समर्पित करनें के पश्चात् बचता है, वह अमृत है। परादेवता के निर्माल्य (बचे हुये) के अतिरिक्त अन्य अमृत को स्वीकार नहीं करना चाहिये। हे प्रिये! बिना निवेदन किये साधक जो कुछ भी ग्रहण करता है, वह इस लोक में मरे पशु का मांस खाने के समान है। वह अमृत नहीं खाता है। प्राचीन काल में मनुष्य मृत मांस खाने के कारण देवत्व नहीं प्राप्त कर सके । पशु ही हो गये। अतः कभी भी अनिवेदित (सुरा आदि) ग्रहण न करे। जो साधक दिव्यभाव वाला विशुद्धात्मा है॥२०-२३॥

नित्यमभ्यासयोगेन देवगामी भवेन्नरः।
अमृतोपस्तरं कृत्वपिधानपि तेन वै ।।२४।।

बलिशेषं समादाय जुहुयाच्चैव पूर्ववत्।
हुत्वामृतं ततो भक्त्या प्राशयेद् भावशुद्धितः।।२५।।
भुक्त्वामृतं तदा देवि हस्तं मूर्धनि विन्यसेत्।
त्रितत्त्वेन त्रिधाचम्य षडङ्गानिं प्रविन्यसेत्।।२६।।

वह नित्य अभ्यास योग द्वारा अमृभक्षण करनें के कारण देवता सान्निध्य में जाता है। अमृत को नीचे तथा ऊपर रखकर बलि के शेष भाग से पहले की विधि के अनुसार हवन करना चाहिये। तदनन्तर भावशुद्धि के अनन्तर हवन से शेष अमृत का भक्षण करे। हे देवी! तत्पश्चात् साधक को अपने शिर पर हाथ रख कर त्रितत्व से तीन बार आचमनोपरान्त षडङ्ग्न्यास करना चाहिये।।२४-२६।।

शिवो दाता च भोक्ता च शिव सर्वमिदं जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च।।२७।।
शक्तीरलंकृतवक्त्राः सुवेशाः सुमनोहराः।
पश्येत्तु देवतादृष्ट्या ता एव देवता यतः।।२८।।
तथैव ब्रह्मणान् पश्येद्भूदेवाञ् शुद्धमानसान्।
भक्त्या नत्वा प्रमुदितस्ततः स्वानवलोकयेत्।।२९।।
अनेन विधिना देवि सम्पूज्य परमेश्वरीम्।
तत्कृपालब्धविज्ञानपूर्णोऽहमिव भूतले।
भावनावशसम्पन्नो विहरेत् तु तदिच्छया।।३०।।

शिव ही दाता हैं, वे ही भोक्ता हैं, वे ही यह जगत् हैं। शिव की सर्वत्र जय हो। जो शिव हैं, वही मैं हूं। सुन्दरवेशधारिणी,अलंकार से अलंकृता सुमनोहरा शक्तियों (स्त्री) में भी देवता दृष्टि रखे, वे देवता ही हैं। तदनुसार शुद्धचित्त ब्राह्मणों को भी भूदेव माने। भक्तिभाव से उन्हे प्रणामोपरान्त स्वबन्धु बान्धवों को देखना चाहिये। हे देवी। इसविधि से परमेश्वरी का पूजन करके उनकी कृपा से विज्ञान की पूर्ण प्राप्ति करके साधक पूर्ण होकर पृथ्वी पर देवीभावना से ओतप्रोत हो इच्छानुरुप धरती पर विचरण करता रहता है।।२७-३०।।

देव्युवाच–

कथं वा क्रियते पूजानु गृह्येतनिवेदिता।
कथं वा प्रत्ययं चेतस्तदुपायं वद प्रभो।।३१।।

देवी कहती हैं—हे प्रभो! उनकी पूजा कैसे की जाती है। कैसे वे मेरी पूजा स्वीकार करेंगी। कैसे ज्ञात होगा कि उन्होंने पूजा स्वीकार किया है, उसका क्या उपाय है? यह बतायें।।३१।।

ईश्वर उवाच-

साधु पृष्टं त्वया भद्रे स्मरणान्मुक्तिदायकम् ।
शिवरूपं परं ब्रह्म अनुत्तरपदं महत् ।।३२।।
तदन्तःस्थं परं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् ।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ।।३३।।

ईश्वर कहते हैं—हे प्रभु! तुमने साधु प्रश्न किया है। यह स्मरण मुक्तिदायक है। वे परब्रह्म, महत् तथा अनुत्तर हैं। वे सर्वभूतों के अन्तस्थ, सनातन ज्योतिरूप परब्रह्म हैं। जैसे बादलों के हट जाने पर भास्कर प्रकाशित होता है, उसी प्रकार से आत्मस्वरूप भी (अज्ञान का बादल हटने पर) स्वयं ही प्रकाशित होता है॥३२-३३॥

अभ्यसेद् बहुशस्तत्र श्रुतिदर्शितवर्त्मना ।
वर्णरूपं तु शब्दस्य तन्मय्यस्तत्क्रियास्तथा ।।३४।।
जप्त्वा कृत्वा भवेत् सिद्धिर्भोगमोक्षमयी ततः।
यावन्मनो लयं याति तस्मिन् स्वात्मनि चिन्मये ।।३५।।
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समाचरेत् ।
अतः परं न किंचित् तु कृत्यमास्ति तदात्मनः।।३६।।

श्रुतिप्रदर्शित पथ के अनुसार साधक को अनेक प्रयास करना चाहिये। वह शब्द में वर्णरूप है। उसकी किया भी तन्मयी ही होती है। इसका जप सिद्धिदायक होता है। उसके होमादि कार्य से भोग-मोक्ष दोनों सिद्ध हो जाते है। जब तक चित्त का उसमें लय न हों, तब तक स्वात्मा का चिन्तन करने का कार्य करे। तब तक मन्त्री जप,होम (इष्टमन्त्र जपादि) करता रहे। लेकिन (जब चित्त आत्मलीन हो) तब कुछ भी करने की आवश्यकता ही नहीं है॥३४-३६॥

विदिते परमे तत्त्वे समस्तैर्नियमैरलम् ।
तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते ।।३७।।
अवश्यं च भावि फलं तदाप्तौ तत्करोति यः।
आस्तिक स तु विज्ञेयः क्रमान्मोक्षे प्रतिष्ठितः।।३८।।

परमात्मतत्व का ज्ञान होते ही समस्त नियम अनावश्यक हो जाते हैं। यदि स्वयं मलय मारुत प्रवाहित हो रही हो, तब ताड़ के पंखे की क्या आवश्यकता यद्यपि इन सब का फल मिलता है। उसको प्राप्त करने के लिए जो उस कार्य को करता है, वही है आस्तिक । वह क्रम से मोक्षप्राप्त करता है॥३७-३८॥

प्राप्य न्यसेत्तदा तस्मिन् कृत्वा तद्रहितं न्यसेत्।
उभयात्मकं तु विन्यस्य स संन्यासी मुनिर्मतः।।३९।।
यन्त्रं शरीरमत्रोक्तं विदित्वा कमलेक्षणे।
कृत्वा चाहंमतिं तत्र यजेद्भक्त्या समाहितः।।४०।।

उभयात्मक न्यास वाला ही सन्यासी एवं मुनि कहा जाता है। इस पूजा में शरीर ही यन्त्र है। हे कमले क्षणे! "वह देवता मैं ही हूँ जो इस शरीर में है" यह अहं भावना करके भक्ति समाहित हो पूजन करे॥३९-४०॥

यद्रूपं परमेशान्या निष्कलं सकलञ्च वा।
आत्मा भेदेन सम्पूज्य आत्मानं प्रियमीश्वरीम्।।४१।।
तदानन्दमयं धाम याति पश्चान्न संशयः।
एवं सा पञ्चमी प्रोक्ता पञ्चधा प्रथितविग्रहा।।४२।।
पञ्चतत्त्वात्मके देहे प्रत्यक्षीक्रियते हिं तैः।
नान्यत्र वै भेवद् व्याक्ताविनात्मनि विचिन्तनम्।।४३।।
अनुमानं महेशान्या आत्मन्येव नच क्वचित्।
अनुमीयं परं चैवं सर्वमात्मवदाचरेत्।।४४।।

परमेश्वरी जो सकल निष्कल रूप हैं, उन ईश्वरी को साधक अपनी आत्मा से अभिन्न मानकर उनकी पूजा द्वारा आनन्दमय धाम को प्राप्त करता है। यह संशयरहित है। तभी वे पंचमी कहलाती हैं। वे पंचतत्वमय पंचविग्रहा हैं। पंचतत्व रूप उनका ही विस्तार है। उनका साक्षात्कार इसी देह में ही साधक करते हैं। उनका अन्यत्र व्यक्तीकरण नहीं होता। आत्मा मे ही उनका चिन्तन करे। (बिना चिन्तन) महेश्वरी का आत्मा में अनुमान संभव नहीं है। सब को आत्मवद् मानते हुये परतत्व का अनुमान (सब में) करे॥४१-४४॥

वस्तूनां गन्धामात्रेण सौरूप्यदर्शनात् तथा।
तुष्यन्ति देवता श्रेष्ठाः स्तुत्या लभ्याश्च पार्वति।।४५।।
भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षराक्षसपन्नगा।
उपभोगेन तुष्यन्ति मनुष्याद्याश्च जन्तवः।।४६।।
गुरो शरीरमास्थाय कुमारीणां विशेषतः।
ब्राह्मणानां गवां चैव भुञ्जते देवता पराः।।४७।।
तस्मात्तांश्च प्रयत्नेन भोजयेत् तोषयेत् सदा।
तुष्टेष्वेषु महादेवी परितुष्टा जगन्मयी।।४८।।

ब्राह्मणानां शरीरस्था भुञ्जते पितरस्तथा।
अनङ्गव्यवधानं स्यादङ्गहीनं तु यद्भवेत्।
साङ्गं भवति तत् सर्वं मिष्टान्नैर्विप्रभोजनात्।।४९।।

(शुभ) वस्तुओं की गन्ध मात्र से, सौरूप्यदर्शन से श्रेष्ठ देवतागण प्रसन्न हो जाते हैं। हे पार्वती! वे स्तुति से प्राप्त होते हैं। भूतप्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, पन्नग तथा मनुष्य आदि जन्तु तो वस्तु का उपभोग करके प्रसन्न हो जाते हैं, लेकिन उच्च कोटि के देवतागण गुरु तथा कुमारी, ब्राह्मण, गाय के शरीर में आविष्ट होकर वस्तु का भोग करते हैं। तभी इन्हें भोजन कराकर प्रसन्न करना चाहिये। हे महादेवी! इनके तृप्त होनें पर जगन्मयी प्रसन्न हो जाती हैं। पितरगण ब्राह्मणों कामवेश से के कारण अंगहीन हो वे सब ब्राह्मणगण को मधुर अन्न खिलाने से अंगयुक्त तथा पूर्ण हो जाते हैं।।४५-४९।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पूजासम्पूरणआद्युपायविधिनिरूपणं नामैकविंशः पटलः सम्पूर्णः।।२१।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में पूजासम्पूरणाद्युपायविधि निरूपण नामक इक्कीसवाँ पटल समाप्त ।।

◆

द्वाविंशः पटलः

कुमारीपूजनविधिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

हृदिस्थं परमात्मानं विहायान्यत् समीहते ।
अहो मूढो वरारोहे बहिर्यन्मृग्यतेऽन्धवत् ।।१।।
विज्ञाय हृदयान्तःस्थं परं प्रकृतिगोचरम् ।
तन्निष्ठकर्मणा चैनमात्मन्येवं प्रतीयते ।।२।।
तत्प्रतीतौ भवेत् सिद्धो नान्यथा खलु पार्वति ।
अहं विष्णुः स्वयम्भूश्चस्वायम्भवा इमे वयम् ।।३।।

ईश्वर कहते हैं—हे वरारोहे! जो हृदय में स्थित परमात्मा की इच्छा न करके अन्य की इच्छा करता है, वह बाहर ही अन्धे के समान भटकता रहता है। हृदयस्थ प्रकृतिगोचर हृदय के अन्तर में स्थित परमात्मा का अनुभव करके सारे कर्मों को उन्हें समर्पित करके साधक उसे अपने अभ्यन्तर में आत्मरूप में देखता है। उनकी इस प्रकार से प्राप्ति करके ही व्यक्ति को सिद्धि प्राप्त होती है। अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती है। साधक को यह भावना करनी चाहिये कि 'मैं विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा ही हूँ' (अथवा) हम सब उन स्वयम्भु की सन्तान हैं॥१-३॥

तदनुभूय देहेऽस्मिंस्तदेव समुपास्महे ।
तदन्तःस्थं समाहूय तदेवं तु यजामहे ।।४।।
उद्वास्य च तदात्मानं स्थापयित्वा निजे हृदि ।
निवेदितं तु तत्प्रीत्यै तस्मिन्नेव निवेदयेत् ।।५।।

हम उन्हें देह में इस प्रकार से अनुभूत करके उनकी उपासना कर रहें हैं। अन्तः (प्रदेश) में स्थित उनका आवाहन करके उनका ही भजन कर रहे हैं। इस प्रकार से उनका उद्वासन करके उन्हें आत्मा में जानकर के (अभेद भावना करके) उनकी स्थापना अपने हृदय में करे। उनकी प्रसन्नता के लिये जो कुछ भी निवेदित करना हो उसे (भावना रूपेण) हृदय में ही निवेदित किया जाये॥४-५॥

विनामृतं न चान्यत् तु काङ्क्षन्ते देवतागणाः।
अमृतेनैव तत्पूजा अमृंतं तु निवेदयेत् ।।६।।
अमृतत्वं लभेद्धीरः स्वीकृत्यात्मनिवेदितम् ।
इति ते कथितं देवि शेषिका मतृ मुत्तमम् ।।७।।

देवगण अमृत के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहते हैं। अतः उनकी अमृत से ही पूजा की जाये तथा उन्हे निवेदन किया जाये। आत्मनिवेदन करने

से ही वीरभावापन्न साधक अमृतत्व की प्राप्ति करता है। हे देवी! इस प्रकार से तुमसे शेषिकामृत का वर्णन किया॥६-७॥

स्थूलसूक्ष्मविभेदेन ज्ञायते कृपया गुरोः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं चेति तेषां पृथक् पृथक् ।।८।।
त्रिविधं त्रैपुरं कर्म क्रमस्तत् समाचरेत्।
यदुक्तं तामसं त्यक्त्वा तत् सर्वं यत्नतश्चरेत् ।।९।।

गुरुकृपा से शेषिकामृत को स्थूल-सूक्ष्म प्रकारेण भी जाना जा सकता है, कर्म तीन प्रकार के कहे गये हैं जिनको त्रिपुरसुन्दरी के (पूजनार्थ) लिये पृथक्त करना चाहिये। ये कर्म हैं नित्य नैमित्तिक तथा काम्य। तामस कर्मों को कदापि न करे। (सात्विक तथा रजस) अन्य कर्मों को प्रयत्नपूर्वक कर सकते हैं॥८-९॥

दैनन्दिनमतो नित्यं पातकमविधानतः।
मासिकं तिथिकृत्यं च वार्षिकं फलदायकम् ।।१०।।
लङ्घनान्निरयो यस्य नित्यं श्रद्धाविद घात तः।
नैमित्तिकं विजानीयाच्छ्रद्धया तत्समाचरेत् ।।११।।

दैनन्दिन प्रतिदिन सम्पन्न किये जाने वाले कर्म को नित्यकर्म कहा गया है। उसे जो नहीं करता, उसे पाप लगता है। मासिक तिथि तथा वार्षिक कर्म फलप्रद होता है। जिसका उल्लङ्घन करने से नरक मिले तथा जो श्रद्धा विधात से (श्रद्धा न होने पर) नरकगामी बनाये। वह नैमित्तिक कर्म है। इसे श्रद्धापूर्वक करे॥१०-११॥

फलमात्रश्रुतिर्यस्य श्रुतिस्मृतिप्रचोदिता।
काम्यं तत्तु विजानीयात् पूजितं तत्र गोचरे ।।१२।।
विदध्यात् तत्प्रयत्नेन यत् पुनर्लोकपूजितम्।
धर्ममपि त्यजेत् साधु यत् पुनर्लोकगर्हितम् ।।१३।।
नित्यं सात्त्विकमेवात्र नैमित्तिकं तु राजसम्।
तामसं काम्यमेवात्र कुर्यात् फलवितृष्णया ।।१४।।

जिन कर्मों का फल मात्र श्रुतियों में मिलता है। (अर्थात् यह करने से यह लौकिक आदि फल मिलेगा ऐसा कर्म) उसे काम्य कर्म समझे। जो काम्य कर्म लोक में मान्य हो, आदर प्राप्त हो वही करे। जो काम्य कर्म, धर्म, कार्य है, तथापि लोक में अमान्य है तथा निन्दित है, उसे कदापि नहीं करे। फलेच्छा से रहित होकर सात्विक नित्यकर्म, राजस नैमित्तिक कर्म तथा तामस काम्य कर्म करे॥१२-१४॥

तृष्णां तां दूरतस्त्यक्त्वा मनः पूर्णं विचिन्तयेत्।
पूर्णे मनस्य तृष्णे च पूर्णं सर्वमिदं जगत् ।।१५।।

उपानद्गूढपादस्य ननु चार्मवृतैव भूः।
फलविरहितं काम्यं नित्यं नैमित्तिकं तथा ।।१६।।

तृष्णा को दूर से ही त्याग करके मन की पूर्ण रूप से भावना करनी चाहिये (क्यों कि जो स्वयं पूर्ण है, उसे किसकी तृष्णा) मन की पूर्ण तथा तृष्णारहित स्थिति में साधक को यह समग्र संसार पूर्ण प्रतीत होता है। जिसने जूता पहन रखा है, उसे तो समस्त भूमण्डल चर्मावृत प्रतीत होगा। नित्य तथा नैमित्तिक कर्मो को फलेच्छा से कदापि न करना चाहिये। फलेच्छा रहित होकर इन्हे करे।।१५-१६।।

क्रियते त्रिपुराप्रीत्यै कृत्वा तस्यै निवेदनम् ।
सात्त्विकं तद्विजानीयाद् भोगमोक्षफलप्रदम् ।।१७।।
यस्य यद्विहितं कर्म त्रिविधं तत्र गोचरे ।
श्रुतिस्मृत्युदितं चापि मनसापि न हारयेत् ।।१८।।
कर्मलोपादधोयोनौ जायते साधकाधमः।
शिवशक्तिमयं विश्वं विदित्वा सद्गुरोः प्रिये ।।१९।।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन पितृमातृस्वरूपतः।
कर्मभिस्तोषयेत् तौ तु तद्भावमाश्रितः सदा ।।२०।।
उभयात्मा भवेत् सिद्ध्यै नैकात्माज्ञानवर्जितः।
ज्ञानचक्षुस्तयोरैक्यं विदित्वा श्रीगुरो क्रमात् ।।२१।।
अनुभूय तदानन्दं तदात्मा तत्र संविशेत् ।
मातुः पितुर्यथा बालो व्युत्पत्तिं लभते क्रमात् ।।२२।।
तयो समत्वसंधानाद् व्युत्पन्नो ज्ञानमालभेत् ।
देवताः शक्तिरित्याहुः पितरः शिव एव च ।।२३।।
एतावुभौ तांस्तु सर्वान् सुहृदः पूर्वसूचितान् ।
बलिभिस्तर्पयेत् तांस्तु सुहृद्भिश्च हतोऽन्यथा ।।२४।।
तेषां बलिं पुरस्कृत्य तावुभौ परितोषयेत् ।
पश्चात् तेभ्यो निवेद्यैव सुहृद्भिर्विहरेन्मुदा ।।२५।।

इन कर्मद्वय को त्रिपुरादेवी की प्रीति प्राप्त करने के ही लिये किया जाये। इन कर्मो को करके उसे देवी को निवेदित समर्पित करे। ऐसा ही कर्म (निवेदित कर्म) सात्विक है तथा भोग-मोक्ष, दोनो प्रदान करता है। जिसके लिये जो त्रिविध कर्म (नित्य-नैमित्तक काम्य) कहा गया है। वह यदि श्रुति-स्मृति विहित है, तब "उसे नहीं करना है" यह सोचना ही नहीं चाहिये। कर्मलोप करने वाला जो है, वह अधम अधः योनियों में जन्म लेगा।

हे प्रिये! सद्गुरु से इस विश्व को शिवशक्तिमय जानने के पश्चात् यह धारणा करे (स्थूल रूप से) पिता-माता ही शिवशक्ति रूप सूक्ष्मरूप की स्थूल रूप मूर्ति हैं। इस भावना द्वारा सदा शिवशक्ति मानकर अपने माता-पिता को अपने कर्मों से सन्तुष्ट करना चाहिये। यह धारणा सिद्धि प्रदात्री है। यदि दोनों को साधक शिव-शक्ति से अलग मानता है, तब वह ज्ञान रहित हो जायेगा। श्री गुरु से प्राप्त ज्ञाननेत्रों से पिता-माता तथा शिवशक्ति में अभेदभावना द्वारा इस ऐक्यानन्द का आस्वादन करके उस तत्व में प्रवेश करे।

पिता माता से बालक क्रमशः ज्ञान प्राप्त करता है। (अर्थात् पहले जन्म काल में माता से ही प्रबोधित होता है अबोधावस्था में भी माता ज्ञानदाता है। तदनन्तर पिता ज्ञान देता है।) इन दोनों के एक्य ज्ञान द्वारा (साधक) ज्ञानलाभ करता है। देवता शक्ति है, पिता शिव हैं। इन्हे तथा सभी सुहृदों का बलि से तर्पण करे, अन्यथा साधक का नाश हो जाता है। उसका कृत्य फलप्रद नहीं होता। उन्हे बलि द्वारा सन्तुष्ट करे। उन्हें नैवेद्य प्रदान करके साधक आनदपूर्वक (आप्तकाम) बन्धु बान्धवों के साथ विहार करे॥१७-२५॥

स्वाहान्तेन च देवेभ्यो मनुष्ये हन्तकारतः।
स्वधान्तेन पितृभ्यस्तु तेभ्यो भ्यसन्तेनल तु ।।२६।।
निराशाः पितरस्तस्य यास्यन्ति खलु पार्वति ।
सुहृदो ज्ञातयश्चापि वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः।।२७।।
सुहृदो वर्ष्म खादन्ति ज्ञातयः कर्म संचितम् ।
ऐहिकं स्वपिता हन्ति स्वमातापारलौकिकम् ।।२८।।
लोकद्वयविहीनस्तु नैव सिद्धिं प्रविन्दते ।
अयष्ट्वा पितरं यज्ञे यजेन्मातरमम्बिकाम् ।।२९।।
विधिशतैरपि यज्ञं नानुगृह्णाति शाश्वती ।
आदावन्ते पितुस्तसमात् कुर्यात् तर्पणमादरात्।।३०।।
आदत्तं नोपतिष्ठेत दद्यात् तस्मादतः परम् ।
गोभूहिरण्यवस्त्रादि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ।।३१।।
वासिनीभ्यो द्विजेभ्यश्च दीनान्धकृपणाय च ।
त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म लौकिकं भावत्परः।।३२।।
योगक्षेमे हिंत यत्तु कुर्यात् तदनुशासनात् ।
समर्थो जीवयेत् स्नेहात् स्वकीयाननुजीविनः।।३३।।

देवों को तृप्त करने के लिये जो मन्त्र है उसके अन्त में स्वाहा लगाये। पितरो के मन्त्र में (तृप्त्यर्थ) स्वधा लगाये तथा शब्द के अनन्तर 'भ्यस्, चतुर्थी

बहुवचन का प्रयोग उनकी तृप्ति हेतु करे। मनुष्यों को 'अहंते' से अर्पण करे। जो मनुष्य पितरों को तृप्त करने हेतु 'भ्यसन्त' तथा 'स्वधा' का प्रयोग नहीं करता, उसके पितृगण निराश होकर वापस चले जाते हैं। जो अपने सुहृद तथा ज्ञातिवर्ग को मधुर वाणी से अर्चित, तुष्ट नहीं करता, सुहृदगण उसकी देह को खा जाते हैं (क्षीण करते हैं) तथा बन्धुगण उसके संचित कर्म को खा जाते हैं।

पिता (रुष्ट होकर) इस लोक को नष्ट करता है। माता (रुष्ट होकर) पारलौकिक भाग्य को नष्ट कर देती है। ऐहिक तथा पारलौकिक स्थिति से नष्ट साधक सिद्धि नहीं पा सकता । जो यज्ञ में पितरों की पूजा न करके केवल माँ अम्बिका का पूजन करता है, सैकड़ों विधान से किये यज्ञ में उसपर मां अम्बिका नित्या उस पर कृपा नहीं करतीं। अतः पूजा यज्ञ के आदि अन्त में पितरों का आदर पूर्वक तर्पण अवश्य करें। जो उन्हें पहले अर्पित किया जा चुका है, उसे पुनः नहीं देना चाहिये। नयी वस्तु समर्पित करे।

अन्य लोगों को प्रदत्त दान उनके योगक्षेत्रम का कारण बनता है। (अतः साधक को उनका आशीर्वाद तथा पुण्य प्राप्त होता है।) गाय, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, अन्य भक्ष्य-भोज्य, ग्रामवासिनी महिलाओं को, ब्राह्मण, दीन, अन्ध, कृपण को दान करके मनुष्य को भावतत्पर होकर लौकिक कर्म करना चाहिये। ऐसा कर्म आचार्य की गुरु की आज्ञा लेकर करना चाहिये जो योगक्षेत्र दाता तथा हितप्रद हो। समर्थ मनुष्य अपने अनुगतों को प्रेम के साथ जीवित रखे (तप्त रखे)।।२६-३३।।

दुष्टेभ्यो दुष्टचित्तेभ्यो हिंस्रसाहसिकात् तथा ।
बलिभ्यो धनमत्तेभ्यः कायस्थेभ्यो विशेषतः।।३४।।
रक्षयेत् पालयेत् साधुः पुत्रानिव पितौरसान् ।
लोकांश्च त्रिविधान्मत्वा लालयेत् पालयेत् सदा ।।३५।।

वह व्यक्ति अपने अनुगतो की रक्षा दुष्टों से, दुष्ट चित्त वालों से, हिंस पशुओं से, चोरों से, बली से, धनमत्त से, कायस्थो से (अर्थात् देहात्माबोध से मत्त लोगों से) वैसे ही करे जैसे पिता पुत्रों की करता है। लोक में इनको तीन प्रकार का मानकर इनका सदा लालन-पालन करना चाहिये।।३४-३५।।

वध्यान् वध्यात्तथा दण्ड्यान् दण्डयेच्छास्त्रदर्शनात् ।
अवध्यस्य वधे यावांस्तथादण्ड्यस्य दण्डने ।।३६।।
दण्ड्यस्यादण्डने पापस्तावान् वध्यस्य रक्षणे ।
इति विज्ञाय योगात्मा योगक्षेमं समाचरेत् ।।३७।।
विभूतीरात्मनः पश्येत् तत्प्राप्त्या तन्निवेदयेत् ।
विभूतीरात्मनो यस्तु महादेव्यै निवेदयेत् ।।३८।।

ताभिरेव युतो भूयादणिमादिविभूतिभिः।
मुहूर्त्तत्रयमात्रं तु कुर्यात् तनुविचिन्त नम्।।३९।।
चिन्तयेत् परमं ब्रह्म मध्याह्ने समुपागते।
मुहूर्तत्रयमात्रं तु निद्रया समुपासयेत्।।४०।।
ततो बुद्ध्वा यथाकाले तामेव समुपासयेत्।
ललितानि च नृत्यानि गीतानि मधुराणि च।।४१।।
दर्शयेच्छ्रावयेद् देव्यै भावात्मा तद्विलोकयेत्।
नृत्येषु गीतनियतां देव्यः स्रक्चन्दनार्चिताः।।४२।।
भूषिताश्चारुभूषाभिर्वि हरेत् ताभिरेव च।
ततो मध्ये स्वयं देवः कामेश्वर इवापरः।।४३।।
कामेश्वरीयुतो भूत्वा यजेत् कामेश्वरीं ततः।
ब्रह्मचिन्तापरामोदमुदितो राज्यचिन्तकः।।४४।।
मुहूर्तत्रयमात्रं तु निद्रया समुपासयेत्।
दिवा दद्यात् पितृभ्यस्तु मातृभ्यो निशि तत्परः।।४५।।
माता रात्रिः समाख्याता पिता दिवस एव च।
उभयोरेकतां मत्वा सिद्धो भवति नान्यथा।।४६।।

अर्थात् जो वध्य हैं उनका वध करे। दण्डनीयों को विहित दण्ड दे। अवध्य के वध से तथा अदण्डनीय को दण्ड न देने से जो पाप संग्रह होता है, दण्ड के भागी को दण्ड न देने से तथा वध्य का वध न करने से उतना ही पाप लगता है। यह चिन्तन करके योगात्मा साधक योगक्षेम का आचरण करता रहे। साधक अपनी विभूतियों का दर्शन करके (जान करके) उसे महादेवी को निवेदित कर दे। अपनी विभूतियों को महादेवी के लिये प्रदर्शित करे। वह (देवी की कृपा से) अणिमादि सिद्धियों से युक्त हो जाता है। केवल तीन मुहूर्त्त पर्यन्त स्वशरीर का ध्यान करे। मध्यान्ह में परब्रह्म का चिन्तन करे। तीन मुहूर्त्त मात्र निद्रा के द्वारा अपने स्वशरीर की उपासना करे। तीन मुहूर्त्त स्वरुप का ध्यान अर्थात् लौकिक कार्य, तदनन्तर ब्रह्मचिन्तन। (रात्रि में तीन मुहूर्त्त निद्रा)। तदनन्तर उचित समय (ब्राह्म मुहूर्त्त में अथवा महानिशा में जैसी गुरु की आज्ञा हो) पुनः देवी उपासना करे। देवी को ललित मधुर नृत्यगीतादि दिखलाकर तथा सुनाकर भक्तिभाव से पूर्ण हो इन सब का अवलोकन करे। नृत्यरता स्त्रीगण भी माल-चन्दन, दिव्य-अलंकार से सजी रहें तथा गायनरत रहें। साधक भी ऐसी स्त्रीगण के साथ विहार करे। अब उन स्त्रीगण में जो प्रधान है उस द्वितीय कामदेवी की भावना करके उस

कामेश्वरीरूप शक्ति से युक्त हो (उस प्रधान स्त्री के साथ) भगवती कामेश्वरी पूजन करना चाहिये। ब्रह्मध्यान चिन्तन जनित परमानन्द से मुदित साधक जो राज्यचिन्तक भी है तीन मुहूर्त्त पर्यन्त निद्रा स्थिति द्वारा उपासना करे। (निद्रा भी भगवती की उपासना समझे)। दिन में पितरों के लिये तथा रात्रि में मातृभजन में तत्पर हो जाये। माता रात्रि स्वरूपा हैं, पिता हैं दिवस रूप। दोनों में एकत्वानुभूति से ही साधक को सिद्धि मिल सकती है, अन्यथा नहीं॥३६-४६॥

सोमः शक्तिःशिव सूर्यो निशा शक्तिर्दिवा शिवः।
यदा स भगवान् देवो महात्रिपुरभैरवः॥४७॥
परापरायणोऽनन्तः परमानन्दनिर्भरः।
परापररहस्याख्यां योगिनीं ब्रह्मरूपिणीम्॥४८॥
शिवानन्दानन्दमयीं महात्रिपुरसुन्दरीम्।
आकृष्योर्ध्वं यदा तिष्ठेत् तदहः परिकीर्त्यते॥४९॥

सोम शक्ति है, सूर्य शिव हैं। रात्रि शक्ति है, दिवस शिव हैं। वे भगवान देव त्रिपुरभैरवपरायण अनन्त तथा परमानन्द निर्भर हैं। परापररहस्य नामक उनकी योगिनी ब्रह्मरूपा शिवानन्दमयी हैं। वे उन महात्रिपुरसुन्दरी को आकृष्ट करके जब विराजित हो जाते हैं, तब वह योगीगण का दिवस है॥४७-४९॥

शक्तिभैरवसंयोगादानन्दानन्दनिर्भरात्।
भैरवानन्दमग्नान्तर्लीला सा परमा कला॥५०॥
मध्याह्नं तद्विजानीयान्मुहूर्तत्रयलक्षितम्।
तौ तदा समभागेन तिष्ठेतां शक्तिभैरवौ॥५१॥
पूर्वापरौ तदा ज्ञेयावेतद् द्विगुणलक्षितौ।
परस्पराद्वैतेप्सन्तौ प्राप्ताद्वैतौ तु मध्यतः॥५२॥
अभिजिन्नाम जानीयात् तत्कालं सुरवन्दिते।
तत्तत्तेजोभिराकीर्णं तयोरैक्यं तदा भवेत्॥५३॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोट्ययुतप्रभम्।
तदा दशभुजो देवः पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः॥५४॥
शुक्लाम्बरधरः शुक्लः शुक्लमाल्यानुलेपनः।
तस्योत्सङ्गे महादेवी चन्द्रकोट्यतुलप्रभा॥५५॥
प्रहसन्ती विशालाक्षी परमानन्दनन्दिता।
तद्रूपतामभीप्सन्ती तद्रूपेक्षणलालसा॥५६॥
शुक्लवेशं विना देवि नान्यत् तत्प्रीतये तदा।
तत्रान्यद्रूपमापन्ने साधके दैवचोदिते॥५७॥

क्रुद्धा भगवती तस्य शापं दद्यात् सुदारुणम् ।
सर्वैः शुक्लमयैर्द्रव्यैः शुक्लवेशैर्यजेत् तदा ।।५८।।
दिवि देवी भवेद् दृश्या शरच्चन्द्रनिभानना ।
तत्र पूजा सदा कार्या विशेषेण वरानने ।।५९।।
पेयं तथा लेह्यं चर्व्यं भक्ष्यं च तर्पणैः।
निवेदयेत् सदा भक्त्या यत्पुनः सुमनोहरम् ।।६०।।

जब महाआनन्द से ओतप्रोत भैरव तथा शक्ति का संयोग होता है, तब परमाकला भैरवीय आनन्द से आनंन्दित होकर अपने-आप में लीलारत हो जाती है। यही मध्यान्ह है। यह तीन मुहूर्त्त का है । तब भैरव तथा भैरवी समभाग में स्थित रहते हैं। यह पूर्वापर एवं सामान्य से द्विगुणित काल है। मध्य में शक्ति तथा भैरव दोनों अद्वय हो जाते हैं। हे सुरवन्दिते ! यही अभिजित है। उनकी यह ऐक्य (अद्वय) अवस्था उन-उन तेजराशि से भर जाती है। उस तेज को कोटिसूर्य समप्रभ तथा कोटिचन्द्र की तरह शीतल जाने।

वह दशभुजा वाले देव पांच शिरों वाले तथा त्रिलोचन (प्रत्येक शिर में तीन-तीन नेत्र) हैं। वे शुक्लवस्त्रधारी, शुक्लवर्ण तथा शुक्ल माला एवं अनुलेप से युक्त हैं। उनके साथ करोड़ो चन्द्रमा के समान प्रभायुक्ता महादेवी स्थित हैं। ये विशालाक्षी, हास्ययुता, परम आनन्द से नन्दिता हैं। ये भगवान से एक रूप होने की इच्छा से युक्ता हैं। इन भैरव के रूप को सदा देखने की इच्छा लालसा से युता हैं। हे देवी! शुक्ल वेश के अतिरिक्त अन्य वेश इन देवी को प्रिय नहीं लगता है। अन्य वेश से ये देवी प्रसन्न नहीं होती । हे देवी! यदि साधक अन्य वर्ण का वस्त्र धारण करता है (अथवा अर्पित करता है) तब भगवती क्रोधित होकर उसे दारुण शाप दे देती हैं। सदैव देवी का यजन श्वेत द्रव्य तथा श्वेत वेश से करे। उसे दिन में देवी शरद्‌चन्द्र के समान आननवाली अन्तरिक्ष में दिखलाई देती हैं। ऐसी स्थिति में देवी की विशेष पूजा करे। हे वरानने! उनके लिये पेय, चोष्य, चर्व्य, लेह्य तथा भक्ष्य वस्तु निवेदित करे। तर्पण से तृप्त करे। सुमनोहर नैवेद्य चढ़ाये।।५०-६०।।

उपचारैर्यजेत् प्रातर्मध्ये रस्यान्नपानकैः।
गीतनृत्यादिना साकं रात्रौ यागपुरःसरम् ।।६१।।
प्राङ्मुखो हि यजेत् प्रातर्मध्याह्ने दक्षिणामुखः।
सायं प्रत्यङ्मुखो भूत्वा रात्रा वुदङ्मुखः सदा ।।६२।।

प्रातः मध्याह्न में देवी का भजन सरस अन्न तथा पान युक्त उपचारों से करे। गीत इत्यादि का आयोजन करे। सायंकालीन पूजन में यज्ञ आवश्यक है।

प्रातःकाल पूर्वमुख, मध्याह्न में दक्षिणमुख, सायंकाल पश्चिम मुख तथा रात्रि में उत्तर मुख पूजन करना चाहिये॥६१-६२॥

तत्र शाम्भवभेदेन जपेद्विद्यामनन्यधीः।
वर्जयेच्छक्तिभेदं तु यदीच्छेदात्मनो हितम्।
अरुणकिरणाच्छन्नं यत्पूर्व भैरवोदयात्॥६३॥
अर्धनारीश्वरं ज्ञेयं तत्र पूजा क्रिया समाः।
उपचारैस्तदा कुर्यात् सपर्यां विधिना तथा॥६४॥

साधक एकाग्र होकर शांभव भेद करे। शांभवभेद से मन्त्रंजपे। (शांभव भेद का अर्थ यहाँ शांभवी स्थिति प्रतीत होता है। शाक्ती स्थिति का त्याग करने को कहा है। तब भी यह अर्थ स्पष्ट नहीं है। गुरुपरम्परा से इसका तात्पर्य ग्रहण करे)। शक्ति भेद का त्याग करे। अरुण किरणाच्छन्न भैरवोदय होने के पहले की जो स्थिति है उसे अर्द्धनारीश्वर जाने। इनके लिये पूजा विधान पूर्ववत् है। पूजा विविध उपचारों से करनी चाहिये॥६३-६४॥

वरिवस्यां गृही, समभागेन संस्थितौ यदि।
आनन्दपारमिच्छन्तौ सदानन्दविवर्धिनौ॥६५॥
पूर्वांपरौ महापुण्यौ यदा तौ समरूपिणौ।
चिन्तयेत् सततं भक्त्या तौ तत्कालविधनतः॥६६॥
शक्तिशाम्भवभेदेन जपेद्विद्यामनन्यधीः।
शुक्लाम्बरो भवेत तत्र शुक्लमाल्यानुलेपनः॥६७॥

यदि उस समय शिवभाव तथा शक्तिभाव (अर्द्धनारीश्वर का) समभाग में हैं, वे आनन्द की परावस्था के इच्छुक हैं, सदा आनन्द की अभिवृद्धि करने वाले हैं, पूर्वापर स्वरूप तथा महापुण्य रूप हैं, तथा दोनों सम हैं तब उन दोनों का चिन्तन भक्तिपूर्वक समत्वापन्न रूप से अनुभव करते हुये करे। एकाग्र होकर शक्ति शांभव भेद से (गुरुगम्य है अर्थ स्पष्ट नहीं है) मन्त्र जपे। साधक शुक्ल वस्त्र, शुक्लमाला, शुक्ल चन्दनादि का प्रयोग करे॥६५-६७॥

रक्ताम्बरधराः पश्येद् रक्तमाल्यानुलेपनाः।
दिशश्च विदिशश्चैव रक्ता दृश्या मनीषिभिः।
लाक्षारुणमयं विश्वं स्वयं च तत्र तद्भवेत्॥६८॥
पद्मरागप्रतीकाशः कोटिसूर्यसमद्युतिः।
नाथः कामेश्वरस्तत्र ह्येकवक्त्रश्चतुर्भजः॥६९॥
रक्तपद्मनिभा देवी बालार्ककिरणारुणा।
इच्छंस्तद्रूपतां प्राप्तं तद्रूपा तं विशन्त्यतः॥७०॥

अनुभूय तदाबन्धं भैरवानन्दसंकुलम् ।
विपरीतभीप्सन्ती तदाक्रमणलालसा ।।७१।।
तदा समो भवेत् कालः सायंसंध्येति गीयते ।
शोणितैश्च सकाक्रान्तां प्रतीचीमवलोकयन् ।।७२।।

अब सन्ध्याकाल कहते हैं—

जब साधक को दिशायें विदिशायें रक्ताम्बरा, रक्तमालानुलेपा अनुभूत होती है, जब वह मनीषी सब कुछ को रक्तवर्ण, समस्त संसार को लाक्षारसवत् अरुण देखता है, तब स्वयं भी वैसा हो जाता है।

उसे एकवक्त्र चतुर्भुज कामेश्वरनाथ भी पद्मराग मणि के समान प्रकाशित तथा कोटिसूर्य समप्रभ अनुभूत होते हैं। देवी कामेश्वरी भी उसे रक्तपद्मवत् बालार्क किरणों के समान अरुण परिलक्षित होने लगती हैं। वे देवी कामेश्वर से तद्रूप होना चाहती हैं अतः मानो भैरवानन्द से ओत-प्रोत होकर उनके बन्ध का अनुभव करते हुये उनमें समाने जा रही हैं। वे उनको आक्रान्त करने की लालसा लेकर विपरीत रति हेतु उद्यता हो रही हैं, कामना कर रही हैं। इस ध्यान से समकाल हो जाता है।

इसे ही सायं सन्ध्या कहते हैं। साधक अब पश्चिम दिशा को रक्तवर्ण से व्याप्त देखकर (अनुभव करके) जो उपचार जुट सकें, उन सबसे भक्तिपूर्वक भगवती का पूजन करें। ।।६८-७२।।

पूजयेत् साधको भक्त्या चोपचारैर्यथाविधि ।
यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।।७३।।
अधः कृत्वा तु पुरुषं रन्तु मिच्छा भवेद्यदा ।
तदाक्रम्य स्वयं देवी भैरवोपरिसंस्थिता ।।७४।।
सहजानन्दसंदोहैर्निजानन्दप्रवर्धिनी ।
तदा नैजं भवेद्विश्वं तत्र पूजा महोदया ।।७५।।

वह परमा शक्ति स्वेच्छा से विश्वरूपिणी होकर (भैरव) पुरुष को नीचे करके रमण करने की इच्छा करती है तथा उसको आक्रान्त कर स्वयं भैरव के ऊपर स्थित हो जाती है।

इस स्थिति में सहजानन्द सन्दोह से निजानन्द का वर्धन करने लगती है, तब जगत् रात्रिमय हो जाता है। तब जो पूजा की जाती है, वह महाफलदात्री कही गयी है।।७३-७५।।

तत्तद् दृष्टि मयैर्दीपै र्भोगैश्च विविधैः सदा ।
लाक्षारुणमयं सर्वं स्वयं तावत्तथा भवेत् ।।७६।।

शक्तिभेदात्मिकां विद्यां हंसबीजपुटीकृताम् ।
प्रणवान्तरितां शुद्धां नादलीलां तदात्मिकाम् ।।७७।।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तां विषतन्तुतनीयसीम् ।
अधराम्बुरुहहंसीं सुस्थिरामिव चञ्चलाम् ।।७८।।
संस्त्र वन्तीं सुधाधारां शुद्धलाक्षारसोपमाम् ।
आवाह्य पूजयित्वा स्वयं कमलाङ्कपुरान्तरे ।।७९।।
विनिर्जित्येन्द्रियमनो जपेदानन्दरूपिणीम् ।
मध्यं मुखं विजानीयात् स्तनद्वयम् ।।८०।।
अर्धमात्रां परं रूपं निशामध्यं त्तयोरधः।
अनन्तफलदं पुण्यं भोगमोक्षफलप्रदम् ।।८१।।

यह पूजा सदा वैसी-वैसी दृष्टि के दीप से (भावना से) एवं विविध भोगों से की जाती है। तब समस्त विश्व लाक्षा के समान अरुण प्रतीत होने लगता है, साधक भी अपनी अनुभूति भी उसी अरुण वर्णरूप करता है। अब साधक शक्तिभेद विद्या (गुरुगम्य) को हंसबीज सम्पुटित करके उसे प्रणव से भी अन्तरित करके शुद्धनाद लीलारूपा, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त व्याप्ता, विष-तन्तुकनीयसी (सूक्ष्मा), अधः कमल पर हंसीरूपा स्थिरा किन्तु चंचला, अमृत धारास्त्रवा, शुद्ध लाक्षारस के समान अरुणा देवी का आवाहन हृदयकमल में करे तथा इन्द्रिय एवं मन को जीतकर आनन्द रूपिणी का पूजन करे। देवी के मुख को मध्याह्न सन्ध्या, दोनों स्तनों को प्रातः एवं सायं सन्ध्या, स्तनों के अधोभाग को अर्द्धरात्रि की सन्ध्या कहा गया है। अर्द्धमात्रा उनका उत्कृष्टतम रूप है। वह अनन्त फल प्रद, पुण्य मय तथा भोगमोक्ष देने वाला है।।७६-८१।।

संध्याचतुष्टयं भद्रे कथितं भुवि दुर्लभम् ।
चतुर्भुजं महादेव्या ज्ञेयं कालचतुष्टयम् ।।८२।।
आत्मा सा परमेशानी परमेश्वर एव च ।
यदङ्गं तु विहीयेत तदङ्गच्छेदनं तयोः।।८३।।

हे भद्रे! मैने पृथ्वी पर दुर्लभ चतुष्टय सन्ध्या का वर्णन किया। ये सभी देवी की चार भुजा रूप हैं। परमेश्वर एवं परमेशानी आत्मा ही हैं। (साधना में) संध्यारूपी जिस भी अंग को छोड़ दिया जाता है वह मानों (अतः कोई अंग छोड़ना नहीं चाहिये) कामेश्वर कामेश्वरी के अंगछेदनवत् है।।८२-८३।।

तत्र यत् क्रियते कर्म मङ्गल्यं मङ्गलं परम् ।
ध्यानं पूजा जपश्चैव होमो न्यासश्च तर्पण् ।।८४।।

अत्र वै पूजिता देवी पूरयेत् तन्मनोरथान् ।
अत्र यत् पुण्यमनघे भक्तिश्रद्धासमन्विते ।।८५।।
विधिना विहिते यज्ञे परमानन्दसंकुले ।
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु ह्यनन्तो वक्तुमक्षमः।।८६।।

इस समय जो भी ध्यान-पूजा-जप-होम-न्यास-तर्पण रूप मांगलिक कृत्य करते हैं, वह परम मंगलमय होता है। इस प्रकार से देवीपूजिता होकर मनोरथों को पूरा करती हैं। हे अनघे! भक्ति श्रद्धा से भरकर परमानन्द रूप इस यज्ञ को विधि विहित रूप से करने पर जो पुण्य प्राप्त होता है उसे हजारों, करोड़ मुखों से भी भगवान अनन्तदेव कह सकने में समर्थ नहीं हैं॥८४-८६॥

अमृताञ्जलिरप्यत्र सुधाब्धितुलनोपमः।
अत्र यो नार्चयेद् देवीं जलेनापीह पार्वति ।।८७।।
न नमेद्वा गुरून् भक्त्या ब्रह्महा स निगद्यते ।
अत्र निद्रापरा यान्ति महाकालपुरं प्रिये ।।८८।।

इस समय मदिरापूर्ण अंजलि प्रदान करना अमृत समुद्र दान के तुल्य माना गया है। हे पार्वती ! जो इस काल में (कुछ न होने पर) मात्र जल से भी पूजा नहीं करता तथा भक्ति से गुरु को नमन नहीं करता, वह ब्रह्मघाती है। हे प्रिये! इस समय जो सो जाते हैं, वे महाकालपुर में पतित होते हैं॥८७-८८॥

दम्भं मोहं तथा निद्रामालस्यं बाह्यचिन्तनम् ।
कामं क्रोधं तथा लोभं हिंसां मात्सर्यमेव च ।।८९।।
वर्जयित्वा प्रयत्नेन विद्यामेव समभ्यसेत् ।
दुर्वासनां परित्यज्य कोटिजन्मसमुद्भवाम् ।।९०।।
एकेन जन्मना मुक्तिं याति भोगी न संशयः।
शक्तेर्मुखं विना नान्यत् पश्येद्वै कर्हिचित्तदा ।।९१।।
पशवो दूरतस्त्याज्या पुरुषाश्चान्यपूजकाः।
अत्रान्यच्चिन्तनाद्यान्ति म्लेच्छयोनिं पतन्त्यधः।।९२।।

दम्भ, मोह, निद्रा, आलस्य, बहिर्मुखी चिन्तन, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, मात्सर्य का वर्जन करके प्रयत्न पूर्वक नित्य विद्या का अभ्यास करे। वह करोड़ो जन्म से सम्भूत दूर्वासना से छूटकर इसी जन्म में मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। साधक अपनी शक्ति (स्त्री) को छोड़कर कभी अन्य का मुख न देखे। पशु श्रेणी वाले, को दूर से ही त्याग दे। शक्ति उपासना क्रम में साधक को अन्य देवों की उपासना नहीं करनी चाहिये। अन्यथा निम्नकोटि वाली म्लेच्छयोनि मिलती है॥८९-९२॥

यान्ति चोर्ध्वं परं धाम चिन्तनाद् ब्रह्म शाश्वतम् ।
नास्ति पुरस्क्रिया तेषां कायक्लेशपुरस्सरा ।।९३।।
नित्यं पुरस्क्रियायुक्तास्त एव परिकीर्तिताः।
तं तु देवा नमस्यन्ति किंपुनर्नरमर्कटाः।।९४।।
दैवीकला भवेत्तत्र सर्वलोकवशङ्करी ।
अमर्त्या अपि तं मर्त्य मीहन्ते कुलवल्लभम् ।।९५।।

त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करने वाले परमधाम शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। उन्हे शरीर को क्लेश देनें वाले पुरश्चरण आदि को नहीं करना पड़ता। वे नित्य पुरश्चरणयुक्त रहते हैं। देवगण तक उस साधक को प्रणाम करते हैं। नर वानरों की बात ही क्या? ऐसे साधक में सर्वलोक वशंकरी दैवीकला का अवतरण होता है। न मरने वाले (देवगण) भी उस मर्त्य को कुलवल्लभ मानते हैं।

दृष्ट्वा युवतयः सर्वाः क्लिद्यद्योन्यो मुदान्विता ।
शरदिन्दुप्रभं देवं पूर्णेन्दुप्रतिमाननम् ।।९६।।
नानावैदग्ध्यचातुर्यस्निग्धपीयूषभाषिणम् ।
अपि चेत्तत्समा नारी तत्समः पुरुषोऽस्ति चेत् ।।९७।।
नरेन्द्रं नरशार्दूलं दृष्ट्वा क्षुब्धमना भवेत् ।
पूर्वे यद् दीयते वस्तु परे तस्माच्चतुर्गुणम् ।।९८।।
नानाविधोपहाराणि महादेव्यै निवेदयेत् ।
राजोपचारं दत्त्वान्ते स्तुत्वा नुत्वा विसर्जयेत्।।९९।।

उसको देखकर युवतियाँ मदनानन्द से आपूरित हो जाती हैं। उसके शरद के चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त मुखमण्डल का अवलोकन करके तथा विदग्धता चातुर्य भरे स्निग्ध अमृत जैसे वचनों से उन युवतियों की योनि से कामजल रिसनें लगता है। उसके समान सुन्दरी नारी अथवा पुरुष भी उतना सुन्दर तथा सर्वगुण सम्पन्न हो तो भी साधक रूप नरशार्दूल को देखकर उसका मन क्षुब्ध हो जाता है। अनुष्ठान के प्रारम्भ में जो वस्तु देवी को अर्पित की जाती है, अनुष्ठान के समापन काल में उसका चौगुना अर्पित करे। महादेवी को नाना प्रकार के उपहार अर्पित करना होगा। राजोपचार अर्पित करने के अनन्तर स्तुति प्रणामोपरान्त उनका विसर्जन कर देना चाहिए।।९६-९९।।

कालत्रयेऽप्यशक्तश्चेच्चतुर्थे सर्वथा प्रिये ।
अनश्नन् पूजयेद्रात्रौ भयनिद्रापराङ्मुखः।।१००।।
प्रातर्होमं प्रकुर्वीत तथा मध्यन्दिनेऽथवा ।
निद्राकालं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय च ।।१०१।।

दिवानिशोर्महादेवि नव मुहूर्तास्ततः परम्।
मुहूर्तत्रयमानं तु निद्रा देव्याः समीरिता।।१०२।।
अत्र निद्रापरां देवीं निद्रया समुपासयेत्।
निद्राकाले जपेद्यस्तु पूजयेद्वा विमोहितः।।१०३।।
स्वापकालं विना देवि दन्यत्र योऽबुधः।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम्।।१०४।।

हे प्रिये! यदि त्रिकाल पूजन का सामर्थ्य न हो तब चतुर्थ काल में (अर्द्धरात्रि के पश्चात् तथा सूर्योदय से पूर्व) पूजा करे लेकिन मध्य रात्रि में भोजन किये बिना भय निद्रामुक्त स्थिति में यह पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर प्रातः काल में होम करे। अथवा मध्याह्न में होम करे। अब मैं साधक के हितार्थ निद्राकाल कहता हूँ। हे महादेवी! दिन तथा रात्रि मिलाकर ९ मुहूर्त्त हैं। तीन मुहूर्त्त देवी की निद्रा के कहे गये हैं। तब देवी की उपासना निद्रा द्वारा करे। हे देवी! जो साधक देवी का पूजन विमोहवशात् निद्रा काल में मन्त्र जप आदि से करता है, अथवा जो मूर्ख निद्राकाल के बिना सोता है, उसकी आयु-विद्या-बल-यश ये चारों नष्ट हो जाते हैं।।१००-१०४।।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बोधकाले प्रबोधयेत्।
दर्शनं चावलोकं च सम्भाषं चान्यलोकनम्।।१०५।।
स्वयमावेशनं चैव मन्त्राणां पञ्चलक्षणम्।
विदित्वा प्रजपेन्मन्त्रं सर्वसिद्धिमुपालभेत्।।१०६।।
वेदसंध्यं त्रिसंध्यं वा द्विसंध्यं वाथ सुव्रते।
योगात्मा योगविज्ञानी योगमुद्रा समन्वितः।।१०७।।
अब्दमेकं जपेद्यस्तु ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
सहस्रं प्रजपेदादावन्तेऽपि च सहस्रकम्।।१०८।।
मध्ययोः प्रजपेद्विद्यां शेषं यत्समभागतः।
लक्षमेकं भवेद् देवि त्रिंश अब्दान्तरे तथा।।१०९।।

इसलिये सर्वप्रकार के प्रयास करके बोधकाल आने पर देवी को प्रबोधित करे। दर्शन, अवलोकन, सम्भाषण, अन्नयलोकन तथा स्वयमावेशन को मन्त्रों का पंचलक्षण कहा गया है। इन्हे जानकर मन्त्र जप से सर्वसिद्धि प्राप्त हो जाती है। हे सुव्रते! योगात्मा, योगविज्ञानी योगमुद्रा धारण करके ब्रह्मचारी रहकर एक वर्ष पर्यन्त चतुःसन्ध्या में, अथवा त्रिसन्ध्या में अथवा द्विसन्ध्या में जप करे। प्रारम्भ तथा अन्त की सन्ध्या में सहस्र-सहस्र जप करे। मध्य सन्ध्याद्वय

में बचे हुये का समभाग जप करे। हे देवी! एक वर्ष में एक लाख बीस हजार जप होता है। चतुःसन्ध्या में जप करने पर एक वर्ष में चौदह लाख चालीस हजार जप सम्पन्न होगा॥१०५-१०९॥

अस्तब्धाकुञ्चितं कार्यं न द्रुतं न विलम्बितम् ।
अक्षराक्षरसञ्चारिध्वनिमात्रं विभावयेत् ।।११०।।
मयाप्येतद् व्रतस्थेन जप्यतेऽद्यापि सुन्दरि ।
त्रिसंध्यं जप्यते ब्रह्म तत्पदप्राप्तिसिद्धये ।।१११।।
एवं क्रमाद्भवेत् सिद्धो भोगी भोगपरायणः।
एवं मासमृतुं चैव वत्सरं युगमेव च ।।११२।।
गमयेत् परमेशानि यद्वामन्वन्तरादिकम् ।
एतद्रहस्यं परमं न प्रकाश्यं कदाचन ।
समयाचारसङ्केतं भोगमोक्षफलप्रदम् ।।११३।।

जप को बीच में न रोके, न संकुचित ही करे, न शीघ्रता से जपे, न विलम्बित जपे । प्रत्येक अक्षर की ध्वनि का अनुभव होना चाहिये। हे सुन्दरी! मैं भी व्रत लेकर अभी भी जप करता हूँ। तत्तद् फल हेतु त्रिसन्ध्या जप करता हूँ। हे देवी! ऐसा जप मास-ऋतु-वत्सर-युग-मन्वन्तर पर्यन्त चलता रहे। यह परमरहस्य किसी को न बतलाये क्योंकि यह समयाचार साधन का संकेत तथा भोग मोक्षदायक है॥११०-११३॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे समयाचारसङ्केतवर्णन-
नामको द्वाविंशः पटलः सम्पूर्णः।।२२।।

॥ श्रीगन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवाद का समयाचार संकेत वर्णन
नामक २२ वां पटलः समाप्तः॥

◆

त्रयोविंशः पटलः

कुमारीपूजावर्णनम्

ईश्वर उवाच–

होमादिकं तु विफलं कुमारीपूजनं विना।
कुमारी पूजिता येन त्रैलोक्यं तेन पूजितम्।।१।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ऋषयो वासवस्तथा।
पितरश्चैव दिक्पाला गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः।।२।।
देवपत्न्यस्तथा नागा मातरः सिद्धचारणाः।
विश्वेदेवाः सयक्षाश्च राक्षसाश्चैव देवताः।।३।।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव सर्वभूतानि जन्तवः।
सर्वे ते तृप्तिमायान्ति कुमार्यो यत्र पूजिताः।।४।।

ईश्वर कहते हैं—कुमारी पूजन के अभाव में होमादिक क्रिया विफल हो जाती है।कुमारी पूजन जिसने भी किया उसने मानो त्रिलोकी का पूजन कर लिया। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र,ऋषि, इन्द्र, पितर, दिक्पाल, गन्धर्व, अप्सरायें, असुर, देवपत्नीगण, नागमातायें,सिद्धचारण,विश्वेदेव,यक्ष,राक्षस,देवगण,स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी और जीवजन्तु सभी वहाँ तृप्त हो जाते हैं जहाँ कुमारी का पूजन किया जाता है।।१-४।।

बह्वीनामप्यलाभे तु एकैव वरवर्णिनी।
प्रमदा यौवनोन्मत्ता सा भवेत् सुन्दरी परा।।५।।
अष्टाब्दावधि पञ्चाब्दात् पूजितव्या विधानतः।
कुमार्यै यज्जलं दत्तं तज्जलं सागरोपमम्।।६।।
यदन्नं दीयते तस्यै कुलाचलसमं प्रिये।
कुमारीपूजनं देवी कुमारीमनुना भवेत्।।७।।
यथा वा पूज्यते देवी पूजितव्यास्तथा तथा।
हेतुना भोजितव्यास्ताः पायसैर्मधुरान्वितैः।।८।।
बालप्रियैश्च नैवेद्यैस्त्रिपुरसुन्दरीधिया।
स्तुत्या नत्वाथ सन्तोष्य स्वाभीष्टं प्रार्थयेत्ततः।।९।।

अनेक कुमारीगण के अभाव में एक सुन्दरी, वरवर्णिनी, प्रमदा, यौवनोन्मत्ता कन्या परम पूज्या होती है। आठ वर्ष से लगाकर १३ वर्ष पर्यन्त की कुमारी का पूजन विधान पूर्वक करे। कुमारी हेतु जो जल प्रदान किया जाता है, वह सागर के समान हो जाता है। हे प्रिये! जो अन्न कुमारी को प्रदान करते है वह

कुलाचल पर्वत के समान हो जाता है! हे देवी! कुमारी का पूजन कुमारी मन्त्र के साथ करना चाहिये। कुमारी को पायस आदि खिलाये जो मधुर भोज्यपदार्थों से युक्त है। जो नैवेद्य बालकों को प्रिय है,वही नैवेद्य भक्षणार्थ कुमारी को त्रिपुरसुन्दरी समझते हुए प्रदान करे। उन्हे भोजन आदि से संन्तुष्ट करके उनसे अपनी इष्टसिद्धि हेतु प्रार्थना करनी चाहिए।।५-९।।

पूजितायाश्च तुष्टाया हस्ताद्भक्तियुतो नरः।
शिरसा प्रतिगृह्णीयादाशीर्वादयुताक्षतान् ।।१०।।
यद्यद्वदति सन्तुष्टा तत्तद्भवति निश्चितम् ।
इति ते कथितं देवि रहस्यं परमाद्भुतम् ।।११।।

पूजनोपरान्त उन्हे संन्तुष्ट करके कुमारी से(आशीर्वादरूप) अक्षतों को ग्रहण करे। संतुष्ट होकर कुमारी जो कुछ कहती है, वह सब निश्चितरूप से हो जाता है। हे देवी! यह परमरहस्यमय अद्भुत तत्व कहा है।।१०-११।।

विना तेन महेशानि न पूजाफलभाग्भवेत् ।
नित्यार्चायां च दीक्षायां पुरश्चर्यादिकेषु च ।।१२।।
आदौ पूर्णे च मध्ये च लक्षे पूर्णे विशेषतः।
कुमार्यः पूजितव्याश्च कुमारीनर्चियेद्यदि ।।१३।।
तस्य पूजाफलं सर्वं नीयते यक्षराक्षसैः।
न पूजयति चेत् कन्यास्तदा विघ्नैः प्रभूयते ।।१४।।
पूर्वार्जितफलं नश्येत् का कथा परजन्मनि ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।१५।।
पूजितव्या महाभागाः कुमार्यः परमेश्वरि ।
प्रातरुत्थाय पूजायां स्नानकालेऽथवा पुनः।।१६।।
संस्कृतासंस्कृता वापि हीनजात्युद्भवास्तथा ।
नमस्याः साधकेन्द्राणां कुलीनानां परार्चने ।।१७।।
ब्रह्मण्यर्पितचित्तानां नास्तीह भिन्नता क्वचित् ।
कुलपूजां विना देवि कुलदेवी पराङ्मुखी ।।१८।।

कुमारी पूजन के बिना पूजाफल नहीं मिलता। नित्य अर्चना, दीक्षा पुरश्चरण आदि में,उसके आदि -मध्य-अन्त में, एकलक्ष जपपूर्ण हो जाने पर कुमारी का पूजन विशेषतः करे। यदि इन सब अवसरों पर कुमारी की अर्चना नहीं की जाती, तब उस साधक का पूजा फल यक्ष-राक्षस छीन लेते हैं। यदि कुमारी का पूजन आदि नहीं किया जाता, तब पूजादि में अनेक विघ्न आ जाते हैं। उस साधक का

पहले का अर्जित पूजा फल नष्ट हो जाता है, भविष्य जन्म की क्या बात? यदि साधक सर्वप्रयत्न से अपना हित चाहे, तब उसे महाभागा कुमारी गण का पूजन करना चाहिये। कुलीन साधक प्रातः उठकर पूजाकाल में अथवा मध्याह्न स्नान के समय पुनः इनका पूजन करे। कुमारी संस्कृत हो अथवा असंस्कृत हो, हीन जाति में जन्मीं हो,सभी पूजनीय होती हैं। क्योकि जिन साधक का चित्त ब्रह्म को अर्पित है,वे कुमारी में यह सब भेददर्शन नहीं करते। हे देवी ! कुलपूजन के बिना कुल देवी साधक से पराङ्मुखी, विमुख हो जाती हैं।।१२-१८।।

परयोषा यदा भद्रे स्वयं तासां गुरुर्भवत्।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलभूषणा ।।१९।।
वेश्या नापितकन्या च रजकी योगिनी तथा।
नानावैदग्ध्यकुशलाः कलारूपगुणान्विताः।।२०।।
तासां रूपं च भावं च विलोक्यामर्षचेष्टितम्।
ब्राह्मण्याद्यष्टशक्तीनां नामभिः कृतशब्दिताः।।२१।।

हे भद्रे! यदि अन्य स्त्री की कुमारी के रुप में पूजा की जाये तब साधक स्वयं उसका गुरु हो जाता है। (?)। जो ब्राह्मणी,क्षत्रिया,वैश्या,शूद्रा जो कि कुलभूषणा हैं तथा वेश्या,नापित स्त्री, रजकी योगिनी, नर्तकी आदि यदि ये सब अनेक प्रकार से वैदग्ध कुशला हों कला,रूप तथा गुण युक्ता हों, तब साधक उनकी भंगिमा तथा चेष्टा को देखकर उन्हे ब्रह्माणी,वैष्णवी आदि अष्टशक्ति के रूप में उन-उन शक्तियों का नाम दे सकता है।।१९-२१।।

आसनं प्रथमं ताभ्यः स्वागतं च पुनः पुनः।
अर्घ्यं पाद्यं च पानीयं मधुपर्काचमनीयकम्।।२२।।
स्नपयेद् गन्धपुष्पाद्भिः केशसंस्कारमेव च।
धूपयित्वा तथा केशान् कौशेयं च निवेदयेत्।।२३।।
ततः स्थानान्तरे नीत्वा पीठमास्तीर्य भक्तितः।
संवेशयेद्विधानेन पूर्वादिक्रमयोगतः।।२४।।

अब कुमारी पूजन कहते हैं—पहले उन्हे आसन देकर पुनः-पुनः 'स्वागत' कहे। तदन्तर अर्घ्य,पाद्य,पानीयी, मधुपर्क,आचमनीय,प्रदान करके उन्हें स्नान कराये। (स्नानादि की व्यवस्था करे) तदनन्तर गन्ध पुष्प आदि द्वारा केश को संस्कार करे। केशों को धूपित करे। रेशम का वस्त्र निवेदित करे। तदन्तर इन्हे स्थानान्तर में (बैठने वाले कक्ष में) ले जाकर उन्हे भक्तिपूर्वक पीठपर बैठाये। उन्हे विधानानुसार पूर्वादिक्रम से बैठाना चाहिये।।२२-२४।।

नानालङ्कारभूषाद्यैर्भूषयित्वानुलेपनैः ।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।।२५।।
दुग्धं दधि घृतं तक्रं नवनीतं सशर्करम् ।
नारिकेलं कपित्थं च नागरङ्गकमुत्तमम् ।।२६।।
पिष्टकं पायसं चैव नानारससमन्वितम् ।
दत्त्वा सम्पूज्य विधिवत् स्तुतिभिस्तोषयेत्ततः।।२७।।

अनेक अलंकार द्वारा,अनुलेपन द्वारा उन्हे सजाकर गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य अर्पित करे। तत्पश्चात् दूध,दही,घृत मट्ठा,चीनी मिला मक्खन,नारियल, कैंथा,नारंगी,पिष्टक तथा अनेक रसयुक्त पायस द्वारा उन्हे पूजित करके स्तुतियों से उन्हे तुष्ट करे॥२५-२७॥

मातर्देवि नमस्तुभ्यं ब्रह्मरूपधरेऽनघे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ में ।।२८।।
माहेशि वरदे देवि परमानन्दरूपिणी ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।२९।।
कौमारि सर्वविद्येशि कुमारक्रीडने परे ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३०।।
वैष्णवि विष्णुरूपासि सर्वविघ्नविनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३१।।
वाराहि वरदे देवि परमानन्दरूपिणी ।
कृपया हर विघ्नं में मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३२।।
इन्द्राणि वरदे देवि गजस्कन्धस्थिता ह्यसि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३३।।
चामुण्डे मुण्डमालास्त्रक्चर्चिते भयनाशिनि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३४।।
महालक्ष्मि महामोहक्षोभसन्ताहारिणि ।
कृपया हर विघ्नं मे मन्त्रसिद्धिं प्रयच्छ मे ।।३५।।
मितिमातृमयि देवि मितिमातृबहिष कृते ।
एके बहुतरे देवि विश्वरूपे नमोऽस्तु ते ।।३६।।
एतत् स्तोत्रं पठेद्यस्तु कर्मारम्भेषु संयतः।
विदग्धाश्च समालोक्य तस्य विघ्नं न जायते ।।३७।।

स्तुति यह है- हे माता। हे देवी। ब्रह्मरुपधारिणी। कृपया विघ्नों को दूर करके मन्त्रसिद्धि दीजिये। हे माहेशी, वरदायिनी देवी! हे परमानन्दरूपा! कृपया

मेरे विघ्नों का हरण करके मन्त्रसिद्धि प्रदान करिये। हे कौमारी! सर्व विद्याओं की ईश्वरी! कुमार क्रिड़नपरे! कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मन्त्रसिद्धि प्रदान करिये। हे वैष्णवी! आप विष्णुरूपा हैं। सर्व विघ्ननाशिनी हैं। कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करिये। हे वाराही! वरदे देवी! हे परमान्दरूपा! कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मुझे मन्त्र सिद्धि प्रदान करें। हे इन्द्राणी!वरदेवी! आप हाथी पर स्थित हैं, कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करे। हे चामुण्डे! हे मुण्डमाला तथा रक्तचर्चित भयनाशिनी! कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। हे महालक्ष्मी! हे महामोह क्षोभदि के विस्तार का हरण करनें वाली! कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। हे प्रमाण एवं प्रमातृरूपे तथा इन दोनो सीमा से परे देवी! कृपया मेरे विघ्नों का हरण करके मुझे मन्त्रसिद्धि प्रदान करें। आप एक तथा बहु दोनो हैं। आप विश्वरुपिणी को नमस्कार! यह स्तोत्र पाठ करके संयत होकर कर्मारंभ में विदग्ध कुमारीगण का दर्शन करके जो कर्मारंभ करता है उसे विघ्न नहीं होते॥२८-३७॥

आचम्य मुखवासेन ताम्बूलं च निवेदयेत्।
ततो दद्यात् पुनर्माल्यं गन्धचन्दनपङ्किलम्।।३८।।
यदि क्रीडापरास्तास्तु भवन्ति भाग्ययोगतः।
क्रीडयेत् क्रीडनैः सर्वाः क्रीडारसपरायणः।।३९।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षितव्याः सदा प्रिये।
यथा तु नमिताः प्राज्ञे भक्तिभावपरायणैः।।४०।।

स्तुति के अनन्तर साधक कुमारीगण को मुखवास से आचमन कराकर उन्हें ताम्बूल निवेदित करे। तदन्तर गन्ध-चन्दन से लिपटी माला पहनाये। यदि वे तब साधक के भाग्ययोग से क्रीड़ापरायण हो जायें, तब उनके साथ क्रीड़ारसपरायण होकर क्रीड़ा करे। हे प्राज्ञे, हे प्रिये। अब पूर्णप्रयत्न से वह सब करे जिससे वे नमित (करुणायुक्त) हो जायें॥३८-४०॥

स्वेच्छाऋतुमती या स्याद्गृहीत्वा रक्तमुत्तमम्।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरकस्तूर्यगुरुसंयुतम् ।।४१।।
स्वयम्भूकुसुमं दिव्यं फलं वा दिव्यमेव च।
गृहीत्वा पूजयेद् देवीं महात्रिपुरसुन्दरीम्।।४२।।
कुण्डगोलोद्भवं वापि नान्यत्र कुसुमं भवेत्।
मद्यं मांसं मुद्रा शक्तिः स्वयम्भूकुसुमं तथा।।४३।।

एभिरेव महेशानि प्रत्यक्षीक्रियते परा ।
द्रव्यसंशोधनं कृत्वा शक्तिशोधनसम्भवैः।।४४।।

जो स्वेच्छा से (अपने आप) ऋतुमती हो जाये तब उसके उत्तम रक्त को गोरोचन,कर्पूर,केसर,कस्तूरी,अगुरु से मिश्रित करके उस स्वयम्भु कुसुम तथा दिव्यफल द्वारा महात्रिपुरसुन्दरी का पूजन करे। यह पुष्प कुण्ड(रज) तथा गोल(वीर्य) का होता है। अन्य कुसुम यहाँ गृहीत नहीं होते। मद्य,मांस,मुद्रा,शक्ति (स्त्री) रज तथा वीर्य द्वारा परादेवी प्रत्यक्ष होती हैं। द्रव्यसंशोधन करके शक्तिशोधन द्वारा संभव जो पदार्थ हैं, उससे देवी त्रिपुरा का पूजन करके साधक असाध्य को भी साधित कर लेता है।।४१-४४।।

सम्पूज्य त्रिपुरां देवीसमाध्यमपि साधयेत् ।
अन्या यदि न गच्छन्ति निजकन्यानुजात्मनः।।४५।।
अग्रजा मातुलानी तु माता वा तत्सपत्निका ।
वयसा जातितो वापि हीना रक्ष्याः स्वसा यथा ।।४६।।
पूज्याः कुलवरैः सर्वैर्निजाहङ्कारवर्जितैः।
स्वयमक्षोभितो भूत्वा मूलयोगं न चाचरेत् ।।४७।।
मूलयोगकृतामायुःसिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम् ।
सर्वाभावे ह्येकतरा पूजनीया प्रयत्नतः।।४८।।
संस्कृतासंस्कृता वापि बन्धकी वाथ निष्पतिः।
पूर्वाभावे परा ज्ञेया तदंशा योषितो यतः।।४९।।
एका चेत् कुलशास्त्रज्ञा लभ्या कुलविशारदैः।
पूर्जाहा सा तदा देवि भोगमोक्षप्रसाधिका ।।५०।।
एका च युवती यत्र पूजिता चावलोकिता ।
तदा देव्यश्च सर्वाश्च पूजितं सर्वदैवम् ।
इति ते कथितं देवि न प्रकाश्यं कदाचन ।।५१।।

यदि अन्य स्त्री न मिले तब अपनी कन्या, छोटी बहन, बड़ी बहन, मामी, माता या मौसी का पूजन करते हैं। वयसा, जाति से हीना स्त्रीगण की भी शक्तिरुपेण रक्षा करे जैसे अपनी बहन की। अंहकार वर्जित होकर सभी कौलमार्गी इनकी पूजा करें। साधक को स्वयं क्षोभित होकर मूल योग का आचरण नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त स्त्रीगण के साथ (सिद्ध होने पर भी) मूलयोग (पांचवाँ) न करे। अन्यथा आयुनाश हो जाता है।

हे देवी। यदि सभी भाव की शक्ति (पूजार्थ) न मिलें,तब एक ही पूजा करे। भले ही वह संस्कृत हो अथवा असंस्कृत,वन्ध्या हो अथवा विधवा,उसे लिया जा सकता है। यदि पहले वाली न मिलें, तब बाद-बाद वाली को ग्रहण करे। सभी स्त्रीगण उन परत्रिपुरा का ही अंश हैं। यदि कौलविशारद हेतु कुलशास्त्र की ज्ञाता एक ही स्त्री मिले, तब वह पूजा की अधिकारिणी हो जाती है। वह भोग-मोक्ष दोनो देती है। जब एक भी शक्ति की पूजा की जाती है तब उसी से सभी देवता-देवी पूजित हो जाते हैं। हे देवी! तुमसे कुमारी पूजा का रहस्य कह दिया। यह किसी को भी नहीं बताना चाहिए।।४४-५१।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुमारीपूजनविधाननिरूपण नामकस्त्रयोविंशः पटलः सम्पूर्णः।।२३।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में कुमारी पूजन विधान निरुपण नामक तेइसवाँ पटल समाप्त ।।

◆

चतुर्विंशः पटलः

कुमारीपूजामहिमानिरुपणम्

ईश्वर उवा–

एवं यः कुरुते पूजां नित्यं भक्तियुतो बुधः।
कन्दर्पसदृशः स्त्रीषु गौरीपतिरिवापरः।।१।।
स एव सुकृती लोके स एव कुलभूषणम्।
धन्या च जननी तस्य धन्यस्तस्य पिता खलु।।२।।

ईश्वर कहते है-जो बुद्धिमान व्यक्ति नित्यभक्ति से युक्त होकर देवी पूजन करता है वह स्त्रीगण के मध्य कामदेव तथा द्वितीय शिव के समान शोभित हो जाता है। वही इस लोक मे सुकृति है तथा अपने कुल का भूषण रुप है। उसके माता-पिता धन्य हैं॥१-२॥

दैवी कला भवेत् तत्र मम तुल्यो महामतिः।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशो जायते नांत्र संशयः।।३।।
वह्निरिव रिपोर्हन्ता इन्दुरिवं सुखप्रदः।
पितृदेवसमः शास्ता शुचौ शुचिसमः खलु।।४।।
बृहस्पतिसमो वक्ता धरणीसदृशः क्षमी।
वक्त्रे सरस्वती तस्य लक्ष्मीस्तस्य सदा गृहे।।५।।
तीर्थानि तस्य देहे वै न च तस्य पुनर्भवः।
धनेन धननाथः स्यात् तेजसा भास्करोपमः।।६।।
बलेन पवनो ह्येष दानेन वासवोपमः।
गानेन तुम्बुरुः साक्षान्नित्यं येन समर्चिता।।७।।
एकाहमपि देवेशि महात्रिपुरसुन्दरीम्।
न पूजयेत्तथा तस्मात् प्रायश्चित्तं समाचरेत्।।८।।

वह दैवी कला से सम्मान तथा मेरे समान महामति हो जाता है। वह अणिमादि अष्टसिद्धियों का सिद्धीश भी हो जाता है,यह निःसंदिग्ध है। वह अग्नि के समान शत्रुओं का नाश करने वाला, तथा(बन्धु मित्रों हेतु) अग्निवत् शीतल प्रतीत होता है। वह ब्रह्मदेव जैसा उपदेशक तथा अग्नि के समान पवित्रता से सम्पन्न हो जाता है। बृहस्पति के समान वक्ता,पृथ्वी के समान क्षमावान होता है। तथा उसकी जिह्वा में सरस्वती एवं गृह में सदैव लक्ष्मी विराजित रहती हैं। उसकी देह मे समस्त तीर्थ स्थित हो जाते हैं। उसका पुनर्जन्म नही होता। वह कुबेर जैसा धनयुक्त,भाष्कर जैसा तेजस्वी,गायन में तुम्बुरु

गन्धर्व, बल में वायुदेव तथा दान में इन्द्रवत् हो जाता है। हे देवेशी यदि साधक भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के पूजन में एक दिन भी व्यतिक्रम करे, तब उसे प्रायश्चित करना ही होगा ॥३-८॥

उपोष्यैव चाधिवासं कृत्वा पूजां परेऽहनि ।
गुरुं सम्पूज्य विधिवत् तदा पूजां समापयेत् ।।९।।
कुमार्यै भोजनं दत्त्वा विप्रानपि च भोजयेत् ।
अत ऊर्ध्वं पुनर्दीक्षां लक्षजापं समाचरेत् ।।१०।।

उपवास–अधिवास करने के अनन्तर तथा देवी की पूजा (समाप्ति) के अगले दिन गुरु का विधिवत् पूजन करके पूजा सम्पन्न करे। कुमारी भोजनोपरान्त ब्राह्मण भोजन तदनन्तर पुनः दीक्षा ग्रहण एवं मन्त्र का एक लाख जप करे ॥९-१०॥

महात्रिपुरसुन्दर्या योगिनीनां तथैव च ।
द्व्यहं वाथ त्र्यहं वापि पूजाशून्यं करोति यः।।११।।
सिद्धिहानिर्भवेत् तस्य योगिनीशापमालभेत् ।
चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशो बलम् ।।१२।।
तस्य मांसं च शुक्रं च रूपशोणितमेव च ।
अभीष्टानपि कामांश्च हिंसन्ति योगिनीगणाः।।१३।।
बन्धुभिः कलहो घोरः कलत्रैश्च विशेषतः।
सस्यशून्या भवेदुर्वी विघ्नस्तस्य पदे पदे ।।१४।।

एक बार पूजा प्रारंम्भ करके जो साधक महात्रिपुरसुन्दरी तथा योगिनीगण का पूजन २ अथवा ३ दिन न करके व्यतिक्रम करता है, उसे सिद्धि तो मिलना दूर की बात है, वह योगिनीगण के शाप का भागी हो जाता है। उसकी आयु-विद्या-यश -बल ये चारो नाश को प्राप्त हो जाते हैं। योगिनीगण उसके रक्त-मांस-शुक्र-रुप-शोणित तथा अभिष्ट कामनाओ का ध्वंस कर देती हैं। उसका बन्धुओं से कलह, पत्नी से विशेष रुप से कलह होता है। उसके खेत फलस से शून्य हो जाते है।उसे पग-पग पर विघ्नो का सामना करना पड़ता है॥११-१४॥

सत्यं सत्यं भवेद्रोगी दरिद्रश्चोपजायते ।
इहैव दुःखमाप्नोति त्रिविधं लोमहर्षणम् ।।१५।।
परे स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षितिप नायकः।
अतुलां भक्तिमासाद्य कैवल्यं लभते ततः।।१६।।

ब्रह्मचिन्ताप्रवृत्तो यः सोऽपहाय च दैवतम् ।
विना (ल?न)या प्रवर्तेत ब्रह्मघाती स एव तु ।।१७।।

यही सत्य है,सत्य है कि वह रोगी,द्ररिद्र हो जाता है। उसे इस जन्म में लोमहर्षक रूप से त्रिविध दुःख मिलते हैं। बाद में स्वर्ग से परिभ्रष्ट होकर वह पृथ्वी पर राजा होता है त्रिपुरसुन्दरी की अतुला भक्ति का लाभ करके कैवल्य लाभ भी कर लेता है।इस षोडशी देवता के बिना जो ब्रह्मचिन्तन न करे,वह ब्रह्मधाती है। (यहां यह स्पष्ट नहीं है कि कैसा साधक स्वर्ग से परिभ्रष्ट होता है? हो सकता है कि बीच के कुछ श्लोक लुप्त हो गये हों)।।१५-१७।।

जपध्यानपरो मन्त्री योगक्षेमपरायणः।
स्वयं यदि भवेन्मूढो गुरुं तत्र नियोजयेत् ।।१८।।
ज्ञानकर्मपरः शुद्धः सर्वदेवमय प्रभुः।
सिद्धयः सकलास्तस्य गुरुर्यस्य हिते रतः।।१९।।

यदि जपाध्यानतत्पर ,योगक्षेमपरायण मन्त्री स्वयं पूजा न कर सके (अक्षमतावशात्) तब उसे पूजनार्थ गुरु को नियोजित करना चाहिए। ज्ञान कर्मपर शुद्ध सर्व देवमय प्रभु गुरु जिस शिष्य के हित मे रत रहते हैं, समस्त सिद्धियां उस शिष्य को प्राप्त हो जाती हैं।।१८-१९।।

मासतो वर्षतो वापि स्वयं पुण्याहयोगतः।
कुर्याद्वै महतीं पूजां सम्पन्नाङ्गविभूषिताम् ।।२०।।
उपहारैर्बहुविधैरलंकृतसुविग्रहाम् ।
नित्यमेवार्चनं देव्या नित्यमेव समाचरेत् ।।२१।।
नित्याचारपरो मन्त्री नैमित्तिक विधिं चरेत् ।
नित्यनैमित्तिकपरः साधुः काम्यं विचिन्तयेत् ।।२२।।
काम्यान्नैमित्तिकं नित्यं नित्यं नैमित्तिकात् परम् ।
नित्याचारविलोपी यः काम्यं नैमित्तिकं च वा ।।२३।।
करोति स च दुर्मेधा नाप्नोति तस्य तत्फलम् ।
नित्याचारमनादृत्य यदन्यत्तु समीहते ।।२४।।
निष्फलं तस्य तत्कर्म वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ।
अपि पुष्पफलैर्वापि पूजयेच्चक्रदेवताः।।२५।।

साधक एक-एक मास या वर्ष में शुभ अवसर पर महापूजा आयोजित करे। उसे तब नानाविध आभूषण तथा उपहारों द्वारा देवी के अंग तथा विग्रह को सजाना चाहिए। देवी की नित्य पूजा करने वाले साधक को चाहिए कि वह बिना

व्यतिक्रम देवी पूजन तत्परता से करता रहे। उसे (समय-समय पर)नैमित्तिक पूजन भी करनी चाहिए।जो साधु-साधक नित्य तथा नैमित्तिक,दोनो पूजन करता है वह काम्यविधि का भी अनुष्ठान करे।काम्य की अपेक्षा नैमित्तिक तथा नैमित्तिक की अपेक्षा नित्य का (महत्व अधिक होने के कारण) वह अवश्य करनी चाहिए। जो नित्य पूजा का त्याग करके काम्य अथवा नैमित्तिक पूजन करता है उसे इनसे कोई फल नहीं मिल सकता। वह दुर्बुद्धि इनसे किसी भी फल की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। उसका यह सब कर्म उसी प्रकार निष्फल है मानो बन्ध्या से मैथुन। चक्र देवताओ का पूजन पुष्प एवं फल से करे।।२१-२५।।

अङ्गहीनं तु पुरुषो न सम्यग्याज्ञिको भवेत् ।
अङ्गहीना तथा पूजा न सम्यक्फलदायिनी ।।२६।।
ध्यानं पूजा जपो होम इति हस्तचतुष्टयम् ।
शरीरं न्यासजालं तु आत्मा तज्ज्ञानमेव च ।।२७।।
भक्तिं शिरोऽत्र हृच्छ्रद्धा कौशलं नेत्रमीरितम् ।
एवं यज्ञशरीरं तु मत्वा साधकसत्तमः।।२८।।
यज्ञं समापयेन्नित्यं साङ्गमेव खलु प्रिये ।
अङ्गीहीने महान् दोषस्ततोऽङ्गं नावधीरयेत् ।।२९।।
सर्वाङ्गपूर्णपुरुषो यज्ञाख्यः सर्वसिद्धिदः।
तत्तदीहापरा शक्तिः सिद्धिः संयोगतस्तयो ।।३०।।
श्रीमतत्रिपुरसुन्दर्याः पूर्णे यज्ञशरीरके ।
अङ्गबाधे यथा दोषो नान्यस्य हि तथा भवेत् ।।३१।।
स्वविभवा(न्न?नु)रूपा वै पूजा कार्या विभूतये ।
व्यतिक्रमात् तु हीनः स्याद् ब्रह्महत्यामवाप्नुयात् ।।३२।।
नाधिकं नैव च न्यूनमुभयं पापदायकम् ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पूर्णायां मासमध्यतः।।३३।।
महाभूतदिने वापि यजेद् विभवविस्तरम् ।
कृष्णयाथ चतुर्दश्या युक्तं कुजदिनं यदा ।।३४।।
महाभूतदिनं तत्तु सर्वभूतवशङ्करम् ।
यदि पुष्यो भवेत् तत्र तदानन्तफलप्रदम् ।।३५।।

जो अंगो से हीन (यज्ञांग से हीन) यज्ञ करता है,उसे सम्यक् याज्ञिक नहीं कहते। अंगहीना पूजा भी सम्यक् फल दात्री नहीं होती। ध्यान-पूजा-जप-होम ये चार अंग कहे गये है। न्यास जाल उसका शरीर है। ज्ञान उसकी आत्मा है। भक्ति

शिर है,श्रद्धा हत्प्रदेश है, कौशल(विधि-विधान का कौशल) उसका नेत्र है। इसी प्रकार से यज्ञ शरीर को जानकर साधक प्रवर को चाहिए कि वह यज्ञ को अंगो के साथ करे। अंगहीन यज्ञ महान दोषरूप होता है। किसी भी अंग को छोड़ना उचित नहीं है। इस प्रकार से इन अंगो से युक्त जो है उसे ही सर्वसिद्धिदाता यज्ञ कहते हैं। श्रीमत् त्रिपुरसुन्दरी के पूर्ण यज्ञशरीर में अंग हानि होने पर जितना अधिक दोष होता है, वैसा दोष अन्यत्र अंगहीनता से नहीं होता। साधक को विभूति हेतु (काम्यकर्मादि हेतु) अपनी धन सम्पत्ति के अनुरूप (सामर्थ्य के अनुसार) पूजा करनी चाहिए। (वित्तशाठ्य न करे अर्थात सामर्थ्य होने पर भी न्यूनता न करे)। इसका व्यतिक्रम करके जो पूजा की जाती है, उससे साधक हीन तथा ब्रह्महत्या जैसे दोष का भागी होता है। न अधिक पूजा करे, न सामर्थ्य से कम पूजा करे। अर्थात् सामर्थ्य से अधिक पूजा भी विहित नही है। चतुर्दशी,अष्टमी, मासमध्य की पूर्णिमा अथवा महाभूत दिन मे विभवविस्तार के साथ पूजन करे। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यदि मंगलवार पड़े,तब वह महाभूत दिन कहलाता है। यह सभी भूतसमूह (प्राणीगण) को वशीभूत कर लेती है। यदि उस दिन पुष्यनक्षत्र हो, तब तो अनन्तफल होगा ॥२६-३५॥

मन्त्रं यदि श्मशाने तु शवोपरि यथाविधि ।
अथवा प्रजपेद् देवीं मातृकां नीलरूपिणीम् ।। ३६ ।।
कृत्वा जप्त्वा तदा कुर्याद् भूतप्रेतपिशाचकान् ।
तान् वशीकृत्य तल्लोको तथेह तैः सहाग तः।। ३७ ।।
वशीकृत श्रिया युक्तो मोदते पुत्रपौत्रकैः।
यथा तथा गृहे बाह्ये कृत्वा जप्त्वा नरो बुधः।। ३८ ।।
राक्षसान् किंन्नरान् कृत्वा तल्लोके च तथेह च ।
तैश्च प्रमुदितो भोगी भोगान् भुङ्क्ते यथेच्छया ।। ३९ ।।
निजगृहे सदा यस्तु पवित्रे सुमनोहरे ।
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो यक्षान् सर्वान् वशं नयेत् ।।४०।।
भुक्त्वा च मुदितो लोके धनी धनविशारदः।
धनप्राणो धनात्मा च सुखं तदनुचिन्तनात् ।।४१।।
अनुभूय तदानन्दं तदिहापि विराजते ।
नदीनदसमीपे तु पितृपीठेऽथवा प्रिये ।।४२।।
कृत्वा जप्त्वा च तल्लोके तथेह तैः प्रमोदितः।
कामात्मा कामरूपी च कामी काममनोहरः।।४३।।

कामयित्वाखिलान् कामान् कामराज इवापरः।
राजते सततं राजा राजभिश्चैव वाजिभिः।।४४।।

अब पूजा स्थान कहते है- यदि श्मशान में शव के उपर स्थित होकर जप करे,अथवा नीलरूपा मातृकादेवी का जप करे तब जापक भूत-प्रेत पिशाच आदि लोको में गमन करके उनको वशीभूत करके ले आता है तथा लक्ष्मी से युक्त होकर पुत्र-पौत्रगण के साथ मोदित होता है। इसी प्रकार गृह में अथवा गृह के बहिर्देश में भी जपानुष्ठान द्वाराबुद्धिमान साधक राक्षस-किन्नरों को उनके लोक से ले आता है और उनके साथ प्रमुदित होकर भोगों को इच्छानुरूप भोगता है। जो अपने घर के मनोहर सुन्दर पवित्र कक्ष में वह इस लोक में धनी-धन,विशारद, धनप्राण,धनआत्मा होकर धनचिन्तन द्वारा उसके आनन्द का अनुभव भी करता है तथा विहार करता है। हे प्रिये! नदी-नद के पास श्मशान में पूजा-जपादि से वह उन यक्ष आदि के लोको में जाकर पृथ्वी पर भी आनन्दयुक्त,कामात्मा,कामरुप मनोहर होकर अपनी सभी मनोकामनाओं की पूर्ति करके द्वितीय कामदेववत् शोभित होता है। वह राजा रुप में राजाओं तथा घोड़ों से घिरकर पृथ्वी पर विराजित रहता है।।३६-४४।।

पुण्यक्षेत्रे महापीठे पुण्यवृक्षसमीपके ।
कृत्वा जप्त्वा नरो मानी मान्योऽयं यमलोकराट् ।।४५।।
सर्वदा यं लोके यं राजते सिद्धिभूमिषु ।
मानुषत्वं विना सिद्धिः पुनः परमदुर्लभा ।।४६।।
यस्मात् तत् सर्वलोकानां भोगप्रत्यक्षदायकम् ।
प्रफुल्लकुसुमाकीर्णे उद्यानेऽतिमनोहरे ।।४७।।
प्रफुल्लकुन्दसम्मोदप्रपूरितदिगन्तरे ।
वृक्षमूलेऽथवा जप्त्वा कृत्वाहस्तं स्वमस्तके ।।४८।।
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा गीतनृत्यविशारदः।
गन्धर्वान् किंन्नरान् कृत्वा तल्लोके च तथेह तैः ।।४९।।
आनन्दं परमं लब्ध्वा गीतनृत्यादिगोचरम् ।
तदानन्दमये रम्ये मोदते तत्प्रसादतः।।५०।।

पुण्य क्षेत्रो में तीर्थादि में,महापीठों में जैसे कामरुप पीठों में तथा पुण्यवृक्षो के समीप (पीपल आदि)अर्चन-जप से मनुष्य माननीय,सर्वसमाज में आदर का पात्र तथा यमलोक तक का राजा हो जाता है। वह लोकों में सदैव विजय पाता रहकर सिद्धभूमियों में विराजित हो जाता है। मनुष्यत्व के अभाव में सिद्धि नहीं

मिलती। यह मानव शरीर ही सब लोको में प्रत्यक्ष भोगदायक है। खिले पुष्पो से भरे उद्यान में,जो अतीव मनोहर हों,जहाँ उनके पुष्पो की सुगन्ध सर्वत्र प्रसारित हो रही हों वहां पूजनादि लाभकारी होता है। वृक्ष के नीचे (जड़ के पास) अपने हाथ को मस्तक पर हाथ रखकर जप करने से साधक गन्धर्ववत्,रूपयुक्त तथा गीत-नृत्य विशाद हो जाता है। वह गन्धर्व किन्नरों को उनके लोक में वश करके,भूतल पर भी उनके साथ नृत्यगानादि का परम-आनन्द प्राप्त करके उनकी कृपा से (देवी कृपा से) गन्धर्व लोक का आंनद प्राप्त करता है।।४५-५०।।

नागलोकसंधिभूमौ वने गिरिगुहासु च ।
कृत्वा जप्त्वा सदा देवीं नागान् सर्वान् वशं नयेत् ।।५१।।
तैः सह मुदितः प्राज्ञस्तल्लोके च तथेह च ।
भुङ्क्ते बहुविधान् भोगान् नागलोकप्रतिष्ठितान् ।।५२।।
परकीये यदा यत्र पश्यन्नच्छविलोकिते(?)।
कृत्वा जप्त्वा नरो धर्मादाक्षरं लोकमाप्नुयात् ।।५३।।
तानेव वशगान् कृत्वा तल्लोके च तथेह च ।
मोदते सततं वीरः सुरासुरविचेष्टितैः।।५४।।

नागलोक, सन्धिभूमि, वन,गुफाओं में देवी पूजन तथा मन्त्र जप करके साधक समस्त नागगण को वश में कर लेता है। वह प्राज्ञ साधक उनके साथ मुदित होकर उस लोक में तथा इस लोक में आनन्द से नागलोक के भोग समूह का भोग करता है। परकीय (पुण्य क्षेत्र,उपवन,वृक्षमूल,आदि स्थान)में जपद्वारा तथा पूजन द्वारा धर्मार्जन करके अक्षरलोक का भागी हो जाता है। वह वीराचारी वहां जीवो को वश में करके, वहाँ तथा पृथ्वी पर भी सुरों तथा असुरों की चेष्टाओं से मुदित होता है।।५१-५४।।

यत्र कुत्र महापीठे सौरे सूर्यविलोकने ।
कृत्वा जप्त्वा महातेजा भवरोगतमोपहः।।५५।।
उदेति सविता सूर्य सूर्यलोके तथेह च ।
वने सर्वान् वशे कृत्वा वशी वशंजयेज्जगत् ।।५६।।

किसी महापीठ पर सूर्यावलोकन करते हुये जप करने से भयरोग से छुटकारा मिल जाता है। वह इस अन्धकार से मुक्त हो जाता है। वह उदित सूर्यवत् प्रसिद्ध होता है। वह सूर्यलोक के तथा पृथ्वी के सब को वश में करके जगत् को वशीभूत कर लेता है।।५५-५६।।

पुण्यनद्या जलान्ते यस्तदन्तर्वा निरन्तरम् ।
सदा पुण्यजल स्नायी तत्पायी तद्विहारवान् ।।५७।।
कृत्वा जप्त्वा नरः प्राज्ञो ब्रह्मर्षिलोकसंज्ञके ।
ब्रह्मर्षिभिर्मुदा तत्र तथेह तत्प्रसादतः।।५८।।
भोगान् भुङ्क्ते स विप्रर्षिर्ब्रह्मघोषपुरः सरान् ।
महत्या च श्रिया युक्तो ब्राह्म्या चैवातिशुद्धया ।।५९।।

पुण्य नदी के तटपर,अथवा नदी के जल में खड़ा जप करने वाला,सदैव उसमें विहार करके जलस्नान करने वाला,उस जल का पान करने वाला, वहाँ जप करने वाला ब्रह्मर्षि लोक में उनकें साथ मुदित होता है। यह देवी की कृपा से होता है। इस लोक में भी वह विप्रर्षि गण के ब्रह्मघोष के साथ भोगों का भोग करता है। वह अत्यन्तशुद्ध महत् ब्रह्मर्षि आदि श्री से युक्त होकर राजाओं के साथ विहार करता स्थित रहता है।।५७-५९।।

राजते सततं राजा वाजिराजविहारवान् ।
देवतायतने नित्यपूजागृहे तथा ।।६०।।
देवताः प्रतिगृह्णन्ति देवतायतने कृताम् ।
उद्याने स्वसमा पस्थे गृहे चातिमनोहरे ।।६१।।
नित्यमावाहयेत् तत्र मधुपर्कादिभिर्यजेत् ।
देवांस्तत्र विजानीयात् तेषां सांनिध्ययोगतः।।६२।।
देवताभवनैस्तुल्ये शोभिते देवशोभया ।
निर्जने चातिशुद्धे च गन्धधूपोत्करे शुभे ।।६३।।
दीपदर्पणघण्टादिकुसुमोत्करभूषिते ।
देवपीठे महापुण्ये महत्युच्चगृहे तथा ।।६४।।
कृत्वा जप्त्वा नरो देवि कारयेद्वशगान् सदा ।
भावनावशसम्पन्नो नरो दिवि तथेह च ।।६५।।
दीव्यते देववद् देवो देवभोगविहारवान् ।
दिव्यदर्शी दिव्यरूपी दिव्यभोगविहारवान् ।।६६।।
देवैः सम्मानितो मानी देववद्विहरेत् क्षितौ ।
विमानगामिभिर्यनैर्गजवाजिपुरः सरैः।।६७।।

पवित्र मन्दिर में तथा अपने पूजा गृह में (नित्य जहां पूजन हो) किये गये जपादि को देवगण स्वीकार करते हैं। जब उद्यान में,(जो घर के निकट है) अथवा अत्यन्त सुन्दर गृह में पूजा की जाती है,तब वहीं नित्य अपने देवता का

आवाहन कर, उनका मधुपर्कादि से यजन करे। ऐसे स्थान में (आवाहन के कारण) देवता सदैव उपस्थित रहते हैं। देवताओं के सान्निध्य के कारण वह स्थान भी देवसदन की तरह देवशोभा से शोभित हो जाता है। निर्जन में,अति पवित्र गन्ध,धूप,दीप (स्वच्छ दीप) दर्पण, घण्टा, पुष्प से सजे स्थान में, देवपीठ अथवा अत्युच्च गृह में साधक पूजा-जप से सभी को वशीभूत कर लेता है। देवी की भावना से सम्पन्न मनुष्य स्वर्ग तथा मृत्युलोक मे देववत् होकर देवताओ के साथ देवभोगो में विहार करता है। वह दिव्यदर्शी, दिव्यरूपी,दिव्यभोगयुक्त होकर देवों द्वारा सम्मानित होकर मानसम्मानयुक्त होकर पृथ्वी पर देवरूपेण विहार करता है। वह हाथी घोड़ों युक्त होकर विमान वाले देवो द्वारा सम्मानित होता है।।६०-६७।।

शिवालये शिवक्षेत्रे शिवलिङ्गसमीपके ।
कृत्वा जप्त्वा शिवामोदी शिवलोके तथेह च ।।६८।।
मोदते सततं योगी युक्त शिवदकिङ्करैः।
विष्णुक्षेत्रे महापुण्ये विष्णुगेहे तदन्तिके ।।६९।।
वैष्णवं भावमाश्रित्य कृत्वा जप्त्वाथ साधकः।
वैष्णवान् वशगान् कृत्वा विष्णुलोके तथेह च ।।७०।।
मोदते सततं शुद्धः स्वयं विष्णुरिवापरः।
विष्णुपीठे परा सिद्धिः सद्यो देवत्वदायिनी ।।७१।।

शिवालय में शिवक्षेत्र (शिव तीर्थ) में, तथा शिवलिंग के निकट अर्चन जप करके परम आनन्द पूर्वक वह नित्य योगी, शिवलोक तथा इस लोक में कल्याणकारी किंकरो से युक्त होकर मुदित रहता है। महापावन विष्णुक्षेत्र (वृन्दावन,मथुरा इत्यादि) मे, विष्णु देवालय में, अथवा उसके निकट वैष्णव भाव का आश्रय लेकर जो साधक जप करता है, वह वैष्णवों को वश में करके निरन्तर शुद्ध रहता हुआ द्वितीय विष्णुवत् मुदित होता रहता है। विष्णुपीठ में साधन से परासिद्धि त्वरित रूप में मिलती है जो देवत्वप्रदायिनी है।।६८-७१।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुमारीपूजामहिमप्रयोगादि-
माहात्म्यनिरूपणनामकश्चतुर्विंशः पटलः सम्पूर्णः।।२४।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में कुमारी पूजा महिमा
नामक चौबीसवाँ पटल समाप्त ।।

◆

पञ्चविंशः पटलः

आपत्यकालपूजादिविधिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

पुण्यक्षेत्राणि वक्ष्यन्ते शृणु प्राधान्यतो मम।
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्।।१।।
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गम पावनं वनम्।
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरः।।२।।
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यं शिवालयम्।
अश्वत्थामलकीमूलं गोशाला जलमध्यतः।।३।।
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्।
गुरूणां सन्निधानं च चित्तैकाग्र्यस्थलं तथा।।४।।
सर्वेषामुत्तमं प्रोक्तं निर्जनं पशुवर्जितम्।
यत्र तत्र नरः पूजां निर्जने कुरुते तु यः।।५।।
तस्यै दत्ते शुभं देवि पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
श्रद्धा भक्त्योश्च बाहुल्यात् पूजाद्रव्यस्य विस्तरात्।।६।।

ईश्वर कहते है---अब मै पुण्य क्षेत्रो का वर्णन करता हूं। मुझसे उन्हें सुनो। पुण्यक्षेत्र (तीर्थ),नदीतट,पर्वतस्थ गुफा, पर्वत का शिखर, तीर्थप्रदेश, संगम , नदी संगम,पावनवन (जैसे चित्रकूट,पंचवटी,अमरकंटक आदि वन),एकान्तस्थ उपवन,बेल के नीचे,पर्वत के निकट की भूमि,तुलसीवन, नन्दी रहित शिवालय,पीपल-आवला के नीचे,गोशाला,जलमध्य का द्वीप,मन्दिर, समुद्रतट, अपनागृह,गुरु के पास, वह स्थान जहाँ चित्त में एकाग्रता हो एवं निर्जन पशु रहित हो। इनमे से सर्वश्रेष्ठ है निर्जन पशुरहित स्थली। हे देवी!इन सब पवित्र स्थानों में जो पूजन करता है,देवी भगवती त्रिपुरा के उद्येश्य से पत्र,पुष्प, फल, जल श्रद्धा भक्ति की अधिकता से देता है,भक्ति श्रद्धा के आधिक्य के कारण तथा पूजाद्रव्यों के विस्तार (आधिक्य) के कारण वह सब उसके लिये शुभ हैं।।१-६।।

देव्याः सन्निधिरत्र स्यान्निर्जने पूजनात् तथा।
वाराणस्यां सदा पूजा सम्पूर्णफलदायिनी।।७।।
ततस्तु द्विगुणा प्रोक्ता पुरुषोत्तमसन्निधौ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता द्वारावत्यां विशेषतः।।८।।
सर्वक्षेत्रेषु पीठेषु पूजा द्वारवतीसमा।
विन्ध्ये शतगुणा प्रोक्ता गङ्गायामपि तत्समा।।९।।

निर्जन स्थान में पूजा करने से देवी उसके निकट रहती है। वाराणसी में कृत पूजा सम्पूर्णफलदा होती है। पुरुषोत्तम विष्णु स्थल के समीप की गयी पूजा (संभवत:जगन्नाथ पुरी के लिए कहा गया है) उससे द्विगुणित फलदा है। उससे भी द्विगुणित फलदा है द्वारका में देवी पूजा। क्षेत्रों तथा पीठो में कृत पूजा का फल द्वारिका में कृत पूजा के बराबर ही होता है। विन्ध्यक्षेत्र में की गयी पूजा सौगुणित फलदा है। गंगा के पास पूजन से भी वही फल मिलता है।।७-९।।

आर्यावर्ते मध्यदेशे ब्रह्मावर्ते तथैव च ।
विन्ध्यवत् फलदा पूजा प्रयोगे पुष्करे तथा ।।१०।।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता करतोयानदीजले ।
तस्माच्चतुर्गुणफला नन्दिकुण्डे च पार्वति ।।११।।
ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता जल्पीशेश्वरसन्निधौ ।
तत्र सिद्धेश्वरीयोनौ ततोऽपि द्विगुणा मता ।।१२।।

आर्यावर्त,मध्यदेश,ब्रह्मवर्त्त में भी इतना ही फल पूजा से प्राप्त होता है। विन्ध्य के समान फल प्रयाग तथा पुष्कर में कृत पूजन से मिलता है। इससे चतुर्गुण फल है करतोया नदी के जल में पूजन से। हे पार्वती! नदी कुण्ड में की गयी पूजा इससे भी चतुर्गण फलप्रदा है। जल्पीशेश्वर के समीप पूजन से इससे चतुर्गुण फल प्राप्त होता है। वहाँ सिद्धेश्वरी योनी में कृत पूजा इसका भी दूना फल प्रदान करती है।।१०-१२।।

ततश्चतुर्गुणा प्रोक्ता लौहित्यनदपाथसि ।
तत्समा कामरूपे च सर्वत्रैव जले स्थले ।।१३।।
सर्वश्रेष्ठो यथा विष्णुर्लक्ष्मीः सर्वोत्तमा यथा ।
देवीपूजा तथा शस्ता कामरूपे सुरालये ।।१४।।
देवीक्षेत्रं कामरूपं विद्यतेऽन्यन्न तत्समम् ।
अन्यत्र विरला देवी कामरूपे गृहे गृहे ।।१५।।

इससे भी चौगुना फल शोणभद्र के जल में पूजन से प्राप्त होता है। कामरुप में जल-थल सर्वत्र की पूजा उतनी ही फलप्रदा है। जैसे देवताओ में विष्णु तथा लक्ष्मी सर्वोत्तम हैं, वैसे ही कामरूप में की गई पूजा के समान कोई पूजा नहीं है। कामरूप देवीक्षेत्र है। उसके कोई तुल्य कोई क्षेत्र नहीं है। अन्य स्थानो में तो देवी विरल हैं, लेकिन कामरूप में तो घर-घर में हैं।।१३-१५।।

ततः शतगुणा प्रोक्ता नीलकूटस्य मस्तके ।
ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता हारके शिवलिङ्गके ।।१६।।

ततोऽपि द्विगुणा प्रोक्ता दाक्षायण्याः स्वयोनिषु ।
ततः शतगुणा प्रोक्ता कामाख्यायोनिमण्डले ।।१७।।

नीलकूट के शिखर पर की गई पूजा इससे भी शतगुणित फल देती है। हारक शिवलिंग (शायद हाटक होना चाहिए) पर की गई पूजा उससे भी दूना फल देती है। दाक्षायणी की योनि में कृत पूजा उससे भी द्विगुणित फलदात्री है। कामाख्या योनिमण्डल में की गई पूजा उसकी अपेक्षा भी शतगुणित फल देती है।।१६-१७।।

कामाख्यायां महादेवीपूजां यः कृतवान् सकृत् ।
स चेह लभते कामान् परत्र शिवरूपता(म्)।।१८।।
न तस्य सदृशोऽन्योऽस्ति रिपुस्तस्य न विद्यते ।
वाञ्छितं समवाप्नोति चिरायुरभिजायते ।।१९।।

जिसने एक बार भी कामाख्यापीठ में पूजा किया है,वह इस लोक में इच्छापूर्ति हो जाने के अनन्तर मृत्युपरान्त शिवरूपता प्राप्त कर लेता है। ऐसे साधक के समान कोई पुरुष ही नहीं होता, वह शत्रुरहित हो जाता है। वह वांछित फल की प्राप्ति करता है और चिरायु हो जाता है।।१८-१९।।

वायोरिव गतिस्तस्य भवेदन्यैरबाधिता ।
संग्रामे शास्त्रवादे च दुर्जयः स हि जायते ।।२०।।
मूलमूर्तिर्महादेव्या योनिरूपा निगद्यते ।
तत्र सम्पूज्य तां देवीं पुनर्जन्म न विद्यते ।
पुण्यक्षेत्रमिति प्रोक्तं न प्रकाश्यं कदाचन ।।२१।।

उसकी गति वायु के समान होती है, कही भी बाधित नहीं होती। संग्राम,शस्त्रवाद में वह दुर्जय होता है महादेवी की मूल मूर्ति है योनिरूपा। हे देवी! वहाँ उनकी पूजा (कामाख्या में) करने पर पुनर्जन्म नहीं होता । मैंने जो पुण्यक्षेत्रों को बताया है,इसका प्रकाशन कभी न करना।।२०-२१।।

देव्युवाच–

संग्रामे सूतके चैव रोगभीतौ तथापदि ।
तदा किं स्यान्महादेव तदिह कथयस्व मे ।।२२।।

देवी कहती है—हे महादेव! युद्ध क्षेत्र ,सूतक,रोगभय तथा आपत्ति में क्या करें? हे महादेव!कृपया कहिये।।२२।।

ईश्वर उवाच–

अशौचं साधकेन्द्राणां नास्ति रोगभयं तथा ।
शुचीनां धर्मचर्याणामापदामुद्भवः कुतः।।२३।

यदि विघ्नो भवेद् देवि पूर्वकर्मनिबन्धनात् ।
तदैवं परमेशानि विधिं कुर्याद्विचक्षणः।।२४।।

ईश्वर कहते हैं- जो साधकेन्द्र है उसे अशौच तथा रोगभय नही रह जाता। पवित्र तथा धर्मचर्यापरायण के पास विपत्ति समूह कैसे आ सकेगें?हे देवी! हे परमेशानी! यदि साधक को पूर्व जन्मार्जित कर्मफल से विघ्न आते ही हैं,तब वह विचक्षणसाधक यह सब उपाय करे।।२३-२४।।

गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
एतैर्हीना तु या पूजा न सा कल्याणदायिनी ।।२५।।
पुष्पाञ्जलिं विधायाथ पूजयेच्चक्रदेवताः।
अष्टकोणं त्रिकोणं वा बैन्दवं परिपूजयेत् ।।२६।।

पंचोपचार रहित,गन्ध-पुष्प-धूप-दीप नैवेद्य रहित पूजा कदापि कल्याण-दायिनी नहीं होती। पुष्पाञ्जलि द्वारा चक्रदेवता का पूजन करना चाहिए। अष्ट कोण, त्रिकोण अथवा वैन्दव की पूजा करे।।२५-२६।।

एवं कृत्वा जपेद्विद्यां समर्प्य च विसर्जयेत् ।
कुमार्यै भोजनं दत्त्वा सम्पूर्णफलभाग् भवेत् ।।२७।।

तदनन्तर विद्या का जप करके उसके देवी का समर्पण करने के उपरान्त विसर्जन करे। तदनन्तर कुमारीगण को भोजन प्रदान करके सम्पूर्ण फल का भागी हो जाये।।२७।।

अथवाद्वैतभावेन आत्मानं तन्मयं स्मरेत् ।
अद्वैतभावसम्पन्नस्त्रिपुरीकृतविग्रहः ।।२८।।
आत्मन्येव यजेद् देवीमुपचारैर्यथाविधि ।
निजदेहाख्ययन्त्रं तु सर्वयन्त्रात् परं शिवम् ।।२९।।
आनन्दहृदयं कृत्वा सदा न्यासेन मानवः।
गुरून् नुत्वा विधानेन जपेद्विद्यामनन्यधीः।।३०।।

यदि साधक किसी कारण से बाह्यपूजा नहीं कर सकता, तब अद्वैतभावना करके आत्मा तथा देवी की तन्मयता का स्मरण करे। जब साधक अद्वैतभावपन्न हो स्वयं को त्रिपुरसुन्दरी विग्रह समझ जाता है, तब वह आत्मा में ही (स्वयं में ही) भावनारूप उपचारों से देवी की यथाविधि पूजा करे। स्वदेहाख्य यन्त्र ही सर्वयन्त्रों से परे शिव है। हृदय को आनन्दरूप करके न्यासोपरान्त गुरु को नमन करके विद्यानुसार अनन्यचित्त होकर मन्त्रविद्या का जप करे।।२८-३०।।

सुगन्धिपुष्पमालाभिः स्वर्णालङ्कारभूषणैः।
स्निग्धं सुमधुरं यन्त्रं कामरूपं मनोहरम् ।।३१।।

कृत्वा सुमङ्गलं देहे मृदुभाषणसस्मितम्।
अहिंसावृत्तिमाश्रित्य सर्वप्राणिहिते रतः।।३२।।

स्वयं को सुगन्धित पुष्प माला,स्वर्णालंकार से सजा करके इस प्रकार शरीर को ही स्निग्ध, सुमधुर कामरूप मनोहर यन्त्र (भावना से) बनाकर मृदुभाषण वाला तथा मन्द मुस्कान वाला हो जाना चाहिए। वह अहिंसा वृत्ति का आश्रय लेकर सब प्राणिसमूह के हित मे निरत हो जाये।।३१-३२।।

निजभावे सदा तिष्ठेद् देववद्विहरेत् क्षितौ।
दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।।३३।।
वीतरागभयक्रोधो मनोऽहङ्कारवर्जितः।
योषिदन्ते पुरश्चर्या कार्या रात्रौ न चान्यथा।।३४।।

वह सर्वदा अपने आप के भाव रहे, देवता के समान पृथ्वी पर विचरण करता रहे। दुख में तनिक भी उद्विग्नता न लाये, सुख मे भी वह विगतस्पृह जैसा रहे। वीतराग,भय-क्रोध निर्मुक्त स्थिति में मनस् अंहकार का भी त्याग करे। केवल पुरश्चरणार्थ रात्रि में स्त्री के साथ रहे, अन्यथा न रहे।।३३-३४।।

मनस्तुष्टौ समुत्पाते सिंहव्याघ्रसमाकुले।
परसैन्यागमे वापि कुर्यान्मानसपूजनम्।।३५।।
कारागारनिबन्धे वा पूजाद्रव्यविहीनकः।
इदं रहस्यं परममिदं स्वस्त्ययनं महत्।।३६।।

इस प्रकार मनःतुष्टि समुत्पन्न हो जाने पर भी यदि वह सिंह-व्याघ्रादि से पीड़ित हो जाये,दूसरो की सेना का आक्रमण होने पर, अथवा करागार में पूजा द्रव्यादि की उपलब्धि न हो सके, तब यह परम रहस्य की बात है, कि उसे देवी की मानस पूजा करनी चाहिए। यह कल्याण की बात है।।३५-३६।।

मन्त्रवेदमयं शुद्धं पूजाक्रममनुत्तमम्।
गोपयेद् यत्नतो दिव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम्।।३७।।
ज्ञानदं कामदं श्रेष्ठं सद्यः प्रत्ययकारकम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं नास्तिकाय कदाचन।।३८।।
एतज्ज्ञानात् परं ज्ञानी सद्यो भवति तत्क्षणात्।

यह पूजा अनुक्रम सर्वोत्तम तथा शुद्ध मन्त्रवेदमय है। (वेदमन्त्रमय) इस दिव्य सर्वसिद्धिप्रदायक पूजन को यत्नतः गोपनीय रखना चाहिए। इस ज्ञानद,कामद,श्रेष्ठ तथा सद्यः प्रत्ययकारक पूजन को जिस- किसी को अथवा नास्तिक को कदापि न प्रदान करे। इसे जानकर साधक तत्क्षण सद्यः परमज्ञानी हो जाता है।।३७-३८।।

देव्युवाच-

कथं तन्मानुषे लोके लोकानां दर्शनं भवेत् ।।३९।।
तत्कथयं महादेव लोकदेशविभेदतः।

ईश्वर उवाच-

मानुषे भारतं श्रेष्ठं तत्र च पुण्यदेशकम् ।।४०।।
लोकाः पुण्यपराः श्रेष्ठास्तेषां ज्ञानी विशिष्यते ।
ज्ञानपुण्यविहीनास्तु पिशाचा भोगतत्पराः।।४१।।
पशुप्रायजना म्लेच्छाः प्रेतलोकनिवासिनः।
तदस्तीति प्रमाणेन जानाति न समीहते ।।४२।।

देवी कहती हैं—हे महादेव! इन मनुष्य लोक मे उनका दर्शन कैसे हो?लोक-देश विभेद से कृपया बतायें। ईश्वर कहते हैं-मनुष्यलोक मे भारत श्रेष्ठ है। यहां पुण्य देश भी हैं। लोग पुण्यपरायण तथा श्रेष्ठ हैं। इनमे ज्ञानी विशेष होता है। जो ज्ञान-पुण्यविहिन भोगतत्पर हैं, वे पिशाचवत् हैं। वे पशुतुल्य म्लेच्छ हैं तथा प्रेतलोक के निवासी जैसे हैं। वे प्रत्यक्ष प्रमाण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं स्वीकार करते।।३९-४२।।

भुङ्क्ते बहुविधान् भोगान् भूतलोकप्रमाणकः।
भक्ष्याभक्ष्यं न जानन्ति कार्याकार्यमथापि वा ।।४३।।
वर्तन्तेऽविधिना यज्ञे भोगैर्मधुपुरस्कृतैः।
ते पुनरिह देवेशि निशाचरप्रमाणकाः।।४४।।

वे इसी लोक को प्रमाण मानकर (परलोक आदि नहीं मानते) अनेक प्रकार से भोग भोगते रहते हैं। भक्ष्य-अभक्ष्य,कार्य-अकार्य का ज्ञान उन्हे नहीं रहता। वे यज्ञविधि को नहीं जानते,मधुर भोगों को ही भोगते हैं। वे राक्षसों (राक्षस श्रेणी के लोगों) की ही बातों को प्रमाण मानते हैं ।।४३-४४।।

जीवनं धनमेवात्र धनचिन्तापरायणः।
धनसञ्चयकारी च दानभोगबहिष्कृतः।।४५।।
शिश्नोदरसुखे यस्तु केवलं वर्तते जनः।
यक्षलोकप्रमाणश्च यक्षलोके महीयते ।।४६।।
सदाचारमये देशे सदाचारविहारवान् ।
अरोगो रूपवान् भोगी पितृलोके महीयते ।।४७।।

उनके लिये जीवन है धन। वे सतत धनचिन्तापरायण बनें रहते हैं। वे दान नहीं करते,धन को भोगते भी नहीं अपितु (कंजूस जैसे) उसका संचय करते रहते हैं। वे केवल शिश्न तथा उदर मे ही लगे रहते हैं। (अर्थात कामवासना. तथा

भोजन मे ही लगे रहते हैं) वे यक्षलोक को प्रमाण मानते हैं तथा यक्षलोक को ही प्राप्त करते हैं। वहीं महीमान्वित होते है।।४५-४७।।

मध्यदेशे महापुण्ये देवनदीसमन्विते ।
पूज्यपूजकभावेन यज्ञायज्ञविशारदः।।४८।।
शुद्धान्तःकरणो विज्ञो मानुषलोकसूचकः।
भोगमोक्षप्रदे शुद्धे कृषमृगविचेष्टिते ।।४९।।
कर्तव्यमिति सर्वाणि श्रुतिस्मृतिमयानि च ।
कुरुते सततं भोगी दानभोगपरायणः।।५०।।
देववद् विहरेल्लोके देवलोकप्रमाणकः।
अथ त्रिगुणरूपिण्याः पीठे त्रैगुण्यहारिणि ।।५१।।
महादेव्या महापुण्ये गुह्ये वा प्रकटेऽपि च ।
निरानन्दैरथानन्दैर्दक्षिणोत्तररूपकैः ।।५२।।
अतदात्मा तदात्मा च योगी वा भोगसंयुतः।
निस्त्रैगुण्यो भवेद् देवि महादेवीप्रसादतः।।५३।।

सदाचारमय देश में सदाचारी होकर रहने वाला अरोगी-रूपवान होकर भोग भोगने के उपरान्त पितृलोक को प्राप्त होता है। वहीं पूजित होता है। देवनदी समन्वित महापवित्र मध्यदेश का निवासी पूज्य-पूजक भाववाला होकर तथा यज्ञ एवं अयज्ञ विशारद,शुद्ध अन्तःकरणयुक्त तथा विज्ञ और आदर्श बन जाता है। जहाँ काले मृग घूमते रहते है, वहां भी भोग-मोक्षद शुद्धदेश कहा गया है। वहां श्रुति-स्मृतिमय समस्त कर्तव्य करके भोगी व्यक्ति सतत् दान-भोग परायण होकर कर्म करके देवलोक की तरह इस लोक में भी विहार करता रहता है। हे देवी! त्रिगुणरूपा महादेवी का त्रैगुण्यहारी महान् पुण्यमय पीठ प्रकट तथा गुह्य दोनों ही है। दक्षिण तथा उत्तर रूपी निरानन्द तथा सानन्द रुप आनन्दमयी महादेवी से तादाम्य करके अभेदरहित होकर साधक योगी हो अथवा भोगी उनकी कृपा से त्रिगुण से परे हो जाता है।।४८-५३।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पुण्यपीठ-आपत्कालपूजादि-विधिनिरूपण नामकः पञ्चविंशः पटलः सम्पूर्णः ।।२५।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में पुण्यपीठ आपत्काल पूजा आदि विधिनिरूपा नामक पचीसवाँ पटल समाप्त ।।

षड्विंशः पटलः

गुरुलक्षण, दीक्षानिरूपणम्

देव्युवाच-

कीदृशो वा भवेच्छिष्यः कीदृशो वा भवेद्गुरुः।
कीदृशी वा भवेद् दीक्षा कथं कुर्याद्वद प्रभो ।।१।।

देवी कहती है— हे प्रभो! शिष्य तथा गुरु को कैसा होना चाहिये। दीक्षा कैसी हो,इसे कैसे दें? यह कहिये।।१।।

ईश्वर उवाच-

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि मन्त्रिणां हितकाम्यया ।
विनानया न चैव स्यात् सर्वमन्त्रफलं यतः।।२।।
ज्ञानं दिव्यं यतो दद्यात् कुर्यात् पापक्षयं यतः।
अतो दीक्षेति सा प्रोक्ता गुरुशिष्यौ वदामि ते ।।३।।
आदौ विद्यावतारोऽयं दक्षिणामूर्तिरव्ययः।
गुरुर्भूत्वैव भगवान् महाविद्यां ददाति वै ।।४।।
दिव्यो गुरुर्ऋषिः सोऽथ दिव्यां विद्यां प्रकाश्य च ।
दिव्यौघानकरोच्छिष्यान् वक्ष्येऽथ शृणु पार्वति ।
प्रकाशोऽथ विमर्शोऽन्यस्त्वानन्दोऽपर इत्यपि ।।५।।
नामभेदादहं लोकेऽकल्पयं दिव्यरूपतः।
त्रयस्तेभ्यः समुत्पन्नाः सिद्धाश्च त्रय एव ते ।।६।।
ज्ञानं सत्यं पूर्ण इति श्रीमुखास्ते समीरिताः ।
दिव्या मदन्तिके नित्यं सिद्धा भूमाविहापि च ।।७।।

अब मै दीक्षा का वर्णन करता हूँ, यह मन्त्रीगण के हितार्थ है। दीक्षा के बिना मन्त्रजप का फल नहीं मिलता। जो दिव्य ज्ञान देती है,पापक्षय करती है तभी इसे दीक्षा कहते हैं। अब मैं गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में बताता हूँ। सबसे प्रारम्भ में विद्यावतार अव्यय भगवान दक्षिणामूर्ति ही गुरु होकर महाविद्या प्रदान करते हैं। इन दिव्य ऋषि गुरु ने दिव्यविद्या का प्रकाशन करके दिव्यौघों को शिष्य बनाया। हे पार्वती! उसे सुनो। मैंने नामभेद से लोक में प्रकाश, विमर्श तथा आनन्द रूप त्रितत्व की कल्पना किया जो दिव्य हैं। वे तीन समुत्पन्न होकर दिव्यसिद्धत्रय प्रकाश,विमर्श एवं आनन्द सदैव मेरे पास रहते हैं। ये दिव्यौघ हैं। इन तीनो तत्वों से तब तीन सिद्धों की उत्पत्ति हो गई। इनका नाम है श्री ज्ञानश्री सत्य तथा श्री पूर्ण। इनको श्रीमुख कहा गया (अर्थात नाम के आदि में 'श्री

लगाया गया ।) ये ही सिद्धोघ हैं। ये मेरे पास तथा पृथ्वी पर उभय स्थान पर रहते हैं, जब कि दिव्यौघ केवल मेरे पास रहते हैं॥२-७॥

निवसन्ति ततस्तेभ्यः समभूवंस्त्रयस्तथा ।
स्वाभावः प्रतिभस्तद्वत् सुभगश्चेति नामतः।।८।।
ते भूमावेव सततं निवसन्ति मदात्मकाः।
प्रसन्नवदना सर्वे वराभयकरान्विताः।।९।।
द्विनेत्रा द्विभुजा एते ललिताकारसंयुताः।
मायालक्ष्म्यादिकास्तद्वदाख्या आनन्दनाथगाः।।१०।।
नवानां नवनामानि नवार्णानि पृथक् पृथक् ।
तानि सप्ताक्षरीयोगात् प्रत्येकं षोडशाक्षरम् ।।११।।
नित्याषोडशरूपाणि तानि ज्ञेयान्यनुक्रमात् ।
विमला जयिनी मध्ये पूज्या एवं वरानने ।।१२।।
नाम पर्यायतः प्राप्तं कालावाप्तमिति द्वयम् ।
प्रसिद्धं बाह्यतोऽन्यच्च त्रीणिनामानि साधके ।।१३।।
मनुष्यरूपसम्प्राप्तः सर्वतन्त्रार्थतत्त्ववित् ।
मन्त्रतन्त्रावता(वोथ?राय)विचराम्यहमेव सः।।१४।।

उनसे पुनः तीन उत्पन्न हुये-स्वभाव, प्रतिभा तथा सुभग। ये तीनों मुझसे एक होते हुये भी सतत् पृथ्वी पर रहते हैं। ये मानवौघ हैं। ये प्रसन्नवदन, हाथों में वरद-अभयमुद्राधारी, द्विनेत्र युक्त, द्विभुज तथा ललित आकार हैं। इनके नाम के आगे माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) लगाकर अन्त में आनन्दनाथ लगाना होगा। तीन दिव्यौघ, तीन सिद्धौघ, तीन मानवौघ-मिलाकर ९ होते हैं। इसप्रकार इनका मन्त्र है-

ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथ , ह्रीं श्रीं विमशनिन्दनाथ।
ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथ , ह्रीं श्रीं ज्ञानानन्दनाथ।
ह्रीं श्रीं सत्यानन्दनाथ , ह्रीं श्रीं पुण्यानन्दनाथ।
ह्रीं श्रीं स्वभावानन्दनाथ , ह्रीं श्रीं प्रतिभानन्दनाथ।
ह्रीं श्रीं सुभगानन्दनाथ ।

इस प्रकार इन ९ सिद्धों के नाम पृथक-पृथक ९ वर्णात्मक होते हैं। सप्ताक्षरी के योग से प्रत्येक षोडशाक्षर हो जाते हैं। (प्रत्येक में ९ अक्षर हैं। इनमें ७ अक्षर का योग यह है (ॐ ऐं ह्रीं. श्रीं. ह्सौः रहौः स्होः।) । ये षोडश अक्षर १६ नित्या हैं। (१६ नित्याओं का उल्लेख इस ग्रन्थ में पहले किया जा चुका है) श्री चक्रान्तर्गत इनका पूजन विमला एवं जयिनी के मध्य में करे। हे वरानने!

यह प्रसिद्ध है कि काल एवं अवाप्त नाम पर्यायवाची हैं। ये बाह्यतः तीनो भागो से ज्ञात हैं। मै सर्वतन्त्रवेत्ता हूं। मै स्वयं मनुष्य गुरू रूप धारण करके गुरूरूप में अवतरित होता हूँ।।८-१४।।

गुरुः शाक्तो भवेद् ऋद्ध्यै तदन्यो विपरीतदः।
गुरुः सर्वगुणोपेतो दोषैरस्पृष्टमानसः।।१५।।
अरोगी नातिवृद्धश्चसुवचा मिष्ट भाषणः।
सुन्दरः सुमुखः स्वच्छा लोभी च बहुमन्त्रवित्।।१६।।
असंशयः संशयच्छिन्निग्रहानुग्रहे प्रभुः।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारः सत्यवादी दृढव्रतः।।१७।।
आश्रम्याश्रमधर्मज्ञो मात्सर्यरहितः शुचिः।
अबहुमन्त्रदो वाग्मी जपपूजापरायणः।।१८।।
सर्वतन्त्रार्थवेत्ता च दयावान् न च हिंसकः।
यदृच्छालाभसन्तुष्टः शान्तो नियमवानृजुः।।१९।।
स्मेरपूर्वाभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्मवृत्तिता।
सन्तोषित्वमगर्वित्वमलोभित्वमनिन्दिता ।।२०।।
अपक्षत्वमवित्तेच्छा गुरुत्वं हितवादिता।
एवंविधो गुरुर्ज्ञेयस्त्वितरः शिष्यदुःखदः।।२१।।

शाक्तगुरु समृद्धि देता है। उससे भिन्न गुरु विपरीतता (असमृद्धि) देता है। गुरु सर्वगुणोपेत हो तथा दोष से स्पर्शित मानस वाला न हो। अरोगी हों। अतिवृद्ध न हो। सुवाणी, मिष्ट वाणी बोलने वाला हो। सुन्दर, सुमुख, स्वच्छ, लोभरहित एवं अनेक मन्त्रों का ज्ञाता हो। संशयों से मुक्त, संशयो का उच्छेद करने वाला, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, प्रभु, निर्द्वन्द्व, निरहंकारी, सत्यवादी, दृढ़व्रती आश्रमधर्मो का ज्ञाता, मात्सर्यरहित, पवित्र, बहुत से मन्त्रो को न देनें वाला, वाग्मी, जपपूजापरायण, सर्वमन्त्रार्थ-वेत्ता, दयावान, अहिंसक, जो मिल जाये उसी से संन्तुष्ट, शान्त, नियम पालक, सरल हो। वह मुस्कान के साथ बातें करने वाला, स्वच्छ, अकुटिल, संन्तोषी, अंहकारशून्य, लोभरहित, अनिन्दित, पक्षपात रहित, वित्तेच्छा रहित हो तथा जिसके उपदेशों में गरिमा हो, हित की बात कहे, ऐसा गुरु होना चाहिये। इससे विपरीत भाव का शिष्य गुरु शिष्य हेतु दुःखद होता है।।१५-२१।।

यथायोग्यगुणैः पूर्वैर्युक्तश्चातिप्रियंवदः।
विशुद्धदेहवदनः शुद्धाम्बरधरः शुचिः।।२२।।

विमुखः परनिन्दासु देवतादर्शनेषु च।
परान्नवनिताभूमिपीडासु विगतस्पृहः।।२३।।
दयान्वितः सर्वजने प्रेक्षाकारी जितेन्द्रियः।
आस्तिको गुरुभक्तश्च शुद्धि सुस्थिराशयः।।२४।।
अलुब्धः स्थिरमैत्रश्च गुरुवाक्यप्रमाणकः।
सर्वदा दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते।।२५।।

अब शिष्य लक्षण कहते हैं—सत् शिष्य पहले कहे गये गुणों वाला हो (जो गुरु हेतु कहा गया है।) वह प्रियवादी, विशुद्धदेह तथा मुखवाला, शुद्ध वस्त्रधारी, पवित्र, परनिंदा से विमुख, परदेवता (भगवती के अतिरिक्त अन्यदेवता) से विमुख हो। पराया अन्न, परायस्त्री, पराईभूमि, परपीड़न में इच्छा न रखने वाला हो। दयान्वित, प्रेक्षाकारी, इन्द्रियजित्, आस्तिक, गुरुभक्त, शुद्ध, युक्त, स्थिरमति, लोभहीन, स्थिर मैत्री रखनें वाला, गुरु वाक्य को प्रमाण माननें वाला होना चाहिये। मन्त्र तथा गुरु तथा देवता में दृढ़ भक्ति रखने वाला शिष्य उत्तम होता है। इससे विपरीत शिष्य गुरु हेतु दुःख देने वाला होता है।।२२-२५।।

एवंविधो भवेच्छिष्यस्त्वितरो दुःखकृद्गुरोः।
दीक्षाकालं विनिश्चित्य मुहूर्ते दोषवर्जिते।।२६।।
गुरुं समाश्रयेच्छिष्यः प्रसादाय समाहितः।
प्रसीद नाथ देवेति तथेति च कृतादरः।।२७।।
प्रणम्योपविशेत् पार्श्वे तथा गच्छेदनुज्ञया।
मुखावलोकी सेवेत कुर्यादादिष्टमादरात्।।२८।।
असत्यं न वदेदग्रे न बहु प्रलपेदपि।
कामं क्रोधं तथा लोभं मानं प्रहसनं स्तुतिम्।।२९।।
चापलानि च जिम्हानि कार्याणि परिदेवनम्।
ऋणदानं तथादानं वस्तूनां क्रयविक्रयम्।।३०।।

अब शिष्य का कर्त्तव्य कहते हैं—दीक्षाकाल का निश्चय करके जिस मुहूर्त्त में दोष न हो उसे निश्चित करके समाहित होकर गुरु के निकट जाना चाहिये। "हे प्रभो! हे देव! प्रसन्न हो जाइये।" कहकर उनका आदर करे। प्रणाम करके उनके चरणों के पास आसीन हो जाये। कहीं जाना हो, तब भी उनसे आज्ञा ले। उनका मुख देखकर (उनकों क्या चाहिये कौन सेवा वे चाहते हैं, यह उनके मुखभाव से जानें) सेवा करे। उनके आदेश का आदर करके पालन करे। गुरु से असत्य नहीं बोलना चाहिये। उनके सामने असत्य कदापि न कहे। गुरु के समक्ष

अधिक न बोले। गुरु से काम-क्रोध-लोभ-मान-प्रहसन-अपनी बड़ाई की बातें, चापल्य; कुटिलकार्य, परिवेदना, उन्हें ऋणदान, उनसे ऋण लेना, वस्तुओं का क्रय विक्रय कदापि न करे।।२६-३०।।

न कुर्याद् गुरुणा सार्धं शिष्योऽपि च कदाचन ।
यतो गुरुः शिवः साक्षात्त स्तुवन् प्रणन् भजेत् ।।३१।।
यथा देवे तथा मन्त्रे यथा मन्त्रे तथा गुरौ ।
यथा गुरौ तथा चात्मन्येवं भक्तिक्रमः प्रिये ।।३२।।
अवमन्य गुरोर्वाक्यं स्वबुद्ध्या कुरुते तु यः।
न कदाचिद्भवेत् सिद्धिर्मन्त्रैर्देवप्रपूजनैः।।३३।।
मन्त्रेण तस्य नियतं पूजां कुर्याद्यथोदितम् ।
आसनं शयनं वस्त्रं भूषणं पादुकां तथा ।।३४।।
छायां कलत्रमन्यच्च यद् गुरोस्तत् प्रपूजयेत् ।
गुरोः शय्यासनं पीठमुपानच्छत्रपादुकाम् ।।३५।।
स्नानोदकं तथा छायां लङ्घयेन्न कदाचन ।
गुरुं दृष्ट्वा भवेद् हृष्टः परमानन्दनिर्भरः।।३६।।

गुरु तो साक्षात शिव ही हैं, उनकी स्तुति करे, प्रणामादि करके सेवा करे। जो देवता है उसी प्रकार से उस के मन्त्र में, वैसे ही गुरु में तथा वैसे ही अपनी आत्मा के प्रति भक्ति रखे, अर्थात् इन तीनों में अभेदपूर्वक भक्ति करे। हे प्रिये! यही भक्ति का क्रम है। जो गुरुवाक्य की उपेक्षा करके मनमाना कृत्य करता है, अपनी बुद्धि से करता है, वह चाहे कितना ही मन्त्र जपे, देवादि की पूजा करे, उसे सिद्धि नहीं मिलेगी। मन्त्रोच्चारण से उनका पूजन नियत रूप से करना उचित है। यही नहीं उनसे सम्पर्कित आसन, शय्या, वस्त्र, आभूषण, पादुका, उनकी छाया, गुरुपत्नी का भी वैसा ही आदर सत्कार करे जैसा गुरु का करता है। गुरु शय्या, आसन, उनका पीठ, उपानह, छाता, खड़ाऊ, स्नान जल तथा गुरु की छाया का भी लंघन न करे। गुरु को देखकर दृष्ट तथा परमानन्द में भर जाना चाहिये।।३१-३६।।

भीतभीतः पदाम्भोजं पश्येच्चकितलोचनः।
उपदीकृत्य सर्वस्वं तदादिष्टं मुदान्वितः।।३७।।
कुर्यात् सर्वप्रयत्नेन यथा तुष्टो भवेत् तु सः।
सकृत् प्रणम्य दण्डवदिष्टदेवधिया गुरुम् ।।३८।।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः पूजाकोटिफलं लभेत् ।
यद्यत् प्रियतमं वस्तु भक्त्या तस्मै निवेदयेत् ।।३९।।

गुरु के चरणों को भययुक्त तथा चकित दृष्टि से देखे। अपना सब कुछ अर्पित करके उनके वचनों से मुदित रहना चाहिये। सर्वप्रयत्न से ही करे जिससे गुरु प्रसन्न हों करे। गुरु में इष्टदेवकी ही भावना करके यदि शिष्य एक बार भी प्रणाम काल में रोमांच से भर जाता है, तब उसे इष्टदेव के एक कोटि पूजन का फल प्राप्त होता है। गुरु को जो वस्तु पसन्द हो, वह उन्हें अर्पित करे॥३७-३९॥

अदत्त्वा गुरवे वस्तु यत्किंचिदिह भूतले ।
आत्मसात् कुरुते यस्तु स भवेद्योगिनीप(तिःशुः)।।४०।।
यदेव लभ्यते वस्तु भिक्षया वान्यचेष्टया ।
तन्निवेद्य तदादिष्टं स्वयं भुञ्जीत सादरम् ।।४१।।

जो कुछ भी इस भूतल पर है, वह गुरु को प्रदान करे। गुरु को अर्पित किये बिना यदि शिष्य उसका उपयोग करता है, तब वह साधक योगिनीगण के लिये पशु के समान है। शिष्य को जो भी खाद्य प्राप्त हो, भिक्षा से प्राप्त हो अथवा स्वचेष्टा से मिले, उस सब को गुरु को प्रदान करके उनके आदेश को लेकर तभी उसका उपयोग भोजनार्थ करे॥४०-४१॥

इदमेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतिः।
येन विशुद्धभावेन सर्वथात्मार्पणं गुरौ ।।४२।।
गुरुता शिष्यता चैव तयोर्वत्सरकालतः।
दापयेत् स्वकृतं दोषं पत्नी पापं स्वभर्तरि ।।४३।।
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुमाप्नोति निश्चितम् ।
सद्गुरुः स्वाश्रमे शिष्यं वर्षमेकं परीक्ष्य वै ।।४४।।
दीक्षाकालं ततः प्राज्ञो भावयेत् सुसमाहितः।
शरत्काले च वैशाखे दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा ।।४५।।
फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठेदीक्षा च मध्यमा ।
आषाढो माघमासश्च कनिष्ठौ सद्भिरादृतौ ।।४६।।
निन्दितः श्रावणश्चैत्रः पौषो भाद्रपदस्तथा ।
निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा ।।४७।।
विषुवायनयोर्द्वन्द्वे आषाढे मदनोत्सवे ।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा दिनं तत्फलपदं भवेत् ।।४८।।

यही सत् शिष्य का कर्त्तव्य है तथा गुरु की निष्कृति है कि वह सर्वदा गुरु के प्रति आत्मसमर्पण का भाव रखे। शिष्य तथा गुरु का ऐसा गुरुत्व तथा शिष्यत्व एक वत्सर पर्यन्त रहता है। जैसे पत्नी का स्वकृत पाप पति को लगता

है, उसी प्रकार शिष्य द्वारा अर्जित पाप गुरु को भोगना पड़ता है। अतः शिष्य पाप न करे।। सद्गुरु को अपने आश्रम में शिष्य की एक वर्ष पर्यन्त परीक्षा लेनी चाहिये। (परीक्षा में सफल होने पर) समाहित होकर उसके दीक्षाकाल को प्राज्ञगुरु निश्चित करें। शरतकाल तथा वैशाख में प्रदत्त दीक्षा श्रेष्ठ फलप्रदा होती है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष तथा ज्येष्ठ मास की दीक्षा को मध्यमा कहते हैं। आषाढ़ एवं माघ को सत् लोगो ने कनिष्ठ माना है। श्रावण तथा पौष मास दीक्षार्थ निन्दित है। लेकिन इन निन्दित महीनों में भी ग्रहण के दिन प्रदत्त दीक्षा को शुभ कहा जाता है। यदि उत्तरायण-दक्षिणायन के उभय सन्धिकाल में,आषाढ़ में, मदनोत्सव के काल में सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण हो, तब वह दीक्षार्थ शुभ है।।४२-४८।।

मन्त्रारम्भं सुधी कुर्याच्छुक्लपक्षे शुभेऽहनि ।
रवौ गुरौ सिते सोमे कर्तव्यं बुधवासरे ।।४९।।
पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा ।।५०।।
पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे स्वोदये राशितारयोः।
गुरुशुक्रोदये शुद्धे लग्ने द्वादशशोभिते ।।५१।।
चन्द्रतारानुकूले च स्थिरे दीक्षा शुभा प्रिये ।
त्रिविधा सा भवेद् दीक्षा मान्त्री शाक्ती च शाम्भवी ।।५२।।
मन्त्रार्चनासनस्थानध्यानयोगादिभिः कृता ।
मान्त्री दीक्षा च सा प्रोक्ता यथाशास्त्रोक्तरूपिणी ।।५३।।
सिद्धे स्वशक्तिमालोक्य तया केवलया शिशो ।
निरुपायकृता दीक्षा शाक्तीयं परिकीर्तिता ।।५४।।
अभिसन्धिं विनाचार्यशिष्ययोरुभयोरपि ।
देशिकानुग्रहेणैव शिवताव्यक्तिकारिणी ।।५५।।
शिष्टा तु शाम्भवी दीक्षा शिवावेशनकारिणी ।
अज्ञानाद् विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात् ।।५६।।

सुधी साधक को मन्त्र का आरंभ शुक्लपक्ष के शुभ दिवस में करना उचित है।रवि,गुरुवार,शुक्र,सोम तथा बुध को दीक्षा प्रदान करे। पूर्णिमापंचमी,द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी तथा दशमी इस कार्य हेतु प्रशस्त तथा सर्वकामप्रदा हैं। हे प्रिये! जो काल पंचाग द्वारा शुद्ध कहा गया हो, राशि तथा तारा भी उदित अवस्था में हों, गुरु शुक्र भी उदित हों,लग्न शुद्ध तथा राशि का स्वामी द्वादश भाव में, तारकादि अनुकूल हों, हे प्रिये! तब दीक्षा शुभ होती है। दीक्षा त्रिविध

है, मान्त्री,शाक्ति तथा शांभवी। इसे मन्त्रार्चन,आसन, स्थान,ध्यान, योग आदि द्वारा सम्पन्न करते हैं। अब मान्त्री का वर्णन सुनों। इसमें शास्त्रोक्त विधि होती है। शास्त्र के मन्त्रो को शिष्य को गुरु द्वारा प्रदान किया जाता है। शाक्ती में अन्य उपाय की कोई भी आवश्यकता नहीं होती। सिद्ध अपनी शक्ति से, उसका अवलोकन (शक्ति का) करके शिष्य रूप शिशु को शक्ति से सम्बद्ध कर देता है। (इसे शक्तिपात भी कहते हैं)। शांभवी मे शिवता की अभिव्यक्ति होती है। इसमे शिवावेश तत्काल हो जाता है। यह देशिक के अनुग्रह से होता है। मन्त्र वह है जो अज्ञान से तथा संसार बन्धन से छुटकारा कराये। सम्पूर्ण विज्ञान युक्त एवं सिद्धिदाता हो।।४९-५६।।

यतः करोति संसिद्धयै मन्त्र इत्युच्यते तदा ।
भूमेः परिग्रहं कुर्याद्यथोक्तं ते मया पुरा ।।५७।।
शल्यादिशोधनं कुर्याद् याज्ञे विधिविधानतः।
विप्रशिषा वेदघोषैर्मङ्गलाचारपूर्वकम् ।।५८।।
वास्तोर्बलिं प्रकुर्वीत मण्डलं रचयेत् तथा ।
सर्वमङ्गलसम्पत्त्यै विदध्यादङ्कुरार्पणम् ।।५९।।
गुरुः कालं विनिश्चित्य प्रागेव सप्त वासरान् ।
शिष्यानुकूलमन्त्रेण पूजयेत् परदेवताम् ।।६०।।

अब स्थान विधि कहते हैं—पहले बतलाई गई लक्षण की भूमि का परिग्रह करे। वहीं विधिवत शल्यादि का शोधन करे। (भूमिगत शल्य आदि का शोधन करे)। विप्रों की आशीष, वेदमन्त्रों का घोष,तथा अन्य उपचार सम्पन्न करने के उपरान्त वास्तुबलि प्रदान करे। तत्पश्चात् मण्डल रचना करे। सर्वमंगल प्राप्ति के लिये अंकुरारोपण करना होगा। शुभ मुहूर्त का गुरु निश्चय करके उस मुहूर्त के दिन पूर्व शिष्य हेतु उसके अनुकूल मन्त्र द्वारा परदेवता का पूजन सम्पन्न करे। पूजार्थ प्रारंम्भ में 'ॐ' बीच में चन्द्रमा का नाम युक्त करे और अन्त में नमः लगाये।।५७-६०।।

प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च रात्रौ रात्रीशनामभिः।
प्रोक्तान् बलींस्तु तेषां वै वितरेद्विधिना गुरुः।।६१।।
पूजां रात्रौ प्रकुर्वीत दिक्पालानपि पूजयेत् ।
तत्तद्ध्वजमधिष्ठाय तत्तद्वर्णविराजितम् ।।६२।।
पायसान्नैर्बलिं तेभ्यो दत्त्वातान् प्रार्थयेद् गुरु ।
धारायुक्तं वारिपात्रं तत्तन्मन्त्रानुमन्त्रितम् ।।६३।।
शिरस्याधाय देवेशि प्रदक्षिणमनुव्रजेत् ।
यज्ञं संरक्षयेद् दिव्यमादौ गुरुरनन्यधी ।।६४।।

शक्रादिसहिता देवाः पूजितास्तर्पितास्तथा ।
मखं रक्षन्तु सन्तुष्टा लोकपाला नमोऽस्तु वः ।।६५।।
मख ग्रहणपूर्वेद्युः सायमेव निवासनम् ।
गुर्वादिसहितो वासो रात्रौ नियमपूर्वकम् ।।६६।।

अब गुरु विधान से दिकपालों को बलि प्रदान करे। इनकी पूजा रात्रि मे करे। इनके अनुसार इनके विशिष्ट-विशिष्ट वर्णो वाले ध्वजों को अधिष्ठित करके पायसान्नबलि देकर गुरु को उनकी प्रार्थना करनी चाहिये। हे देवेशी! उन-उन दिक्पालों के मन्त्र से अभिमन्त्रित धारायुक्त जलपात्र शिखर रखकर गुरु उनकी प्रदक्षिणा करके उनसे यज्ञ की रक्षा करनें को कहे। रक्षार्थ मूलोक्त मन्त्र ''शक्रादि संहिता' से लेकर 'नमोऽस्तुव:' कहे । अंर्थ है इन्द्रादि समस्त देवगण एवं लोकपालगण पूजितर्पित होकर सन्तुष्ट होकर यज्ञरक्षा कार्य करें। यज्ञारंभ के एक दिवसपूर्व सायंकाल वहां गुरु के साथ अधिवास करे॥६१-६६॥

विधिवन्मण्डपं चारुवेदिकामध्यशोभितम् ।
पताकाध्वजसङ्कीर्णं वितानादिविभूषितम् ।।६७।।
विर्धूमशान्तसम्बुद्धदीपावलिभिरञ्चिम् ।
पुष्पाक्षतफलैः कुम्भैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ।।६८।।
तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ।
संवृतं कदलीस्तम्भैः पूगोपेतैरलंकृतम् ।।६९।।

अब मण्डप निर्माण कहते हैं। मण्डप का विधि विधान से निर्माण करे। मध्य में चारु सुन्दर वेदी हो। पताका ध्वज युक्त वितान आदि से भूषित हो। धूम्र रहित,शान्त,सम्बुद्ध दीपावलि से रंजित हो। पुष्प-अक्षत-फल,जलयुक्त घट,लावा भी वहां हो। वह वृक्षों के पत्तों के बन्दनवार से सज्जित हो। केले के खंम्भे लगे हों। वह पूगोपेत भी हो॥६७-६९॥

पञ्चगव्येन तद्देहं चक्रराजं शिशुं तथा ।
शोधयेन्मूलमन्त्रेण मन्त्रितेन वरानने ।।७०।।
समानं पञ्चगव्यानां कृत्वा भागं विशोधयेत् ।
मूलमन्त्रेम सम्मन्त्र्य कुशाग्रेणैव शोधयेत् ।।७१।।
तेन सर्वविशुद्धिः स्यात् सर्वपापनिकृन्तनम् ।
महापातकजातानि कृत्वा गव्यं पिबेद्यदि ।।७२।।
नाशयेत् पानमात्रेण इत्याहुर्वेदवेदिनः।
सुस्नातं शुद्धवेशं च शिष्यं सुस्थिरमानसम् ।।७३।।

आरात् विधिवद् यजेदनुदिनं गुरुः।
होमयेत् संस्कृते वह्नौ पायसैर्मधुराप्लुतैः।।७४।।

हे वरनाने! पञ्चगव्य से यज्ञगृह,चक्रराज तथा दीक्षित शिशु (शिष्य) का शोधन मूलमन्त्र से करना चाहिये। पञ्चगव्य में पांचो वस्तु-गोदुग्ध-गोमय, दही, घृत एवं गोमूत्र समान मात्रा में हों। इसे कुश के अग्रभाग से मूलमन्त्र का उच्चारण करते पूरे यागगृह में छिड़का जाये, फलस्वरूप सबकी शुद्धि तथा सर्वपाप नाश होता है।। इसे पीने मात्र से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह वेदविदों का कथन है। अच्छी तरह से स्नानं करके,शुद्ध स्थिर चित्त, शुभ वेषधारी शिष्य को सन्निकट स्थित कराकर गुरु प्रतिदिन होम करे। संस्कृत अग्नि में मधुराप्लुत खीर से हवन करना चाहिये।।७०-७४।।

आचार्यः कुण्डे विधिवत्सम्पूज्य परदेवताम् ।
मूलेनैव शिखां बद्धुवा ततः शय्यागतं शिशुम् ।।७५।।

आचार्य कुण्ड में पहले परदेवता की पूजा विधान के अनुसार करके मूलमन्त्रोच्चारण द्वारा शिष्य का शिखा बन्धन करके उस शिष्य (शिशु) को शय्यापर ले जाये।।७५।।

स्वप्नमानवमाश्रित्य स्वापयेत् पूर्वमस्तकम् ।
तारो हिलिद्वयं शूलपाणये द्विठईरितः।।७६।।
स्वप्नमानवमन्त्रोऽयं शयने परिकीर्तितः।
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने:।।७७।।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः।।७८।।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
मन्त्रेण स्वापकाले तु देवं प्रार्थ्य तत स्वपेत् ।।७९।।

अब गुरु स्वप्नमानव मन्त्र "ॐ हिलि हिलि ठः ठः" कहकर शिष्य का शिर पूर्व की ओर रखकर उसे सुलाये। यह मन्त्र शयनार्थ कहा जाता है। मन्त्रोच्चारोपरान्त मूलोक्त "नमोऽजाय"- से लेकर "महेश्वर" पर्यन्त कहे। मन्त्रार्थ है- अजन्मा त्रिनेत्र पिंगल महात्मा राम विश्वरुप स्वप्नाधिपति को नमस्कार। हे देव! समस्त कार्यो के सम्बन्ध में मुझे बताईये। हे महेश्वर! आपकी कृपा से कर्म सिद्धि मिलेगी। इस मन्त्र द्वारा-देव की प्रार्थना करके तब सो जाये।।७६-७९।।

स्वप्ने शुभाशुभं दृष्टं पृच्छेत् प्रातः शिशुं गुरु ।
गुरुणा वार्चनं कृत्वा उपवासी जितेन्द्रियः।।८०।।

दर्भशय्यागतो रात्रौ दृष्ट्वा स्वप्नं निवेदयेत् ।
कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम् ।।८१।।
कु(कुमं कृषयं?ञ्जरं वृषभं)माल्यं स्वर्णं च फलिनं द्रुमम् ।
पर्वतं च हयं मेध्यमाममांसं सुरासवम् ।।८२।।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
चाण्डालं गर्दभं काकं गर्तं शून्यममङ्गलम् ।।८३।।
तैलाभ्यक्तं नरं नग्नं शुष्कवृक्षं सकण्टकम् ।
प्रासादममतलं दृष्ट्वा नरो रोगमवाप्नुयात् ।।८४।।
दृष्ट्वा दुःस्वप्नकं चैवं होमात् सिद्धिमवाप्नुयात् ।
शुभे शुभं वदेत् तस्य जुहुयादशुभे शतम् ।
अस्त्रेणेति क्रमात् प्रोक्तो विधिः शिष्याधिवासने ।।८५।।

स्वप्न में शुभाशुभ देखकर प्रातः शिष्य रूपी शिशु गुरु से पूछे। गुरु की अर्चना करके जितेन्द्रिय होकर उपवास करे। कुश की शय्या पर सोकर गुरु से रात्रिदृष्ट स्वप्न को बताये। कन्या,छत्र,रथ,दीप,महल जो मंगलमय है,नदी, कुंकुम, हस्ति, वृष, माला, स्वर्ण, फल लगे वृक्ष, पर्वत, अश्व, पवित्र वस्तु, कच्चामांस, सुरा, आसव देखने से शिष्य को सिद्धि प्राप्त होती है। लेकिन चाण्डाल,गधा, कौआ, गढ़ा, शून्य अमंगलकारी होता है। तेल लगाये मनुष्य,सूखा वृक्ष,कांटेदार वृक्ष, अतल प्रासाद देखकर व्यक्ति रोगी हो जाता है। यदि साधक दुःस्वप्न देख लेता है, तब उसको होम करना चाहिये। इससे साधक को सिद्धि मिल जाती है। गुरु को चाहिये कि शुभ स्वप्न देखनें पर शिष्य को उसका शुभ फल बतलाये। अशुभ देखने पर अग्नि में 'फट्' मन्त्र द्वारा शत आहुति प्रदान करे। यह विधि शिष्य के अधिवासन में कही गयी है।।८०-८५।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे गुर्वादिलक्षणदीक्षानिरूपणनामकः षड्विंशः पटलः सम्पूर्णः।।२६।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में गुरु लक्षण दीक्षा निरुपण नामक छब्बीसवाँ पटल समाप्त ।।

◆

सप्तविंशः पटलः

दीक्षाविधाननिरुपणम्

ईश्वर उवाच-

अथ पूर्वानुसारेण नित्यं प्रातः समाप्य च ।
देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः।।१।।
आचार्यं वृणुयाद् भक्त्या ब्राह्मणानपि तोषयेत् ।
शिष्यः स्वलंकृतो मौनी पुष्पचन्दनभूषितः।।२।।
नानामङ्गलवाद्यैश्च ब्रह्मघोषपुरः सरम् ।
नारीणां मङ्गलाशीर्ब्राह्मणानां तथैव च ।।३।।
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैः सन्तुष्टः शुद्धमानसः।
दीपमालावलीरम्यं नानाधूपप्रधूपितम् ।।४।।
मण्डपं विधिवद् देवि पूर्ववत् प्रविशेद् गुरुः।
पूर्ववदपरं कृत्वासने समुपविश्य च ।।५।।

ईश्वर कहते हैं—अब पहले कहे गये विधान से शिष्य को प्रात:का नित्यकृत्य समाप्त करके देवता-पितर की अर्चना करके उन्हें तर्पणादि से सन्तुष्ट करके वस्त्रालंकार आभूषणों द्वारा आचार्य का वरण करे। साथ ही भक्तिपूर्वक अन्य ब्राह्मणवर्ग को भी सन्तुष्ट करे। तदनन्तर शिष्य अलंकृत,मौनी एवं पुष्पचन्दानादि से भूषिंत होकर नाना मंगल वाद्यों का तथा वेदमन्त्रो का उच्चारण करके उस मण्डल में प्रवृष्ट हो जाये । प्रवेश के समय जय समन्वित शब्दों से तथा उससे समन्वित स्तोत्रों से नारीगण तथा ब्राह्मण उसे आशीवर्चन कहते रहें। वहां रमणीक दीपावली जले तथा धूपादि से मण्डप को सुगन्धित करता रहे। पहले गुरु को पूर्व दिशा से मण्डप में प्रवेश करना चाहिये। तदनन्तर पूर्ववत् अन्य कृत्य सम्पन्न करके शिष्य आसनसीन हो जाये।।१-५।।

तथापरं च निर्वर्त्य कुङ्कुमेन वरानने ।
वेदिकायां वरारोहे सिन्दूरराजसाथवा ।।६।।
चक्रराजे तु लिखिते तन्मध्ये दर्भविस्तृते ।
सौवर्णं राजतं ताम्रं मणिकं च सुलक्षणम् ।।७।।
द्वात्रिंशदङ्गुलं कुम्भं विस्तारोन्नतिशालिनम् ।
क्षालयित्वास्त्र मन्त्रेण कुम्भं सम्यक् सुरेश्वरि ।।८।।
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमैरपि ।
दिव्यैर्द्रव्यैः सुसम्पूर्णं वासोयुग्मेन वेष्टितम् ।।९।।

अब कलश स्थापना कहते हैं—अब एक अन्य आसन कुंकुंम द्वारा निर्मित करे। हे वरारोहे! इसे वेदिका पर सिन्दूर अथवा पीले रंग के रज से बनाये। चक्रराज को लिखकर उसमें कुश बिछाये। कलश सुलक्षण हो, सुवर्ण-चांदी-ताम्र अथवा माणिक्य से निर्मित हो।यह ३२ अगुंल चौड़ा तथा उच्च हो। हे सुरेश्वरी! इस कलश को अस्त्रमन्त्र से जल द्वारा भलीभांति क्षालित करके उसमें चन्दन-अगुरु-कर्पूर-गोरोचन-कुंकुंम तथा बहुमूल्य द्रव्य रखकर भरे तथा उसे दो वस्त्रों से वेष्ठित करे दे।।६-९।।

नूतनं नेत्ररम्यं च पुष्पमालाद्यलंकृतम् ।
दधिचन्दनसंलिप्तं क्षिप्त्वान्तर्नवरत्नकम् ।।१०।।
मदयन्तीं सहदेवीं दूर्वां भस्म तथैव च ।
मृत्तिकाः सप्त विन्यस्तं पल्लवैः पञ्चभिर्युतम् ।।११।।

यह नवीन घट जो देखने मे रमणीक लगता है उसे पुष्प माला से सजाकर रखे। उस पर दधि एवं चन्दन का लेप करके तथा उसमें नवरत्न भी रख दे। मदयन्ती,सहदेई,दूर्वा, भस्म, सात प्रकार की मृतिका-यथा हाथीशाला,गौशाला, नदीसंगम, राजद्वार, दीमक की बांबी,घुडसाल तथा तालाब की मिट्टी रखे। वहां पाँचपल्लव भी रखे-यथा आम,पीपल,पाकड़,गूलर एवं बरगद।।१०-११।।

परितो वेष्टितं सूत्रै रक्तैश्चातिमनोहरैः।
यवानास्तीर्य पुषणि सुरद्रुमधिया गुरुः।।१२।।
मूलमन्त्रेण संस्थाप्य यजेदाधारपूर्वकम् ।
वह्निमण्डलरूपं तं कलाभिः सह पूजयेत् ।।१३।।
तथा सूर्यमयं कुम्भं कलाभिस्तत्र पूजयेत् ।
जलं सोममयं तद्वत् कलाभिश्च समर्चयेत् ।।१४।।

उस घट को चतुर्दिक रक्तसूत्र से बांधे (लपेट दे)अब गुरु को चाहिये कि यव एवं पुष्पों पर कल्पवृक्ष के फूलों की भावना करके वहां प्रसारित करे। मूलमन्त्रोच्चार के साथ आधार स्थापना करके उसी मन्त्र द्वारा वहां वह्निमण्डलाकृति उस कलश की पूजा वह्निकलाओं के साथ करे। उसमें जो जल है वह सोममय है, यह भावना करके सोमकलाओं के साथ उसका भी पूजन करे। ये तीनो ज्वलन्त तेज वह्नि,सूर्य तथा चन्द्ररुप हैं।।१२-१४।।

तेजस्त्रयमिदं प्रोक्तं ज्वलत्तदात्मकं स्मृतम् ।
पुष्पै रञ्जलि मापूर्यतस्मिन्नेव प्रदापयेत् ।।१५।।

पश्चिमोत्तररुद्रेन्द्रे पुष्पपातः शुभोऽशुभे ।
अष्टोत्तरशतं शान्त्यै जुहुयादस्त्रमन्त्रतः ।।१६।।
अथ प्रागुक्तविधिना यथाक्रममनुत्तमम् ।
कृत्वा सम्पूज्य विधिवदिष्ट्वा देवधिया गुरुः ।।१७।।

तदनन्तर गुरु को चाहिये कि वह पुष्पों को शिष्य की अंजली में रखकर उसकी आंखे बन्द करके उस अंजलि को मण्डप में छोड़ने को कहे। यदि वह पुष्प पश्चिम-उत्तर-ईशान तथा पूर्व में से कहीं गिरता है,, तब उसे शुभ मानते हैं। अन्य दिशा में पतित फूल अनिष्ट सूचक है। अनिष्ट सूचक के समनार्थ 'फट' मन्त्र द्वारा अग्नि में १०८ होम करे। तत्पश्चात् पूर्वोक्त विधान द्वारा क्रमशः कृत्य करके अंगावरण देवताओं का गुरु पूजन करे॥१५-१७॥

अङ्गावृतीः समभ्यर्च्य श्रपयित्वा चरुं ततः।
भागमेकं महादेव्यै शेषमग्नौ हुनेत्ततः ।।१८।।
अष्टोत्तरशतं साज्यं मधुरत्रितयान्वितम् ।
समिद्धेऽग्नौ महादेवीं ध्यात्वा सम्यक् प्रधानतः ।।१९।।
योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नावसमिद्धे च मानवः।
स मन्दाग्निः सामयो वा अल्पायुश्चोपजायते ।।२०।।
तस्मात् समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथंचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं तथा ।।२१।।
तथाबुधः सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने ।
यजमानो भवेदन्धः सपुत्रश्च विनश्यति ।।२२।।

अब चरुहोम कहते हैं- चरु को उष्ण करके एक भाग भगवती महादेवी त्रिपुरसुन्दरी को दे, शेष बचे की अग्नि मे आहुति प्रदान करे। यह आहुति चरु मे मधु-शर्करा, दुग्ध एवं घृत मिलाकर प्रज्वलित अग्नि में देवी का ध्यान करके १०८ बार देनी चाहिये। जो मानव ज्वालारहित अथवा धूमयुक्त अग्नि में आहुति प्रदान करता है, उसे मन्दाग्नि रोग,अन्य रोग ग्रस लेते हैं। वह अल्पायु होता है। अत: प्रज्वलित समिद्ध अग्नि में हवन करे। असमिद्ध में कदापि हवन न करे। तब आरोग्य,अत्यन्त अधिक धन,दीर्घ आयु की कामना वाला विद्वान साधक प्रज्वलित अग्नि में हवन करे। धूम युक्त अग्नि में जो यजमान होम करता है,वह अन्धा होकर पुत्रो के साथ नष्ट हो जाता है॥१८-२२॥

अप्र दीप्ते न होतव्यं मध्यमे नाप्यनेधिते ।
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ होतव्यं कर्मसिद्धये ।।२३।।

हुत्वा साङ्गा महेशानीं समाप्य तदनन्तरम् ।
कर्म पूर्वोक्तमाचर्य तरुणोल्लासवान् गुरुः ।।२४।।

अप्रदीप्त,मध्यम प्रदीप्त तथा ईधन बिना जो अग्नि है, उसमें कदापि हवन न करे। लेलिहान प्रदीप्त अग्नि मे आहुति देनें से कर्म की सिद्धि हो जाती है। महेशानी के लिये अंगो सहित पूर्वोक्त कर्म का समापन हो जाने के पश्चात तरुणोल्लासवान् गुरु शिष्य को बुलाये॥२३-२४॥

शिष्यमाहूय यत्नेन वाससाच्छाद्य तन्मुखम् ।
विशेषा घ्योंदकेनैव तमवीक्ष्य विधानतः ।।२५।।
कारुण्याम्बुनिधे देवि सर्वसम्पत्तिसंश्रये ।
शरण्ये वत्सलेमातः कृपामस्मिशिशौ कुरु ।।२६।।
आणव प्रमुखैः पाशैः पाशितस्य सुरेश्वरि ।
दीनस्यास्य दयाधारे कुरु कारुण्यमीश्वरि ।।२७।।
ऐहिकामुष्मिकैर्भोगैरभिसं बद्ध्यतामसौ ।
स्वभक्तिः सकला चास्मै दीयतां निष्कलाश्रये ।।२८।।

शिष्य को बुलाकर गुरु यत्नपूर्वक शिष्य का मुख वस्त्र से आच्छादित करे तथा विशेषार्घ्य जल द्वारा विधानपूर्वक उसके ऊपर जल निःक्षेप करे। उस समय गुरु को मूलोक्त श्लोक 'कारुण्याम्बुनिधेदेवि' से लगाकर 'निष्कलाश्रय' तक पढ़ना होगा। अर्थ है— हे करुणासागरे! समस्त ऐहिक आमुष्मिक भोग प्रदात्री दीन पर दया करो, आणवादी पाशत्रय से मुक्त करो! हे शरणागत रक्षिणी! आप सर्वसम्पत्ति प्रदात्री हैं, इस शिशु पर कृपा करो! हे वत्स के ऊपर कृपा करने वाली! इस निष्कल की आप ही आश्रय हैं। मुझे अपनी स्वभक्ति रुपिणी कला से आपूरित कर दो॥२५-२८॥

एवं प्रार्थ्य महादेवी मुद्रास्य हृदयाम्बुजे ।
शिष्याय श्रावयेद् दिव्यः शिवोऽहमिति भावयन् ।।२९।।
अन्तस्तमोपहं दिव्यं सिद्धान्तं श्रावयेद् गुरुः।
त्रिंशत्तत्त्व विश्वं स्थावरजङ्गमम् ।।३०।।
शरीरं चापि तत्वोत्थं तस्मिन्नेवद्विधा शिवः।
कञ्चुकितः शिवो जीवो निष्कञ्चुकः परःशिवा ।।३१।।
आत्मज्ञानमात्मविद्धिः पुरुषार्थः समीरितः।
वर्णात्मिकामहेशानि नित्याः शब्दाःप्रकीर्तिता ।।३२।।

महादेवी भगवती त्रिपुरसुन्दरी से एंवविध प्रार्थना करके गुरु स्वयं में (पूर्णाहंतारुप) यह भावना करे 'मै दिव्य हूं। मै ही शिव हूं।' तदनन्तर अन्तः का तम हरण करने वाला सिद्धान्त शिष्य को सुनाये, कि यह स्थावर तथा जंगमात्मक विश्व ३६ तत्वात्मक है। यह शरीर भी उसी से उत्पन्न हुआ है। इसमे शिव द्विधा (विभक्त) है। प्रथम है कञ्चुकित (पाशबद्ध) अर्थात जीव। द्वितीय है निष्कञ्चुक शिव अर्थात् पाशमुक्त परशिव। आत्मतत्वविद् के अनुसार आत्मज्ञान ही परमपुषार्थ है। हे महेशानी! शब्द जो हैं, वे वर्णात्मक हैं। शब्द भी नित्य हैं, वर्ण भी नित्य है॥२९-३२॥

अचिन्त्यस्त्विह मन्त्राणां प्रभावः समुदाहृतः।
सम्प्रदायपरिज्ञानं गुरुणां सिद्धिदायकम्॥३३॥
विश्वासाद्गुरुवाक्यानां सर्वसिद्धिरितीरिता।
प्रामाण्यं चात्र स्वनिष्ठं विश्वासः समुदाहृतः॥३४॥

(इनसे संगठित) मन्त्रों का प्रभाव अचिन्त्य कहा जाता है। गुरु सम्प्रदाय का परिज्ञान सिद्धिप्रद होता है। (अर्थात विधान का ज्ञान) गुरुवाक्य पर (आस्था रूप) विश्वास से सर्वसिद्धि की प्राप्ति होती है। गुरुवाक्य किसी प्रमाण से प्रमाणित नहीं किये जाते। वे स्वयं ही प्रमाण हैं। यह मानना ही विश्वास है॥३३-३४॥

गुरूणां चैव मन्त्राणां देवानामपि पार्वति।
मनःपवनयोश्चैवमेकत्वेन विभावनात्॥३५॥
अन्तरात्मपरिज्ञानमिति जानीहि पार्वति।
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे विभावयेत्॥३६॥
तस्याभिव्यञ्जका पञ्च मकाराद्याः प्रकीर्तिताः।
तैरेव यजनं तस्य गुप्त्या सिद्धिर्नचान्यथा॥३७॥
- प्राकट्याच्च भयं यस्माद् गोपयेन्मातृजारवत्।
अभेदभावनादार्ढ्यादाज्ञासिद्धिः समीरिता॥३८॥

हे पार्वती। गुरुदत्त मन्त्र, उसके देवता, शिष्य का मन एवं प्राण-इनका ऐक्य है, यह भावना करने से अन्तरात्मज्ञान साधित हो जाता है॥ आनन्द ब्रह्म का रूप है। उसकी भावना स्वदेह में करनी चाहिये। उसका अभिव्यञ्जक है पंचमकार। इनके द्वारा उसका यजन गुप्तरुप से करना चाहिये, अन्यथा सिद्धि नहीं मिलता। इसे प्रकट होने की आशंका बनी रहती है। तभी इसे वैसे गुप्त रखे जैसे व्यक्ति अपनी मां के जार (उपपति) का पता लग जाने पर भी उसे गुप्त रखता है। पहले जो ऐक्य भावना कही गई है, उससे आज्ञाचक्र सिद्ध हो जाता है॥३५-३८॥

न निन्देद् वामं न निन्देद् दर्शनानि च ।
निन्दाद्रोहादिकर्तृणां गणनां नैव कारयेत् ।।३९।।
रहस्यकथनं देवि सच्छिष्य एव नापरे ।
सदा विद्यानुसंधानं शिवभावेन तत्परः।।४०।।

न तो दक्षिण मार्ग की निन्दा करे, न वाम की। (षड्दर्शनादि) दर्शनों की निन्दा न करे। निन्दा तथा द्रोह करनें वालों की कोई गणना ही न करे (अर्थात् उन्हें कोई महत्व ही न दे)। हे देवी! रहस्यमय (साधना के) प्रंसगो को केवल सत्शिष्य से ही कहे, अन्य से न कहे। उसे सदैव विद्यानुसंन्धान (विद्या अर्थात् स्त्री देवता के मन्त्रों का) करना चाहिये। इस प्रकार शिवभाव में तत्प्र रहना चाहिये।।३९-४०।।

कामं क्रोधं तथा लोभं मदमोहौ तथैव च ।
हिंसां स्तेयं च मात्सर्यं यल्लोकेषु विगर्हितम् ।।४१।।
स्त्रीविद्वेषादिकं चैव वर्जयेन्ममितान् सदा ।
एक एव गुरुर्देवस्तस्यैवोपासनं सदा ।।४२।।

काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-हिंसा, स्तेय (चोरी) मात्सर्य आदि जो इस लोक में विगर्हित माने गये हैं तथा स्त्री से द्वेष आदि का मतिमान् साधक को सदैव वर्जन कर देना चाहिये। गुरु एकमात्र ही देवता हैं। सदा उनकी उपासना करे।।४१-४२।।

असंशयस्तु सर्वत्र निष्परिग्रहता मता ।
फलविरहितं कर्म त्यजेदनित्यमेव तत् ।।४३।।
पञ्चानामप्यलाभे तु नित्यं क्रम विमर्शनम् ।
निर्भयत्वं च सर्वस्माज्ज्ञेयं सर्वं हविः प्रिये ।।४४।।
स्वयमेव हि होतात्र आत्मा शिवस्तु पावकः।
आत्मलाभात्परं नास्ति फलं क्वापिच सुव्रते ।।४५।।
सैषाज्ञा परमा शैवी कथिता तव पार्वति ।
वेदादिसकला विद्या वेश्या इव प्रकाशिताः।।४६।।
सर्वेषु दर्शनेष्वेव विद्येयं खलु गोपिता ।
धीमांस्तत्रैव दीक्षेत सर्वथात्मविभूतये ।।४७।।

उसे सर्वत्र निःसंशय, निष्परिग्रह रहना चाहिये। फलांकाक्षा से रहित कर्म करे। जो नित्य नहीं है, अनित्य है- उसका त्याग करे।। पञ्च को प्राप्त करके उनका नित्य कर्म विमर्श करे (?)। हे प्रिये! सर्वत्र निर्भयता ही उसकी हवि है, आत्मा होता है, शिव अग्नि है। समस्त संसार भय को शिव में विलीन कर दे।

हे सुव्रते! आत्मलाभ से बढ़कर कहीं कोई फल नहीं है। हे पार्वती! यह शिव की परमा शैवी आज्ञा है। वेदादि की समस्त विद्या सर्वसुलभ है, जैसे कि वेश्या सर्वसुलभ होती है। लेकिन सभी दर्शनो में से यह विद्या अत्यन्त गुप्त है। आत्मविभूति लाभार्थ धीमान को उसी से दीक्षा लेनी चाहिये॥४३-४७॥

अथ शिष्यशिरोदेशे चरणं रक्तशुक्लयोः।
भावयित्वा वपुस्तस्य क्षालितं मांसबृंहितम् ॥४८॥
तदमृतैःस्रवद्भिश्च वह्निश्च कुर्याद् गुरुरुदारधीः।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ज्वलन्तीं ज्वलनच्छविम् ॥४९॥
प्रतीशष(?ष्टक)हरींकोटिसूर्यप्रकाशिनींपराम् ।
चन्द्रकोटिप्रभां शुद्धामज्ञानेन्धनदाहिकाम् ॥५०॥
तत्तद्रश्मिभिरेवास्य पापपाशांस्तु संदहेत्।
शिवोऽहमिति निश्चित्यवीक्षेत् करुणया दृशा ॥५१॥
सर्वपापविनिर्मुक्तं सर्वदोषविवर्जितम्।
पुनः स्वयं शिवो भूत्वा असंदिग्धमना गुरु ॥५२॥
शिवहस्तेन शिष्यस्य मन्त्रं शिरसि संस्पृशेत्।
जपोक्तक्रमतो योगी शिष्यदेहं प्रविश्य तु ॥५३॥
गृहीत्वा तस्य चात्मानमात्मना योजयेद् गुरुः।
स्वयं मन्त्रतनुर्भूत्वा संक्रामेन्मनसाऽऽदरात् ॥५४॥

अब शिष्य पाप दहन प्रसंग कहते हैं- अब शिष्य के शिरोदेश पर रक्त-शुक्ल (?) की भावना करनी चाहिये तब उदार बुद्धि युक्त गुरु को यह भावना करनी चाहिए कि "शिष्य का मांसमंय देह वहां से बहने वाले अमृत से आप्लावित हो गया है। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त प्रभायुक्ता, विपरीतता का हरण करनें वाली कोटि के सूर्य के समान प्रकाशयुक्त, कोटिचन्द्र के समान प्रभायुक्त, शुद्धा, अज्ञान रूप इन्धन को भस्म कर देनें वाली देवी अपनी रश्मियों से इस शिष्य के पाप रूप पाश को जला दें। " अब गुरुदेव 'शिवोऽहं' भावना से ओतप्रोत होकर करुणा से पूरित दृष्टि से शिष्य का अवलोकन करें तथा यह भावना करें कि वह समस्त पाप एवं दोष से रहित है। तब गुरु अंसदिग्ध मन से (निश्चित रुप से) स्वयं शिव होकर शिवहस्त द्वारा उसी मन्त्र द्वारा (जिसकी दीक्षा देनी है) शिष्य के शिरका स्पर्श करे। वह जप करते-करते गुरु को चाहिये कि शिष्य की आत्मा को अपनी आत्मा से युक्त करे। इसके लिये गुरु को भावना

करनी होगी कि वह शिष्यदेह में प्रवृष्ट है। इसके अनन्तर गुरु स्वयं मन्त्रतनु रूप होकर उसके मन से बाहर सादर आये॥४८-५४॥

ह्सौःवर्णकर्णिके शिष्य स्वरद्वन्द्वाष्टकेसरे ।
दिगष्टकस्थितंवंठंवर्गाष्टयुक्तदिग्दले ॥५५॥
चतुरस्रासने शुद्धे मातृकायन्त्रराजके ।
निवेश्य सादरं देवि कलशामृतधारया ॥५६॥
स्नपयेन्मूलविद्याभिस्त्रि रङ्गैः देशिकोत्तमः।
परिधाप्य दुकूले च चन्दनाद्यैर्विलेपयेत् ॥५७॥
अलंकृत्य यथालाभं समानं शिष्यपुत्रकम् ।
प्रसन्नं शान्तचित्तं च पार्श्वे निवेश्य देशिकः॥५८॥

अब गुरु को चाहिये कि वह शिष्य को चतुरस्त्र मातृका निर्मित शुद्ध आसन पर आसीन कराये तथा वहां बैठाकर कलसामृत की धारा से उसे स्नान कराये। अक्षरात्मक आसन में 'ह्रसौः' कर्णिका है। 'अ'से 'अः'पर्यन्त १६ स्वर होते हैं। दो-दो स्वर मिलाने से ८ केसर हो जाते हैं। आठ दिशाओं में वं ठं वर्गाष्टक के अष्टदल हैं। (क वर्ग,च वर्ग,ट वर्ग, त वर्ग, प वर्ग,य वर्ग, श वर्ग एवं वं ठं) शिष्य के सिर पर जो स्नानीय जल छोड़ें, वह मूलोमन्त्रोच्चारण के साथ छोड़ना होगा। उसे वस्त्रद्वय (स्नानोपरान्त) पहना कर चन्दनादि का लेप उस पर करना होगा। अब उस पुत्र के समान शिष्य को उपलब्ध अलंकारो से अंलकृत करें। तदन्तर उस प्रसन्न शान्तचित्त शिष्य को गुरुदेव पार्श्व में आसीन करायें॥५५-५८॥

तदङ्गे मातृकां न्यस्य विद्याङ्गन्यासमाचरेत् ।
विमुक्तमुखवस्त्रस्य हस्ते तस्य गुरुः स्वयम् ॥५९॥
यथाधिकारमालोच्य द्रव्यभेदान् प्रकाशयेत् ।
अन्यथा सर्वहानिः स्यादयोग्येषु प्रकाशनात् ॥६०॥
भोजनं तत्त्वमन्त्रैस्तु कारयेद् ग्रास मुद्रया ।
अथ गुरु प्रसन्नात्मा पूर्वोक्तामात्मनः पराम् ॥६१॥
बालान्वितां विधायादौ पादुकां विनिवेदयेत् ।
दक्षकर्णे दिशेद्बालां पश्चादिष्टं निवेदयेत् ॥६२॥
स्वकीयचरणं मूर्ध्नि शिशोर्निक्षिप्य पार्वति ।
सर्वान् मन्त्रान् सकृद्वापि क्रमेणैव यथाविधि ॥६३॥

यथाधिकारमावर्त्य स्वाङ्गेषु च शिशोः करम् ।
स्पर्शयित्वा किमप्यङ्गं तदङ्गमातृकादिकम् ।।६४।।
द्व्यक्षरं त्र्यक्षरं वापि चतुरक्षरमेव वा ।
आनन्दनाथशब्दान्तं नाम कुर्याद्गुरुः पिता ।।६५।।

अब गुरुदेव शिष्य के अंगो में मातृकान्यास करें तत्पश्चात् विद्याङ्गन्यास सम्पन्न करें। अब उसके मुख से वह पहले बांधा गया आच्छादन वाला वस्त्र हठा दें। (जिससे नेत्र आवरित किये गये थे) तदनन्तर उसके हांथ मे स्वयं गुरु द्रव्य भेद का प्रकाशन उसके सामर्थ्य एवं अधिकार के अनुसार करें। अयोग्य शिष्य को इस द्रव्यभेद को कदापि न बताये। तदनन्तर तत्वमन्त्र को कहते हुये उसे ग्रासमुद्रा द्वारा भोजन करना चाहिये। तदन्तर गुरुदेव प्रसन्नता से परदेवता के बालाबीज (हसौः) से युक्त पादुका शिष्य को प्रदान करे। शिष्य के कान में (दाहिने कान में) पहले बाला मन्त्र का उपदेश करे तदनन्तर इष्टमन्त्र का उसी कान में उपदेश प्रदान करे। हे पार्वती! तदनन्तर अपना चरण शिष्य के मूर्धा पर स्थापित करके समस्त मन्त्रों को क्रमशः एक बार अथवा अधिकार पूर्वक कई बार क्रमशः विधि-विधान से सुनाये। तत्पश्चात शिष्य अपने हाथ से गुरु के किसी अंग का स्पर्श करे, तदनन्तर गुरु पितृवत् उस अंग के प्रथम दो तीन चार अक्षरो को लेकर अन्त में 'आनन्दनाथ' जोड़कर शिष्य का नाम रखे। जैसे यदि शिष्य ने हृदय का स्पर्श किया हो तब 'हृदयानन्दनाथ'।।५९-६५।।

आचाराननुशिष्याथ हृच्चैतन्यं परामृशेत् ।
त्रिभिः कूटैस्तदङ्गं च त्रिः प्रमृज्य गुरुः स्वयम् ।।६६।।
परिरभ्य तथा मूर्ध्नि समुपा घ्राय सादरम् ।
आत्मरूपं ततः कृत्वा शिष्यं पूर्णं विभावयेत् ।।६७।।
अष्टोत्तरसहस्त्रं स्वशक्तिहान्यनवाप्तये ।
प्रसन्नात्मा जपेद्विद्यां ततो गुरुरुदारधीः।।६८।।

तदनन्तर गुरु अपने शिष्य को आचारों को बतलाये और उसके हृत चैतन्य का अपनें शिवहस्त से स्पर्श करे। तदनन्तर गुरु तीन कूटो से उसके अंग को तीन बार मले। तदनन्तर उसको हृदय से लगाकर उसके शिर को सूंघकर आदर के साथ उसमे आत्मारुपवत् भावना करे। शिष्य अब पूर्ण है, यह भावना हृदय में लाये। अब इस दीक्षादान से गुरु का जो क्षतिक्षय हो गया है, उसे पुनः पाने की इच्छा से गुरु को प्रसन्नचित्त होकर १००८ बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिये।।६६-६८।।

कृतार्थः कृतकृत्यस्तु यथाविभवविस्तरै ।
वित्तशाठ्यं परित्यज्य दम्भमोहौ च जिह्म ताम् ।।६९।।
हस्त्यश्वरथयानाद्यैर्दासदासीभिरेव च ।
गोभूहिरण्यवस्त्राद्यैस्तोषयेद् गुरुमात्मनः ।।७०।।
कुम्भादिकर्णे यद् द्रव्यं सर्वमण्डप एव च ।
अर्थं प्राणाञ् शरीरं च सर्वं तस्मै निवेद्य च ।।७१।।

अब शिष्य दीक्षा प्राप्त हो जाने से कृत्य कृत्य है। उसे वित्तशाठ्य (कृपणता आदि) को त्यागकर दम्भ मोहादि को, कुटिल प्रवृत्ति को छोड़कर गुरु को संन्तुष्ट करना चाहिये। वह उन्हे हाथी,घोड़ा,रथ, यान आदि, दास-दासी,गौ,भूमि,स्वर्ण,वस्त्र आदि से तृप्त करे। कुम्भादि मे जो द्रव्य है वह सम्पूर्ण मण्डप के साथ धन,प्राण,शरीर सब कुछ गुरु को प्रदान करके साधक शिष्य गुरु के चरणो में दण्डवत भूमि पर पड़कर स्तुति करे॥६९-७१॥

पतित्वा पादयोर्मूले दण्डवद् भुवि मानवः।
नमस्ते भगवन्नाथ शिवाय गुरुरूपिणे ।।७२।।
प्रसीद करुणाधाम(न्) मयि दीनत्वतापिते ।
कायेन मनसा वाचात्वत्तो नान्या गतिर्मम ।।७३।।
प्रसन्नास्तु परा देवी भोगमोक्षविधायिनी ।
तन्मना भव हे पुत्र तामेव त्वं सदा स्मर ।।७४।।
द्वैतभावं च ते मास्तु पूर्णानन्दमयो भव ।
उक्त्वोत्तिष्ठेति पीयूषवचोभिरभि(व?न)न्द्य तम् ।।७५।।
हस्ताभ्यां च तमुत्थाप्य प्रसन्नोऽहं सदा प्रिये ।
सिद्धयः सकलास्तूर्णं स्नतु ते मत्प्रसादतः।।७६।।

शिष्य स्तुति में मूलोक्त श्लोक संख्या ७२-७३ को कहे। अर्थ है- हे भगवन् नाथ,गुरुरूपी शिव, आप को नमस्कार। हे करुणाधाम मै दीनत्व तापित हूं। मुझपर प्रसन्न हो जाईये। काय,वाक्, मन से आपके अतिरिक्त कोई गति नहीं है। हे परादवी! आप भोग-मोक्ष दायिनी हैं। मुझ पर प्रसन्न हो जाईये।'' इस प्रार्थना को शिष्य द्वारा किये जानें पर गुरु कहते हैं'' हे पुत्र! परादेवी,भोग मोक्ष दायिनी,तुम पर प्रसन्न हैं। तुम तन्मना हो जाओ। उनका सर्वदा स्मरण रखो। तुममें द्वैतभावना न आये। तुम पूर्ण आनन्दित हो जाओ। अब उठो।'' अब इस अमृत वाणी द्वारा गुरु उसको अभिनन्दन के साथ उठा ले और शिष्य से कहे

कि—हे प्रिय ! मै तुम पर सदैव प्रसन्न हूं! मेरी कृपा से तुम्हे समस्त सिद्धियां प्राप्त हो जाये॥७२-७६॥

प्रसन्नात्मा तथा शिष्यो विदिताखिलवेद्यकः।
भक्तिश्रद्धासमायुक्तो भोजयेद् वै कुमारिकाः।।७७।।
ब्राह्मणान् परितोष्याथ दीनान्धकृपणानपि ।
पक्वान्नैरतिमिष्टैश्च ज्ञातीनपि च भोजयेत् ।।७८।।
गन्धैर्नानाविधैः पुष्पैर्माल्यैरपि च तोषयेत् ।
तेभ्य आशिष आदाय समर्थीया जयावहाः।।७९।।
सद्गुरोराहितदीक्षो महाविद्याक्षरो महान् ।
सर्वमन्त्राधिकारी स्यात् सर्वज्ञो भुवि जायते ।।८०।।

तदनन्तर विदिताखिलवेद्यक वह शिष्य प्रसन्नात्मा होकर तथा भक्तिश्रद्धा समायुक्त होकर कुमारीगण को भोजन कराये। तत्पश्चात् ब्राह्मणगण को प्रसन्न करके (भोजन वस्त्रादि-दक्षिणा से) दीन-अन्ध तथा कृपणों को भाई, बन्धु-गण को पक्वान्न एवं मिष्ठान्न भक्षण कराये। नानागन्ध तथा अनेक प्रकार की मालाओं द्वारा उन्हे प्रसन्न करे। उनका आशीवर्चन लेकर जय हेतु प्रार्थना करे। सदगुरु से इस प्रकार दीक्षित होकर वह महान साधक शिष्य पृथिवी पर सबको मन्त्र देने वाला अधिकारी हो जाता है। पृथ्वी पर सर्वज्ञ हो जाता है॥७७-८०॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे दीक्षाविधाननिरूपणनामकः सप्तविंशः पटलः सम्पूर्णः।।२७।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवाद में दीक्षाविधान
नामक सत्ताईसवां पटल समाप्तः॥

◆

अष्टाविंशः पटलः

पुरश्चर्याविधिनिरुपणम्

देव्युवाच–

पुरश्चर्याविधिं ब्रूहि विद्यासिद्धिर्भवेद्यथा ।

ईश्वर उवाच–

अथ वक्ष्ये विधानानि पौरश्चरणके विधौ ।।१।।
विना येन न सिद्धः स्यान्मन्त्रो वर्षशतैरपि ।
यथाविधि गुरोर्दीक्षां गृहीत्वा साधकोत्तमः।।२।।
तथैव तु यजेद् देवीं नित्यं प्रातरनन्यधीः।
आत्मानं तन्मयं स्मृत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।३।।
अष्टोत्तरसहस्रं वा लक्षार्धं यावदेव हि ।
तावदेव मनुं जप्त्वा पुरश्चर्यां समाचरेत् ।।४।।

देवी कहती हैं—हे देव! पुरश्चरण विधि का वर्णन कीजिये, जिससे मन्त्रसिद्धि मिले।

ईश्वर कहते हैं—अब मैं पुरश्चरण की विधि कहता हूँ। इसके अभाव में सैकड़ों वर्ष में भी मन्त्र सिद्ध नहीं हो सकता। गुरु से यथाविधि दीक्षा लेकर साधकोत्तम शिष्य अनन्य मन से नित्य प्रातः देवी का यजन करे। वह आत्मा में तन्मय होकर भक्तिश्रद्धा युक्त होकर देवी का पूजन करे। वह २००८ अथवा एक लाख का आधा जप करे तथा इस प्रकार पुरश्चरण प्रारंभ करे।।१-४।।

न्यूनातिरिक्तदोषाणां शान्तावष्टाधिकं जपेत् ।
गुरोराज्ञां समादाय शुद्धान्तःकरणो नरः।।५।।
यत्नात् पुरस्क्रियां कुर्यात् स्वविद्यासिद्धिकाङ्क्षया ।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानां चैव पार्वति ।।६।।
गुरोराज्ञैव मूलं स्यात् सिद्धिर्यस्मात् तदाज्ञया ।
अश्रद्धा चैव नास्तिक्यं पूर्वजन्मकृताशुभम् ।।७।।
प्रतिबन्धत्रयं देवि मन्त्रसिद्धौ निगद्यते ।
यत्नात् पुरश्चेरन्मन्त्री प्रतिबन्धविनाशने ।।८।।
लक्ष्मीमदादनादृत्य मन्त्रं भोगपरायणः।
नैवार्चां कुरुते मन्त्री तथा नैव पुरस्क्रियाम् ।।९।।

न तो न्यून जप करे, न अधिक जप करे। अधिक अथवा न्यून दोष के निराकरणार्थ आठ बार अधिक जप करना होगा। गुरु की आज्ञा लेकर

शुद्धान्त:करण होकर यत्न से अपने मन्त्र (विद्या) की सिद्धि हेतु पुरश्चरण करे। हे पार्वती! समस्त मन्त्रों तथा विद्या का मूल है गुरु की आज्ञा। उनकी आज्ञा सिद्धिदात्री होती है। समस्त विद्या का मूल है गुरु आज्ञा, तभी सिद्धि प्राप्त होती है। हे देवी! मन्त्र सिद्धि के तीन प्रतिबन्धक हैं- यथा अश्रद्धा, नास्तिकता, पूर्वजन्म में कृत अशुभकर्म इनके विनाशार्थ मन्त्री को यत्नतः पुरश्चरण करना चाहिये।।५-९।।

स मन्त्रस्य ऋणी ज्ञेयो भजनं तस्य शान्तये ।
जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः।।१०।।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।
तत् कुर्यात् सर्वथा मन्त्री गुरुं वा कारयेद्बुधः।।११।।
गुरोरभावे विप्रोऽस्य सर्वप्राणिहिते रतः।
शुद्धान्तःकरणःस्निग्धो वासोभिश्च विशेषत ।।१२।।
कुलज्ञः कुलशास्त्रज्ञः पुनर्गुरुः पुरस्क्रियाम् ।
कारयित्वा पुनर्विद्यां लब्ध्वा तु विनियोजयेत् ।।१३।।

जो लक्ष्मी के मद से मत्त मन्त्र का अनादर करने वाला, भोग में आसक्त व्यक्ति देवी का पुरश्चरण नहीं करता, न पूजन करता है, उसे मन्त्र का ऋणी कहा गया है। वह शान्ति हेतु देवी का भजन करे। जीवरहित देह सर्वकर्म में सक्षम नही रहता, उसी प्रकार से पुरश्चरणहीन मन्त्र भी अक्षम रहता है। तभी मन्त्री को यह स्वयं करना चाहिये, अथवा गुरु से कराना चाहिये। यदि गुरु समयाभाव से नहीं कर सकें, तब ब्राह्मण से पुरश्चरण कराये। वह ब्राह्मण समस्त प्राणिगण के हित में रत हो, शुद्धान्तःकरण, स्निग्ध वस्त्रधारी, कुलज्ञ, कुलशास्त्रज्ञ हो। गुरु को पुरश्चरण कराने के उपरान्त पुनः विद्या (मन्त्र) का उपदेश देकर शिष्य को साधन में नियोजित करे।।१०-१३।।

आदौ पुरस्क्रियां कर्तुं पुण्यक्षेत्रं समाश्रयेत् ।
चतुर्दश्यामथाष्टम्याममावस्यामुहूर्तके ।।१४।।
देव्याः पुरस्क्रियारम्भः कर्तव्यः साधकोत्तमैः।
अथ पूर्वमुपोष्याथ कृत नित्यक्रियः शुचिः।।१५।।
द्विजान् देवान् गुरून् भक्त्या सम्पूज्य परमेश्वरि ।
गणेशं मातृकाश्चैव पितृंश्चैव प्रपूजयेत् ।।१६।।
ग्रामे वा नगरे देशे पुरे वा पत्तने तथा ।
क्षेत्राधिपस्य नाम्ना तु दीपस्थानं विचिन्तयेत् ।।१७।।

पहले पुरश्चरणार्थ पवित्र स्थान का चयन करना चाहिये। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, में से किसी एक दिन मुहूर्त्त देखकर देवी का पुरश्चरण प्रारभ साधकोत्तम

करे। इससे पहले वाले दिन उपवास करके अगले दिन (जिस दिन) पुरश्चरण प्रारंभ करना हो नित्य कर्मादि करके पवित्र हो। द्विज, देव, गुरु का पूजन करे। ग्राम, नगर, देश, पुर, शहर, में उस जगह (क्षेत्र) के स्वामी के नाम से दीपस्थान का चिन्तन करे, निश्चय करे। यह दीपस्थान शक्तिक्षेत्र अथवा शिवक्षेत्र में हो॥१४-१७॥

शक्तिक्षेत्रे शिवक्षेत्रे दीपस्थानं विचिन्तयेत्।
वर्तुलं रचयेद् देवि कूर्माकृति सुलोचने॥१८॥
तन्मध्ये नव कोष्ठानि कृत्वा वर्णान् समालिखेत्।
स्वरान् युग्मक्रमेणैव दिक्षु चाष्टदलेषु च॥१९॥
अवर्गः कथितो देवि कवर्गादिकगसप्तकम्।
पूर्वादिक्रमतो देवि कुबेरान्तं लिखेत्ततः॥२०॥
लक्षवर्णं शम्भुकोणे विलिखेत् कूर्मसंज्ञके।
यस्मिन् कोष्ठे क्षेत्रनाम तन्मुखंविद्धि पार्वति॥२१॥
अङ्गेषु पार्श्वयोः पाणियुग्मं जानीहि सुन्दरि।
ततः पार्श्वद्वयं देवि कुक्षिस्थानं निगद्यते॥२२॥
ततः पादद्वयं देवि चान्ते पुच्छं प्रकीर्तितम्।
मुखे कार्याणि सिध्यन्ति मनोरथशतानि च॥२३॥
कण्ठस्थाने महेशानि सर्वकार्यविनाशकृत्।
उदरे दुःखदारिद्र्यं पादयोर्हानिरुच्यते॥२४॥
पुच्छे तु धनहानिः स्यादित्येवं कथितं मया।
दीपस्थानं समाश्रित्य जपपूजां समाचरेत्॥२५॥

हे सुलोचने! वहा कच्छपाकृति एक गोला बनाये। उसमें नौ कोष्ठ रचित करके उसमें वर्णों को लिखे। स्वरों को दो-दो संख्या में आठो दिशाओं के आठो दल पर लिखे। वह १६ स्वर हो गये। अब क वर्ग, च वर्ग, त वर्ग, ट वर्ग, प वर्ग, य वर्ग, श वर्ग को पूर्व क्रम से उत्तर तक लिखे। 'ल, क्ष' इन दो वर्ण को इस कूर्म यन्त्र के ईशानकोण में बनाये। जिस कोष्ठ में क्षेत्र के नामाक्षर आये, वह कूर्म का (कच्छपयन्त्र का) मुख है। हे सुन्दरि! उभय पार्श्व उसकी बाहें है। हे देवी! तदनन्तर इसके बाद के दो पार्श्व उसकी कुक्षि है। तत्पश्चात् दो पैर एवं अन्त है पूंछ। हे महेशानी! इस यन्त्र के मुख पर बैठने से कार्य सिद्ध होते हैं। सैकड़ो मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। कण्ठ स्थान पर बैठने से सर्वकार्य विनष्ट हो जाते हैं। उदर पर बैठने से दुःख दरिद्रता आती है। पैरों पर बैठना हानिप्रद होता है। पूंछ पर बैठने से धनहानि होती है। यह मैनें कहा है। दीपस्थान का आश्रय लेकर जप पूजा का कार्य करें। गुरु को प्रणाम करके पूजा प्रारंभ करे॥१८-२५॥

पूर्वोक्तविधिसम्पन्नं गुरुं नत्वा विधानतः।
अक्षमालां समाश्रित्य मातृकां वर्णरूपिणीम् ।।२६।।
मन्त्रसिद्धिप्रदां शुद्धां सर्वपापौघनाशिनीम् ।
प्रणवो मातृका देवी माया चैवामृतत्रयम् ।।२७।।
अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ।
अथ मुक्ताफलमयी वाङ्मोक्षफलदायिनी ।।२८।।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं सर्वलोकवशङ्करी ।
यथा मुक्ताफलमयी स्फाटिकी च तथा भवेत् ।।२९।।
रुद्राक्षमालिका भोगमोक्षानन्तफलप्रदा ।
प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका ।।३०।।
माणिक्य रचिता माला साम्राज्यफलदायिनी ।
पुत्रजीवोद्भवा माला पुत्रपौत्रप्रदायिनी ।।३१।।
पद्माक्षमालया लक्ष्मीर्जायते महती यशः।
रक्तचन्दनमाला तु वश्ये सर्वसमृद्धिदा ।।३२।।
महाशङ्खमयी माला मारणोच्चाटनादिषु ।
वीराणां शस्यते सा हि शेषयोर्न शुभप्रदा ।।३३।।

अब माला का वर्णन होता है—अक्षमाला का आश्रय लेकर मातृका वर्णरूपा होती है। यह मन्त्रसिद्धिप्रदा, शुद्धा तथा सर्वपापनाशिनी हैं। प्रणव (ॐ) माया (ह्रीं) तथा मातृका (अ से क्ष पर्यन्त), ये तीन अमृतत्रय हैं। इन तीनों के संयोग से दुष्टमन्त्रादि भी सिद्ध हो जाते हैं।

मुक्तामाला वाणीसिद्धि तथा मोक्षफल प्रदायिनी है। यह सर्वदा सर्वसिद्धिप्रदा एवं सर्वलोक वशंकरी भी है। स्फटिक माला का भी यही फल है। रुद्राक्षमाला भोगमोक्ष देती है। प्रवालमाला, वशीकरण तथा कार्यसाधन करती है। माणिक्य की माला साम्राज्यदात्री है। पुत्रजीवी (वनस्पति वृक्ष) की माला पुत्र पौत्र देती है। कमल बीजरचित माला से लक्ष्मीसिद्धि तथा महत् यश प्राप्त होता है। महाशंख (नरकपाल) की माला मारण तथा उच्चाटन कराने वाली, वीराचारी के लिये शुभ है, अन्य के लिये शुभप्रदा नहीं है।।२६-३३।।

पञ्चाशद्भिः शतैः कुर्यादष्टाविंशति भिश्च वा ।
न न्यनैर्नाधिकैः कार्या बीजाद्यैर्न विभूतये ।।३४।।
एको मेरुस्तत्र देयः सर्वेभ्यः स्थूलसम्भवः।
आद्यं स्थूलं ततो न्यूनं न्यूनं न्यूनतरं ततः।।३५।।

विन्यसेत् क्रमतस्तस्मात् सर्पाकारप्य नायता ।
ब्रह्मग्रन्थियुतं कुर्यात् प्रतिबीजं तथास्थितम् ।।३६।।
अन्यथा विफला मालाऽसंस्कृता जपकर्मणि ।
रुद्राक्षैर्यदि जप्येत इन्द्राक्षैः स्फाटिकैस्तथा ।।३७।।
नान्यन्मध्ये प्रयोक्तव्यं पुत्रजीवादिकं तु यत् ।
यदान्यत्तु प्रयुञ्जीत मालायां जपकर्मणि ।।३८।।
मिश्रीभावं तदा याति चण्डालैः पापकर्मभिः ।
एकजातीयबीजेन यः कुर्यान्मालिकां सदा ।।३९।।

माला को ५० से १०० अथवा २८ मनकों का बनाना चाहिये। यह संख्या न कम हो न अधिक। बीज से बनी माला विभूति के लिये प्रशस्त नहीं होती। उसमें एक मेरु अवश्य लगाये, जो सभी दानों से बड़ा हो (सभी माला के लिये यही नियम है)

माला बनाते समय पहले एक दाना बड़ा लगायें, दूसरा उससे छोटा पुनः उससे छोटा, ऐसे क्रमानुसार लगाना चाहिये। ऐसे वह माला सर्पाकृति धारण कर लेती है। प्रत्येक मनके के पश्चात् ब्रह्मग्रंथि लगाना चाहिये। (ताकि मनकों में दूरी रहे, वे परस्पर घर्षण न करें) ब्रह्मग्रंथि के अभाव में माला अशुद्ध तथा जपकर्मार्थ विफल मानी जाती है। यदि जप रुद्राक्ष के मनको अथवा इन्द्राक्ष के मनकों की माला, अथवा स्फटिक की माला से जापक कर रहा है, तब जप काल में (पुरश्चरण काल में अथवा नित्य जप में) अन्य माला का व्यवहार न करे (जिस माला से जपारंभ करे उसी से करता रहे) अन्यथा उसमें मिश्रभाव आ जानें के कारण जापक पापकर्मी चाण्डाल माना जाता है। एक जाति के ही मनकों की माला से जप करें।।३४-३९।।

जन्मान्तरे जायते स वेदवेदाङ्गपारगः।
पूर्वोक्तेन विधानेन गृहीत्वा दिव्यमालिकाम् ।।४०।।
जपं समारभेत् पश्चात् प्रोक्तयोगसमन्वितः।
तत्र स्थित्वा जपेद्विद्यां लक्षमात्रं सदा शुचिः।।४१।।

ऐसा साधक जन्मान्तर में वेदवेदान्त में निष्णात हो जाता है। पूर्वोक्त (मालाविधानानुसार) विधान से दिव्य माला लेकर उसके द्वारा तब कहे गये विधान से जपारंभ करे। वहाँ बैठकर (पूर्वोक्त स्थान में) पवित्र हो गया साधक एक लक्ष जप करें।।४०-४१।।

दधि क्षीरं घृतं गव्यमैक्षवं गुडवर्जितम् ।
तिलाश्चैव सिता मुद्गाः कन्दः केमुकवर्जितः।।४२।।

नारिकेलफलं चैव कदली लवली तथा।
आम्रमामलकं चैव पनसं च हरीतकी।।४३।।
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधैः।
अवैष्णवमलभ्यं च यदशस्तं व्रतान्तरे।।४४।।
त्याज्यमेव तु तत् सर्वं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
क्षारं च लवणं मांस गृञ्जनं कांस्यभोजनम्।।४५।।
माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि।
ताम्बूलं च द्विभक्तं च दुःसंवादं प्रमत्तताम्।।४६।।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धं च जपं रात्रौ विवर्जयेत्।
भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनं चाप्यनसूयता।।४७।।
नित्यं त्रिषवणस्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम्।
नित्यपूजा नित्यदानं देवतास्तुतिकीर्तनम्।।४८।।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः।
जपनिष्ठा द्वादशैते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः।।४९।।

गोदुग्ध की दधि, क्षीर, घृत , गुड रहित ईख का रस, (अर्थात केवल ईख का रस), तिल, मिश्री, मूंग, केमुक के बिना अन्य कन्द, नारियल, केला, लवली, आम, आंवला, कटहल तथा हर्रे को व्रतान्तर की प्रशस्त छवि बतलाते हैं। जो वैष्णवो के लिये विहित न हो, जो सुलभ न हो, व्रतार्थ अनुमोदित न हो, उसे आत्मसिद्धि साधने वाले साधक को वह सब त्याग कर देना चाहिये। क्षार, नमक, मास, गाजर, कांस्यपात्र में भोजन, उड़द, मटर, मसूर, कोदो, चना, ताम्बूल, दिन में दो बार का भोजन, दुःसंवाद, प्रमत्तता, तथा रात्रि में श्रुति-स्मृति अनुमोदन से रहित जप न करे। भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्य, मौन, निन्दा से दूर रहना, नित्य तीन बार स्नान करना, क्षुद्र कर्म त्याग, नित्यपूजन, नित्यदान, देवता की स्तुति, कीर्त्तन, नैमित्तिक अर्चन तथा गुरु में विश्वास, जपनिष्ठा, ये १२ धर्म मन्त्र की सिद्धि देने वाले हैं।।४२-४९॥

स्त्रीशूद्रपतितव्रात्य नास्तिको च्छिष्टभाषणम्।
असत्यभाषणं जिह्म भाषणं परिवर्जयेत्।।५०।।
सम्यै रपि न भाषेत जपमोहार्चनादिषु।
अन्यथानुष्ठितं सर्वं भवत्येव निरर्थकम्।।५१।।

स्त्री, शूद्रा, पापी, चाण्डाल, नास्तिक से उच्छिष्ठ मुख बातचीत करना, झूठ बोलना तथा मन में कपट रखने का त्याग करे। जब जप होम पूजा करे तब सत्पुरुष से भी बात न करे। अन्यथा अनुष्ठान व्यर्थ हो जाता है।।५०-५१॥

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं निःस्पृहावान् भवेत् सदा ।
वर्जयेद् गीत वाद्या दिश्रवणं नृत्यदर्शनम् ।।५२।।
माल्यं च गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च ।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत् ।।५३।।
कौटिल्यं क्षौरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम् ।
प्राणिहिंसां न कुर्वीत पुरश्चरणकृन्नरः।।५४।।
अस्नातांश्च द्विजाञ् शूद्रान् स्त्रियो नैव स्पृशेत्तथा ।
असङ्कल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम् ।।५५।।
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम् ।
शिवाङ्गं पञ्चगव्येन क्षालयेद् बहिरन्तरम् ।।५६।।
स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा ।
अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा ।।५७।।

अनुष्ठान में साधक को वाणी, कर्म तथा मन से सर्वदा निःस्पृह सा रहना चाहिये। वह गीत-वाद्य का श्रवण तथा नृत्यदर्शन न करे। मालाधारण, गन्धलेप, पुष्पधारण, मैथुन, मैथुन वार्त्ता, तथा गोष्ठी आदि में बैठना भी त्याग दे। कौटिल्य, क्षौरकर्म, शाम की तैलमालिश, अनिवेदित भोजन भी त्यागे। मन्त्री प्राणिहिंसा न करे। स्नानरहित स्थिति में ब्राह्मणशूद्र तथा स्त्री का स्पर्श वर्जित है। जिस कार्य का संकल्प नहीं किया गया है, उसका त्याग करे। मर्दन आदि न करे। उष्णजल से स्नान, सुगन्ध, आमलक का त्याग करे। शिवाङ्ग अपने लिंग को भीतर तथा बाहर धोकर साफ रखना चाहिये। पञ्चगव्य अथवा केवल आमलक से ही स्नान करे। अपवित्र हाथ रखकर, नग्न होकर, शिर पर कपड़ा लपेट कर किया गया स्नान व्यर्थ हो जाता है।।५२-५७।।

निरासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा ।
रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत तिमिरालये ।।५८।।
प्रलपन् वा जपेद् यावत् तावन्निष्फलमुच्यते ।
सकृदुच्चारिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत् ।।५९।।
प्रोक्ते पामरशब्दे तु प्राणायामं सकृच्चरेत् ।
बहुप्रलापे चाचम्य न्यस्याङ्गानि ततो जपेत् ।।६०।।

आसनहीन, सोती स्थिति में, खड़े-खड़े, गली में, अपवित्र स्थान में, अन्धकार गृह में, बातें करते-करते उसी बीच, जप करने से भी जप नष्ट हो जाता है। यदि प्रमाद से जप के मध्य एक भी अन्य शब्द मुंह से निकल जाता

है, तब प्रणव का उच्चारण करके पुनः जप का प्रारभ कर दे। यदि प्रमादवश 'पामरशब्द' अपशब्द का उच्चारण जपकाल में हो जाय तब १ प्राणायाम करके पुनः जपारंभ करे। यदि बहुत अधिक बातें जपमध्य में करनी पड़ जाये तब आचमन-अंगन्यास करके तब जप का प्रारंभ करे प्राणायाम भी कर लिया जाये, यह सम्प्रदाय भेद से कहा गया है।।५८-६०।।

पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे श्रुते।
क्षुतेऽधोवायुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत्।।६१।।
कृत्वाचम्य जपेच्छेषं यद्वा सूर्यादिदर्शनम्।
शयीत कुशशय्यायां शुचिवस्त्रधरः सदा।।६२।।
प्रत्यहं क्षालयेच्छय्यामेकाकी निर्भयः स्वपेत्।
एवमादींश्च नियमान्. पुरश्चरणकृच्चरेत्।।६३।।

जपकाल में पतित, अन्त्यज का दर्शन अथवा भाषण होने पर अथवा उनकी बातें कान में पड़ जाने पर, छींक होने पर, अधोवायु निकलने की स्थिति पर, तथा जंभाई आ जाने पर जप छोड़ कर आचमन एवं सूरदर्शनोपरान्त तब जपारंभ करे। मन्त्री साधक को कुश की शय्यापर सोना चाहिये। सदा पवित्र वसन (वस्त्र) धारण करना चाहिये। प्रतिदिन शय्या को धोकर शुद्ध करे। एकाकी निर्भयता से शयन करे। अतः इस प्रकार नियमानुवर्त्तिता के साथ पुरश्चरण करना चाहिये।।६१-६३।।

एवमुक्तविधानेन विलम्बत्वरितं विना।
उक्तसंख्याजपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये।।६४।।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं सम्भावयन् धिया।
जपेदेकमनाः प्रातः कालान्मध्यंदिनावधि।।६५।।
यत् संख्यया समारब्धं तच्च कुर्य्याद्दिने दिने।
यदि न्यूनाधिकं कुर्यात् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः।।६६।।
नैरन्तर्यविधिः प्रोक्तो न दिनं व्यतिलङ्घयेत्।
दिवसातिक्रमात् पुंसः सिद्धिहानिः प्रजायते।।६७।।

इस प्रकार के विधान द्वारा पुरश्चरण करना चाहिये। न तो इसे विलम्ब से करे न तो शीघ्रता से करे। निश्चित संख्या का जाप करके पुरश्चरण में सिद्धि करनी चाहिये। देवता गुरु तथा मन्त्रैक्य की भावना रत होकर समाहित मन से प्रातःकाल से प्रारंभ करके मध्याह्न पर्यन्त जप करे। पहले दिन निश्चित करके जितनी संख्या वाला जप किया गया, नित्य उतनी ही संख्या का जप करना ही होगा न्यून अथवा अधिक करने पर वह साधक व्रत से भ्रष्ट हो जायेगा। जप का

नैरन्तर्य भंग होना उचित नहीं है। अर्थात् नित्य जप करे। बीच-बीच में छोड़ना उचित नहीं है। दिन का अतिक्रमण करने से सिद्धि प्राप्त नहीं होगी।।६४-६७।।

मन्त्रं जप्त्वाम्बुपानीयैः सुलोचनमभोजनम् (?मपोऽञ्जनम्)।
कुर्याद्यथोक्तविधिना त्रिसन्ध्यं देवमर्चयेत् ।।६८।।
एकसंध्यं द्विसंध्यं वा न मन्त्रं केवलं जपेत् ।
एकग्रामे स्थितो गत्वा वन्देत केवल गुरुम् ।।६९।।
प्रणामोऽष्टाङ्ग एवात्र देवतावन्दनं तथा ।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यात् सङ्गं च साधुभिः सह ।।७०।।
शक्तौ त्रिषवणस्नानं द्वं सकृद्वा तथा चरेत् ।
परकीयतरे तोये स्नानं पूर्वं समाचरेत् ।।७१।।

जप समाप्त होने पर कुछ जल भूमि पर (आसन के बाहर) गिराकर उस जल को नेत्रों में लगाये। यथोक्त विधानानुसार त्रिसन्ध्याओं में देवपूजन करना चाहिये। बिना सन्ध्या किये मन्त्र न जपे। एक-दो सन्ध्या अवश्य करे। यदि गुरु तथा शिष्य एक ही ग्राम में रहते हैं, तब शिष्य को चाहिये कि केवल गुरु को ही साष्टांग प्रणाम करे। देवतागण को भी साष्टांग प्रणाम करे। नित्य नैमित्तिक कृत्य भी करे। साधुगण के साथ सत्संग करे। त्रिकाल स्नान करे। अथवा एक दो बार स्नान अवश्य करे। पहले अन्य के जलाशय में तदनन्तर अपने एकत्रित जल से स्नान करे।।६८-७१।।

संख्यापूर्तौ निजैर्द्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः।
यथोक्तविहिते कुण्डे जुहुयात् संस्कृतेऽनले ।।७२।।
अथवा प्रत्यहं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः।
तथा होमदशांशं तु जले सम्पूज्य देवताम् ।।७३।।

जपसंख्या पूरी हो जाने पर द्रव्यों से मन्त्री को जप का दशांश होम करना होगा। विधान सहित बने कुण्ड में संस्कृत की गई अग्नि में इसे सम्पन्न करना होगा। अथवा यह भी कर सकते हैं कि प्रतिदिन जितना जप सम्पन्न किया हो, उसी दिन उसका दशांश हवन करे। (इस प्रकार जप संख्या पूरी होने तक जप में जितने दिन लगते हैं, प्रतिदिन जपी गयी संख्या का दशांश होम उसी दिवस को करता रहे)। होम के दशांश जल (तर्पण) द्वारा देवता की पूजा करे।।७२-७३।।

तर्पयामीति मन्त्रान्ते प्रोक्ताद्भिर्मूर्ध्नि तर्पयेत् ।
जपो होमस्तर्पणं चमृजा जाब्राह्मणभोजनम् ।।७४।।
पूर्वपूर्वदशांशेन कुर्यात् पञ्चाङ्गसंयुतम् ।
स्वाभिषेकाघमर्षौ च सूर्यार्घ्यं जलपानकम् ।।७५।।

प्राणायामं ततः कुर्यात् पूर्वपूर्वदशांशतः।
दशाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते ।।७६।।

'तर्पयामि— कहकर तर्पण करे (इसे तर्पणमन्त्र के अन्त में कहे)। अब तर्पण की संख्या का दशांश मार्जन करे। इसमें साधक (मन्त्र के साथ) अपने शिर पर उतनी बार जल छिड़के। यह सब कर्म एक दूसरे का दशांश होता है। उदाहरणार्थ १० हजार जप करने पर १००० होम, १०० तर्पण, १० बार मार्जन, १ ब्राह्मण का भोजन। यह क्रम है। तत्पश्चात् पंचांग करे। अपना अभिषेक, अघमर्षण, सूर्यार्घ, जलपान (आचमन) तथा प्राणायाम । यही पुरश्चरण पदवाच्य है।।७४-७६।।

तत्पुरश्चरणं नाम मन्त्रसिद्ध्यर्थमात्मनः।
यथोक्तं नियमं कृत्वा स्वकल्पोक्तजपस्य हि ।।७७।।
करणं विजयान्तं तत्प्रोक्तं देशिकसत्तमैः।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।।७८।।
गुरुं सन्तोयेदेवं मन्त्राः सिध्यन्ति मन्त्रिणः।
होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।।७९।।
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः।
एकमङ्गं विहीयेत ततो नेष्टमवाप्नुयात् ।।८०।।
अङ्गहीनं भवेद्यद्यत् तत्तन्नेष्टार्थज्ञसाधनम् ।
सर्वथा भोजयेद्विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये ।।८१।।
विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्यतः।
न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान् ।।८२।।

इसे पुरश्चरण कहते हैं। इसे अपने मन्त्र को सिद्ध करने हेतु, किया जाता है। इसके लिये अपने कल्प (सम्प्रदाय-तन्त्र) के अनुसार जप करे। गुरुगण इसे विजयान्त कहते हैं। अर्थात् इसके अन्त में महतीपूजा तथा ब्राह्मणभोजन करे। गुरु की सन्तुष्टि भी करे, इससे मन्त्री के मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। जो होमकर्म में अशक्त हो वह ब्राह्मण की संख्या का दूना ब्राह्मण भोजन कराये। अन्य वर्ण वालों के लिए यह संख्या तिगुनी है। एक भी अंग विहीन होने पर अनिष्ट होता है। अर्थात् पुरश्चरण का कोई अंग विहीन न हो। पुरश्चरण की साङ्ग सिद्धि हेतु ब्राह्मण भोजन अवश्य कराये। केवल इस प्रकार से विप्रगण की अराधना द्वारा अंगविहीन पुरश्चरण भी अंगयुक्त हो जाता है। न्यून अथवा अतिरिक्त कर्म मनोरथ पूर्ण नहीं कर पाते।।७७-८२।।

तान्येवं पूर्णतां यान्ति समस्तानि भवन्ति चेत् ।
अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु ।।८३।।

नियतान्यपि कर्माणि हीनानि द्विजभोजनैः।
निरर्थकानि तानि स्युर्बीजान्यूषरगाणि च।।८४।।

वे जितना कहा गया है, उतना ही होने पर फल देते हैं। यदि नित्यकर्म में ब्राह्मण भोजन नही कराया गया, तब वे उस प्रकार से निरर्थक होते हैं, जैसे उसर में बोये बीज॥८३-८४॥

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते।
ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः।।८५।।
नद्याः समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रोदके स्थितः।
ग्रहणादिविमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः।।८६।।
अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत्।
होमस्य तु दशांशेन्न तर्पणं समुपाचरेत्।।८७।।
अभिषेकदशांशेन कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम्।
तदन्ते महतीं पूजां कुर्यात् साधकसत्तमः।।८८।।
गुरवे दक्षिणां दद्याद्भक्त्या विप्रान् प्रतर्पयेत्।
ततश्च मन्त्रसिद्धिः स्याद् देवता च प्रसीदति।।८९।।
ततस्तु मन्त्रसिद्ध्यर्थं गुरु सम्पूज्य तोषयेत्।
अथवा देवतारूपं गुरुं भक्त्या प्रतोषयेत्।
पुरश्चरणहीनोऽपि मन्त्रसिद्धिरसंशयः।।९०।।

अथवा अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहते हैं। साधक सूर्यग्रहण अथवा चन्द्रग्रहण के एक दिन पहले से उपवास करके रहे। जब ग्रहण हो तब किसी ऐसी नदी में नाभि पर्यन्त जल में खड़ा हो जाये, जो नदी किसी समुद्र में सीधी जाती हो। (जैसे गंगा)। वहाँ वह साधक ग्रह प्रारंभ से लेकर ग्रहण के मोक्षपर्यन्त एकाग्र होकर जप करता रहे। ग्रहण मोक्ष के उपरान्त दशांश होम, होम संख्या का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराये। तदनन्तर मन्त्रसिद्धि हेतु गुरु का पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट करे। इससे देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जो पुरश्चरण से रहित है, उसकी मन्त्रसिद्धि में कोई संशय नहीं रहता॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे पुरश्चर्याविधिनिरूपण-नामकोऽष्टाविंशः पटलः सम्पूर्णः।।२८।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वरसंवाद में पुरश्चर्याविधिनिरूपण नामक अट्ठाइसवाँ पटलः समाप्तः॥

एकोनत्रिंशः पटलः

विद्यासाधननिर्णयनिरूपणम्

ईश्वर उवाच–

पूर्वोक्तविधिना देवि लक्षार्द्धं प्रजपेत् तथा।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यस्तथैवोक्तविधानतः।।१।।
कामरूपं वपुः कृत्वा कामिन्येव महानिशि।
कुलयुक्तो जपेल्लक्षं निशाया मध्यभागतः।।२।।
अत्र यत् क्रियते कर्म तदनन्तफलप्रदम्।
मूलाधारे महादेवि लिङ्गं स्वयम्भूवाचकम्।।३।।
ज्योतीरूपं तु योनिस्थं तत्रैव मनसा जपेत्।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं तद्विद्याक्षररूपिणीम्।।४।।
हृदि त्रिकोणमध्ये च बाणलिङ्गे च तेजसि।
तत्र संचिन्त्य मनसा जपेल्लक्षं समाहितः।।५।।
मूर्ध्नि त्रिकोणमध्ये तु इतरं पश्चिमामुखम्।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं यत्र कुत्र समाहितः।।६।।
एवं लक्षत्रये सिद्धे यद्भावस्तूपजायते।
तमुपाश्रित्य भावेन यथा देवस्तथा भवेत्।।७।।

ईश्वर कहते हैं—हे देवी! साधक पूर्वोक्त विधि से ५०००० जप करे। उसे रात्रि में मुख में ताम्बूल रखकर जप करना चाहिये। इसे भी पूर्वोक्त विधानानुसार करे। या वह कामदेव की तरह सुन्दर रुप बनाकर तथा अपनी शक्ति का कामिनीवत् श्रृंगार करके उसके साथ एक लाख जाप करे। यह जो कर्म किया जाता है,वह अनन्त फलप्रद है। हे महादेवी! मूलाधार में जो लिंग है,उसे स्वयम्भुलिंग कहते हैं। वह ज्योतिरुप है तथा योनिस्थ है। वहां मानस जप करे। (वहां धारणा करके मानस जप करे) वहां उनकी विद्या (कुण्डलिनी) अर्थात् मन्त्राक्षर वाली कुण्डलिनी का ध्यान करे। द्वितीय स्थान है (ध्यान का) हृदय जहां त्रिकोण मध्य में तेजोमय बाणलिंग स्थित है। वहां (भावना से स्थित हो) समाहित चित्त से एक लाख जप करे। तृतीय स्थान है मूर्द्धा। वहां इतर लिंग स्थित है जो पश्चिमामिमुखी है। यहां (भावना द्वारा) स्थित होकर जप करे इनमें जहां कही मन को समाहित करके १ लाख जप करे। इस प्रकार तीन लाख जप सम्पन्न होता है। तब जो भाव उदित हो,उसका आश्रय लेकर साधक भाव द्वारा ही (अपने) देववत् हो जाता है।।१-७।।

नवलक्षं जपेद्विद्यामिह भोगसमृद्धये ।
न ध्यानं न च विन्यासो न पूजा न पुरस्क्रिया ।।८।।
केवलं जपमात्रेण सिद्धयःसिद्धिकाङ्क्षिणाम् ।
कोटिजापे तु सम्पूर्णे मनो मन्त्रात्मकं भवेत् ।।९।।

भोग समृद्धि हेतु इन तीनों स्थानों में (एक-एक लाख की जग़ह) तीन-तीन लाख जप करे अर्थात ९ लाख जप करे। इसमें ध्यान,न्यास,पूजा तथा पुरश्चरण की आवयकता नहीं पड़ती। केवल जप से ही सिद्धि कामना रखनें वालों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। एक कोटि जप सम्पूर्ण होते ही मन भी मन्त्रात्मक हो जाता है।।८-९।।

यावत्तावद्धि जप्तव्यं मनसैव न चान्यथा ।
मन्त्रमात्रस्वरूपे च सिद्धे मनसि पार्वति ।।१०।।
ध्यानमात्रं मनः कृत्वा ध्यानं ब्रह्मणि चार्पयेत् ।
विदिते ब्रह्मणः क्षेत्रे विदितः सर्ववित् प्रभुः ।।११।।

जब तक ऐसी स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती,तब तक मानस जप करता रहे। हे पार्वती! मन्त्र के मन्त्रमय हो जानें पर मन भी ध्यान मात्र हो जाता है। जिसे ब्रह्म को अर्पित करे। ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर मन्त्री विदित-वेंदितत्व,सर्ववेत्ता तथा प्रभु हो जाता है।।९-११।।

नव स्थानानि कथ्यन्ते शृणु सावहिता प्रिये ।
ज्योतीरूपं तदाधारे मेढ्रस्थाने शिखाप्रभम् ।।१२।।
नाभिस्थं सूर्यबिम्बाभं तरुणादित्यवर्च्चसम् ।
हृदि ज्योतिःशिखाकारं कण्ठे दीपशिखाप्रभम् ।।१३।।
भ्रूमध्ये रत्नसङ्काशं तदूर्ध्वे भास्करप्रभम् ।
लम्बिके चन्द्रबिम्बाभं ततो वैदूर्यसन्निभम् ।।१४।।
नवमे विश्वतेजा हि घण्टावैदूर्य्यसन्निभः ।
लिङ्गरूपी ह्यहं देवि नव लिङ्गानि यानि च ।।१५।।
नव स्थानानि मन्त्रेण क्रमात् संभिद्य कुण्डलीम् ।
विसंज्ञाममृतं पीत्वा पुनराधारमानयेत् ।।१६।।
मूलस्थानगतं मन्त्रं स्मरेदेवं क्रमेण तु ।
नवलक्षप्रमाणं तु जप्त्वा त्रिपुरसुन्दरीम् ।।१७।।
विधिवज्जायते देवि रुद्रमूर्तिरिवापरः ।
मन्त्राणां नव लक्षाणि कृत्वा लिङ्गानि वै नव ।।१८।।

हे प्रिये! ९ जपस्थान कहता हूं। समाहित होकर श्रवण करो। मूलाधार में ज्योतिरुप, मेढ्र में अग्निशिखा समप्रभ,नाभि में सूर्य विम्बवत् तरुण आदित्य के

समान तेजयुक्त, हृदय में ज्योति शिखारुप, कण्ठ में दीपप्रभावत, भ्रूमध्य में रत्न के समान, उससे उर्ध्व में भास्कर के समान, लंम्बिका में चन्द्रबिम्ब के समान, उससे ऊपर वैदूर्य के समान अर्थात् घण्टावैदूर्यवत् विश्वतेजा है। यह सब लिंग है वहाँ यह मैं ही लिंगरुप विराजित रहता हूं। क्रम से इन ९ स्थानों का मन्त्रक्रमेण भेदन करके उर्ध्व संज्ञारहित कुण्डली का भी भेदन करके वहां से (सहस्रार से) अमृतपानोपरान्त पुनः मूलाधार में स्थित होकर मूलाधारस्थ मन्त्र का स्मरण करना चाहिये। हे देवी! त्रिपुरसुन्दरी का ९ लाख जप करके (विधानानुसार) साधक द्वितीय रुद्र के समान हो जाता है। मन्त्रों का ९ लाख जप करके तथा ९ लिंगो का भेदन करके साधक इस ९ लाख जप द्वारा ९ लाख फलो कों पाता है॥१२-१८॥

नवैव परिजप्याथ नवलक्षफलं लभेत्।
जातसूतकमादौ स्यात् मृत्ते च मृतसूतकम्॥१९॥
सूतकद्वयसंयुक्तो यो मन्त्र स न सिध्यति।
स्वयं तद्रहितं कृत्वा मन्त्रं यावज्जपेद्धिया॥२०॥
सूतकद्वयनिर्मुक्तः स मन्त्रः सर्वसिद्धिदः।
सत्कुलस्थानजातीनां शुचीनां श्रीमतां सताम्॥२१॥
नियतमग्निहोतॄणां भिक्षाशिनो(शना)ग्रजन्मनाम्।
एषां मध्ये तु यः कश्चिद्गुरुर्वा शिष्य एव वा॥२२॥
मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति च।
कथितं सूतकं तस्य जपात् सिद्धिर्न जायते॥२३॥

जप के आदि में मन्त्र पर जनना शौच तथा जपान्त में मरणाशौच लगता है। सूतकद्वय से युक्त जप कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। अतः इनसे रहित करके तब जप करे। सूतकद्वय से मुक्त जप ही सर्वसिद्धिदाता होता है। जो सत्कुल में उत्पन्न, उत्तमस्थलवासी, उत्तम जाति युक्त, पवित्र, श्रीमान, सत्, नित्य अग्निहोत्र परायण अथवा भिक्षाजीवी ब्राह्माण हैं, इनमे से जो भी गुरु अथवा शिष्य है, यदि उसे मन्त्रार्थ-मन्त्र चैतन्य-योनिमुद्रा का ज्ञान नहीं है तब वह सूतकयुक्त हो जाता है। जप से उसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती॥१९-२३॥

गुप्तवीर्याश्च ये मन्त्रा न दास्यन्ति फलं प्रिये।
मन्त्राश्चैतन्यसंयुक्ताः सर्वसिद्धिकराः स्मृताः॥२४॥
चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्ता वर्णास्तु केवलम्।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिजपादपि॥२५॥

मन्त्रोच्चारे कृते यादृक् स्वरूपं प्रथमं भवेत् ।
शते सहस्त्रे लक्षे वा कोटिजापे न तत्फलम् ।।२६।।
हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्वावयववर्धनः।
मन्त्रार्थः कथ्यते देवि शृणु तत्प्रथमं प्रिये ।।२७।।
भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगर्भाख्यश्च कौलिकः।
तथा सर्वरहस्यार्थो महातत्त्वार्थ एव च ।।२८।।

हे प्रिये! गुप्तवीर्य मन्त्र फलद नहीं होता। जो मन्त्र चैतन्य युक्त है,वही सर्वसिद्धिप्रद है। चैतन्यरहित मन्त्र तो केवल वर्णमात्र हैं। उनका लाखों- करोड़ों जप भी फलप्रद नहीं है। मन्त्रार्थ बोध,मन्त्रचैतन्य तथा योनिमुद्रा ज्ञान से जो जप होता है, वही हृदयग्रंन्थि का भेद करके सर्वावयव वर्द्धक है। हे प्रिये! अब मन्त्रार्थ कहता हूं। पहले सुनो। ये हैं भावार्थ,सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्वार्थ॥२४-२८॥

अक्षरार्थो हि भावार्थः केवलं परमेश्वरि ।
शिवशक्तिसमायोगाज्जनिता मन्त्रराजकः।।२९।।
तन्मयीं परमानन्दनन्दितां मन्त्ररूपिणीम् ।
निसर्ग सुन्दरीं देवीं ज्ञात्वा स्वैरमुपासते ।।३०।।
शिवशक्त्यात्मसंघट्ट रूपिणी ब्रह्मरूपिणी ।
तत्प्रथाप्रसराश्लेषभुवि त्विन्द्रोपलक्षिते ।।३१।।
ज्ञातुर्ज्ञानमयाकारकरणान्मन्त्ररूपिणी ।
मध्यबिन्दुविसर्गान्त समास्थानमये परे ।।३२।।
कुटिलारूपके तस्याः प्रतिरूपे वियत्कले ।
मध्यप्राणप्रथारूपस्पन्दव्योम्नि स्थिता पुनः।।३३।।
मध्यमे मन्त्रपिण्डे तु तृतीये पिण्डके पुनः।
राहुकूटद्वयस्फूर्जच्चलत्ता संस्थितस्य तु ।।३४।।
धर्माधर्मस्य वाच्यस्य विषा मृतमयस्य च ।
वाचकाक्षरसंयुक्तेः प्रथिता विश्वरूपिणी ।।३५।।
तेषां समस्तरूपेण पराशक्तिस्तु मातृका ।
कूटत्रयात्मिका देवी समष्टिव्यष्टिरूपिणी ।।३६।।
कूटत्रये तु ह्रींकारं देव्या नेत्रत्रयं शुभम् ।
हकारस्त्वग्नि रुपत्वात् संहरेद् भेदसन्ततिम् ।।३७।।
रेफः कालाग्निरूपत्वात् पापौघक्षयकारकः।
तयोर्विमर्श ईकारो बिन्दुना त्रिगुणात्मना ।।३८।।

अमृतत्वं करोतीन्दु काम कामानशेषतः।
सम्प्रदायो महाबोधरूपो गुरुमुखे स्थितः।।३९।।
विश्वाकारप्रथायास्तु महत्त्वं च यदाश्रयम्।
शिवशक्त्याद्यया मूलविद्यया परमेश्वरि।।४०।।
जगत्कृत्स्नं तथा व्याप्तं श्रृणुष्वावहिता प्रिये।
पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सनातनी।।४१।।
तन्मयी मूलविद्या च तथापि कथयामि ते।
हकाराद्व्योम सम्भूतं ककारात्तु प्रभञ्जनः।।४२।।
रेफादग्निः सकाराच्च जलतत्त्वस्य सम्भवः।
लकारात् पृथिवी जाता तस्माद्विश्वमयी च सा।।४३।।

केवल अक्षरो का अर्थ भावार्थ है। शिव तथा शक्ति के समायोग से मन्त्रराज गठित होता है। उन परमानन्दनन्दिता,मन्त्रमयी,मन्त्ररूपीणी,निसर्ग सुन्दरी को जानकर साधक अपने मन से उनकी उपासना करता है। शिवशवत्यात्मक रूपा यह शक्ति शिवशक्ति के संघट्ट से जनित बह्मरूपा शक्ति है। उस प्रथा का प्रसार होता है 'हसकलह्रीं' रूप में। द्वितीय है ज्ञातुज्ञनमयाकार। यही वाग्मव कूट है। स्वरूप है 'कएईलह्रीं।' तीसरा है 'हसकहलह्रीं,इसे विष्णु शक्ति कहा जाता है। इन सबमे जो 'ह्रीं' है वह है ह र ई। ये देवी के तींन नेत्र हैं। ये क्रमशः अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र हैं। हकार भेदसन्तति का संहार करता है। 'र' कालाग्नि रूप होनें के कारण पापों का क्षय-कारक है। 'ई' विमर्श रूप है (शिव-शक्ति का)। ईंकार में जो विन्दु है, वह है त्रिगुणात्मना। यह अमृतक्षरण करता है। कामबीज अशेष कामनाओ की पूर्ति करता है। सम्प्रदायार्थ का अर्थ-है महाबोध। यह गुरुमुख में छिपा अर्थ है। विश्वाकृति में जो शैवीशक्ति का प्रसार है, उसका जो महत्व है, वही महाबोध है। हे परमेश्वरी! शिवशक्ति की आद्या मूलविद्या से समस्त जगत् ओतप्रोत है। हे प्रिये! अवहित चित्त से सुनो। विश्व है पञ्चभूतात्मक तथा सनातनी देवी पंचभूतात्मिका हैं। मूलविद्या है सनातनी। तब भी मैं उनके बारे में कहता हूं। हादिविद्या मूलविद्या है। इसके हकार से व्योम की उत्पत्ति होती है। तभी हकार व्योमबीज है। ककार से वायु, रेफ से अग्नि, सकार से जल, लकार से पृथिवी का प्रादुर्भाव हुआ है। तभी मूलविद्या (हसकहलह्रीं) को विश्वमयी कहा है।।२९-४३।।

गुणाः पञ्चदश प्रोक्ता भूतानां तन्मयी शुभा।
यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदीरि।।४४।।

सैव सर्वेश्वरी देवी स च सर्वो महेश्वरः।
व्याप्त्या पञ्चदशार्णैः सा पञ्चभृत(स्तृ?गु)णात्मिका ।।४५।।

भूतसमूह के गुण १५ कहे गये हैं। जिस पदार्थ की जो-जो शक्ति कही जाती है, वह शक्ति है यही सर्वेश्वरी देवी। पदार्थ है शिव। पृथिवी १५ गुणो से व्याप्ता है। इसमें पांचोभूतों के गुण हैं।।४४-४५।।

पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः।
स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी ।।४६।।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ।
तत्त्वातीतस्वभावा च विद्येयं भाव्यते सदा ।।४७।।

पांच,छः तथा चार अक्षर (अर्थात् ५+६+४,=१५) तथा स्वर व्यंजन भेदानुसार,यह ३७ तत्वों वाली कही गयी है। सैतीसवें का भेद होने से यह ३६ तत्वरूपिणी है। यह विद्या तत्वातीत स्वभावा है। अतः इसकी इसी प्रकार से भावना करनी चाहिये।।४६-४७।।

पृथिव्यादिषु भूतेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम् ।
भूतं त्वधस्तलं व्याप्यं तद्गुणा व्यापकाश्रयाः।।४८।।
व्याप्येष्ववस्थिता देवि स्थूलसूक्ष्मविभेदतः।
तस्माद्व्योमगुणः शब्दो वाय्वादीन् व्यात्य संस्थितः।।४९।।
व्योमबीजैस्तु विद्या र्लक्षये च्छब्द पञ्चकम् ।
तेषां कारणरूपेण स्थितं व्योममयं परम् ।।५०।।

पृथ्वी से व्यापक हे जल, जल से व्यापक है अग्नि, अग्नि से व्यापक है वायु,वायु से व्यापक है आकाश। नीचे वाले भूत व्याप्य कहे गये है। नीचे वाले के गुण अपने से ऊपर वाले के अधीन है। हे देवी। भूत समूह में ये गुण स्थूल-सूक्ष्म भेद होते हैं। अतः व्योम (आकाश) का गुण शब्द वायु-अग्नि-जल पृथिवी में व्याप्त है। विद्या मे स्थित व्योमबीज का तात्पर्य है शब्दपञ्चक। परम् व्योम उन सबका कारण रूप है।।४८-५०।।

भवेद्गुणवतां बीजं गुणानामपि वाचकम् ।
कार्यकारणभावेन तयोरैक्यविवक्षया ।।५१।।
महामायात्रयेणापि कारणेन च बिन्दुना ।
वाय्वग्निजलभूमीनां स्पर्शानां च चतुष्टयम् ।।५२।।
उत्पन्नं भावयेद् देवि स्थूलसूक्ष्मविभेदतः।
रूपाणां त्रितयं तद्वत् त्रिभी रेफैर्विभावितम् ।।५३।।

प्रधानं तेजसो रूपं तद्बीजेन हि जयन्ते ।
विद्यास्थैश्चन्द्रबीजैस्तु स्थूलः सूक्ष्मो रसः स्मृतः।।५४।।
सम्बन्धो विदितो लोके रसस्याप्यमृतस्य च ।
वसुन्धरागुणो गन्धस्तल्लिपिः गन्धवाचिका।।५५।।

पृथ्वी आदि के बीज उनके गुण वाचक हैं। कार्यकारण से भाव उनमें ऐक्य विवक्षित होता है। महामायात्रय के कारण भूत बिन्दू से वायु-अग्नि जल तथा भूमि की उत्पत्ति तथा उनके गुण स्पर्श,रूप,रस,गन्ध,की उत्पत्ति रेफत्रय से मानी जाती है। तेज का प्रधानगुण है रूप जो तेजबीज 'र' कार से सम्भूत है। विद्या (मन्त्रस्थ) स्थित चद्रबीज से (सकार से) स्थूल एवं सूक्ष्म रस को सम्भूत मानते हैं। रस तथा रस का सम्बन्ध लोकमें सर्वज्ञात है। वसुन्धरा का गुण है गन्ध। उसकी लिपि (लं) गन्ध वाचिका कही गयी है।।५१-५५।।

भुवनत्रयसं बन्धात् त्रिधात्वं तु महेश्वरि ।
अशुद्ध शुद्ध मिश्राणां प्रमातॄणां परं वपुः।।५६।।
क्रोधीशत्रितयेनाथ विद्यास्थेन प्रकाश्यते ।
श्रीकण्ठ दशकं तद्वदव्यंक्तस्य हि वाचकम्।।५७।।
प्राणरूपस्थितो देवि तद्वद्वेकादशः परः।
एकः सन्नेव पुरुषो बहुधा जायते हि सः।।५८।।

हे महेश्वरी। भुवनत्रय से सम्बन्धित होने के कारण प्रमाता के अशुद्ध,शुद्ध तथा मिश्र रूप से तीन शरीर होते हैं। यह रूप विद्या के तीन क्रोधीश (क) से प्रकाशित है। दशम श्रीकण्ठ (हवन) अव्यक्तवाचक है। हे देवी। एकादशवर्ण (ह्रीं) परप्राणरूपी है। तभी वह एक पुरुष बहुरूपों में व्यक्त हो रहा है।। ५६-५८।।

रुद्रेश्वरसदेशाख्या देवता मितविग्रहाः।
बिन्दुत्रयेण कथिता अमितामितविग्रहाः।।५९।।
शान्तिः शक्तिश्च शम्भुश्च नादत्रितयबोधनाः।
वागुरा मूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः।।६०।।
तथा मन्त्राः समस्ताश्च विद्यायामत्र संस्थिताः।
गुरुक्रमेण सम्प्राप्तः सम्प्रदायार्थ ईरितः।।६१।।

रुद्रईश्वर तथा सदाशिव परिच्छिन्न देह वाले हैं। त्रिबिन्दु को अमितामित विग्रहा कहा गया है। अर्थात् ये मित-अमित हैं। शान्ति-शक्ति-शम्भु यह नादत्रितय का बोधन कराते हैं। सूत्र आदि, वागभव् आदि मूलवलय में समाहित रहते हैं। समस्त मन्त्र (पुरुषमन्त्र) तथा समस्त विद्या (स्त्रीमन्त्र) वहीं समाहित हैं। यह गुरुक्रमानुसार सम्प्रदायार्थ कहा गया।।५९-६१।।

निगर्भोऽपि च देवेशि शिवगुर्वात्म गोचरः।
तत्प्रकारं च देवेशि दिङ्मात्रेण वदामि ते ।।६२।।
शिवगुर्वामनामैक्यानुसंधानात् तदात्मकम् ।
निष्कलत्वं शिवे बुद्ध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि ।
तन्निरीक्षणसामर्थ्यादात्मनश्च शिवात्मताम् ।।६३।।
भावयेद्भक्तिनम्रस्तु शङ्कोन्मेषाकलङ्कितः।
कौलिकं कथयिष्यामि चक्र द्वेवतयोरपि ।।६४।।
विद्यागुर्वात्मनामैक्यं तत्प्रकारः प्रदर्श्यते ।
तथा मन्त्रात्मकं चक्रं देवतायाः परं वपुः।।६५।।
एकादशाधिकशतदेवतात्मतया स्थितम् ।
लकारैश्चतुरस्त्राणि, वृत्तत्रितयसंयुतम् ।।६६।।
सरोरुहद्वयं शाक्तै रग्नी षोमात्मकं प्रिये ।
हृल्लेखात्रयसम्भूतै रक्षरैर्नवसंख्यकैः।।६७।।
बिन्दुत्रययुतैर्जातं नवनयोन्यात्मकं प्रिये ।
मण्डलत्रयसंयुक्तं चक्रं शक्त्यनलात्मकम् ।।६८।।
व्योमबीजत्रयेणापि प्रमातृत्रितयात्मकम् ।
इच्छा ज्ञानक्रियारूपमादनत्रयसंयुतम् ।।६९।।

निगर्मार्थ—हे देवेशी! यह भी शिव, गुरु तथा आत्मविषयक होता है। हे देवेशी! उसका दिशानिर्देश बतला रहा हूँ। साधक को चाहिये कि वह शिव,गुरु तथा आत्मा के ऐक्य का अनुसंधान करके इन्हें तदात्मक (शिवात्मक) समझे। शिव तथा गुरु को निष्कल समझ ले। यह निरीक्षण सामर्थ्य प्राप्त करके स्वयं शिव हो जाये। यह भावना भक्तिनम्र हो। (अभेद भावना ही यथार्थ भक्ति है) इस ऐक्य भावना के प्रति तनिक भी शंका का उन्मेष न हो।

कौलिकार्थ- साधक श्रीचक्रदेवता,मन्त्र (श्री विद्या की) एवं अपनी, इन तीनो के ऐक्य की भावना करे। उसे कहा जा रहा है। मन्त्रात्मक चक्र देवता का परमशरीर है। उसमें १११ देवता स्थिर रहते हैं। लकार से चार चौकोर मण्डल बनाये। तत्पश्चात् तीन वृत्त बनाये। तत्पश्चात् अग्नि-सोमात्मक कमलद्वय बनाये। सोमात्मक कमल १६ दलों वाला तथा अग्न्यात्मक अष्टदलों का होता है। नवअक्षरात्मक तीन-तीन त्रिकोण होते हैं जो हृल्लेखा (ह्रीं) हैं। हे प्रिये! (ह्रीं में ह र ई अक्षरत्रय हैं) तीन अक्षर से तीन त्रिकोण अर्थात ३×३=९। हृल्लेखात्रय के कारण नव अक्षरात्मक योनि का प्रादुर्भाव होता है। इसे नवयोनिचक्र भी कहा गया है। यह मण्डलत्रय युक्त अनलात्मक शक्ति है।

व्योमबीजत्रय को प्रमातृ त्रितयात्मिका कहा गया है। इच्छा-ज्ञान क्रियारूप मादनत्रय से संयुक्त है। यह सर्ववर्णात्मक बिन्दुचक्र सद्यः शिवात्मक है।।६२-६९।।

सर्ववर्णात्मकं बिन्दुचक्रं सद्यः शिवात्मकम् ।
गणेशत्वं महादेव्याः ससोमरविपावकैः।।७०।।
इच्छाज्ञानक्रियाभिश्च गुणत्रययुतैः पुनः।
ग्रहरूपा परा देवी ज्ञानकर्मेन्द्रियैरपि ।।७१।।
तदर्थै रेव देवेशि करणैरान्तरैः पुनः।
प्रकृत्या च गुणेनापि पुंस्त्वबन्धेन चात्मना ।।७२।।

महादेवी में जो गणेशत्व है वह सोम-रवि-पावकमय है। वह पुनः इच्छा-ज्ञान-क्रिया रूप तीन गुणों से युक्त है। परादेवी ग्रहरुप हैं। वे ज्ञानेन्दिय-कर्मेंद्रिय युक्त होती हैं। हे देवेशी! इसीलिये वे करणान्तरयुक्त हो जाती हैं। वही देवी प्रकृति एवं गुणो द्वारा स्वयं को पुरुष रूप से बन्धनयुक्त कर देती हैं।।७०-७२।।

नक्षत्रविग्रहाजाता योगिनानामथोच्यते ।
त्वगादिधातुनाथाभिर्डाकिन्यादिभिरप्यसौ ।।७३।।
वर्गाष्टनिविष्टाभिर्योगिनीभिस्तुस्तु संयुता ।
योगिनीरूपमास्थाय क्रीडते विश्वरूपिणी ।।७४।।

तथा नक्षत्र विग्रहा हो जाती हैं। अब चक्रगत ६४ योगिनीगण को कहते हैं। त्वगादिसप्त धातु डाकिनी आदि के साथ युक्त हो, वर्गाष्टक में योगिनीगण का वास कहा गया है। यह देवी ही योगिनी रूप लेकर विश्व में क्रीड़ा करती हैं।।७३-७४।।

प्राणोऽपानः समानश्च व्यानोदानौ तथा पुनः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः।।७५।।
जीवात्मा परमात्मा च तैरेवब राशि रूपिणी ।
अकथादित्रिपंक्त्यात्मतार्तीयादिक्रमेण सा ।।७६।।
गणेशोऽभून्महाविद्या परावागादिवाङ्मयी ।
बीजबिन्दुध्वनीनां च त्रिकूटेषु ग्रहात्मिका ।।७७।।
हल्लेखात्रयम्भूतैस्तिथिसंख्यैरथाक्षरैः ।
अन्यैर्द्वादशभि र्वणै रेषा नक्षत्ररूपिणी ।।७८।।
विद्यान्तर्भूतशक्त्याद्यैः शाक्तैः षडभिरथाक्षरैः।
योगिनी वर्ण विद्याया राशित्वं चान्त्यवर्जितैः।।७९।।
एवं विश्वप्रथाकारचक्ररूपा महेश्वरी ।
देवीदेहो यथा देवि गुरुदेहस्तथैव च ।।८०।।

वे प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान-नाग-कूर्म-कृकर-देवदन्त तथा धनंजयरूप से प्राणवायु मे, जीवात्मा एवं परमात्मा रूप से तथा द्वादश राशिरुपेण विश्व में व्याप्त रहती हैं। वे देवी अकथादि त्रिपंक्तिरूपा होकर तार्त्तीय क्रम से परावाक् आदि वाङ्मयी विद्या हो जाती हैं। वे ग्रहात्मिका होकर बीज,बिन्दु,ध्वनि तथा त्रिकूट में स्थित हो जाती हैं। वे १५ अक्षरो वाली महाविद्या हैं जो हृल्लेखात्रय सम्भूत है। इसमें अन्य १२ वर्ण मिलाने से वह २७ अक्षरो वाली नक्षत्ररूपा हो जाती हैं। विद्यान्तर्भूता शक्ति आदि और शाक्रादि षडक्षरयुक्त योगिनी वर्ण विद्या एवं अन्त्य अक्षर वर्णित होकर राशीत्वरूप में ये महेश्वरी समस्त विश्व में विश्व प्रथाकार चक्ररूपा होकर व्याप्त हैं। जैसा देवी का इस प्रकार का शरीर है,उसी प्रकार का शरीर गुरु का भी जाने॥७५-८०॥

तत्प्रसादाच्च शिष्योऽपि तद्रूपः सम्प्रकाशते ।
सहस्रदलमध्ये तु त्रिकोणं परिचिन्तयेत् ॥८१॥
तत्रैव मादनं बीजं बिन्दुमाश्रित्य दीपयेत् ।
कोटिचन्द्रप्रतीकाशं चिदानन्दमयं परम् ॥८२॥
अनुत्तरपदं गुह्यं ललाटोर्ध्वे व्यवस्थितम् ।
भगमाधारसंस्थानं त्रिकोणपुरमाश्रितम् ॥८३॥
मृणालतन्तुरूपा हि विश्वोत्पत्तेश्च कारणम् ।
इच्छाज्ञानक्रियारूपा चतुर्थी हृदये स्थिता ॥८४॥
शक्रं ललाटमध्ये तु दीपाभं परिचिन्तयेत् ।
विद्युत्कोटिप्रतीकाशं पञ्चमं नेत्रनासिके ॥८५॥
शिवो नादाख्यसंयुक्तस्त्रिषु शून्येषु संस्थितः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशो महापद्मोपरिस्थितः॥८६॥
सकारं मुखमध्ये तु बालार्कसदृशं परम् ।
मादनं जठरे देवि वराभं परिचिन्तयेत् ॥८७॥

सहस्रदल में त्रिकोण का चिन्तन करे। वहीं पर मादन बीज (क्लीं) को दीपित करे। यह बीज करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशित है। परम परम् चिदानन्दमय है। यह गुह्य अनुत्तरपद ललाट के उर्ध्व में स्थित है। योनिपद का स्थान है त्रिकोण एवं भूपुर में। यह मृणालतन्तुरूपा सूक्ष्म है। समस्त विश्वोत्पत्ति का कारण है। इच्छा ज्ञान क्रिया रूपा चतुर्थी हृदय में स्थिता है। (देवी ही चतुर्थी हैं।) अतः शक्र (ल) का ध्यान ललाट मध्य में दीपाभ रूप से करे। पञ्चम वर्ण का ध्यान नेत्र नासिका में करोड़ों विद्युत प्रकाशवत् करे। नादाख्य युक्त शिव (ह)

त्रिबिन्दु में विद्यमान रहता है। यह महापद्म के उर्ध्व में कोटि सूर्य के समान प्रकाशयुक्त है। 'स'कार मुख मध्य में बालार्क (उदीयमान सूर्य) के समान है। हे देवी। मादन (क्लीं) का ध्यान आभायुक्त रूपेण जठर में करे॥८१-८७॥

हकारं प्राणवायौ च परिचिन्तयेत्।
कलाषोडशपत्रे च इन्द्रमोंकाररूपकम्॥८८॥
ह्रींकारं ह्रदये पद्मे कोटिसूर्यसमप्रभम्।
बिन्दुद्वये कुचयुग्मे यवाभे चार्द्धचन्द्रकम्॥८९॥
नादबिन्दुस्तदग्रे तु शिवशक्तिसमन्विते।
कामराजं महेशानि आकर्षणकरं परम्॥९०॥

हकार प्राणवायु मे हंस रूप से करना चाहिये। इन्द्र (ल) का ध्यान ओंकाररूप से करे। ह्रीं का ध्यान ह्रदय में (ह्रदय कमल में) कोटि सूर्य की प्रभा के समान करना चाहिये। बिन्दुद्वय का ध्यान स्तनों में अर्धचन्द्ररूप में करे जो यव की आभा युक्त है। कुचद्वय के अग्रभाग में शिवशक्ति समन्वित नादबिन्दु का चिन्तन करे। हे महेशानी! कामराबीज (क्लीं) परम आकर्षण करने वाला कहा गया है॥८८-९०॥

नाभिपद्मे त्रिकोणे च दाडिमाभं सकारकम्।
पादद्वये महेशानि मादनं दीपसन्निभम्॥९१॥
पृष्ठोपरिस्थितं देवि इन्द्रं तेजःस्वरूपिणम्।
चतुर्थं योनिमध्ये तु दीपाभं परिचिन्तयेत्॥९२॥
शिवेन लिङ्गरूपेण तद्बिन्दुयुगलेन च।
विद्याबीजत्रयं देवि योनित्वे परिचिन्तयेत्॥९३॥
लिङ्गं योनिं च सत्त्वं च चतुर्थं कथितं मया।
अथ सर्वरहस्यार्थं कथयामि तवानघे॥९४॥
मूलाधारे ज्वलद्रूपे वाग्भवाकारतां गते।
अष्टात्रिंशत्कलायुक्त पञ्चाशद्वर्णविग्रहा॥९५॥
विद्या कुण्डलिनीरूपा मण्डलत्रयभेदिनी।
तडित्कोटिप्रभाप्रख्या विषतन्तुनिभाकृतिः॥९६॥

नाभि पद्म में सकार का ध्यान त्रिकोण रूप करे जो अनार के वर्ण का है। हे महेशानी! दोनों पादद्वय मादन (क्लीं) की दीप्ति से दीप्त है। हे देवी! (लं) इन्द्रबीज तेजस्वरूप है जो पीठ के ऊपर है। चतुर्थ (ह्रीं) योनिमध्य में दीपाभ है ऐसा चिन्तन करे। शिवरूपी लिंगरूप में वह बिन्दुद्वय युक्त है। हे देवी! बीजत्रय का चिन्तन योनिरूप में करे। इस प्रकार से मैनें लिंग योनि सत्व तथा चतुर्थ को कहा। सर्वरहस्यार्थ-हे

अनघे! अब सर्वरहस्यार्थ कहता हूं। मूलाधार रूप अत्यन्त ज्वलदरूप वाग्भवाकृति (ऐं) हो जाता है तब उसमें ३८ कलायुक्त ५० विग्रहा कुण्डलिनीरूपा विद्या का चिन्तन करे। यह अग्नि-सोम तथा सूर्य मण्डलों का भेदन करनें वाली है। यह तडित्कोटि प्रभाशाली है तथा विसतन्तु के समान आकारा है॥९१-९६॥

व्योमेन्दुमण्डलासक्ता सुधास्रोतः स्वरूपिणी ।
सदाव्याप्तजगत्कृत्स्ना सदानन्दस्वरूपिणी ।।९७।।
एषा स्वात्मेति बुद्धिस्तु रहस्यार्थो महेश्वरि ।
महातत्त्वार्थ इति यत्तच्च देवि ब्रवीमि ते ।।९८।।
निष्कले परमे सूक्ष्मे निर्लिप्ते भाववर्जिते ।
व्योमातीते परे तत्त्वे प्रकाशानन्दविग्रहे ।।९९।।
विश्वोत्तीर्णे विश्वमये तत्त्वे स्वात्मनियोजनम् ।
तदा प्रकाशमानत्वात् तेजसां तमसामपि ।।१००।।
अविनाभावरूपत्वं तस्माद्विश्वस्य सर्वतः।
प्रकाशते महातत्त्वं द्विव्यक्रीडारसोज्ज्वले ।।१०१।।
निरस्तसर्वसङ्कल्पविकल्पस्थितिपूर्वकः ।
रहस्यार्थो मया प्रोक्तः सद्यः प्रत्ययकारकः।।१०२।।

यह व्योमस्थ चन्द्रमण्डल आसक्ता धारारूपिणी है। (अमृत धारा) यह समस्त संसार को व्याप्त करके स्थित है और सर्वदा आनन्दरूपिणी एवं आत्मस्वरूपिणी है, यह समझे। हे महेश्वरी! यही है सर्वरहस्यार्थ। महातत्वार्थ-हे देवी! अब इसे बतलाता हूं। निष्कल,परमसूक्ष्म, निर्लिप्त,भावरहित,व्योमातीत, प्रकाशानन्दविग्रह,विश्वोत्तीर्ण विश्वमय तत्व से आत्मा को युक्त करे। यह सदैव प्रकाशमान तथा नित्योदित है। अतः तेजस् एवं तमस् भी साथ हैं। उनमें विश्व स्वयमेव अविनाभाव प्रकाशित रहता है। महातत्त्व वहां दिव्यक्रीड़ारसोज्वल हो प्रकाशित रहता है। इसमें सभी संकल्प-विकल्प का त्याग करके स्थित होना ही महत्तत्वार्थ है। यह परमज्ञानदायक रहस्यार्थ मैनें तुमसे कहा॥९७-१०२॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे विद्यासाधननिर्णय नामक
एकोनत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।२९।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवाद में विद्यासाधननिर्णय
नामक २९ वां पटल समाप्त ॥

◆

त्रिंशः पटलः

विद्याकूटत्रयसाधननिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

अकथ्यमपि देवेशि तव स्नेहाद्वदाम्यहम्।
त्रिकूटान्ते हंसबीजं बिन्दुनादविभूषितम्।।१।।
विपरीतेन वा देवि दुर्लभं पापचेतसाम्।
हकारः प्राणरूपस्तु सकारो जीव उच्यते।।२।।
उभौ जीवेति विख्यातौ त्रैलोक्ये सचराचरे।
हकारं शुक्लवर्णाढ्यं कोटिसूर्यसमप्रभम्।।३।।

ईश्वर कहते हैं—हे देवेशी! अकथनीय होनें पर भी मैं तुम्हारे स्नेह के कारण इसे कह रहा हूं। त्रिकूट (वाग्भव-कामराज-शक्तिकूट) के अन्त में हकार हंसबीज को बिन्दुनाद विभूषित करे। (कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं हं)। इसे विपरीत भी करे (हं सकलह्रीं हसकहलह्रीं कएईलह्रीं)। हे देवी! यह पापचेतस लोगों हेतु दुर्लभ है। हकार प्राणरूप है तथा सकार जीव है। सचराचर त्रैलोक्य में दोनों को जीव कहा गया है। हकार शुक्लवर्णवाला है तथा करोड़ो सूर्य के समान प्रभायुक्त है।।१-३।।

सकारं रक्तवर्णाढ्यं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
भावनं त्वस्य मन्त्रस्य जपमात्रं न विद्यते।।४।।
अजपा तेन विख्याता शिवशक्तिसमन्विता।
न्यासमन्त्रस्य विद्याया हकारः प्राण उच्यते।।५।।
सकारो जीव आख्यातो जीवः कामेन मण्डितः।
मादनं प्राणरूपं तु विकासः शिव उच्यते।।६।।
सकारस्थः परो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपवान्।
सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमः शिवः।।७।।
सङ्कोचश्च विकासश्च हस इत्यक्षरद्वयम्।
तयोरस्वररूपेण (क?ह)वर्णो बिल्व(न्दु)मालिनी।।८।।
प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्तः साहचर्याद्वरानने।
सपूर्वमुदितं मन्त्रं शम्भुशक्त्यैक्यवाचकम्।।९।।

सकार रक्तवर्ण का है। वह भी करोड़ो सूर्य के समान है। इसकी भावना मात्र जप द्वारा नहीं की जाती। इसकी केवल भावना होती है (जप नहीं होता) इसे शिवशक्ति समन्विता अजपा कहा गया है। इस विद्या का प्राण है हकार। सकार

जीव है। जीव काम से मण्डित है। मादन है प्राणरूप। विकास है शिव। सकार पररूप है। संकोच है शक्तिरूपवान। संकोच है परमाशक्ति तथा विमर्श है परमशिव। संकोच तथा विकास ही 'ह स' अक्षरद्वय हैं। उन दोनो को स्वररहित कहने पर 'स्ह' रूप हो जाता है। वहां हवर्ण बिन्दु है। हे वरनाने! साहचर्यवशात् प्राण को बिन्दु कहते हैं। यहां 'ह' 'स' को पहले युक्त करें, तब 'स्ह' शिव-शक्ति ऐक्य द्योतक है।।४-९।।

जीवशक्त्यैक्यसिद्ध्यर्थं गदितं सुरपूजिते ।
अस्मिन्मन्त्रे वरारोहे कालकर्मान्तवर्त्मना ।।१०।।
वर्तते यस्तु युक्तात्मा असाध्यमपि साधयेत् ।
त्वं च जीवैक्यसिद्ध्यर्थमुदितं मन्त्रनायकम् ।।११।।
तथ्यं मद्वाक्यतो विद्धि फलाफलस्पृहां त्यज ।
अस्मिन्मन्त्रे महाभागे समे जप्ते वदाम्यहम् ।।१२।।

हे सुरपूजिते! जीव एवं शक्ति की ऐक्य सिद्धि के लिये यह कहा गया है। हे वरानने! इस मन्त्र का मन्त्री काल कर्म के अन्तपथ में वर्तमान रहनें के कारण असाध्य को भी सिद्धकर लेता है। जीव तथा शक्ति की ऐक्य सिद्धि के लिये मैने इस मन्त्रराज को कहा है। मेरे वाक्य को समझो तथा फल-अफल की स्पृहा को त्याग दो। हे महाभागे! इस मन्त्र को सम जपने का क्या फल है, वह कहता हूं।।१०-१२।।

सर्वे मन्त्राः प्रसिध्यन्ति जीवन्ति च पुनन्ति च ।
प्राणन्ति च महाभागे सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।१३।।
सोऽहंभावेन भावेन भावनं भावनं मतम् ।
सोऽहंभावेन भावं तु उक्तलक्षणल क्षितम् ।।१४।।
कृत्वाहंभावमुत्सृज्य सोऽहंभावे स्थिरीभवेत् ।
शम्भुभावे स्थिरीभूते बिन्दुं शम्भौ विभावयेत् ।।१५।।

हे महाभागे! तभी मन्त्र सिद्ध होते हैं जब उनमें चैतन्य का जागरण होता है। वे पवित्र करते हैं, प्राणनक्रिया करते हैं। यह मैं सत्य-सत्य बतला रहा हूं। सोऽहं भावना द्वारा ध्यान करे यही इस भाव का मत है। यही भाव आना सोऽहं भावना का लक्ष्य माना गया है। मैं कर्त्ता हूं। इस भाव का उत्सृजन करके सोऽहं भाव में स्थिर हो जाये। जब स्वयं शिवभाव में स्थिर हो जाये तब बिन्दु की शंभूरूप भावना करे।।१३-१५।।

सच्चित्सुखमयः शम्भुस्त्रिरूपः सर्वकर्मणि ।
सर्वदा भाष्यते यस्मात्तन्मयं त्वखिलं ततः।।१६।।

सत्सन्निधिसमङ्गेषु शम्भुश्चैव प्रकाशते।
काम कामयते भेदमेति तद्रूपतां मतिः।।१७।।
यत्र चित्सत्तयोर्व्याप्तिस्तत्रानन्दोऽभिजायते।
यत्रानन्दो भवेद्भावे तत्र चित्सत्तयोः स्थितिः।।१८।।
या चित्सत्तैव सा प्रोक्ता या सत्ता सा चिदुच्यते।
एवं चित्सत्तयोरैक्ये स्थिरीभूते वरानने।।१९।।
आनन्देन समावेशोऽसुचिरादेव जायते।
दानन्दमयं विश्वं स्वात्माभेदं प्रकाशते।।२०।।

शम्भु सत्-चित्-सुखमय है तथा समस्त कर्म में एवं भाव में उनका यहीं त्रिरूप है। सर्वदा यही भाव करे किसमस्त संसार शिवमय,सच्चिदानन्दमय है।। सत्सन्निधिसमङ्ग मे शंभु सदैव प्रकाशित हैं। काम से भेद की कामना होती है लेकिन मति ही तद्रूपता (शिवरूपता) को प्राप्त करती है। जहां सत् तथा चित् है वही आनन्द भी आविर्भूत होता है। जहां आनन्द है, वहीं भाव है और वहीं चित एवं सत्ता की स्थिति है। जो चित् है वही सत्ता है। जो सत्ता है, वही चित् है। हे वरनाने! इन दोनों का ऐक्य होते ही आनन्द का शीघ्रता से समावेश हो जाता है। तब आनन्द रूप विश्व से तथा स्वात्मा में अभेद अनुभूत होनें लगता है।।१६-२०।।

एवं शम्भुमये भावे सर्वतः प्रभवे शिवे।
सर्वशक्त्युपभोगे तु जीवन्मुक्तो महीं वसेत्।।२१।।
भावद्या? वस्तुभूताया हसौ...........।
प्राणाः स्वराः समाख्याता बिन्दसङ्गौ च चेतना।।२२।।
अन्यान्यवयवानि स्युरन्यानि परमेश्वरि।
तेन तद्युक्तितो मन्त्राः प्रसीदन्ति न चान्यथा।।२३।।
बिन्दुसर्गौ हसौ तुर्यस्वरश्चेति च पञ्चमम्।
भवत्या मातृकादेहे विद्धि चैतन्यजृम्भणम्।।२४।।
तेन तैर्हीनरूपास्तु मन्त्रा विद्यास्तथा परे।
निष्प्राणदेहवत्कार्यकरणेष्वक्षमाः स्मृताः।।२५।।

इस प्रकार से शिवमय भाव होनें पर सर्वत्रव्याप्त शिव का साक्षात्कार होने पर साधक जीवमुक्त स्थिति में पृथ्वी पर विचरण करने लगता है। वह समस्त शक्ति समूह का उपभोग भी करता है। स्वर प्राण है। अनुस्वार एवं विसर्ग चेतना है। हे परमेश्वरा! अन्यान्य अवयव परस्परतः भिन्न हैं तभी भिन्नता की युक्ति करने

से (बुद्धिद्वारा) मन्त्र प्रसन्न होते हैं। अन्यथा प्रसन्न नहीं होते। बिन्दु-विसर्ग, ह सौ तुर्य स्वर (ई) ये सब आपकी (भगवती की) मातृका देह में चैतन्य के विजृम्भण हैं। अतएव उनसे रहित मन्त्र एवं विद्या (स्त्रीमन्त्र) निष्प्राणदेहवत् हो जाते हैं। अक्षम होते हैं॥२१-२५॥

रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत् ।
शक्त्यन्ते परमेशानि सोऽहं मायां रमां तथा ।।२६।।
कामराजाह्वये देवि क्रोधीशं शक्रसंयुतम् ।
मायाबिन्दुसमायुक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम् ।।२७।।
स्फुरत् त्रिकोणमध्यस्थं किरणानेकसंवृतम् ।
एतत्प्राणं महाभागे गुप्तं ग्रन्थे प्रकाशितम् ।।२८।।

रमा (श्रीं) माया (ह्रीं),तथा वाग्भव (ऐं) को पहले जोड़े। हे परमेशानि शक्ति (ई) के अन्त में 'सोऽहं', (ह्रीं) माया रमा (श्रीं) लिखे। हे देवी, कामराज (क्लीं) के उपरान्त क्रोधीश (कं),शक्र (लं),माया (ह्रीं) को बिन्दु युक्त करे। मन्त्रोद्धार है—श्रीं ह्रीं हंसः ऐं ईं सोऽहं ह्रीं श्रीं क्लीं कं लं ह्रीं अं। कोटिसूर्यसमप्रभ, दीप्तिमान,त्रिकोणमध्य स्थित किरणों से संवृत यह मन्त्र ग्रन्थों में अतिगुप्त है। इसे यहां तुमसे कहा। इसे बोधिनी मन्त्र से बोधित करे, सन्दीपनी मन्त्र द्वारा संदीपन करे॥२६-२८॥

बोधिन्या बोधयेद्विद्यां संदीपन्या च दीपयेत् ।
तारमायारमायोगो मनु र्दीपनमुच्यते ।।२९।।
जीवन्या जीवयेद्विद्याममृतैरमृतं चरेत् ।
पृथग्विधं तु तस्यापि साधनं शृणु पार्वति ।।३०।।
वाग्भवबीजरूपां तु दीपाभां तन्तुरूपिणीम् ।
गच्छतीं ब्रह्ममार्गेण लिङ्गभेदक्रमेण तु ।।३१।।
विशेदच्छामृतं दिव्यं क्षीरधारोपमं द्रवत् ।
पीत्वाकुलामृतं देवि पुनरेव विशेत् कुलम् ।।३२।।
पुनरेवाकुलं गच्छेद् द्वादशान्ते वरानने ।
सहस्रारे महापद्मे वाग्भवं पूर्णचन्द्रकम् ।।३३।।
ब्रह्मग्रन्थिं ततो भित्वा सप्तषष्ट्याख्यधारया ।
नासिकारन्ध्रमार्गेण त्वात्ममूलं प्रवेशयेत् ।।३४।।
जिह्वामापूर्य भो देवि मातृकावर्णरूपिणीम् ।
बहिर्गतां तु वाग्रूपां जिह्वाग्रे दीपरूपिणीम् ।।३५।।

आमूलादब्रह्मरन्ध्रान्तं तस्माज्जिह्वावधि प्रिये ।
वाग्भवबीजरूपां तां दीपशिखां विभावयेत् ।।३६।।

तार (ॐ) माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) के योग से दीपन मन्त्र कहा गया है। यथा "ॐ ह्रीं श्रीं"।

जीवन मन्त्र से विद्या का संजीवन, अमृत मन्त्र से उसका अमृतीकरण करे। हे पार्वती! उसका साधन भी पृथक् है। उसे सुनो। वह वाग्भव बीज रूपा, दीपाभ विसतन्तुवत् अति क्षीण है। वह लिंगभेद क्रम से ब्रह्मार्गगामी होती है। यह ध्यान करे। दुग्धधरावत् द्रवित होती है। स्वच्छ अमृत में प्रवेश करे। हे देवी! सहस्रारस्थ अकुल अमृत का पान करते हुए पुनः कुल में (मूलाधार स्थिता कुण्डलिनीं में) आना हैं हे वरानने! अब साधक को पुन अकुल द्वादशान्त में (सहस्रार में) जाना चाहिये। वहां सहस्रार महापद्म में वाग्भव रूप पूर्णचन्द्र का दर्शन करके ब्रह्मग्रन्थि का भेदन करे। यह भेदन सप्तषष्टि धारा (?) से होता है। भेदनोपरान्त साधक नासारन्ध्र से आत्ममूल में प्रविष्ट हो जाये। हे देवी! अब जिह्वाग्र में दीपाशिखावत् ध्यान करे। हे प्रिये! वाग्भवरूपिणी दीपशिखा का ध्यान मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त करे॥२९-३६॥

लक्षमेकमिदं जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत् ।
अव्याहतमतिः शास्त्रे विजयी वाक्पतेरपि ।।३७।।
वादे सदसि वाक्यस्य स्तम्भकः प्रतिवादिनः।
सत्पण्डितघटाटोपजेताऽप्रतिहतप्रभः ।।३८।।
पदगुम्फैर्महाकाव्यकर्ता सजायते शिवे ।
इति ते कथितं देवि वाग्भवस्यापि साधनम् ।।३९।।

इसका एक लाख जप सर्वपापहारी होता है। साधक की अव्याहतगति हो जाती है। वह बृहस्पति को भी जीत लेता है। सभा में वह प्रतिवादी की वाणी को स्तम्भित कर देता है। पण्डितों के संघट्ट में वह अप्रतिहत रहता है। हे शिवे! पद संघटन द्वारा वह महाकवि हो जाता है। हे देवी! यह वाग्भवमन्त्र की सिद्धि मैनें बताया॥३७-३९॥

अथ कामकलाबीजस्वरूपां चिन्तयेत् पराम् ।
उद्यदादित्यसङ्काशां स्फुरद्दीपशिखानिभाम् ।।४०।।
गच्छन्तीं ब्रह्ममार्गेण ब्रह्मरन्ध्रावधि प्रिये ।
प्रपतद्बिन्दुधाराभिः शुद्धलाक्षारसोपमाम् ।।४१।।
समस्तभुवनाभोगकवलीकृतजीवनाम् ।
महास्व महिमाक्रान्तिध्वस्ताहंकृतिभूमिकाम् ।।४२।।

चिन्तयित्वा महेशानि वशयेज्जगतीमिमाम् ।
चिन्तयेद्योषितां योनौ चलज्जलेन्दुसन्निभाम् ।।४३।।
तद्दृष्टिपथगा नारी दैवी वाप्यथवासुरी ।
निवेदितात्मसर्वस्वा वशगा देवि जायते ।।४४।।

तदनन्तर साधक परादेवी के कामकलाबीजरूप का चिन्तन करे। वे उदीयमान सूर्य के समान,प्रज्वलित दीपशिखा के समान ब्रह्ममार्ग के ब्रह्मरन्ध्र की ओर जा रही हैं। टपक रही बिन्दु धारा से शुद्धरूपा भगवती कुण्डलिनी शुद्ध लाक्षारस के समान समस्त भुवनों को तथा उसके जीवन को निगल चुकी हैं। उन्होने अपनी महामहिमा की क्रान्ति से समस्त अहंकार भूमि को कवलीकृत कर लिया है, निगल लिया है। हे महेशानी! साधक ऐसा चिन्तन करके समस्त को वश में कर लेता है। जो योनि के जल में पड़ रहे चंचल चन्द्रबिम्ब के समान स्त्री का चिन्तन करता है, वह नारी को ही देवी अथवा आसुरी क्यों न हो, वह उसके समक्ष अपना आत्मसमर्पण कर देती है।।४०-४४।।

अथ वक्ष्ये महेशानि शक्तिकूटस्य साधनम् ।
आधाराद्ब्रह्मरन्ध्रान्तं विद्युदग्निसमप्रभम् ।।४५।।
स्रवत्सुधामयं देवि शक्तिकूटं विचिन्तयेत् ।
देहिनाममृतानन्दवर्षधारारसोपमम् ।।४६।।
सर्पाणां दर्शनादेव जड़ीकरणकारकः।
स्थिरजङ्गमशङ्काख्यविषघातविनाशकः ।।४७।।
महारोगपीड़ितानां शरच्चन्द्रकरोपमः।
कथं कामकला देव सूचिता न प्रकाशिता ।।४८।।
यस्या स्मरणमात्रेण सायुज्यं लभते नरः।
तत्त्रैविध्यं श्रृणु प्राज्ञे सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।।४९।।
स्थूलं समं तथा नाम सूक्ष्म मन्त्रतनुं तथा ।
नभोमहाबिन्दुमुखी चन्द्रसूर्यस्तनद्वया ।।५०।।
सुमेरुहार्धकलया शोभमाना मही यदा ।
पातालतलविन्यस्ता त्रिलोकीयं कलात्मिका ।।५१।।
ललितायास्त्रिभिर्बीजैः प्रकाशार्थो य ईर्यते ।
तस्यविमर्श ईकारो बिन्दुना तत्त्रिधा गतम् ।।५२।।

हे देवी ! महेशानी ! अब मैं शक्तिकूट साधन कहता हूँ। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त विद्युत तथा अग्नि समप्रभ सुधा का स्राव करने वाले तथा देहधारी

के लिये अमृतानन्द का वर्षण करने वाले शक्तिकूट का ध्यान करे। इस ध्यान का साधक सर्पो को देखते ही जड़ कर देता है। स्थावर, जंगम तथा शंखाख्य विष के घात का वह विनाशक हो जाता है। वह महारोग से पीड़ितों के लिए चन्द्र किरण के समान शीतलता देता है। देवी कहती हैं—हे देव आपने उस कामकला का वर्णन तो किया जिसके स्मरण से मनुष्य सायुज्य प्राप्त कर लेता है, लेकिन आपने उसे (पूर्णतः) प्रकाशित नहीं किया। ईश्वर कहते हैं—हे प्राज्ञे! अब सर्वतन्त्रगोप्य उन तीन प्रकार से मन्त्र के स्थूल, सम तथा सूक्ष्म भेदों को सुनो। महाबिन्दुमुखी आकाश उसका मुख है। चन्द्र-सूर्य स्तनद्वय हैं। सुमेरु उसकी हार्धकला है। पृथिवी जो शोभमाना है, वह भी हार्ध कला है। पाताल पर्यन्त विन्यस्त त्रिलोकी उसकी कला है। ललिता के बीजत्रयं द्वारा जिस प्रकाश को कहा जाता है, उसका विमर्श है 'ई'। बिन्दु से वह त्रिधा है॥४५-५२॥

तत्तुरीयस्वरूपार्णं बिन्दुत्रितयवदीरितम् ।
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ ।।५३।।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्धकला भवेत् ।
तदात्मकत्व देव्यास्तु साधकस्य च तद्भवेत् ।।५४।।
तदुद्भवं श्रृणु प्राज्ञे महोदयकरं परम् ।
ऊर्ध्वबिन्द्वात्मकं वक्त्रमधोबिन्दुद्वयात्मकम् ।।५५।।
कुचद्वयं तु तच्छेषैः शेषाङ्गानि विभावयेत् ।
इति ते कथिता कामकलाया बाह्यभावना ।।५६।।

वह चतुर्थ वर्ण है। वह बिन्दु त्रितय युक्त है। ईंकार के ऊपर वाला जो बिन्दु सूर्य के समान है, वही उसका मुख है। नीचे के दो बिन्दु सूर्यचन्द्र स्तनद्वय हैं। 'ह' की हार्धकला योनि है। देवी तदात्मक हैं। साधक भी तदात्मक है। हे प्राज्ञे! अब जो परम महोदयकारी है, उसे सुनो! वक्त्र है ऊर्ध्व बिन्द्वात्मक। नीचे के दोनो बिन्दु उभयस्तन हैं। शेष बिन्दु शेष अंग हैं। यह भावना करे। यह कामकला की बाह्य भावना का वर्णन किया॥५३-५६॥

तामेव त्वां पुनर्वक्ष्ये भावनामान्तरात्मिकाम् ।
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्फुरद्विद्युल्लताकृतिम् ।।५७।।
ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवितद्विद्यास्वररूपिणीम् ।
षट्चक्रभेदिनीं देवीं बिन्दुत्रयात्मिकां पराम् ।।५८।।
तां च हार्धकलारूपां चिन्तयेत्पद्ममध्यगाम् ।
एवं कामकलारूपा जागर्ति सचराचरे ।।५९।।

सा च त्रयीमयी प्रोक्ता नास्ति किंचित्तया विना ।
साम्ना मुखं समाख्यातमृग्यजुर्भ्यां स्तनद्वयम् ।।६०।।
अथर्वणा समाख्याता हार्धरूपा परा कला ।
तुरीयं परमेशानि साक्षाद्ब्रह्मैव केवलम् ।।६१।।
एतत्कामकलारूपं ध्यानं गुह्यतमं परम् ।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन ।।६२।।

अब तुमसे अन्तरात्मिका भावना कह रहा हूँ। हे देवी! मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त विद्युल्लता के समान कुण्डलिनी का ध्यान करे। वहाँ उन विद्या स्वरूपिणी (काम ला स्वरूपिणी) कुण्डलिनी का ध्यान करे। वे षट्चक्रभेदिनी परादेवी बिन्दुत्रयात्मिका हैं। पद्म के मध्य में उनके हार्धकलारूप का चिन्तन करना चाहिये। यह कामकलारूपा सचराचर में जाग्रत रहती है। इसके बिना कुछ भी नही है। यही वेदत्रयी भी है। हे परमेशानी! तुरीय (चतुर्थ) तो केवल परब्रह्म ही है। कामकला का यह ध्यान अत्यन्त गुह्य है। जो शिष्य नहीं है, भक्तं नहीं है, उसे इसका उपदेश न दे।।५७-६२।।

एतत्प्रकाशनं यच्च आयुःक्षयकरं स्मृतम् ।
साधकस्य विनाशस्तु तस्मान्नैतत् प्रकाशयेत् ।।६३।।
लोभान्मोहाच्च गर्वाच्च विद्वेषाद्वा प्रकाशयेत् ।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति शस्त्रघातविषादिभिः ।।६४।।

इसका अपात्र को प्रकाशन करना आयु क्षयकारक है। इससे साधक का नाश होता है। अतः इसे प्रकाशित न करे। जो लोभ-मोह-गर्व-विद्वेष आदि से इसे प्रकाशित करता है, वह शस्त्रघात अथवा विष आदि से शीघ्र मरण को प्राप्त हो जाता है।।६३-६४।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे विद्याकूटत्रयसाधननिरूपण-नामकस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३०।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीईश्वर सवाद में विद्याकूटत्रयसाधननिरूपण नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ।।

एकत्रिंशः पटलः

होमतद्द्रव्यविधिनिरुपणम्

देव्युवाच–

होमस्य कथयेशान विधानं पूर्वसूचितम् ।

ईश्वर उवाच–

किंशुकैर्हवनं देव्याः कुसुम्भकुसुमैरपि ।।१।।
नागकेसरपुष्पैर्वा मधूके रक्तपद्मकैः।
करवीरै र्जपा पुष्पैर्मधुरत्रयमिश्रितैः।।२।।
सर्वसिद्धिप्रदं कुण्डं चतुरस्रं वरानने ।
कुण्डं सुलक्षणं कृत्वा होमयेत् संस्कृतेऽनले ।।३।।
अथवा परमेशानि स्थण्डिलं रचयेद्बुधः।
नित्यं नैमित्तिकं कुर्यान्न काम्यं स्थण्डिले चरेत् ।।४।।
हस्तमात्रं चतुरस्रं गोमयेनोपलेपितम् ।
अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चं वालुकामण्डलं तथा ।।५।।
तत्रापि लेपनं कृत्वा तत्र होमः फलप्रदः।
यवानां तण्डुलैरेवमङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत् ।।६।।
अदीर्घयोजितैर्हस्तैश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलैः ।
एतत्प्रमाणहस्तैस्तु कुण्डादिकं समाचरेत् ।।७।।

देवी कहती हैं—हे ईशान! पहले अपने जिसे सूचित किया है। उसका विधान कहिये।

ईश्वर कहते हैं—पलाशपुष्प, कुसुम्भ के फूल, नागकेसर, के पुष्प, महुआ, लालकमल, कनेर, गुड़हल के पुष्प, शक्कर, मधु, घृत द्वारा मिश्रित हवन करे।

हे वरानने! सर्वसिद्धिप्रद कुण्ड चतुरस्र होता है। सुलक्षण कुण्ड बनाकर संस्कृत अग्नि में हवन करे। अथवा परेशानी! बुद्धिमान व्यक्ति स्थण्डिल बनाये। (स्थण्डिल अर्थात् ऊँचा चबूतरा) स्थण्डिल पर नित्य-नैमित्तिक होम करे। (काम्य होम न करे।)

साधक अपने हाथ के नाप का चतुरस्र बनाकर उस पर गोबर का लेप करे। वह अंगुष्ठ के पर्व के इतना ही उँचा हो। बालुका मण्डल हो। उसपर पुनः लेप करे। इस पर होम फलद हो जाता है। बालुका मण्डल पर जौ अथवा चावल का आठ अंगुल लेप करे। चौबीस अंगुल नाप वाले हाथ से ही भूमि नापकर कुण्ड बनाये। त्रिकोण कुण्ड में होम द्वारा त्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होती हैं।।१-७।।

त्रिपुराप्रीतितदो होमः कुण्डे त्रिकोणसंज्ञके ।
पश्चिमात् पूर्वाग्रास्तिस्रो रेखाः प्रादेशमात्रकाः।।८।।

विलिख्य च मुकुन्देन्दुपुरन्दरस्वरूपकाः।
दक्षिणास्तिस्त्रो रेखा वै विलिख्य तदनन्तरम् ।।९।।
रेखाश्च स्युर्वैवस्तब्रह्मानन्तस्वरूपकाः।
त्रिकोणं मध्यतो देवि कृत्वा बाह्ये ततः परम् ।।१०।।
षट्कोणं विधिना चैव कारयेदतिसुन्दरम् ।
अष्टपत्रं च तद्बाह्ये वृत्तेन कर्णिका शुभा ।।११।।

पश्चिम से पूर्व की ओर प्रादेशमात्र तीन रेखायें खीचें। ये क्रमशः मुकुन्द, चन्द्र तथा इन्द्र रूप होती है। अब दक्षिण से उत्तर वाहिनी तीन रेखा खीचें। ये सूर्य-ब्रह्मा-अनन्तरूपा होती हैं। इसके मध्य में त्रिकोण बनायें। उससे बाहर अति सुदर्शन षट्कोण बनायें। उसके बाह्य में अष्टदल कमल, वृत्त तथा शुभ कर्णिका बनायें।।८-११।।

चतुरस्त्रं चतुर्द्वारं मण्डलं विरच्य मध्ये पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य स्रुवादिकमासादयेत् । स्रुव आज्यं दधि दूर्वा समिधः आज्यस्थालीं प्रणीता प्रोक्षणीं च वामतोऽस्मै परिकल्प्याम्भसा प्रोक्षणीमापूर्य वारत्रयमुत्पूय, तानि प्रोक्षण्यभिमुख्यानि कृत्वा बालयाभिमन्त्र्य तयैव दूर्वाभिर्मूलादग्रं पुनरग्रान्मूलं त्रिः परिमृज्य दूर्वाभिः पूर्वाग्रमुत्तराग्रं परिस्तीर्य (?) मूलविद्यां समुच्चरन् 'स्थण्डिलाय नमः' इति सम्पूज्य, त्रिकोणामध्ये कामेश्वरीकामेश्वरौ यष्ट्वा यतोर्मिथुनीभावं ध्यात्वा तावभ्यर्च्य तस्या गर्भे, 'वैश्वानर जातवेद इहावह लोभिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति मूलोद्गतं संविदग्निं ललाटनेत्रद्वारा निर्गतं बाह्याग्नियुक्तं पातयेत् । 'ओं उत्तिष्ठ पुरुष हरिपिङ्गल लोहिताक्ष सर्व-कर्माणि देहि मे दापय स्वाहा' इति वह्निमुत्थाप्य, 'ओं चित्पिङ्गलं हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' इति कामेश्वरीगर्भे धृतं ध्यात्वा, मूलमुच्चरन् वौषट्, इति वह्निं विलोक्यास्त्रेण संरक्ष्य ज्वलदग्निमादाय स्थण्डिलं दक्षिणावर्तेन त्रिः परिभ्राम्य ज्वलदिन्धनमेकं 'हूंफट्' इत्यनेन क्रव्यादग्निं नैर्ऋत्यां त्यजेत् ।

जानुभ्यामवनीं स्पृष्ट्वा वह्निं मध्ये संस्थाप्य 'क्लीं महात्रिपुरसुन्दरीवह्निमूर्त्तये नमः' इति देवीं सम्पूज्य नाभिमण्डलाद्वहन्नासापुटेन तदग्निना बाह्याग्निमेकीकृत्य यजेत् । मूलं 'ऐंक्लींसौः आं सोऽहं वह्निचैतन्याय नमः'' इति कामेश्वरीगर्भे वह्निं संचिन्त्य तद्देहे षडङ्गानि– सहस्त्रार्चिषे हृदयाय नमः, स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् धूमव्यापिने कवचाय हुम् , सप्तजिह्वाय नेत्रेभ्यो वौषट् , धनुर्धरायास्त्राय फट् ' इति यष्ट्वा तप्तजाम्बूनदप्रभं शक्तिस्वस्तिकधरं वरदाभयशोभितकरपङ्कजं दिव्यालङ्कारभूषितकरविग्रहसम्भोजसंस्थं शुक्लाम्बरधरं त्रिनयनं बद्ध-

मौलिध्यात्वा, चक्रे सप्तजिह्वाश्च ईशाने यूँ लोहितां , पूर्वे रूँ रक्तां, आग्नेये नूं नीलां, नैर्ऋते वूँ कृष्णां, पश्चिमे शूँ शुभ्रां, दक्षे करालीं, उत्तरे बहुरूपां जप्त्वा 'कामेशीगर्भोद्भववह्नेः सर्वभावेभ्यो नमः'-इति मन्त्रैर्गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणान्नप्राशनचूडोपनयनकर्म निर्वर्त्य, अमुका-ग्नेरमुककर्म कल्पयामि इति विधाय परिषिच्य परिस्तीर्य परिधाय पुनर्ध्यात्वा अग्निमन्त्रेणाग्निं त्रिकोणे पूजयित्वा होमं कुर्यात् ।

सप्तजिह्वासु सप्ताहुतीर्हुत्वा वैश्वानर-उत्तिष्ठ-चितिपङ्गलैस्त्रिधाहुतिं विधाय षडङ्गानि षट्कोणेषु अष्टदलेषु 'अग्नये जातवेदसे सप्तजिह्वाय हव्यवाहनाय अश्वोदरजाय वैश्वानराय कौमारतेजसे विश्वमुखाय देवमुखाय नमः' इति, लोकपालांश्च भूगृहे, वह्नेर्दक्षिणतो ब्रह्माणमाराध्य आज्यस्थालीं पुरतो निधाय बहुरूपायां जिह्वायां श्रीचक्रराजं तदन्तःस्थां चित्कलामशेषरश्मिमण्डितामालोच्य यष्ट्वा नित्यं हुत्वा कुण्डं मण्डपधूपैरापूर्य दीपैरुज्ज्वाल्य समिधं हुत्वा जुहुयात्; इष्टमेव च बलीन्प्रदाय 'ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, ओं स्वरादित्याय दिवे च महते च स्वाहा, ओं भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च स्वाहा'-इति चतुर्भिर्मन्त्रैर्व्याहृतिहोमं कृत्वा ब्रह्मार्पणम् अतः परं समिधं हुत्वा देवीमभ्यर्च्य विसृजेदिति।

साधक चतुरस्र-चतुर्द्वारयुक्त मण्डल निर्माण करके उसके मध्य में पुष्पाञ्जलि अर्पित करके स्त्रुवा ले आये। स्त्रुवा, घृत, दधि, दूर्वा, समिध (होम की लकड़ी) घृतपात्र प्रणीता प्रोक्षणी को बायें रखकर प्रोक्षणी को जल से भरे। तीन बार उसके पानी का उत्पवन करे। अब प्रणीता आदि का प्रोक्षणी के समक्ष स्थापित करने के अनन्तर बालामन्त्र से उन्हें अभिमंत्रित कर बालामन्त्र द्वारा दूर्वा को पूर्वाग्र तथा अत्तराग्र में बिछाकर रखे। तदनन्तर मूलमन्त्रोच्चार करते हुये 'स्थण्डिलाय नमः— , द्वारा स्थण्डिल का पूजन करे। त्रिकोण मध्य में कामेश्वर-कामेश्वरी का पूजन करके उनके मिथुनभाव का ध्यान करने के बाद पुनः उनका पूजन करे। तत्पश्चात् "वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्मणि साधय स्वाहा' पढ़ते हुये भावना द्वारा मूलोद्गत् संविदग्नि को अपने ललाटस्थ नेत्र (ऊर्ध्वनेत्र) द्वारा निकाल कर बाह्य अग्नि से संयुक्त करके उसे गिराये। (कामेश्वरी के गर्भ रूप अग्नि में गिराये)। तत्पश्चात् 'ॐ उत्तिष्ठ पुरुष हरिपिंगल लोहिताक्ष सर्वकर्माणि देहि में दापय स्वाहा' मन्त्र से अग्नि को उठाकर 'ॐ चित्तपिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' मन्त्र द्वारा कामेश्वरी के गर्भस्थ अग्नि का अवलोकन करके अस्त्रमन्त्र (फट्) से उसकी रक्षा करके प्रज्वलित अग्नि को देखने के अनन्तर मूलमन्त्र का उच्चारण करते-करते

'वौषट्' का उच्चारण करके अग्नि को स्थण्डिल के चतुर्दिक दक्षिणावर्त्त क्रम से तीन बार घुमाये। तदनन्तर एक जलती हुई ईंधन की लकड़ी को 'हुं फट्' कहकर कव्याद अग्नि को नैर्ऋत् कोण में फेकें।

दोनों जानु से पृथिवी का स्पर्श करके अग्नि को घुटनो के मध्य करके 'क्लीं महात्रिपुरसुन्दरी वह्निमूर्तयेनमः' द्वारा देवी की पूजा करे। तदनन्तर नाभिमण्डल से नासापुट तक आभ्यन्तर अग्नि को लाकर नासिका से बाहर लाकर बाह्य अग्नि मे उसे मिलाये (यह सब भावना से होगा)। तदनन्तर उसका पूजन करे। 'ऐं क्लीं सौः आं सोऽहं वह्निचैतन्याय नमः' मन्त्र द्वारा कामेश्वरी की गर्भस्थ अग्नि का चिन्तन करके उस अग्नि से देह में षड़ङ्गन्यास करे। यथा—

ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः।
ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा।
ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट् ।
ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्
ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रेभ्यो वौषट्।
ॐ धनुर्धरायास्त्राय फट्।

अब ध्यान करे— वे तपे सुवर्ण कान्ति के समान, शक्ति स्वस्तिक धारी, वरद, अभय मुद्राधारी दिव्य अलंकार से विभूषित, कमलासीन, शुक्लवस्त्रधारी, त्रिनेत्र, जटाजूटधारी हैं। तदनन्तर चक्र पर सप्त जिह्वा का ध्यान करे, यथा ईशान में 'यूं' लोहित, पूर्व में 'रुं' रक्त, अग्निकोण में 'नू' नीला नैर्ऋत मे 'बूं' कृष्ण, पश्चिम में 'शूं' शुभ्र, दक्षिण में कराली तथा उत्तर में बहुरूपा का ध्यान करके 'कामेशी गर्भोद्भववह्नेः सर्वभावेभ्योनमः—'मन्त्र से गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन संस्कार को करने के पश्चात् 'अमुकाग्नेः अमुककर्म कल्पयामि' कहकर परिषेचन करे। परिस्तरण परिधानोपरान्त पुनः ध्यान करने के उपरान्त त्रिकोण में 'ॐ पावकाग्नये नमंः' से अग्नि का पूजन तथा हवन करे।

अग्नि की सप्त जिह्वाओं को सात आहुति प्रदान करके मन्त्रोक्त ''वैश्वानर उत्तिष्ठ, से लेकर 'देवमुखाय नमः'', पर्यन्त से तीन बार आहुति प्रदानोपरान्त षड़ङ्ग न्यास करे। छः कोण तथा आठ दलों में अग्नये जातवेदसे सप्तजिह्वाय हव्यवाहनाय अश्वोदरजाय वैश्वानराय कौमारतेजसे विश्वमुखाय देवमुखायनमः कहकर पूजन करे। भूपुर में लोकपालगण का पूजन करके तथा अग्नि के दक्षिण भाग मे ब्रह्मा का पूजन करके धृतपात्र को सम्मुख रखकर बहुरूपा जिह्वा में श्री चक्रराज की पूजा करे। चक्रराजस्थ समस्त राशियों से अलंकृत चित्कला की

पूजा करने के उपरान्त होम करे। कुण्ड को मण्डप धूप से आपूरित करके दीपों को जलाये तथा समिधा से होम करे। तदनन्तर इष्टबलि प्रदान करे। तदनन्तर चार मन्त्रों से हवन करे-

ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा।
ॐ भुवो वायेवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा।
ॐ स्वरादित्याय च दिवे च यमहते च स्वाहा।
ॐ भूर्भुवः स्वश्चचन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च स्वाहा।

तदन्तर ब्रह्मा को पूर्णपात्र दान करे। तदनन्तर समिधा का हवन कर देवी का पूजनोपरान्त विसर्जन करे।

नित्यहोमो मया प्रोक्तः काम्यहोममतः शृणु।
मल्लिका-मालतीजातीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः ।।१२।।
घृतपूर्णौ फलैर्वापि वागीशत्वं प्रजायते।
जपा पुष्पैराज्ययुतैः करवीरैस्तथाविधैः।।१३।।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः।
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।।१४।।
कमलै रूणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिदायकः।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं नीलैर्दुष्टान्वशं नयेत् ।।१५।।
श्वेतोत्पलैः श्रियं राज्यं लभते हवनात्प्रिये।
कल्हारहवनैर्लक्ष्मी सर्वसौभाग्यमेव च ।।१६।।

अब काम्य होम कहते हैं। इससे पहले मैनें नित्यहोम कहा था। अब काम्य होम कहता हूं। सुनिये। मल्लिका-मालती-चम्पा के पुष्पों को मधु से लिप्त करके तथा फलों को घृत में डुबाकर हवन करने वाला वागीशत्व प्राप्त कर लेता है। घी से लिप्त अड़हुल (जवापुष्प) अथवा कनेर के पुष्पों से हवन करने पर साधक त्रिलोकी को सम्मोहित कर देता हैं।

चम्पा तथा पाटल पुष्प से होम करने पर साधक उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है रक्तकमल द्वारा किया होम सम्यक् सम्पत्तिप्रदाता है। नीलकमल के होम से दुष्ट वशीभूत हो जाते हैं। हे प्रिये! श्वेत कमल से हवन करने पर साधक श्री तथा राज्य प्राप्त करता है। कह्वार (लालकमल) के हवन द्वारा लक्ष्मी तथा सभी सौभाग्य मिल जाते हैं।।१२-१६।।

बन्धूककुसुमैर्होमे सर्वसत्त्वान् वशं नयेत्।
क्षीरं दधि मधु त्वाज्यं पृथग्हुत्वा वरानने ।।१७।।

आयुर्बलमथारोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ।
रुधिराक्तेन च्छागस्य मांसेन निशि होमतः।।१८।।
मधुरत्रययोगेन गुरुणोक्तविधानतः।
परराष्ट्रं वशं नीत्वा कामभोगी भवेन्नरः।।१९।।
द्राक्षाभिर्लक्षहोमेन सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ।
कदलीफलहोमेन नारिकेलफलैस्तथा ।।२०।।
राजानो वशमायान्ति समृद्धिरतुला तथा ।
जम्बूफलैः स्त्रियः सर्वा वश्या भवन्ति निश्चितम् ।।२१।।

बन्धूक पुष्पों से होम द्वारा सभी प्राणी वशीभूत होते हैं। हे वरानने! दूध-दही-मधु-घृत से पृथक् होम करने पर आयु, बल, अरोग्य तथा समृद्धि मिलती है। (दूध से आयु, दही से बल, मधु से आरोग्य, घृत से समृद्धि मिलती है।) रात्रि में गुरुद्वारा कहे गये विधानानुसार रुधिर से लिपटे बकरे के मांस तथा त्रिमधु को मिलाकर हवन करने से परराष्ट्र को वश में लेकर व्यक्ति कामभोगी हो जाता है। अंगूर से एक लाख आहुति द्वारा साधक को अष्टसिद्धि मिल जाती है। केला एवं नारियल के होम से राजा वशीभूत हो जाते हैं। अतुल समृद्धि प्राप्त होती है। जामुन के फलों से होम द्वारा स्त्रीगण वशीभूत हो जाती हैं।।१७-२१।।

श्रीफलैरतुला लक्ष्मीः पत्रैश्चापि तथा भवेत् ।
इक्षुखण्डैः सुखावाप्तिस्तद्रसैर्वशगा नृपाः।।२२।।
तिलाज्यहोमतो देवि सर्वकार्याणि साधयेत् ।
घृतपायसहोमेन सिताज्यमधुना सह ।।२३।।
त्रैलोक्यं वशमायाति धनधान्यबमवाप्नुयात् ।
सोपस्कारैश्च वटकैरुपसर्गान्विनाशयेत् ।।२४।।
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वशे जायते नृणाम् ।
कुङ्कुमैर्होमतो देवि सर्वदुःखानि नाशयेत् ।।२५।।
कस्तूरीहोमतो देवा वशगा नात्र संशयः।
चन्दनागुरुहोमेन सर्वांल्लोकान् वशं नयेत् ।।२६।।

बेल के फल तथा उसके पत्तों से हवन करने पर अतुल लक्ष्मी मिलती है। ईख के खण्डों से होम द्वारा सुख प्राप्ति तथा गन्ने के रस से हवन करने पर राजा वशीभूत होते हैं। हे देवी! तिल तथा घृत के होम द्वारा साधक सर्वसिद्धि प्राप्त करता है। घी-खीर-मिश्री तथा मधु मिलाकर होम द्वारा साधक त्रिलोकी को वश में करके धन-धान्य प्राप्त करता है। दही-चीनी आदि उपस्कार के साथ बड़ा का हवन करने से साधक उपसर्गों का नाश कर देता है। कर्पूर से होम के द्वारालोग साधक की वाणी के वशीभूत हो जाते हैं। हे देवी! कुंकुम द्वारा होम से सब दुःख नष्ट हो

जाते हैं। कस्तूरी द्वारा होम से देवगण वश में होते हैं। यह निःसंदिग्ध है। चन्दन तथा अगुरु द्वारा होम से मनुष्य सभी लोगों को वशीभूत कर लेता है।।२२-२६।।

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धये ।
पुष्पं समग्रं जुहुयाच्छतसंख्यास्तिलांस्तथा ।।२७।।
लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युर्घृतं कर्षप्रमाणकम् ।
चुल्लकार्धं मधु क्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ।।२८।।
समग्रैश्च सखण्डैश्च फलानां च यथेच्छया ।
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि ।।२९।।
नारिकेलस्य खण्डं तु स्थूलं कुर्यान्मनःप्रियम् ।
पर्व स्थाने चेक्षुदण्डं मनःसन्तोषकारकम् ।।३०।।

हे देवी ! अव हवनसिद्धि हेतु परिमाण कहता हूँ। पुष्प द्वारा जो हवन करे उसमें उसके टुकड़े न करें। तिलों की १०० से कम आहुति न दे। लावा एक मुष्टि प्रमाण, घी एक कर्ष परिमाण का (एक बार की आहुति में) हवन करे। मधु तथा दुग्ध आधा -आधा चुल्लुक तथा अन्न एक ग्रास होमाहुति दे। फल टुकड़ों में भी आहुति दे सकते हैं। छोटाफल (अंगूर, बादाम, आदि) पूरा ही होम करे। नारीकेल का बड़ा टुकड़ा हो । होम हेतु ईख को उसके पोर से ही काटे।।२७-३०।।

द्राक्षाफलं समग्रं स्याद् गुञ्जामानं ततो भवेत् ।
कर्पूरकौशिकादीनां मनः सन्तोषकारकम् ।।३१।।
एतदाहुतिमानं च कथितं सर्वसिद्धिकृत् ।
किंशुकैः पापसङ्घातनाशकैरथवा प्रिये ।।३२।।
नानाद्रव्यैः पृथग्भूतैः संगृहीतैर्वरानने ।
यथाशक्त्या तु मिलितैर्होमं कुर्याद्विचक्षणः ।
सर्वविघ्नसमूहं तन्नाशयेन्नात्र संशयः ।।३३।।

होम हेतु अंगूर पूरा, कपूर-कस्तूरी तथा केसर की मात्रा एक गुञ्जा (घुमची) इतनी लेनी चाहिये। यह सर्वसिद्धि कृत आहुतिमान मैनें कहा। हे प्रिये! पाप नाशक पलाशपुष्प अथवा अनेक द्रव्यों के मिश्रण द्वारा यथाशक्ति होम करे। उसके सर्वविघ्न इससे नाश प्राप्त होते हैं। यह निःसंदिग्ध है।।३१-३३।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे होमतद्रव्यविधिनिरूपणं
नामैकत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः ।।३१।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वरसंवाद में होमतद्रव्य विधिनिरूपणं
नामक एकतीसवाँ पटल समाप्त ।।

◆

द्वात्रिंशः पटलः

मुद्राधारणविधिनिरुपणम्

देव्युवाच–

वह्नीन्द्वर्कमयी मुद्रा प्रतिष्ठा च कथं भवेत्।

ईश्वर उवाच–

सोमसूर्याग्निरूपाः स्युर्वर्णा त्रयं तथा ।।१।।
स्वराः षोडश सौम्यास्ते सौराः स्युः कादयोऽपरे ।
आग्नेयास्ते समुद्दिष्टा यादयो दश चापरे ।।२।।
रौप्यमिन्दुस्तथा हेम सूर्यस्ताम्रं हुताशनः।
लोभभागाः समुद्दिष्टा स्वराद्यक्षरसंख्यया ।।३।।
तैर्लोहैः कारयेन्मुद्रामसङ्कलितसङ्गताम् ।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यै क्षालयित्वा शुभेऽहनि ।।४।।
भानुवारे शुभे लग्ने पूर्वोक्तमातृकाम्बुजे ।
मध्यादि स्थापयेत्तेषु पत्रेषु कलशानपि ।।५।।

देवी कहती हैं— हे देव! अग्नि चन्द्र तथा सूर्यमयी मुद्रिका क्या हैं, उनकी प्रतिष्ठा कैसे होती है? ईश्वर कहते हैं—वर्ण एवं तीन लौह सोम, सूर्य, अग्निरूप होते हैं। १६ स्वर सौम्य होते हैं (चन्द्र) तथा 'क' से 'म' पर्यन्त के वर्ण सूर्य सम्बन्धित कहे गये है। य आदि दश वर्ण य,र,ल,व,श,ष,स,ह,ल एवं क्ष को आग्नेयवर्ण कहते हैं। रौप्य (चाँदी) चन्द्र है, स्वर्ण सूर्य है तथा ताम्र अग्नि है। (ये तीनों मिलाकर त्रिलौह होते हैं।) अर्थात् १६ चन्द्र के २५ सूर्य के तथा १० अग्नि के वर्ण त्रिलौह के तीन भाग हैं। इनसे पृथक्-पृथक् मुद्रा बनाये। चाँदी के पत्र पर १६ स्वर, स्वर्ण पत्र पर 'क' से 'म' तक के व्यञ्जन तथा ताम्रपत्र पर ऊपर कहे गये १० वर्णों को खुदवाकर मुद्रा बनाये। शुभ मुहूर्त्त तथा दिन में इन्हे पंचामृत, पञ्चगव्य से धोकर रविवार को शुभलग्न में मातृका कमल के ऊपर मध्य में स्थापित करे। इन पर कलश भी स्थापित करे॥१-५॥

तन्तुभिर्वेष्टिताञ् शुद्धान् बहिश्चन्दनचर्चितान् ।
सुधूपवासितान्देवि दूर्वाक्षतसमन्वितान् ।।६।।
क्वाथेन पूरयेद्देवि यथावदक्षरौषधैः।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरलघुकस्तूरिकायुतैः ।।७।।
आपूर्य गन्धतोयैस्तान्वेष्टयेदंशुकैः शुभैः।
मुक्तामाणिक्यवैदूर्यगोमेदवज्रविद्रुमान् ।।८।।

पुष्परागं मरकतं नीलं चेति यथाक्रमम्।
विन्यसेत्तेषु कुम्भेषु रत्नाङ्कितफलानि च।।९।।
स्थापयेत् कुम्भवक्त्रेषुकोमलांश्चूतपल्लवान्।
मध्यकुम्भे च मुद्रां तां विन्यस्य बहुमङ्गलैः।।१०।।
बीजत्रयं त्रिधा कृत्वा मातृकां च त्रिधा तथा।
विभज्य पूजयेद्देवि सोमसूर्यहुताशनान्।।११।।

इन शुद्ध कलसों को तन्तु से वेष्टित करके बाह्यतः चन्दन से लिप्त करे। हे देवी! इन्हे धूप से धूपित करके दूर्वा एवं अक्षत से युक्त करे तथा ५१ औषधियों के क्वाथ द्वारा उस कलस को भर दे। गोरोचन, कपूर, केसर, लघु कस्तूरी मिले सुवासित जल को भी उसमें भरे। कलस का मुख वस्त्र से वेष्टित करे। तीनों कलसों में यथाक्रमेण मुक्ता, माणिक्य, वैदूर्य को चाँदी के पत्र पर रखे कलस में छोड़े। स्वर्ण पत्र पर रखे कलस में गोमेद, हीरा एवं मूंगा छोड़े। ताम्र पत्र पर रखे कलस में पुखराज, पन्ना तथा नीलम छोड़े। कलसों में रत्नांकित फल भी छोड़े। कलस के मुख पर कोमल आम के पत्ते रखने चाहिये। घटमध्य में मुद्रा तथा मंगलकारी द्रव्य भी छोड़े। हे देवी! बीजत्रय को तीन भाग में बाँटकर अर्थात् ऐं, क्लीं, सौः रूपभागत्रय में बाँटकर तथा मातृका को भी तीन भाग में बाँटकर सोम, सूर्य तथा अग्निपूजन सम्पादित करे। अर्थात् ऐं बीज तथा १/३ मातृका से एक घटकी, क्लीं बीज तथा १/३ मातृका से द्वितीय घट की तथा सौः बीज द्वारा तथा १/३ मातृका द्वारा तीसरे घट का पूजन करे, यही तात्पर्य प्रतीत होता है ॥६-११॥

तत्रावाह्य यजेद्देवीं सम्मोहनीं परां ततः।
प्राणानायम्य विधिवत् पूर्ववन्मातृकां न्यसेत्।।१२।।
त्रिनेत्रां तरुणेन्द्वाभां बालार्ककिरणारुणाम्।
अक्षमालाङ्कुशवरान् पाशं पद्मद्वयं तथा।।१३।।
आबिभ्रतीं कराम्भोजैः पुण्ड्रेक्षुचापपुस्तकम्।
मायाश्रीकामबीजाद्यां नित्यां वर्णमयीं भजेत्।।१४।।

उन कलसत्रय पर तथा पत्रत्रय पर सम्मोहिनी देवी का आवाहन करे। प्राणायामोपरान्त पहले कही विधि के अनुसार मातृका न्यास करे। इनका ध्यान यह है, ये त्रिनेत्रा, पूर्णचन्द्र के समान आभायुक्ता, बालसूर्य की किरणों के समान अरुण, का पुण्ड्रईख, ईख का धनुष तथा पुस्तक धारिणी हैं। माया (ह्रीं), श्रीं, काम (क्लीं) बीज को पहले कहकर ५१ वर्णों के स्वरूप वाली इन वर्णमयी नित्यादेवी का ध्यान करे॥१२-१४॥

नानाविधैस्तु कुसुमैर्धूपदीपैर्मनोहरैः।
उच्चावचैरुपहारैः पूजयित्वा यथाविधि ।।१५।।
शर्कराघृतसंयुक्तं पायसं च निवेदयेत् ।
पूजयेद्दिक्षु कुम्भेषु व्यापिन्यादीन्यथाक्रमम् ।।१६।।
व्यापिनी पालिनी पश्चात् प्लाविनी क्लेदिनी तथा ।
धारिणी मालिनी चैव हर्षिणी शान्तिनी तथा ।।१७।।
न्यापिन्यश्चाष्टसंख्या वैः एताः पर्वतनन्दिनि ।
साग्रं सहस्रं सञ्जप्य स्पृष्ट्वा तां मुद्रिकां ततः।।१८।।

अनेक प्रकार के पुष्पों, मनोहारी दीपों, उच्च तथा मध्यम उपहारों से उनका यथाविधि पूजन करे। तदनन्तर शर्करा, घृत मिश्रित खीर का नैवेद्य प्रदान करे। अष्टदिक् में स्थापित कलसों मे व्यापिनी, पालिनी, प्लाविनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हर्षिणी तथा शान्तिनी का पूजन करे। हे पर्वतनान्दिनी! एक हजार जपोपरान्त मुद्रिका का स्पर्श करे॥१५-१८॥

होमयेत्संस्कृते वह्नौ सहस्रं हविषा तथा ।
तस्यां सम्पातयेद्देवि विधिनाहुतिशेषकम् ।।१९।।
सम्मोहनीं समुद्दिश्य गृहीत्वाज्यां स्रुवेण तु ।
बीजत्रययुतां देवि मातृकां बिन्दुसंयुताम् ।।२०।।
वह्निभार्यान्वितां पश्चात् कृत्वा वै होमयेत्ततः।
मण्डले मातृकादेव्याः शिष्यं निवेश्य सादरम् ।।२१।।
सुरास्त्वामिति मन्त्रैस्तु नवभिःकलशैः शुभैः।
अभिषिच्य विनीताय दद्यात्तां मुद्रिकां गुरुः।।२२।।

संस्कृत की हुई अग्नि में १००० आहुति प्रदान करे। हे देवी! उसी अग्नि में विधिवत् शेष आहुति प्रदान करे। सम्मोहिनी हेतु स्रुवा के घृत में 'ए ह्रीं श्रीं' से युक्त मातृकाओं को बिन्दुयुक्त करके उन्हें 'स्वाहा' से जोड़कर होम करे। तदनन्तर मातृकामण्डल में शिष्य को सादर बैठाकर ९ कलशों द्वारा "सुरास्त्वामभि सिञ्चन्तु......सर्वकामार्थ सिद्धये' मन्त्र से अभिषेकोपरान्त उस विनीत शिष्य को गुरुदेव मुद्रिका अर्पित करें॥१९-२२॥

इयं रक्षाकरी मुद्रा विषरोगविनाशिनी ।
व्यालचौरमृगादिभ्यो रक्षां कुर्याद्विशेषतः।।२३।।
सर्ववश्यकरी शुद्धा शुद्धिदाशुद्धिहारिणी ।
तर्जन्यां धारयेदेनां विधिना मनुजेश्वरः।।२४।।
युद्धे विजयमाप्नोति श्रिया परमया युतः।
विभजेन्मातृकां देवि नववर्गांस्तथोदितान् ।।२५।।

नववर्गसमुत्पन्ना नवरत्नेश्वरा ग्रहाः।
अर्केन्दुवक्रज्ञगुरुभृगुमन्दाहिकेतवः ।।२६।।
नवरत्नैर्महेशानि मुद्रां कुर्याद्यथेच्छया।
तद्रत्नेषु ग्रहान्सर्वान् पूजयित्वा विधानतः।।२७।।

इस मुद्रात्रय के धारण का फल कहते हैं। यह विष एवं रोग नाशिनी रक्षाकरी मुद्रा है। सर्प, चोर, मृगादि हिंस्र पशुओं से विशेष रूप से रक्षा करने वाली है। सर्ववश्यकारी, शुद्धा, अशुद्धि दूर करने वाली है। राजा यत्नपूर्वक तर्जनी में पहने तो वह परम श्री से युक्त होता है। युद्ध में विजयी होता है। हे देवी! मातृकाओं को नव वर्ग में विभाजित करना चाहिये। वे है— अ, क, च, ट, त,प, य, श, तथा सवर्ग। नवरत्नों के स्वामी नवरत्नेश्वर ग्रह इसी नववर्ग से उत्पन्न हैं। ये हैं सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु। हे महेशानी! साधक इच्छा के अनुसार मुद्रा को नवरत्न से जड़ित करे। जो रत्न जिस ग्रह के हैं, उन ग्रह की भी पूजा करे॥२३-२७॥

आवाह्य पूजयेद्देवीं सम्मोहनीं परां तथा।
जपहोमादिकं सर्वं कुर्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना ।।२८।।
यो मुद्रां धारयेदेनां तस्य स्युर्वशगा ग्रहाः।
वर्धते तस्य सौभाग्यं लक्ष्मीरव्याहता भवेत् ।।२९।।
द्रोहिणस्तस्य नश्यन्ति नश्यन्ति सकलापदः।
रक्षोभूतपिशाचाद्या नेक्षन्ते तं भयातुराः।।३०।।
उपर्युपरि वर्धन्ते धनरत्नानि सम्पदः।
विना प्रतिष्ठया मुद्रां धारयित्वा पतत्यधः।
नाप्नोति च फलं तस्माद्धारयेद्विधिना प्रिये ।।३१।।

तदनन्तर आवाहन करके परादेवी सम्मोहिनी का पूजन करना चाहिये। अब जप होमादिक सब पहले वर्णित रीति बिधानानुसार करे। इन मुद्राधारी के सभी ग्रह उसके वशवर्त्ती हो जाते हैं। उसके पास अव्याहत लक्ष्मी आती है। तथा सौभाग्य बढ़ता रहता है। उसके द्रोही नष्ट होते हैं, आपत्ति नष्ट हो जाती है। उससे भयाक्रान्त होकर उसकी ओर राक्षस-भूत-पिशाचादि देखते तक नहीं। एक के बाद एक धन सम्पत्ति आदि बढ़ती ही रहती है। बिना उपरोक्त विधि से प्रतिष्ठा किये मुद्रिका पहनने वाला पतित होता है तथा मुद्राधारण फल से वंचित रहता है। हे प्रिये इसे विधान से धारण करे॥२८-३१॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे मुद्राधारणविधिनिरूपणनामको द्वात्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३२।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वरसंवाद में मुद्राधारण विधिंनिरूपण नामक बत्तीसवाँ पटल समाप्त ॥

◆

त्रयस्त्रिंशः पटलः

चक्रराजप्राणप्रतिष्ठानिरुपणम्

देव्युवाच–

चक्रराजस्त्वया प्रोक्तः प्रतिष्ठा न प्रकाशिता।

ईश्वर उवाच–

चक्रे मूर्तौ तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते ।।१।।
प्रतिष्ठितस्तथा शिष्यो दीक्षया खलु पार्वति।
अर्चां रत्नमयीं कृत्वा हैमीं वा राजतीं प्रिये ।।२।।
प्रतिष्ठां विधिवत् कुर्यात् संस्थाप्य च गृहे शुभे।
मासि मासि चरेद्यात्रां महाविभवविस्तरात् ।।३।।
चतुःषष्ट्युपचारैस्तु पूजां कुर्याद्दिने दिने।
दीक्षोक्तविधिना पूर्वमधिवासादिकं चरेत् ।।४।।

देवी कहती है—आपने चक्रराज के सम्बन्ध में तो कहा है, परन्तु उसकी प्रतिष्ठा का प्रकाशन नहीं किया।

ईश्वर कहते हैं—चक्र, मूर्ति तथा शिष्य में, (इन तीनों में) प्रतिष्ठा त्रिविध कही गयी है। हे पार्वती! शिष्य की प्रतिष्ठा होती है दीक्षा द्वारा। हे प्रिये! रत्नमयी, स्वर्णमयी अथवा रजतमयी अर्चा बनकर (विग्रह बनाकर) शुभ गृह में उसकी प्राणप्रतिष्ठा करे। प्रतिमाह धन सम्पत्ति (सामर्थ्य) के अनुसार महाविभव विस्तार से उनकी अर्चना (यात्रा अर्थात् पूजा) करनी चाहिये। प्रतिदिन ६४ उपचारों से यह पूजन सम्पन्न किया जाये. जैसी विधि दीक्षाप्रसंग में अंकित है, तदनुसार अधिवास करे।।१-४।।

वासोभूषणगन्धाद्यैः म्कार्यतत्त्वार्थ्विद्गुरुः।
उक्तेन विधिना पूर्वं कृत्यं निर्वर्त्य देशिकः।।५।।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षालयेच्चक्रराजकम्।
तथाविधे गृहे वेद्यां पूजयित्वा यथाविधि ।।६।।
नानाकुसुमसौरभ्यवासितेऽतिमनोहरे।
सुषुम्नावर्त्मना चक्रं पर्यङ्केऽथ निवेशयेत् ।।७।।

तदनुसार पूर्वकृत्य सम्पन्न करके कार्य रहस्य का ज्ञाता गुरु वसन, भूषण, गन्धादि से (पूजनादि) अधिवास करे। पञ्चामृत, पञ्चगव्य से चक्रराज का प्रक्षालन किया जाये। गृह वेदी की पूजा यथाविधि करने के उपरान्त पुष्पों से अलंकृत, सुवासित, मनोहर पर्यङ्क पर सुषुम्ना वर्त्म से चक्रराज को स्थित करे।।५-७।।

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरैरथ चन्दनैः।
विलिप्य विविधैर्गन्धैः कुङ्कुमैरपि योजयेत् ।।८।।
दिव्येन वाससाच्छाद्य कर्पूरैरधिवासयेत्।
धूपैः सुधूपितं कृत्वा दीपैरुज्ज्वाल्य पार्वति ।।९।।
कर्पूरवासितैस्तोयैः पूरितान् कलशाञ् शिवे ।
एकाशीतिपदे तत्र स्थापयेद्वस्त्रवेष्टितान् ।।१०।।

कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन का लेप करके चक्राराज पर विविध गन्ध लगाये। दिव्य वस्त्र द्वारा चक्रराज को आच्छादित करके उसे कर्पूर से अधिवासित भी करे। हे पार्वती! धूप से धूपित (वहाँ) करके कर्पूर से सुगन्धित जल द्वारा कलसों को आपूरित करना चाहिये। अब उन कलसों को भी वस्त्र द्वारा वेष्ठित करके ८१ कोष्ठ वाले मण्डल पर स्थापित किया जाये।।८-१०।।

हेमगर्भान्समाञ्छुद्धान् पुष्पमालाद्यलंकृतान्।
एकाशीतिपदोपेतं चतुरस्त्रं तु मण्डलम् ।।११।।
ब्रह्मचारी गुरुस्तत्र सशिष्यश्चापि संविशेत्।
प्रातरेव तु तत्सर्वं विनिर्वर्त्य विधानतः।।१२।।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेन्मण्डपे गुरुः।
पूर्ववदपरं कृत्वा आसनमुपविश्य च ।।१३।।
तथासनं च निर्वर्त्य चक्रमुत्थापयेत् ततः।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः क्षालयित्वा विधानतः।।१४।।
निधाय भद्रपीठे च तत्र देवीं विभावयेत्।
क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं नारिकेलाम्भसा ततः।।१५।।
इक्षुरसैस्तथा तोयैरभिषिच्य समन्त्रकम्।
तैरेव कलशैः सम्यगभिषिञ्चेद्यथाविधि ।।१६।।

अब कलसों में स्वर्णखण्ड छोड़ें। वे कलश एक ही आकार वाले,शुद्ध तथा पुष्प-माल्यादी से सजे हों। वह ८१कोष्ठक वाला मण्डल चतुरस्त्र हो। ब्रह्मचारी गुरु वहाँ सशिष्य आसीन हो जायें। वहां विधिवत प्रातःपूजादि सम्पन्न
करके गुरुदेव पूर्वोक्त विधान के अनुसार मण्डल में प्रवेश करें।
करके गुरुदेव पूर्वोक्त विधान के अनुसार मण्डल में प्रवेश करें।

तदनन्तर नारिकेल के जल से,तत्पश्चात् ईख के रस से, सर्वान्त में जल द्वारा मन्त्रोच्चारण युक्त अभिषेक किया जाये। इन्ही द्रव्यों से विधानपूर्वक कलसो का भी अभिषेक करें ॥११-१६॥

सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन भृङ्गारेणाभिषिच्य वै।
चक्रं कराभ्यामुद्धृत्य स्थापयेद्धेमपीठके ।।१७।।
ततो देवीं हृदि ध्यात्वा यथोक्तध्यानयोगतः।
आवाह्य चक्रमध्ये च तथैवैकाग्रचित्तवान् ।।१८।।
निर्वर्त्य विधिना देवि चक्रं स्पृष्ट्वा करेण च।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीरोचनाचन्दनेन्दुभिः ।।१९।।
विलिप्याथ पुनश्चक्रं सुवर्णस्य शलाकया।
रेखोन्मीलनमापाद्य यजेदाधारपूर्वकम् ।।२०।।

तदनन्तर सर्वतीर्थ के जल द्वारा पूरित पात्र द्वारा अभिषेक करे। तत्पश्चात चक्र को दोनों हाथों से उठाकर स्वर्णपीठ पर स्थापित करे।तदनन्तर देवी का ध्यानयोग द्वारा हृदय में ध्यान करें। हे देवी! तत्पश्चात् एकाग्रमन से देवी का आवाहन चक्र में करके विधानपूर्वक (निर्देशित) कृत्य पूर्ण करने के अनन्तर चक्र का स्पर्श करे। अब पुनः चक्र को कुंकुम,अगुरु,कस्तूरी,गोरोचन, चन्दन, कर्पूर से लिप्त करके स्वर्ण शलाका से वहाँ रेखा खींचकर आधार के साथ उसका पूजन करना चाहिए।।१७-२०।।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण प्राणांस्तत्र निवेशयेत्।
क्षीरोदधिः सनादेन बिन्दुना परिमण्डितः।।२१।।
नकुलीशोऽग्निमारुढो मायानादेन्दुलाञ्छितः।
कामदेवोऽग्निमारूढः सद्योजातेन भूषितः।।२२।।
नादबिन्दुकलायुक्तः सर्वप्राणप्रदायकः।
बीजत्रयमिदं देवि शिवबीजं सचन्द्रकम्।।२३।।
तदन्ते परमेशानि सर्गवान् भृगुरव्ययः।
ततो भूयस्तु षष्ठ्यन्ता महात्रिपुरसुन्दरी।।२४।।
क्रमात्प्राणा इह प्राणास्तथा जीव इह स्थितः।
अमुष्याः सर्वेन्द्रियाणि भूयोऽमुष्याश्च पार्वति।।२५।।
वाङ्मनोनयनश्रोत्रघ्राणप्राणास्तथैव च।
पश्चादिहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्त्वग्निप्रिया।।२६।।

अयं प्राणमनुः प्रोक्तः सर्वजीवप्रदायकः।
अनेन मनुना देव्याः प्राणांस्तत्र निवेश्य च ।।२७।।

अब प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र कहते हैं- अब उस चक्र में प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से प्राणों को निवेशित करे। मन्त्रोच्चरण यह है-क्षीर समुद्र जो नाद-बिन्दु परिमण्डित है (आं) अग्नि पर आरुढ़ नकुलीश(ह)तत्पश्चात् माया नाद बिन्दू से लांछित (ह्रीं)कामदेव जो (क)अग्नि पर आरुढ़ (र) तत्पाश्चात् सद्योजात(ओ) युक्त तथा नादबिन्दू-भूषित है अर्थात क्रों। हे देवी! 'आं ह्रीं क्रो''बीजत्रय के साथ शिवबीज चन्द्रयुक्त 'हं'। तदनन्तर महात्रिपुरसुन्दरी को षष्ठ्यन्त कहे (महात्रिपुरसुन्दर्या)। तदन्तर क्रम से 'प्राणाः इह प्राणा'के पश्चात् आं ह्रीं आदि कहे।

इत्यादि (शेष श्लोकार्थ देना निष्प्रयोज्य है। मन्त्रोच्चारण दिया जा रहा है-आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्याःप्राणा इह प्राणाः,आं ह्रीं क्रों हंसःसोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्याजीव इह स्थितः, आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्या सर्वेन्द्रियाणि,आं ह्रीं क्रों हंसः सोऽहं महात्रिपुरसुन्दर्या वाङ्मनोनयन-श्रोत्रघ्राणाप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।''यह प्राण मन्त्र है। यह सर्व जीवप्रदायक है। इस मन्त्रोच्चारणाद्वारा चक्र में देवी की प्राणयोजना की जाती है।।२१-२७।।

स्पृशञ्जपेत् कराग्रेण श्रीचक्रं पूजयेत्ततः।
उपचारैस्तथा प्रोक्तैस्त्रिसंध्यं त्रिदिनं यजेत् ।।२८।।
तत्र तत्र महादेवीं होमयेद्विधिना तथा ।
अष्टोत्तरशतं देवि पायसैर्मधुराप्लुतैः।।२९।।
वाद्यैर्नानाविधैर्देवि नृत्यगीतपुरः सरैः।
जयशब्दान्वितैः स्तोत्रैर्महोत्सवमुदान्वितः।।३०।।
कृत्वाथ गुरुवे दद्याद्दक्षिणां पूर्वसूचिताम् ।
प्रमदाः परितोष्याथ ब्राह्मणानपि तोषयेत् ।।३१।।
एवं देवि प्रतिष्ठायां देवीसांनिध्यकारकः।
यन्त्रे यन्त्रे कुले चैव कुलालङ्करणे तथा ।।३२।।
त्रैपुरे चास्त्रशस्त्रे च पूजयेद्वा तथात्मनि ।
प्रतिमायां तथा वह्नौ शिवलिङ्गे तथा गुरौ ।।३३।।
पूजाधाराणि देवेशि कथितानि मयानघे ।
नान्यत्र पूजयेद्देवीं यदीच्छेदात्मनो हितम् ।।३४।।

(प्राण प्रतिष्ठामन्त्र) कराग्र से चक्र का स्पर्श करते-करते जप करने के

उपरान्त (इस प्राण युक्त) चक्र का पूजन उपचार के साथ तीन दिन तक तीनो संन्ध्या में करें। हे देवी! साधक तदनन्तर खीर में त्रिमधुर मिलाकर, उससे हवन करे। तदनन्तर यह होम १०८ बार करे। हे देवी! नाना वाद्य,नृत्यगीत तथा जय शब्दोच्चार द्वारा स्तोत्रो से महोत्सव मनाकर देवी को प्रदान करें।तत्पश्चात गुरु को पहले से कही गयी दक्षिणा प्रदान करे। सुन्दर महिलाओं को सन्तुष्ट करके ब्राह्मणगण को भी संतुष्ट करना चाहिए। हे देवी! इस प्रकार से चक्र की प्रतिष्ठा से उसमें देवी का सानिध्य मिल जाता है। यन्त्रों में, कुल में,कुलालङ्करण में, त्रैपुर में, अस्त्र शस्त्र में पूजन करे (देवी का पूजन)अथवा स्वात्मा में,मूर्त्ति में,अग्नि में, शिवलिंग में अथवा गुरु मे देवी की भावना (प्रतिष्ठा) करके वहाँ भी पूजन सम्पन्न हो सकता है। हे देवेशी! मैंने पूजन आधार कह दिया हे अनघे! अपना हित चाहने वाला साधक इनसे अतिरिक्त पूजन न करे ॥२८-३४॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे चक्रराजप्रतिषठिानिरूपण नामकस्त्रयस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३३।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर संवाद में चक्राराज प्राणप्रतिष्ठा-निरूपण नामक ३३वाँ पटल समाप्त ॥

◆

चतुस्त्रिंशः पटलः

कुलाचारवर्णनम्

ईश्वर उवाच–

कुलाचारं श्रृणु प्राज्ञे प्रकीर्णं कथ्यते मया।
(अमा?विना मान्) दक्षिणं वामं नोपोष्य परमां यजेत्।।१।।

ईश्वर कहते है—हे प्राज्ञे! अब प्रकीर्ण(चतुर्दिक बिखरे) कुलाचार को सुनो। दक्षिण वाम की चिन्तना किये बिना तथा उपवासित होकर परमा देवी का पूजन करना उचित नहीं है। प्राणिहिंसा तथा स्वयं को(उपवासादि) कष्ट नहीं दे।।१।।

प्राणिहिंसां न कुर्वीत न चात्मानं प्रपीडयेत्।
हेतुद्रव्यमनास्वाद्य न स्मरेत्सुन्दरीं शिवे।।२।।
विना मद्येन मांसेन परस्त्रीरमणं विना।
यजनं तु महादेव्या अगव्यं भोजनं यथा।।३।।
अनैक्षवमगव्यं च भोजनं मृतभोजनम्।
उपवासव्रतं नैव कुर्यादिह कदाचन।।४।।
दुर्गन्धिवदनो वापि विरागवदनोऽपि च।
अकौलभूषणो वापि रक्तपुष्पविवर्जितः।।५।।

हे शिव ! हेतु द्रव्य(मय) का आस्वादन किये बिना सुन्दरी का स्मरण न करें। बिना मद्य-मांस-परस्त्रीरमण किये महादेवी का पूजन वैसा ही हो जाता है जैसे दूध-दधि-घृत के बिना भोजन।इनकी पूजा में कभी भी उपवास व्रत न करे।मुख से दुर्गन्ध आ रही हो, उसमे कोई राग आदि(सुगन्ध लेप) न लगा हो, अलंकार न धारण किया हो, रक्त पुष्प रहित हो,इस स्थिति में पूजन करना चाहिए।।२-५।।

अविश्वासहृदा युक्तः शिवस्य पत्रधारकः।
तथा नान्यमना भूत्वा सुन्दरीं समुपासयेत्।।६।।
अतो न तुलसीपुष्पैस्तत्पत्रैर्न यजेत्पराम्।
कन्यायोनिं न वीक्षेत बीभत्सुं न विलोकयेत्।।७।।
न नग्नां नान्ययोषां च न वीक्षेत्प्रकटस्तनीम्।
क्रीडाकुलकुमारीणां दर्शनाद्वन्दनं शिवे।।८।।
न दुष्यति मनो येन नारीणां तत्समाचरेत्।
नारीणां विप्रियं कृत्वा सिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम्।।९।।

अविश्वासी,शिवलिंगधारी, तथा तथा अन्य में (देवताओं में) जिसका चित्त

लगा हो, वह उनकी उपासना न करे। इन परादेवी का पूजन तुलसी से न करे। कन्यायोनि न देखे , वीभत्स स्त्री को न देखे, नग्ना, अन्य की पत्नी, उन्मुक्त स्तनो वाली को न देखे। हे शिवे! क्रीड़ासक्त कुमारीगण को प्रणाम करे। जिससे उनका मन दुःखी दूषित न हो, ऐसा व्यवहार स्त्रीगण से करे। उनकी इच्छा विरुद्ध कार्य करने वाला यदि सिद्ध है, तब भी नाश को प्राप्त होता है ॥६-९॥

नैकवारं समश्नीया न्नाहार्यं पूतिगन्धयुक् ।
स्वयं हृद्यं स्थिरं स्यादु प्रशस्तं मधुरं तथा ।।१०।।
आहार्य साधकेन्द्राणामल्पमल्पतरं शिवम् ।
कट्वम्ललवणानां च नातिप्रियतरं भवेत् ।।११।।
यद्भुङ्क्ते जीर्यते शीघ्रं तदश्नीयान्न चाधिकम् ।
यदिच्छा जायते भोक्तुं तदश्नीयादपूर्णकम् ।।१२।।

अब भोजन नियम कहते हैं। अनेक समय स्नान न करे।दुर्गन्धयुक्त भोजन कदापि न करे।रुचिकर, स्थिर, स्वादु, प्रशस्त एवं मधुर आहार जिसे साधक खा सकें, ऐसा भोजन कम करना कल्याण करता है। कटु-अम्लयुक्त-नमकीन(अधिक नमक)भोजन न करे।यह भोजन प्रियतर नहीं होता।जो खाने पर शीघ्र पच जाये, वही खाये।अधिक अन्न न खाये।जितनी भूख हो, उससे कम खाना चाहिए॥१०-१२॥

एकदाच्छादिते वह्नौ नैव वृद्धिं प्रयाति सः।
तस्मात्सावहितो वह्निं वर्ध येद्भुक्तमा त्रतः।।१३।।
समाने तु स्थिते वह्नौ शरीरं स्यान्निरामयम् ।
निरामये शरीरे तु सर्वकर्माणि साधयेत् ।।१४।।

अग्नि को एक साथ अधिक ढक देने से जैसे वह वृद्धि प्राप्त नहीं हो पाता वैसे ही अधिक भोजन कर देने पर जठराग्नि भुक्त भोजन को पचा नहीं पाता।अत:उतना ही भोजन करें जिससे अग्नि (जठराग्नि)दीप्त रहे।जब तक अग्नि (पेट में) समानत: स्थित रहता है, तब तक शरीर की निरोगावस्था रहती है।निरामय शरीर से ही साधक सर्वकार्य साधन कर सकेगा ॥१३-१४॥

विषमस्थो यदा वह्निः शरीरं स्यान्निरर्थकम् ।
शरीरं तु मनुष्याणां पुरुषार्थैकसाधकम् ।।१५।।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शोधयेत्तन्निरामयम् ।
देवा अपि यजन्त्यत्र किं पुनर्मानवादयः।।१६।।

भवाब्धेस्तरणोपायं तरणी वर्ष्म चोच्यते ।
निर्गदिन शरीरेण सुखं तरति दुस्तरम् ।।१७।।

जब तक शरीर में अग्नि विषम है, तब तक जन्म निरर्थक रहता है । अतएव सर्वप्रयत्न द्वारा शरीर को शोधित एवं निरामय रखे। देवता भी शरीर को ठीक रखकर दैत्यों पर विजय प्राप्त करते हैं,मानव की तो बात क्या? शरीर संसार रुपी सागर को पार करने के लिए नौका के समान है। निरोग शरीर इस दुस्तरसागर को सुखपूर्वक पार कर लेता है।।१५-१७।।

सरुजा वर्ष्मणा देवि जीवंनं विफलं शिवे ।
धूमागारे चान्धकारे चाज्ञाते पूजनं शिवे ।।१८।।
नरकाय महादेव्याः पूजनं विद्धि पार्वति ।
सत्ये चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसगा मताः।।१९।।
द्वापरे त्वग्गताः प्राणाः कलावन्नगता मताः।
निराहारव्रतं देवि कलौ तेन विवर्जितम् ।।२०।।

हे देवी ! हे शिवे ! रुग्ण शरीर से जीवन विफल हो जाता है। हे शिवे ! इस प्रकार से धूम्र से भरे अंधकार में पूजन करने से नरक प्राप्त होता है। सत्ययुग में प्राण अस्थिगत,त्रेता में मांसगत होता है। द्वापर में प्राण चर्मगत तथा कलियुग में प्राण अन्नगत होता है। तभी हे देवी! कलियुग में निराहार व्रत वर्जित है।।१८-२०।।

बलिदानं विना हिंसां कलौ नैवात्र कारयेत् ।
न स्वयं छेदयेद्देवि बलिं साधकसत्तमः।।२१।।
बलिदानं विना देव्याः प्रीतिर्नान्यैस्तथा भवेत् ।
प्रोक्षणे तु परो मन्त्रः सोऽयमेव प्रकीर्तितः।।२२।।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नापरस्त्वं शिवोऽसि हि ।
शिवोत्कृत्यमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवतां व्रज ।।२३।।

अब बलिदान विधि कहते हैं। हे देवी ! कलिकाल में हिंसा रहित बलि कदापि न दे। उत्तम साधक बलि पशु को स्वयं न काटे। बलिदान के बिना देवी कभी भी प्रसन्न नहीं होती।बलि पशु के प्रेक्षण (तथा बलि हेतु) का यह मन्त्र कहा गया है, जो मूलोक्त''उद्बुध्यस्व' से लेकर 'शिवोऽसि हि'पर्यन्त है। अर्थ है-हे पशु! सावधान! तुम और कोई नहीं हो, शिव ही हो। तुम्हारा यह शरीर शिव द्वारा उच्छेद योग्य है। तुम इसलिए शिवतत्व को प्राप्त हो जाओ ।।२१-२३।।

बहंवो नैव हन्तव्या यदीच्छेदात्मनो हितम् ।
बहवो यत्र हन्यन्ते तत्र कृत्या क्षयङ्करी ।।२४।।

भवत्येवाचिरेणैव बन्धनोच्चाटनं शिवे।
आत्मप्राणसमा देवि परेषामपि सा कथा ।।२५।।
परहिंसाभवोऽधर्मः क्रमात् सर्वं हरिष्यति।
य इहात्मकृते देवि परान्निष्पीड्य जीवति ।।२६।।
नेहापि लभते सिद्धिं परत्रापि कदाचन।
यो वा विधिमनादृत्य जन्तून् हत्वा शिवां यजेत् ।।२७।।
भवन्त्येव महोत्पाता स्वत्र त्र तस्य न संशयः।
यज्ञादिषु महेशानि हिंसया दारुणाज्ञया ।।२८।।
परहिंसाभवोऽधर्मः परिणामेऽतिदुःखदः।
तथैव प्रतिजानेऽहं मोहात्किं वा न दृश्यते ।।२९।।
कियत्कालसुखावाप्तिकाम्यया कामुकाञ् शिवे।
हन्तीह परमो मोहः परमोहः सुदारुणः।।३०।।

अपना हित चाहने वाला साधक अधिक पशुओं की बलि प्रदान न करे। अधिक पशु वध से अनुष्ठान करने से वहाँ कृत्या क्षय कर देती है। हे शिवे! वहाँ पर से साधक का शीघ्र बन्धन तथा उच्चाटन हो जाता है। हे देवी! अन्य प्राणों को भी अपना प्राण समझे। (व्यर्थ) परहिंसा जनित अधर्म क्रमशः सब कुछ हर लेता है। हे देवी! जो अपने स्वार्थ हेतु दूसरों को पीड़ित करके जीवित रहता है, वह न तो कभी यहाँ सिद्धि पाता है, न अन्यत्र। जो शास्त्रविधि का अनादर करके पशुओं की हत्या करके शिवा का यजन करता है, उसके यहाँ निःसंदिग्ध रुप से महोत्पात होने लगता है। हे महेशानी! यज्ञादि में हिंसा की दारुण आज्ञा देने से परहिंसा रुपी अधर्म होता है, जिसका परिणाम अति दुःखद कहा गया है। मैं भी यही मानता हूं। मोह से क्या नहीं दिखलाई पड़ता (कैसे दिन नहीं देखना पड़ता) हे शिवे! अल्पकाल के सुख को पाने की इच्छा से यजमान कामुक पशुओं को मारता है, यह महामोह सुदारुण है ॥२४-३०॥

ममत्वसमता देहे प्रिये चातिसुदुर्लभे।
तस्मादेषु महद्दुखं नान्यत्र खलु पार्वति ।।३१।।
देहत्यागे शुनो यद्व त्तथेन्द्रचन्द्रयोरपि।
आवयोर्जायते प्रीतिः कामदा कामुकस्य च ।।३२।।
न शस्तं मारणं कर्म ब्रह्माप्तौ ब्रह्मसाधके।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मैव परिपश्यति ।।३३।।

सर्वभूतमिवात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
शक्तिर्महेश्वरो ब्रह्म त्रयस्तुल्यार्थवाचकाः।।३४।।
स्त्रीपुंनपुंसको भेदः शब्दतो न परार्थतः।
अन्ते सिद्धिर्भवेत्पुंसां वशगा भोगमोक्षदा।।३५।।
स्त्रीणामपीह पुंरूपो वशगः सर्वसिद्धिदः।
नपुंसकात्मकं तत्तु स्वयमेव प्रकाशते।।३६।।
द्वयोरेकतराद्वैतयोगान्मतैकभावना ।
निष्ठीवनरवं छिक्कानधोवायुविसर्जनम्।।३७।।
पूजामध्ये तु यः कुर्यात् स भवेद्योगिनीपशुः।
देशानां व्यवहारादि विज्ञाय मतिमान् सदा।।३८।।
पञ्चमादिपरामर्श स्वतन्त्रो न भवेत् क्वचित्।
यत्र देशे य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः।।३९।।

हे प्रिये! यह अत्यन्त दुर्लभ देह है, इसमें सभी को ममता है। हे पार्वती! अतः इसके हनन मे महान दुःख होता है। देहत्याग से कुत्ता जितना दुःखी होता है, उतनी ही पीड़ा इन्द्र-चन्द्र को भी होती है। हे पार्वती! मेरी और तुम्हारी प्रीति भी कामदा (शिवा) एवं कामुक (शिव) की है। ब्रह्म को पाने वाले साधक के लिए उसके द्वारा जो हत्याकर्म किया जाता है,वह कभी भी शोभनीय नहीं हैं। जब साधक सर्वभूत समूह को आत्मवत् देखने लगता है,वह स्वयं को समस्त प्राणिवर्ग के रुप में अनुभव करता है,तब वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। शक्ति तथा ब्रह्म, ये एकार्थक शब्द हैं। स्त्री, पुरुष नपुसंक भेद भी मात्र शाब्दिक है। पारमार्थिक नहीं है।अन्त में साधक सिद्धि पाकर भोग-मोक्ष को वश में कर लेता है। स्त्रीगण को भी सर्व सिद्धिदायक पुरुष रूप वश में होता है। नपुंसक रूपेण वही प्रकाशित होता है। पुरुष-स्त्री,शक्ति-महेश्वर, इन दोनो में ऐक्यभावना करे। अथवा मानें। पूजाकाल में थूकना,किसी प्रकार की ध्वनि करना, छींकना,अधोवायु छोड़ना,यह जो करता है वह योगिनीगण का पशु हो जाता है। साधक रूप मतिमान देशकाल व्यवहार को जानकर (पञ्चमादिकार) से कभी भी अलग न हो। स्वतन्त्र न हो (अर्थात मनमाना न करे) जिस देश का जो आचरण है, वहां वैसा ही धर्म है ॥३१-३९॥

अविरोधः सर्वभूतैः परिपन्थिषु निग्रहः।
अनुग्रहः संश्रितेषु देववत् पुरुषेऽपि च।।४०।।

गुरुपुत्रकलत्रादि गुरुवदेव संश्रयेत्।
पर्वसु च विशेषार्चा कुलवृक्षान्नपल्लवैः।।४१।।
अनिच्छा मिथ्यावचने परदारधनेषु च।
स्वस्तुतौ परविन्दायां आनन्दं चापि न स्पृशेत्।।४२।।
सम्भाष्याभिमुखीं शक्तिं नासम्भाष्य व्रजेत् क्वचित्।
स्त्रीणां समूहमालोक्य प्रणमेद्भावतत्परः।।४३।।

साधक को विरोधरहित, विरोधियों के प्रति निग्रह वाला, आश्रितों हेतु अनुग्रह युक्त, तथा पुरुषों के प्रति देवबुद्धि युक्त होना चाहिए।गुरुपुत्र,गुरुपत्नी में गुरुवत् भावना रखे। शुभ पर्वो पर कुलवृक्ष,कुलान्न तथा कुलपल्लवों से (देवी) की) पूजा करे। अनिच्छा (पूजनादि के प्रति) नही हो, मिथ्यावचन,पराई स्त्री,परधन के प्रति मोह नहीं। आत्मप्रशंसा,अन्य की निन्दा, इन आनन्द का स्पर्श भी न करे। यदि शक्ति सामने खड़ी हो (शक्ति=कुलस्त्री), तब उससे बिना सम्भाषण किये कहीं न जाये। (अर्थात उपेक्षा न करे) स्त्रीगण के समूह को देखकर भावतत्पर हो उन्हें प्रणाम करना चाहिए।।४०-४३।।

पुण्ड्रेक्षुदण्डजातानि भक्षयेन्न कदाचन।
प्राज्ञेनैव सदा कार्या पूजा सर्वसमृद्धिदा।।४४।।
आगमोक्तविधौ दृष्ट्या त्यजेद्दोषं तु पञ्चमे।
स्नायात् सुगन्धिसलिलैः स्याद्देहो निर्मलो यथा।।४५।।

पुण्ड्र (एक प्रकार की लालईख) तथा ईख का दण्ड कदापि भक्षण न करे। प्राज्ञ व्यक्ति से सर्व समृद्धिप्रदा पूजा सदा कराये। आगमोक्त विधानान्तर्गत देखकर पंचममकार (मैथुन) का दोष त्याग दे। (अर्थात आगमोक्त विधानान्तर्गत मैथुन मकार है अत: उसमें दोष दृष्टि त्यागकर केवल देवी प्रीत्यर्थ इसका विधान करे, देह को सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिए।।४४-४५।।

निर्मलं धारयेद्वासः सर्वदा निर्मलः शुचिः।
सुस्निग्धदेहवदनो न रूक्षः स्यात् कदाचन।।४६।।
कृत्वा सुमङ्गलं देहं मृदुभाषणतत्परः।
न बहु प्रलेपद्धीरो नैव रूक्षं कदाचन।।४७।।
गन्धर्वरूपवान् भूत्वा वीणावादनतत्परः।
मदिराघूर्णनयनो मदिराक्षीसमन्वितः।।४८।।

साधक अपने वस्त्र स्वच्छ तथा पवित्र धारण करे। सदैव सुस्निग्ध देह वाला रहे, कभी भी रुक्ष न रहे। सदैव मृदुभाषण करे तथा देह को मांगलिक बनाये रहे। वीराचारी साधक बहुत अधिक बकवाद न करे, रुखे वचन भी न बोले। साधक गन्धर्व जैसा रूप धरकर वीणावादन करे। मदिराघूर्णित नेत्रों वाला होकर मदिराक्षी से समन्वित रहना चाहिए। सदैव देवताभाव युक्त होकर संगीत रस में पारग होकर रहे।।४६-४८।।

सर्वदा देवताभावः सङ्गीतरसपारगः।
यतिर्वा भूपतिर्वापि प्रशस्तः साधकोत्तमः।।४९।।
भूपतिर्व्यस्तसम्भारैर्यतिरिन्द्रियनिग्रहैः।
चतुराश्रमिणां मध्ये ह्यवधूताश्रमो महान्।।५०।।
खादन् मांसं पिबन् मद्यं विषयी विषयान् जुषन्।
रामारामो रमणीभिर्भूषिताभिर्विभूषितः।।५१।।
तत्तदानन्दसंदोहैरानन्दितान्तरात्मवान्।
निस्पन्देन्द्रियवान् यस्तुसोऽवधूतो यतिर्महान्।।५२।।

अब श्रेष्ठ साधक का वर्णन करते हैं-जो यति हो राजा हो अथवा, यदि वह साधक है,तब तो प्रशंनीय ही है। भूपति इसलिए प्रशंनीय श्रेष्ठ है कि उसके पास पूजा हेतु वस्तुओं का ढ़ेर होता है। यति इस हेतु प्रशंनीय है कि वह इन्द्रियनिग्रह युक्त है। चारों आश्रमों में से अवधूतआश्रम महान है। मांस,मद्यादि का सेवन करते हुए ,स्त्रीप्रसंग करते हुये,सजी-धजी भूषितरमणी गण से घिरा रहते हुए भी, अर्थात् विषयी रूप से विषयों का उपभोग करते हुए भी आनन्द से घिरा होकर आनन्दित अन्तरात्मा होकर भी जो निस्पन्द इन्द्रियो वाला है (अर्थात् इन्द्रियाँ उसके वश में है) वह अवधूत तथा महान यति है ।।४९-५२।।

स्त्रक् चन्दनं च वस्त्रादि भूषणं यद्विलेपनम्।
यदृच्छयोपपन्नं यत् तदप्यन्यैर्निवेदितम्।।५३।।
अगृध्नुरुपयुञ्जीत न चासक्तमना भवेत्।
एकान्तविजने रम्ये सदा योगं समभ्यसेत्।।५४।।
इन्द्रियाणि यदा भिक्षोश्चञ्चलानि महात्मनः।
तदा पर्यटनं कार्यं तीर्थादिषु प्रयत्नतः।।५५।।
विभूतिभूषणो भिक्षां कुर्वन्नैकत्र संवसेत्।
त्वं मातर्देहि मे भिक्षां कुण्डलीं तर्पयाम्यहम्।।५६।।

विभूतिमतुलां प्राप्य न मत्तो नैव मत्सरी ।
सम्पत्तौ च निरानन्दः समरूपगुणान्वितः ।।५७।।

अब यति का आचार वर्णन करते हैं। माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण तथा अवलेप यदि स्वेच्छा से प्राप्त हो अथवा अन्य द्वारा निवेदित किया गया हो, उन सभी के प्रति आसक्त मन न हो। योग का अभ्यास सदैव एकान्त स्थल में करना चाहिये जो रमणीय हो। जब उस महात्मा की इन्द्रियां चंचला हो जायें तब प्रयत्नतः वह तीर्थादि में पर्यटन करे। वह शरीर में विभूति का लेप किये रहे, भिक्षा करते-करते एक ही स्थान में न रहे। उसे ऐसा कहना चाहिये कि 'तुम माता मुझे भिक्षा दो। मैं कुण्डली का तर्पण करूँगा।—' अतुल धन सम्पदा प्राप्त करके भी अवधूत द्वेषयुक्त न हो। सम्पत्ति आने पर भी निरानन्द रहे। रूप-गुण में (जैसा सम्पत्ति आने के पूर्व था) समान ही रहे।।५३-५७।।

सर्वदानन्दहृदयो दानभोगपरायणः ।
प्रासादे चोत्तमे रम्ये लाक्षारुणसमप्रभे ।।५८।।
दिव्योपकरणैर्युक्ते मणिकाञ्चनभूषिते ।
परार्ध्यास्तरणे रम्ये रत्नसिंहासने शुभे ।।५९।।
नानाकुसुमसौरभ्यसुरभीकृतदिङ्मुखे ।
चन्दनागुरुकर्पूरधूपैः सम्मोदितान्तरे ।।६०।।
कर्पूरज्वलितैर्दीपैरुज्ज्वले रत्नसंज्वले ।
शरच्चन्द्रनिभं छत्रं मुक्तामाणिक्यमण्डितम् ।।६१।।
हेमदण्डशिखालम्बि श्वेतचामरभूषितम् ।
निधायोर्ध्वे विशेत् तत्र कृतासनपरिग्रहः।।६२।।
चन्दनागुरुकर्पूरमृगनाभिविलेपितः ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यो रत्नभूषाविभूषितः।।६३।।

इस यति को सर्वदा आनन्द हृदय तथा दान भोग परायण रहना चाहिये । उत्तम प्रासाद में जो रम्य तथा लाक्षा के समान अरुण प्रभायुक्त हो, दिव्य उपकरणयुक्त, मणिकाञ्चन भूषित, मूल्यवान आस्तरण से ढके रमणीय रत्न सिंहासन पर आसीन हो जाये । चतुर्दिक् नाना कुसुमों के सौरभ से भरा रहे। चन्दन, अगुरु, कर्पूर, की धूप से सभी कोने धूपित रहें। शरदचन्द्र के समान छत्र मुक्तामाणिक जटित हो, हेमदण्ड उसमें शिखारूप से युक्त हो, श्वेतचामर से शोभित हो। इस प्रकार से छत्र-चामर के नीचे रम्य आसन पर बैठ जाये। वह

चन्दन-अगुरु-कर्पूर तथा कस्तूरी का लेप किये हो। वह सर्वशृगांर युक्त वेशवाला तथा रत्नों के अलंकरण से भूषित भी हो जाये॥५८-६३॥

स्रग्भिर्विचित्रभूषाभिर्भूषितोऽतिमनोहरः ।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननः ॥६४॥
निर्वृत्ताखिलचिद्वृत्तिर्मदिराघूर्णलोचनः ।
विधाय पुरतः शक्तिं सुवेशां सुमनोहराम् ॥६५॥
दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानारत्नैर्विराजिताम् ।
निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं त्रिपुरामयम् ॥६६॥

वह मालाओं तथा विचित्र आभूषणों से भूषित तथा मनोहर हो। मुख में कर्पूर पड़ा ताम्बूल भरा रहे। उसकी चित्तवृत्ति निवृत्त हो गई हो। नेत्र मदिरामद घूर्णित हों। सामने सुवेशा सुमनोहरा शक्ति (कुलस्त्री) बैठी हो। उस शक्ति ने रेशम के वस्त्र तथा नाना आभूषण धारण किये हों। वह यति निर्लेप, निर्गुण, शुद्ध आत्मारूप तथा त्रिपुरामय हो जाता है॥६४-६६॥

आत्माभेदेन संचिन्त्य याति तन्मयतां नरः।
भोगेन मोक्षमाप्नोति स्वयं त्रिपुरभैरवः॥६७॥
तत एव समुत्पन्ना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तदेवैते न संदेहस्तस्माद्भिन्नं न भावयेत्॥६८॥

वह त्रिपुरा से अपनी आत्मा के अभेद का चिन्तन करते तन्मय हो जाता है। वह भोग द्वारा ही मोक्ष प्राप्त करके तन्मय हो जाता है। वह स्वयं त्रिपुरभैरव है। उससे ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर की उत्पत्ति हुई है। वे सब भी यही (यति) ही हैं। इसमें यति को सन्देह नहीं रह जाता। अतः वह स्वयं को उनसे अभिन्न मानता है॥६७-६८॥

भेदावभाषिणो मूढाः पतन्त्येव वरानने ।
सर्वदा सर्वदाः सर्वास्तोषयेद्भूषयेत् स्त्रियः॥६९॥
वासोभूषणगन्धाद्यैः पेयैर्भक्षैर्मुदान्वितः।
प्रथमे राजसो भूत्वा द्वितीये तामसो भवेत्॥७०॥
तृतीये सात्त्विको धर्मी तुर्ये पञ्चपरायणः।
पूजाहोमजपान्तेऽद्धस्या बलिभिः शत्रुनिग्रहैः॥७१॥
दानभोगैस्तृतीये च चतुर्थे समतात्मनः।
तच्चित्तस्तद्गतप्राणो मदिरामदविह्वलः॥७२॥
सात्त्विको दिव्यभावस्तु स्थिराय जायते पुनः।
नाशाय चैव भावस्तु तामसः खलु मानुषे॥७३॥

हे वरानने! भेद करने वाले, कहने वाले मूढ़ पतित हो जाते हैं। सर्वदा सब कुछ प्रदात्री स्त्रीगण को तोषित करे उन्हें वस्त्राभूषण गन्धादि पेयभक्ष्य पदार्थों से सन्तुष्ट करके उन्हें सर्वदा सन्तुष्ट करता रहे। प्रथमावस्था में राजस, द्वितीयावस्था (यौवन में) तामस, वृद्धावस्था रूप तृतीयावस्था में सात्त्विक धर्मात्मा होकर स्थित रहे। चतुर्थावस्था (अवधूतावस्था) में वह पञ्चपरायण हो जाये। (पंचमकार परायण हो जाये)

पूजा, होम, जप तथा बलि प्रथमावस्था एवं द्वितीयावस्था में ही प्रदान करे। तृतीयावस्था में दान भोग से तथा चतुर्थावस्था में देवी तथा स्वयं में अभेद भावना करे। चित्त से तद्गत् हो जाये। प्राणों से भी तद्गत् हो जाये। इसलिये मदिरामद विह्वल होकर रहे। सात्विक दिव्यभाव स्थिरता का संचार करता है। मनुष्य के लिये तामस भाव विनाशक है।।६९-७३।।

विपर्ययाद्भवेन्मृत्युरकालसम्भवः शिवे ।
विषशस्त्रजनैश्चोरैर्दस्युभिर्वा वरानने ।।७४।।
विनाशं तस्य दुर्बुद्धेः समूलं विद्धि पार्वति ।
पुत्रमित्रकलत्रादिसुहृद्भृत्यादयोऽपरे ।।७५।।
विप्रा भ्रात्रादयो यस्य विषीदन्ति सुदुःखिताः।
दुश्चरित्राः स्त्रियो यस्य भवन्त्यन्तःपुरे शिवे ।।७६।।
मृगयाभिरतिर्यस्य दुरोदरप्रियस्य च ।
अद्भुतानि च जायन्ते हाहाकारयुताः प्रजाः।।७७।।
पीडिताः क्लेशविक्लिन्ना विपत् तस्य पदे पदे ।
यस्यैते चातिसन्तुष्टाः सुस्था मङ्गलशंसिनः।।७८।।
तस्यायुर्वर्धते नित्यं महालक्ष्मीः स्थिरा गृहे ।
कलहो यस्य देवेशि विना काणमापतेत् ।।७९।।
नार्योऽमङ्गल शंसि न्यस्तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ।
एतेषामपि चान्येषां दोषाणां ग्रहसङ्कटे ।।८०।।
आयुर्वृद्धौ तथा शान्त्यै कोटिहोमं चरेन्नृपः।
कोटिहोमात् परं नास्ति कर्म रिष्टिविनाशने ।।८१।।

हे शिवे! समत्वभाव का विपर्यय होने पर अकाल मत्यु होती है। हे वरानने! उसकी मृत्यु विष,शस्त्र, जन, चोर अथवा डाकुओं से हो सकती है। हे पार्वती! इस दुर्बुद्धि का (असमत्वभांव) समूल विनाश करे। हे शिवे! हे पार्वती!

जिस राजा के पुत्र, मित्र, स्त्री आदि, दास-दासी, ब्राह्मण, सुहृद आदि सदैव दुःखी रहते हैं, जिसके अन्तःपुर की स्त्रियाँ दुःश्चरित्र होती हैं, जो मृगया में रुचि रखता है, द्यूतक्रीड़ा करता है,उसके राज्य में अद्भुत घटनायें होती हैं। प्रजा हाहाकार युता रहती है पीड़िता क्लेश से क्लिन्न रहती हैं, उनके पद-पद पर विपत्ति होती रहती है। एतद्विपरीत जिस राजा के शासन में ये सब सन्तुष्ट रहते हैं, उसकी आयु बढ़ती है तथा उसके गृह में महालक्ष्मी स्थिर हो जाती है।

हे देवी! जो बिना कारण किसी से कलह करता है, स्त्रियाँ अमंगलकारी बाते कहने लगती हैं, उसे वह अपनी हानि का पूर्वाभास जान ले। इस परिस्थिति में, अन्य प्रकार के दोषों में, ग्रहसंकट में, आयुर्वृद्धि तथा शान्ति के लिये राजा एककोटि होम करें। अरिष्टनाशार्थ इससे परे कोई कर्म ही नहीं है।।७४-८१।।

न तत्तुल्यं तथा राज्ञां महोत्पातविनाशनम्।
पुरश्चर्यां प्रकुर्वीत सन्ध्यासु जपतत्परः।।८२।।
वर्षैकेन हि तत् सिद्ध्येत् सर्वविघ्नविनाशनम्।
ज्ञानलोपो भवेद्यस्य मद्यपानात् सुलोचने।।८३।।
विकारं जनयेद्वापि स पुनर्यात्यधोगतिम्।
प्रलापो भ्रंशनं हास्यं क्रोधोन्मादभयानकाः।।८४।।
आलस्यं वातिचिन्ता च परानिष्टप्रवर्तनम्।
हिंसासूया तथेर्ष्या च दम्भमोहौ प्रमादता।।८५।।

राजाओं के लिए इसके तुल्य महोत्पात नाशक कोई भी उपाय नहीं कहा गया है। इसके लिये राजा पुरश्चरण करे। नित्य सन्ध्या में निरत रहे। इस कर्म से १ वर्ष में समस्त विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। हे सुलोचने! जिसका मद्यपान से ज्ञान लोप हो अथवा बुद्धि विकृत हो जाये, वह पुनः अधोगति को प्राप्त हो जाता है। मद्यपान के विकार हैं प्रलाप, भूमिपतन, व्यर्थहास्य, क्रोध, उन्माद, भयानककृत्य, आलस्य, अतिचिन्ता, पर अनिष्ट करने में तत्परता, हिंसा, पर निन्दा, ईर्षा, दम्भ, मोह, प्रमाद, आवेश, मरण, मूर्च्छा।।८२-८५।।

आवेशो मरणं मूर्छा विकाराः समुदीरिताः।
समता सर्वभूतेषु मानापमानयोः समः।।८६।।
समः शत्रौ च मित्रे च समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
ब्रह्मचिन्तोद्भवानन्दनिवृत्तबाह्यचित्तता।।८७।।

सर्वकालेषु सर्वत्र समत्वं निर्विकारता ।
चक्षुषोरनिमेषत्वं मधुरस्मितभाषणम् ।।८८।।
अमृतस्य गुणा एते कथिता भुवि दुर्लभाः ।
वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं त्यागिता सर्ववश्यता ।।८९।।
अष्टाङ्ग्योगाभ्यसनं भोगेच्छापरिवर्जनम् ।
सर्वभूतेष्वनुकम्पा सर्वज्ञादिगुणोदयः ।।९०।।
इयादिगुणसम्पत्तिः सिद्धेर्लक्षणमुच्यते ।
ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम् ।।९१।।
नृपाणामङ्गनानां च राजत्वं लोकवश्यता ।
महैश्वर्यं धनित्वं च पुत्रदारादिसम्पदः ।।९२।।

अब अमृत पुरुष के गुण कहते हैं—सर्वभूत समूह के प्रति समता, मान तथा अपमान में समतुल्यता, शत्रु-मित्र के प्रति समान भाव, मिट्टी तथा स्वर्ण के प्रति समदृष्टि, ब्रह्मचिन्तन से उद्भूत आनन्द के कारण बाह्योन्मुखी भाव चित्त में न होना, सभी काल में सर्वत्र समत्व तथा निर्विकार भाव, पलकों का न झपकना, मधुर स्मित के साथ वार्ता करना, ये सब अमृत व्यक्ति के गुण हैं। ये पृथ्वी पर दुर्लभ है। अब सिद्धि लक्षण बतलाते हैं—वैराग्य, मोक्ष की इच्छा, त्याग, सर्ववश्यता, अष्टाङ्ग्योगाभ्यास, भोगेच्छारहितता, सर्वभूतानुकम्पा, सर्वज्ञता आदि गुणों का उद्भव, ये सब मध्यम सिद्धि लक्षण हैं। ख्याति, वाहन-आभूषण लाभ, दीर्घजीवन, नृप, स्त्रीगण तथा राज्यपरवश्यता, लोकवश्यता, महान् ऐश्वर्य, धनित्व, पुत्र-स्त्री आदि तथा सम्पत्ति की प्राप्ति, यह मन्त्र साधकों की अधम सिद्धि है।।८६-९२।।

अधमाः सिद्धय प्रोक्ता मन्त्रिणां प्रथमस्त्विह ।
सिद्धयस्तु सुराः साक्षान्मानवानामसंशयः ।।९३।।
यत्कृते परमेशानि निःश्वसन्ति कुलाङ्गनाः ।
सास्रुपातं विना पञ्च गद्गदं भृशदुःखिताः ।।९४।।
तस्य स्युर्विफलाः सर्वाः क्रियाः सर्वत्र चोदिताः ।
कान्तासन्तापजो वह्निर्दहत्यासप्तमं कुलम् ।।९५।।
कान्ताः सन्तोषयेत् तस्माद्विप्रियं न मनाक् स्पृशेत् ।
संसिद्धेः कारणं कान्ता मूलं संसारवर्त्मसु ।।९६।।

मानव के लिये सिद्धियाँ साक्षात् देवता स्वरुप हैं। हे परमेशानी! जिसके लिये कुलांगना निःश्वास लेती हैं, पाँच वस्तुओ (?) के लिये अश्रुपात करतीं है,

गद्गद् होकर दुःखित रहती हैं, उसकी (उस व्यक्ति की) समस्त क्रिया निष्फल हो जाती है। स्त्री के सन्ताप जनित (दुःखाग्नि) अग्नि से सात पीढ़ी नष्ट हो जाती हैं। तभी स्त्रीगण को सन्तुष्ट रखे, उनके मन को पीड़ित न करे। स्त्री ही सिद्धि का कारण हैं। संसार मार्ग का मूल है॥९३-९६॥

जाया मुख्यतमा प्रोक्ता यादौ पाणिप्रपीडिता ।
जायते स्वयमेवास्यां जाया तेन निगद्यते ।।९७।।
एका पतिव्रता भार्या साध्वी चेत्सहचारिणी ।
किमन्याभिर्महेशानि यथैवाहं त्वया प्रभुः।।९८।।
श्रिया विष्णु सरस्वत्या ब्रह्मा शच्या पुरन्दरः।
एकया चेप्सितं कार्यं मनसाकृष्य पूरुषम् ।।९९।।

स्त्रीगण में जाया मुख्य है, जिसका पाणिग्रहण किया गया है। पुरुष सन्तानरूपेण इसी से जन्म लेता है, तभी यह जाया है। हे महेशानी! यदि एक पतिव्रताभार्या, साध्वी तथा सहचारिणी है तब अन्य स्त्री की क्या आवश्यकता? जैसे तुमने मुझे स्वामी मान लिया है। लक्ष्मी ने विष्णु को, सरस्वती ने ब्रह्मा को इन्द्र ने शचि को माना है। एक ही स्त्री पुरुष के मन को आकृष्ट करके कार्य सम्पन्न करा लेती है॥९७-९९॥

तस्मादेका समासाद्य नाप्यन्यां मनसा स्मरेत् ।
जाया चेत् कुलटा गेहे स्वयं कुलोपचारकः।।१००।।
मूषिकोपहतं कोषं तथा तस्य तदीरितम् ।
प्रयत्नेन विना देवि या स्वयमभिकाङ्क्षति ।।१०१।।
यदा तदा तु सा तस्य परकीया न चोच्यते ।
हठादाकर्षते यस्तु प्रलोभ्य च धनादिभिः।।१०२।।
परकान्तां महेशानि स याति चाधमां गतिम् ।
स्वकान्ता परकान्ता वा कामविरहिता शिवे ।।१०३।।
या नेच्छन्तीप्सयाश्रद्धां तां गत्वा च तथा भवेत् ।
दुःशीला तु यदा नारी त्यजेत् तां नैव ताडयेत् ।।१०४।।
अतिदुष्टां स्त्रियं देवि नीचपुरुषगामिनीम् ।
राजद्वारि च दिग्वस्त्रां त्यजेत् तां नैव संश्रयेत् ।।१०५।।
कुलशास्त्रं कुलाचारान् कामयागमनुत्तमम् ।
अयोग्येषु प्रकाश्यैव सिद्धोऽपि नश्यति ध्रुवम् ।।१०६।।

अतः एक ऐसी स्त्री (पतिव्रता) को पाकर अन्य स्त्री का मन से स्मरण न करे। (अर्थात् उसमें मन न लगाये)। यदि व्यक्ति स्वयं कुल का उपचारक हो तथा पत्नी कुलटा हो, तब व्यक्ति को जान लेना चाहिये कि उसके खजाने में चूहे लग गये हैं। हे देवी! जो स्त्री किसी पुरुष को अपने आप चाहती है वह उस पुरुष हेतु परकीया नहीं कही जाती। हे महेशानी! धन से लुभा कर के जो किसी स्त्री को आकर्षित करता है, वह अधम गति को प्राप्त होता है। हे प्रिये! अपनी पत्नी अथवा पराई स्त्री यदि कामेच्छा मे नहीं है, वैसी स्त्री के साथ समागम करने वाला पतित हो जाता है।

यदि अपनी नारी दुःशीला हो, तब भले ही उसे त्याग कर दे, लेकिन उसपर प्रहार न करे। हे देवी! अतिदुष्टा, नीचपुरुषगामिनी, राजद्वारपर नग्न रहने वाली, का त्याग कर देना चाहिये। आश्रय नही देना चाहिये । इस कौलशास्त्र का, कौलाचर का, सर्वोत्तम कामयाग का उपदेश अपात्र को करने से सिद्ध व्यक्ति भी निश्चित रूप से नाश को प्राप्त होता है॥१००-१०६।.

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे कुलाचारवर्णननामक-
श्चतुस्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३४।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में कुलाचर वर्णन
नामक ३४ वाँ पटल समाप्त ॥

✧

पञ्चत्रिंशः पटलः

काम्यपूजादिविधिनिरूपणम्

देव्युवाच–

साधका गुप्तरूपाश्च तेषां साध्यं कथं भवेत् ।
साध्यं च कीदृशं देव काम्यं वा कीदृशं भवेत् ।।१।।
पूजा च कीदृशी कार्या तन्मे वद सुविस्तरात् ।

देवी कहती है- हे देव! साधक तो गुप्त रूप होते हैं। उनका साध्य कैसे होता है? साध्य कैसा होता है, काम्य प्रयोग कैसा होता है? पूजा कैसे सम्पन्न करे? आप मुझे विस्तार से कहिये।।१।।

ईश्वर उवाच–

अत्यन्तगुप्तरूपेण काम्यं कृत्वार्चयेन्नरः।।२।।
तदा तत्काममाप्नो(ति म?त्यान)न्दभाक् शक्तिपूजनात् ।
पूजाफलेन दौर्भाग्यं दुःखदारिद्रससंकुलम् ।।३।।
सर्वं प्रशमनं याति चेश्वरो जायते भुवि ।
अतिगुप्ततरं यस्मात् तस्माद्रात्रौ विधीयते ।।४।।
प्रकटे कार्यहानिः स्यात् क्रुद्धा भवति सुन्दरी ।
गुरुभक्तिविहीनस्य विफलं साधनं प्रिये ।।५।।

ईश्वर कहते हैं—साधक व्यक्ति जब अतिगुप्तरूपेण काम्य कर्म करता है, तब वह शक्तिपूजन द्वारा कामना की पूर्ति से आनन्द का भागी होता है। पूजा के फल से उसका दुर्भाग्य तथा दारिद्र्य जनित दुःख भी प्रशमित हो जाता है तथा वह पृथिवी-ईश्वर जैसा हो जाता है। यह प्रक्रिया अत्यन्त गुप्ततर है, अतः इसे रात्रि में ही करे। यह प्रकट हो जाने पर भगवती क्रोधित होकर कार्यहानि कर देती है। हे प्रिये! जो गुरुभक्ति रहित है, उसके साधन विफल हो जाते हैं। मै भी गुरुकृपा से ही सर्वत्रव्यापी तथा सर्वज्ञ प्रभु हो सका हूँ।।२-५।।

अहं गुरुप्रसादेन सर्वगः सर्ववित् प्रभुः।
शक्तेः पूजा सदा कार्या प्रसन्ना येन सा भवेत् ।।६।।
विफला शक्तिरहिता पूजाऽऽसवप्रसारिणी ।
ध्यानमानन्दरहितं यथा निष्फलमद्रिजे ।।७।।
शक्तौ दर्पं घृणां लज्जां वर्जयेत् क्रोधमत्सरम् ।
कदाचिद्दर्परूपेण पुष्पेणापि न ताडयेत् ।।८।।

शक्तौ न विस्मयः कार्यो यस्मात्सा तत्स्वरूपिणी ।
विस्मिता विलयं यान्ति पशवः शास्त्रमोहिताः ।।९।।
सुभक्त्या प्रणमेद्यस्तु शक्तिमेकाग्रचेतसा ।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्यादन्ते मोक्षमवाप्नुयात् ।।१०।।
निश्चयं मुक्तिमाप्नोति सहस्रशक्तिपूजनात् ।
शक्तिपूजासु विमुखः पामरः पुरुषाधमः ।।११।।
स निर्लज्जः कथं ब्रूते पूजयामि महेश्वरीम् ।
पूजाहोमं विना चेह नाधिकारः कथंचन ।।१२।।
विना होमं महेशानि शक्तियागमकारणम् ।
शक्तियागं विना होमो निष्फलो नात्र संशयः ।।१३।।

शक्तिपूजा सदैव करना चाहिये, जिससे शक्ति प्रसन्न बनी रहे। हे अद्रिजे! जैसे आनन्दरहित ध्यान निष्फल है, उसी प्रकार से शक्तिविरहित पूजा भी केवल आसव का प्रसार करने वाली है। शक्ति के प्रति घृणा-दर्प-लज्जा क्रोध-मात्सर्य का त्याग करे और उसे कभी भी दर्परूप पुष्प से भी ताड़ित न करे। शक्ति के सम्बन्ध में विस्मय भी न करे, क्योंकि वह तत्वस्वरूप हैं। आश्चर्य करने से सब विलय हो जाता है। पशुगण शास्त्र से मोहित रहते हैं। उसे सुभक्ति द्वारा प्रणाम करने से एकाग्रचित्त से नत होने से साधक के सभी प्रयोजन साधित हो जाते हैं। सहस्र बार शक्ति पूजन से साधक निश्चित रूप से मोक्ष प्राप्त करता है। जो शक्ति पूजन से विमुख है वह पामर तथा पुरुषों में अधम है। वह निर्लज्ज यह कैसे कहेगा कि मैं महेश्वर का पूजन कर रहा हूँ। पूजा होम के अभाव में कभी भी काम्य पूजन का अधिकार नहीं होता है। हे महेशानी! बिना होम किये शक्तियाग अकारण हो जाता है। तथा बिना शक्तियाग के होम निष्फल हो जाता है। यह नि:संदिग्ध है।।६-१३।।

तस्माद्भावविशुद्धात्मा सर्वतन्त्रार्थकोविदः ।
साधकोऽपि च तत्त्वज्ञो नित्यं शक्तिं समाश्रयेत् ।।१४।।
मदिरायां न वा शक्तौ जातिवृत्तिं विचारयेत् ।
नानाजातिषु सम्भूतां व्रजेत् सम्प्राप्य न त्यजेत् ।।१५।।
सर्वशङ्काविनिर्मुक्तः सर्वज्ञः साधकोत्तमः ।
शक्तियागविधिं कृत्वा भवेद्भूमौ पुरन्दरः ।।१६।।

अत: भावविशुद्धात्मा सर्वतन्त्रकोविद तत्वज्ञ साधक को भी चाहिये कि वह नित्य शक्ति का आश्रय ले। मदिरा तथा शक्ति के सन्दर्भ में जाति वृत्ति का विचार न करे। नाना जातियों में सम्भूत शक्ति को पाकर उसे कभी न त्यागें। जो

साधकोत्तम सभी शंकाओं से मुक्त होकर शक्तियागविधि करता है, वह इस पृथ्वी पर इन्द्र के समान हो जाता है।।१४-१६।।

पूजयेदर्धरात्रे च निर्जने पशुवर्जिते ।
सर्वालङ्कारसुभगो गन्धचन्दनभूषितः।।१७।।
आकृष्य विमलां शक्तिं रमणीं वामलोचनाम् ।
हारालङ्कारसुभगां घृणालज्जाविवर्जिताम् ।।१८।।
परार्ध्यास्तरणे रम्ये स्थापयेत् तूलिकोपरि ।
स्थापयेत् सुरया पूर्णं कुम्भं वामे सुवासितम् ।।१९।।

शक्ति पूजन विधान–यह पूजा अर्द्धरात्रि को निर्जन एवं पशु से रहित स्थान में करे। समस्त अलंकारों से सुघड़ बनकर गन्ध-चन्दन से आभूषित हो साधक हार-अलंकार से सजकर सुभग, घृणा-लज्जा रहित हो सुलोचना रमणी (कुलस्त्री) को रमणीक बनायी गयी कपास की गद्दी पर बैठाये वहाँ सुरा से पूर्ण घट को उस रमणी के वामभाग में रखे।।१७-१९।।

आनन्दहृदयं कृत्वा सद्यः प्रसन्नमानसः।
गुरुं नत्वा विधानेन ह्यमृतं तद्विचिन्तयेत् ।।२०।।
मांसं मत्स्यं तथा मुद्रां निधाय पुरतः शिवे ।
अर्घ्यपात्रं तदा वह्निसूर्यसोमामृतं स्मरेत् ।।२१।।
सिन्दूरेण ललाटेऽस्याः कृत्वा तिलकमद्रिजे ।
साध्यं च विलिखेत्तत्रमूलविद्याविदगर्भितम् ।।२२।।

अपने हृदय को आनन्दपूर्ण करके त्वरित रूप से प्रसन्न मानस होकर विधिपूर्वक गुरु को नमन करके उस घट में अमृत का चिन्तन करे।। मांस, मत्स्य, मुद्रा को शक्ति के सामने स्थापित करके अर्घ्य पात्र में अग्नि-सूर्य-सोम तथा अमृत रूप की भावना करनी चाहिये। हे शिवे! हे पार्वती! उस शक्ति के मस्तक पर सिंदूर लगाकर तिलक लगाये तथा मूल विद्या द्वारा साध्य का नाम ले।।२०-२२।।

गन्धैः पुष्पैस्तथा माल्यैर्भूषयित्वा तु तां पुनः।
कृत्वा धूपेन सौगन्ध्यं दीपानुज्ज्वाल्य पार्वति।।२३।।
नाभेश्चरणपर्यन्तं वाग्भवं कूटमुत्तमम् ।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामबीजं प्रविन्यसेत् ।।२४।।
शिरसो हृत्प्रदेशान्तं तदीयं परिभावयेत् ।
सर्वदेवमयं देहं सर्वमन्त्रमयं वपुः।।२५।।

हे पार्वती! पुनः उस शक्ति को गन्ध-पुष्प-माला आदि से भूषित करके सुगन्धित दीपों को जलाना चाहिये। तदनन्तर उस शक्ति की नाभि से लेकर चरण पर्यन्त उत्तम वाग्भव कूट का (क,ए,ई ल, ह्रीं') अंकित करे। पुनः हृदय से नाभि पर्यन्त कामबीज (ह स क ह ल ह्रीं) को लिखे। तत्पश्चात् शिर से लेकर हृदयपर्यन्त शक्ति बीज को लिखना होगा। यह है 'स क ल ह्रीं'। अब देह सर्वदेवमय तथा सर्वमन्त्रमय हो गया॥२३-२५॥

चिन्तयेत्साधकः शक्तिं साक्षात् कामेश्वरीं पुरः।
हृदि हस्तं समादाय जपेदष्टोत्तरं शतम्।।२६।।
आत्मानं चिन्तयेत्कामं शक्तिं कामेश्वरीं पराम्।
मुहुर्मुहुः पिबेन्मद्यं शक्तिजिह्वाविलोडितम्।।२७।।
मन्त्रशुद्धं पिबेन्मद्यं निःशब्दं हास्यवर्जितः।
भोजनान्ते विषं पानं पानान्ते भोजनं विषम्।।२८।।
अमृतं तद्विजांनीयाद् यदन्नं सुरया सह।
विष्णुना च पुरा पीता शङ्करेण ततः परम्।।२९।।
शक्रेण च पुरा पीता पुष्पदन्तेन चैव हि।
शुक्रेण च तथा पीता दत्तात्रेयेण सेविता।।३०।।
श्रीमता बलरामेण समानीताथ भूतले।
तस्मादिमां सुरां पुण्यां भक्त्या तां च पिबाम्यहम्।।३१।।
पशुपाशविनाशाय दिव्यज्ञानोपलब्धये।
इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभेषजम्।।३२।।
मद्यं मांसं तथान्यत्तु यत्किंचित् कुलभूषणम्।
शक्त्यै दत्त्वा पुनः शेषमात्मन्येव नियोजयेत्।।३३।।

तदनन्तर साधक उस शक्ति का साक्षात् कामेश्वरी के रूप मे चिन्तन करे। तत्पश्चात् उसके हृदय पर हाथ रखकर मन्त्र का १-८ बार जप करना चाहिये। अब साधक स्वयं को कामेश्वर तथा शक्ति को कामेश्वरी समझे। पुनःपुनः शक्ति की जिह्वा से विलोड़ित मद्य का धीरे-धीरे पान करे। मन्त्र से शुद्ध मद्य का पान शब्द रहित होकर तथा हास्य से रहित होकर पान करे।।भोजनान्त में मदिरा लेना विष के समान है। इसी तरह से मदिरापान के अनन्तर भोजन भी विषतुल्य है। लेकिन सुरा तथा भोजन साथ-साथ ग्रहण करना अमृत तुल्य है। प्राक्काल में विष्णु तथा शिव ने इसका पान किया था। तत्पश्चात् शंकर ने पान किया। शक्र तथा पुष्पदन्त गधर्व ने भी इसे पान किया। शुक्राचार्य तथा दत्ताश्रेय ने भी इसका

सेवन किया। श्रीमत बलराम इसे भूतल पर ले आये थे। अतः (यह सुरा) मैं भक्ति के साथ यह भवभेषज पी रहा हूँ।—'' मूलोक्त ''विष्णुना च पुरा'' से लेकर 'तां च पिबाम्यहम्'' तक का पाठ करके पशुपाश विनाशार्थ एवं दिव्यज्ञानोपलब्धि हेतु साधक मद्य मांस अथवा जो कुछ कुलसाधना में ग्राह्य है, पहले शक्ति को देकर शेष स्वयं नियोजित करके ग्रहण करे॥२६-३३॥

पाययित्वा पुनः पानं तन्मुखादमृतं पिबेत् ।
ततश्च शोधयेद्दीपं दीपो भवति नान्यथा ।।३४।।
आनन्दोदयपर्यन्तं साधकश्च पिबेन्मधु ।
कर्पूर(स?श)कलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननः ।।३५।।
मदिराघूर्णनयनो दिग्वासाः कुलभूषणः।
वदेत् सविनयं वाक्यं सिद्धिदे परमेश्वरि ।।३६।।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धदा भव ।
इति प्रसादमासाद्य कारयेत्तां दिगम्बराम् ।।३७।।
त्रिकोणवद्भगं ज्ञात्वा सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
कूटत्रयात्मकं स्मृत्वा सर्वानन्दमयं स्मरेत् ।।३८।।
आत्मानं देवतारूपमद्वैतं परिचिन्तयन् ।
पूर्णचन्द्रनिभं वक्त्रंपूर्णाद्रिं चुम्बनैर्यजेत् ।।३९।।
जालन्धरं महापीठं स्तनद्वयमुदीरितम् ।
अपानमूरुयुगलं कामरूपमतः परम् ।।४०।।
यत्पीठं ब्रह्मणो वक्त्रं गुप्तं सर्वसुखावहम् ।
यतो देवाश्च देव्यश्च मुनयश्चैव भावजा ।।४१।।

शक्ति को पिलाकर तब स्वयं पान करे। इसे उसके मुख से पान करे। तदनन्तर दीप का शोधन करे। साधक तबतक पान करता रहे, जब तक आनन्दोदय नहीं हो जाता। तदनन्तर ताम्बूल को मुख में रखकर मदिरा घूर्णित नेत्रों वाला कुलभूषण नग्न होकर यह वाक्य नम्रता से कहे ''हे सिद्धिप्रदे परमेश्वरी! तुझमें चतुवर्ण है। तुम सिद्धिदात्री बन जाओ। इस प्रकार से शक्ति को प्रसन्न करके जब उसकी स्वीकृति मिल जाय तब उसे भी नग्न करे। तदनन्तर उसकी योनि को त्रिकोणवद् मानकर उसमें सर्वसिद्धिप्रद, कूटत्रयात्मक, तथा सर्वानन्दमय चक्र की भावना करे। साधक स्वयं देवता से अद्वैत रूप में उसका चिन्तन करे। उस शक्ति के पूर्णचन्द्र समान मुख को चुम्बनांकन द्वारा अर्चना करे। इस समय साधक शक्ति के मुख को पूर्णगिरि पाठवत् समझे। शक्ति के स्तनद्वय

जालन्धर पीठ है। जंघाद्वय कामरूप पीठ हैं। जो पीठ ब्रह्मा का वक्त्र है तथा गुप्त एवं सर्वसुख प्रदायक है, जिससे देव-देवी-मुनिगण-मनुष्यमात्र प्रकट होते हैं, वह पीठ पृथिवी पर गुप्ततम है।।३४-४१।।

सर्वेऽप्याविर्भवन्त्येते तेन गुप्तं महीतले।
द्विविधं चैव तत्पीठं गुप्तं व्यक्तं महेश्वरि।।४२।।
व्यक्ताद्गुप्तं महापुण्यं दुरापं पशुभिः प्रिये।
गुप्तं सर्वत्र देवेशि लभ्यते कुलपूजकैः।।४३।।
यत्र तत्र यजेद्देवीमुपचारैस्तथाविधैः।
लिङ्गेनाकर्षयेद्योनिं मुखे जिह्वामृतं पिबेत्।।४४।।
नखदन्तक्षतान्यत्र पुष्पाणि विहितानि च।
आलिङ्गनं तु कस्तूरीकर्पूरागुरुचन्दनम्।।४५।।
चुम्बनं स्तवनं देवि मथनं हवनं शिवे।
त्रिभिः कूटैस्त्रिघातं स्यात् त्रिघातैर्जपमेकतः।।४६।।
एवं कृत्वा महेशानि स च कामेश्वरो भवेत्।
मद्यं मांसं विना देवि कुलपूजां यथा चरेत्।।४७।।
जन्मान्तरसहस्रस्य कुकृतं तस्य नश्यति।
निवृत्तिकाले च पुनर्भावपूर्णामृतैर्निजम्।।४८।।
मुखं बिन्दुवदाकारं तदधःकुच युग्मकम्।
सर्वविद्यामृतैः पूर्णं सर्ववाग्विभवप्रदम्।।४९।।
सर्वार्थसाधकं देवि सर्वरञ्जनकारणम्।
तदधः परमेशानि स्वदेहं परिचिन्तयेत्।।५०।।

हे महेश्वरी! पीठ दो है, गुप्त तथा व्यक्त। हे देवी! व्यक्त की तुलना में गुप्त महान पुण्यप्रद है तथा पशुभाव वालों के लिये दुर्लभ है। हें देवेशी! गुप्त की प्रगति कुलपूजक ही करते हैं। यह गुप्तपीठ जहाँ स्थित है, उसकी वैसे ही उपचार से पूजा करे। साधक लिंग द्वारा योनि को आकृष्ट करे। मुख से जिह्वामृत का पान करे। नखदन्तक्षत ही पुष्प रूप है। आलिंगन ही कस्तूरी-कर्पूर-अगुरु तथा चन्दन है। चुम्बन स्तुति है. लिंग द्वारा योनिमंथन ही हवन है। तीन कूटों से त्रिघात होता है। त्रिघात से एक जप सम्पन्न होता है। हे महेशानी! ऐसा जो करता है, वही कामेश्वर हो जाता है। हे देवी! जो साधक मद्य-मांस के बिना कुलपूजन करता है, उसके सहस्रों जन्मार्जित पुण्य क्षीण हो जाते हैं। हे देवी! मैथुन की निवृत्ति के समय शक्ति के आनन का पुनः भावपूर्ण अपने अमृत बिन्दु के समान चिन्तन

करे। उसके नीचे कुचयुग्म (स्तनद्वय) की सर्वविद्यामृत से पूर्ण तथा सर्ववाग्भव प्रदाता सर्वार्थ साधक एवं सर्ववाग्विभवप्रद रूपेण भावना करे। सर्व रंजन कारक भी समझे। उसके नीचे हे परमेशानी! अपनी देह का चिन्तन करना चाहिये। वह सर्वज्ञानसम्पन्न तथा सर्ववश्य कारक है, यह भावना करे॥४२-५०॥

सर्वज्ञानसुसम्पन्नं सर्ववश्यप्रदायकम्।
ध्यात्वा यष्ट्वाथवा देवि भवेत्कामकलान्वितः।।५१।।
कुलस्य विविधं रूपं ज्ञात्वा तत्परिचिन्त्य च।
कुलीनो जायते यस्मात्कथं तत्तु प्रकाशयेत्।।५२।।
एवमभ्यासयोगेन सिद्धो भवति नान्यथा।
मासेनाकर्षणी सिद्धिस्त्रिमासैर्वाक्पतिर्भवेत्।।५३।।
एवं चतुष्टये मासि भवेद्दिक्पालगोचरः।
पञ्चमे पञ्चकामः स्यात् षष्ठे रुद्रो न संशयः।।५४।।
चिन्तनं योषिता सार्धं पूजनं च तयैव हि।
तया विरहितो मन्त्री न सिध्यति कदाचन।।५५।।
भावयेद्योषिता सार्धं जुहुयाच्च तयैव हि।
तया विरहितो मन्त्री न सिध्यति कदाचन।।५६।।

हे देवी! साधक कुलपूजक इस प्रकार कामकला युक्त हो जाता है। कुल के विविध रूपों को जानकर, उसकी चिन्तना करके साधक स्वयं कुलीन हो जाता है, तब वह उसे क्यों प्रकाशित करेगा? इस प्रकार के अभ्यास योग द्वारा ही साधक सिद्ध होता है, अन्य प्रकार से नहीं होता। एक मास पर्यन्त इस अभ्यास द्वारा आकर्षण की सिद्धि प्राप्त होती है। तीन मास के अभ्यास से साधक को वाक् सिद्धि मिल जाती है। चार मांस में उसे दिक्पाल गणों का दर्शन मिलता है। पाँचवे महीने पर्यन्त इस अभ्यास द्वारा वह कामदेववत् हो जाता है। छठे महीने पर्यन्त अभ्यास द्वारा वह निःसंदिग्ध रूपेण रुद्र होता है।

चिन्तन एवं पूजन शक्ति (कुलस्त्री) के ही साथ करे। शक्तिरहित अभ्यास से कभी भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती। योषिता के साथ ही भावनादि (चिन्तन)करे। उसके साथ ही हवन करे। उससे विरहित मन्त्री कभी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता॥५१-५६॥

स्त्रियो देवाः स्त्रियः प्राणाः स्त्रिय एव हि भूषणम्।
स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रिया अपि।।५७।।
रात्रौ पर्यटनं कार्यं रात्रौ च शक्तिपूजनम्।
रात्रौ कुलकथालापं रात्रौ चान्यत् समापयेत्।।५८।।

स्त्रियाँ ही देव है, ये ही प्राण एवं भूषण हैं। सदा स्त्री के साथ रहे। परस्त्री उपलब्ध न हो, तब अपनी स्त्री के साथ रहे। रात्रि में ही पर्यटन कार्य तथा शक्तिपूजन करे। रात्रि में ही कुलकथा का आलाप करना चाहिये। रात्रि में ही अभ्यास का समापन भी होता है।।५७-५८।।

प्रातः स्नानं ततो देवि देवान्पितॄन्नृषींस्तथा ।
तर्पयित्वा यजेद्देवीमुपचारैर्यथाविधि ।।५९।।
पूर्वाह्नविहितां पूजां गृह्णाति परदेवता ।
मध्याह्नविहितां देवि गृह्णन्ति योगिनीगणाः।।६०।।
अपराह्नकृता पूजा नीयते यक्षराक्षसैः।
पूर्वाह्ने दीयते यत्तदमृतं समुदीरितम् ।।६१।।
मध्याह्ने तत्तु देवेशि शोणितं च परं स्मृतम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन बाह्यपूजां महेश्वरि ।।
प्रातरेव सदा कुर्याद्गृहस्थो गृहिणीयुतः।।६२।।

तत्पश्चात् प्रातः स्नान करके देखें, पितरों तथा ऋषियों का तर्पण करके देवी की पूजा उपचारों के साथ यथाविधि करे। हे देवी! पूर्वाह्न में की गई पूजा को परदेवता त्रिधुरा ग्रहण करती हैं। मध्याह्न भी पूजा को योगिनीगण ग्रहण करती है। अपराह्न की पूजा यक्ष-राक्षस ले जाते हैं। पूर्वाह्न में जो कुछ प्रदान किया जाये, वह अमृतोपम है। हे देवेशी! मध्याह्न में देना शोणित (रक्त वत्) के समान कहा गया है। हे महेश्वरी! इसलिए सर्वप्रयत्न से बाह्यपूजा सदैव गृहस्थ प्रातः ही गृहणी से युक्त होकर करे।।५९-६२।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे काम्यपूजादिविधिनिरूपणनामकः पञ्चत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३५।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में काम्यपूजादि विधिनिरूपण
नामक ३५वाँ अध्याय समाप्त ।।

षट्त्रिंशः पटलः

शक्त्यानयनपूजातत्वनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

शत्त्यन्तरं प्रवक्ष्यामि सविकल्पस्य सुन्दरि ।
स्वशत्त्या परशक्तिं च यथानयति साधकः ।।१।।
अदीक्षिताङ्गनासङ्गात् सिद्धिहानिर्भवेच्छिवे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दीक्षयेन्निजकौलिनीम् ।।२।।
गुरुसेवैकमात्रेण यथा सिद्धिर्भवेन् नृणाम् ।
महापद्मवनध्यानाद् यथा सिद्धीश्वरो भवेत् ।।३।।
त्रिपुराध्यानमात्रेण जीवन्मुक्तो यथा भवेत् ।
गङ्गास्मरणमात्रेण निष्पापो जायते यथा ।।४।।
योषित्स्मरणमात्रेण तथेयं वरदायिनी ।
न स्नानं न तथा पूजा न ध्यानं न्यास एव वा ।।५।।

ईश्वर कहते हैं—हे सुन्दरी! अब सविकल्प की अन्य शक्ति को कहता हूँ। हे शिवे! यदि साधक अपनी शक्ति के अतिरिक्त अन्य परशक्ति को ले आता है, तब अदीक्षिता शक्ति के संगम से सिद्धिहानि होती है। अत: सर्वप्रयत्न से अपनी कुलशक्ति (कुलस्त्री) को दीक्षित करे। गुरु की सेवा मात्र से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। महापद्मवन (योनी) के ध्यान द्वारा साधक सिद्धीश्वर हो जाता है। त्रिपुरा के ध्यान मात्र से जैसे व्यक्ति जीवन्मुक्त होता है, जैसे गंगा स्मरण करने मात्र से वह निष्पाप होता है, वैसे कुलस्त्री के स्मरण मात्र से भगवती उसके लिये वरप्रदा हो जाती हैं। यहाँ स्नान, पूजा, ध्यान, न्यास की आवश्यकता नहीं है। केवल मन्त्रस्मरण से ही कुलस्त्री वरदायिनी हो जाती है।।१-५।।

मन्त्रस्मरणमात्रेण योषितां वरदायिनी ।
निजकान्तां समानीय सुशीलां सुयशस्विनीम् ।।६।।
कुलभक्तं गुरुं प्राप्य दीक्षयेत् कुलविद्यया ।
दीक्षयित्वा गुरुस्तां तु निजपुत्रीवदाचरेत् ।।७।।
अद्य प्रभृति पुत्रि त्वं कुलपूजारता भव ।
यथोपदिष्टविधिना स्वामिनं वश्यमानय ।।८।।

हररूपस्य त्वत्पत्युर्न चान्यं मनसा स्मर ।
इत्याज्ञां च गुरोर्लब्ध्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ।।९।।
त्वत्पदाम्भोरुहच्छायां मूर्ध्नि देहि यशोधन ।
दीक्षिता न च योषा चेत् कथं स्यात्कुलपूजनम् ।।१०।।
कुलपूजा न चेद्देवि कुलविद्या पराङ्मुखी ।
दिवसं प्राप्य भौमं च निर्जने पशुवर्जिते ।।११।।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।
आनीय यत्नतः शुद्धं सिन्दूरं च मनोहरम् ।।१२।।
तेन चक्रं समालिख्य सुरेखं परमोज्ज्वलम् ।
षट्कोणं पद्मगर्भस्थं शरावे दाहवर्जिते ।।१३।।
तन्मध्ये प्रतिमां देवि सिन्दूरेण समालिखेत् ।
कपोले साद्यमालिख्यमूलमन्त्रविद् गर्भितम् ।।१४।।
कामबीजं ततो देवि लिखेत् सर्वाङ्गसंधिषु ।
पुष्पासवं मुखे दत्त्वा वसन्तसुन्दरीं जपेत् ।।१५।।

साधक अपनी सुशीला सुयशस्विनी पत्नी को कुलभक्त गुरु से कुलविद्या में दीक्षिता कराये। दीक्षा के पश्चात् गुरु उसके साथ पुत्री ऐसा व्यवहार करें। गुरु उससे मूलोक्त 'अद्य प्रभृति' से लेकर 'मनसा स्मर' पर्यन्त कहे। अर्थ है- 'हे पुत्री' आज से कुलपूजारता हो जाओ। यथोपदिष्ट विधान से पति को वश में करो। तुम्हारे पति शिवरूप हैं। अन्य पुरुष को स्मरण न करो।'' इस प्रकार गुरु की आज्ञा पाकर वह गुरु को पृथ्वी पर दण्डवत प्रणाम करे तथा पति को भी इसी प्रकार प्रणाम करे। और मूलोक्त 'त्वत्पदाम्भोरुहच्छाया' से लेकर 'स्यात्कुलपूजनम्' पर्यन्त तक कहे। अर्थ है—हे यशोधन! आप अपने चरणों की छाया मेरे शिर पर करें। यदि स्त्री दीक्षित नहीं होगी, तब कुलपूजा कैसे होगी? इस पर ईश्वर शिव पार्वती से कहते है कि कुलपूजा के बिना कुलदेवी विमुख हो जाती हैं। मंगलवार के दिन निर्जन तथा पशुरहित स्थान में शुक्लपक्षी अष्टमी अथवा चतुर्दशी को अर्थात् जब कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि पर मंगलवार पड़े तब यत्नपूर्वक शुद्ध तथा मनोहर सिंदूर ले आये। उससे सुन्दर रेखा वाला परमोज्वल चक्र बनाये। हे देवी! उसके अन्दर चक्र के अन्दर षट्कोण अंकित करके उसके अन्तर्गत सिन्दूर द्वारा (नारी) प्रतिमा का नाम अंकित करे।

प्रतिमा की सर्वाङ्ग सन्धि पर कामबीज का अंकन करके प्रतिमा के मुख में पुष्पासव टपकाकर वसन्तसुन्दरी का मन्त्र जप करना चाहिये॥६-१५॥

काममिन्द्रं तुरीयं च बिन्दुनादसमन्वितम् ।
बीजं तद्भुवनेशान्या द्वादशस्वरबिन्दुकम् ।।१६।।
ततस्तु नीलसुभगे हिलि हिलि ततः परम् ।
विच्चे स्वाहापदं दद्याद्विद्या वसन्तसुन्दरी ।।१७।।
ध्यानं कृत्वा तु सुन्दर्या जीवन्यासं च कारयेत् ।
संविधानन्दहृदयः साधकः स्थिरमानसः।।१८।।
संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी ।
संविदं योजयेद्देवि स्वयं चापि कुलेषु च ।।१९।।
ताम्बूलपूरितमुखो रक्ताभरणभूषितः।
रक्तासनोपविष्टस्तु स्वकुलं तूलिकोपरि ।।२०।।
वामभागे समासीनं रक्तवस्त्रविभूषितम् ।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यं स्फुरच्चकितलोचनम् ।।२१।।
जितामितकुचद्वन्द्वविशालकरिकुम्भकम् ।
तत्स्कन्धे बाहुमाधाय भङ्ग्या धृतकुचाञ्चले ।।२२।।

अब बसन्त सुन्दरी मन्त्र प्रक्रण कहा जाता है। कामबीज (क), इन्द्र (ल), चतुर्थस्वर (ई) को नादबिन्दु से (ँ) अंकित करके भुवनेश्वरी बीज (ह्रीं), बिन्दु समन्वित १२ वां स्वर (ऐं) लगाकर 'नीलसुभगे हिलि हिलि विच्चे स्वाहा' कहे। मन्त्रोद्धार होगा—

'क्लीं ह्रीं ऐं नीलसुभगे हिलिहिलि विच्चे स्वाहा'

त्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान करके संविदा (विजया) से आनन्दहृदय साधक अब स्थिरचित्त द्वारा जीवन्यास सम्पन्न करे। संविदा तथा आसव, इन दोनों में से संविदा अधिक महत्ववाली है। हे देवी! साधक स्वयं को तथा कुल को संविदा (भांग, विजया) से संयुक्त करे। वह रक्त आभूषणों से भूषित हो, उसके मुख में ताम्बूल भरा हो। वह अब लालवर्णी आसन पर आसीन हो जाये। अब साधक अपने वाम भाग में गद्दे के ऊपर सर्वशृंगार से शोभित, चञ्चल नेत्रा, विशाल स्तनों के उभार से हाथी के मस्तक को भी लज्जित करने वाली कुलस्त्री को आसीन कराये। उसके स्कन्ध पर अपनी भुजा को इस प्रकार स्थापित करे ताकि उसके स्तनों का स्पर्श होता रहे॥१६-२२॥

प्रतिमायां ततो देवि पूर्ववन्न्यासमाचरेत् ।
पूर्वोक्तविधिना पूजा कर्तव्या वीरवन्दिते ।।२३।।
ताम्बूलपूरितमुखं कुलं तदभिसं हि तम् ।
ध्यानयोगेन मनसा लक्षमेकं तदा जपेत् ।।२४।।
शतयोजनसंस्थानां नदीपर्वतमध्यगाम् ।
द्वीपान्तरसहस्त्रेषु रक्षितां निगड़ादिभिः।।२५।।
पयोधरभारक्षुब्धगमनां श्यामलोचनाम् ।
नितम्बबिम्बविध्वस्तगुरुजघनमण्डनाम् ।।२६।।
साधकाक्षिप्त हृदयां विवरान्तः प्रसर्पिणीम् ।
कवाटलौहसम्बद्धप्राकारविविधान्तरे ।।२७।।

कुलाकुल का जप सम्पन्न करने वाला साधक सौ योजन दूर, नदी पर्वत मध्य मे रहने वाली, हजारों दीपान्तर में रक्षिता, सिक्कड़ों से बंधी, पयोधर के भार के कारण मन्दगति से चलने वाली, श्यामलोचनी, नितम्ब के भार से जघनमण्डल के झुकाव से मंडिता, साधको द्वारा आक्षिप्त हृदयवाली, विवर के अन्दर प्रसर्पिता, लौहकपाट के भीतर बंद शक्ति को भी अपने पास ले आता है।।२३-२७।।

कुलाकुलजपं कृत्वा समानयति साधकः।
होमान्तरं प्रवक्ष्यामि येन ब्रह्ममयो भवेत् ।।२८।।
शिवशक्तिमयं विद्धि चेतनाचेतनं जगत् ।
मम ज्ञानप्रभावेन दृष्टं यत् कथयामि ते ।।२९।।
निर्जने शुद्धदेशे च शुद्धनाडीगणः शिवे ।
सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।।३०।।
पद्मासनसमासीनः साधकः शुद्धचेतनः।
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकै ।।३१।।
हस्तावाच्छाद्य आधारयोगदण्डावलम्बिनौ ।
नयने नासिकाप्रान्ते निमेषोन्मेषवर्जिते ।।३२।।

अब मैं अन्य होम कहता हूँ। इसके अनुष्ठान से साधक ब्रह्ममय हो जाता है। इस चेतन अचेतन विश्व का शिवशक्तिमय अनुभव करना चाहिये। मैंने ज्ञानप्रभाव से जो प्रत्यक्ष किया है, वह कहता हूँ। हे शिवे! निर्जन शुद्ध देश में, शुद्धनाड़ीगण की स्थिति में (नाड़ी शोधन द्वारा) साधक सम आसन पर समासीन होकर (सुखपूर्वक)

स्थित हो जाये। पद्मासन (अथवा सुखासन से) बैठे। मन की चेतना को शुद्ध रखे। तब वह प्राणों के मार्ग का शोधन कुंभक तथा रेचक द्वारा सम्पन्न करे।।२८-३१।।

भ्रुवोर्मध्ये स्थितश्चात्मा दन्तैर्दन्तांस्तु संस्पृशेत् ।
ओष्ठेन चाधरं चैव जिह्वया चाथ तालुकम् ।।३३।।
एषा तु सुन्दरीमुद्रा सुन्दरीमोददायिनी ।
सहस्रारे परे पद्म आधारोत्थेन वायुना ।।३४।।
कुलदीपशिखाकारंसङ्क्षोभ्यामृतमण्ड (न?लम्) ।
सुधाधारां स्मरेद् भूयः पतितां मूलपङ्कजे ।।३५।।
एवं स सप्तधा कुर्याद्देवीसांनिध्यहेतवे ।
मूलेन ध्यानयोगेन स्मृत्वा ब्रह्ममयीं पराम् ।।३६।।
हृदये पद्ममध्ये तु बाणलिङ्गे तु तेजसि ।
तत्राद्यां पूजयेद्देवीं हृदये कामरूपिणीम् ।।३७।।

आधार दण्डावलम्बी हाथों को मिलाकर तथा ढककर दोनों नेत्रों को नासिका प्रान्त में (नासाग्र में) निमेषोन्मेष से रहित करके स्थिर करे। भ्रूवों के मध्य में आत्मा (बोध) को स्थित करना होगा। दोनों जबड़ों को दातों को परस्पर सटाये रहे। ओष्ठ से अधर को सटाये । जिह्वा से तालु का स्पर्श करें। यह सुन्दरी को मोदित करने वाली सुन्दरी मुद्रा कही जाती है। साधक को चाहिये कि मूलाधरोत्थिता वायु को सहस्रार चक्र पर्यन्त ले जाये। अब उस वायु द्वारा कुलदीप शिखाकृति अमृतमण्डल को क्षुब्ध करके यह भावना करनी चाहिये कि वह अमृत धारा वहाँ से मूलाधार में क्षरित हो रही है। ऐसा ७ बार करना होगा। यह कर्म देवी सान्निध्यार्थ किया जाये। वहां मूल मन्त्र से ध्यान द्वारा परा ब्रह्ममयी देवी का स्मरण करे। हृदयकमल में तेजस बाणलिंग स्थित है। वहाँ हृदय में कामरूपिणी देवी का भावना द्वारा पूजन करना चाहिये।।३२-३७।।

पूरकेन समावाह्य संस्थाप्य कुम्भकेन तु ।
देहचक्रं समापाद्य दद्यात् पाद्यादिकं मुदा ।।३८।।
कुण्डलीपात्रसंस्थेन परमामृतवारिणा ।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात् पुनश्चार्घ्यं प्रदापयेत् ।।३९।।
सहस्रदलभृङ्गार्याः ललितालुलिताच्च्युतम् ।
परमामृतपानीयं दद्यादाचमनं मुखे ।।४०।।

यहाँ प्राण की पूरकावस्था में आवाह्न, तथा कुम्भकावस्था में उनका संस्थापन करके देह चक्र में देवी को (भावना द्वारा) पाद्य आदि आनन्दोत्फुल्ल स्थिति में प्रदान करना चाहिये। कुण्डलरूपी पात्रस्थ परमामृत रूप जलद्वारा देवी के चरणकमल में पाद्य दानोपरान्त अर्घ्य प्रदान करे। सहस्रदल पात्र से टपकनें वाले परमामृतजल को आचमनीयार्थ प्रदान करे॥३८-४०॥

षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं तु गन्धं दद्याद्विचक्षणः।
अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पमस्तेयमेव च ॥४१॥
दया पुष्पं क्षमा पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहम्।
अमोहं चाप्यमात्सर्यमविद्वेषं तथैव च ॥४२॥
अरागं च तथा सत्यं पुष्पाण्येवं विदुर्बुधाः।
एतानि भावपुष्पाणि सदैव विनिवेदयेत् ॥४३॥

विचक्षण साधक देवी को ३६ तत्वरूपी गन्ध प्रदान करे। अहिंसा-अस्तेय, दया, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, अमोह, अमास्तर्य, अविद्वेष, अराग, एवं सत्य को भी बुधजन पुष्पवत् मानते हैं। इन भावरूप पुष्पों का सदैव अर्पण करना चाहिये॥४१-४३॥

वायुं च धूपकं दद्यात्तेजो दीपं निवेदयेत्।
सुराम्बुधिं तथा दद्याद्दद्याच्च मांसपर्वतम् ॥४४॥
सूर्यं च दर्पणं दद्याच्चन्द्रं च च्छत्रमुत्तमम्।
आनन्दाभरणं दद्यादम्बरं चामरं तथा ॥४५॥
अनाहतध्वनिमयीं घण्टामेतां निवेदयेत्।
ततश्च साधकश्रेष्ठः श्रृङ्गारादिरसोद्भवैः ॥४६॥
नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च तोषयेत्परमेश्वरीम्।
ध्वनिना शब्दभेदेन तेज आकाशसंकुले ॥४७॥
सहस्रदलमध्ये तु चिन्तयेत्सुन्दरीं पराम्।
भैरवानन्दलिङ्गं तु तन्मध्ये योनिसंयुतम् ॥४८॥
एकीभावं तयोः कृत्वा अमृतं स्रावयेत्ततः।
जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं सदा ॥४९॥

वायु ही धूप है, तेज ही दीप है। इन्हें अर्पित करे। मद्य ही समुद्र है, मासं ही पर्वत है, इसे देवी को अर्पित करना चाहिये। देवी हेतु सूर्य ही दर्पण है, चन्द्र देवी

का छत्र है, आनन्द आभूषण है, आकाश चामर है। इन्हे देवी को निवेदित करे। देवी हेतु अनाहत ध्वनि को घण्टारुपेण अर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् साधक श्रेष्ठ शृङ्गारादि रसों से उद्भूत नृत्य गीत-वाद्य से परमेश्वरी को तोषित करे। तेज तथा आकाश से संकुल सहस्रदल में परा सुन्दरी देवी का चिन्तन करे। वहाँ मद्य में भैरव के लिङ्ग से संयुक्त योनि का ध्यान करे। दोनों के एकीकरण से वहां अमृत बिन्दु का स्राव होने लगता है। उस अमृत का जिह्वा एवं गला से पान करे। योगीगण इसी मद्य को पीते है, वे गुड़ पिष्टी आदि प्रकार से निर्मित मद्य नहीं पान करते।।४४-४९।।

योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपौष्टिकम् ।
पृथिव्यन्तर्गता आपस्तदन्तः शून्यमद्रिजे ।।५०।।
शून्यमध्ये वसेद्वायुर्वाय्वन्तर्ध्वनिरीश्वरि ।
तदन्तर्नाद एवासौ नादान्तर्बिन्दुरीश्वरः।।५१।।
तन्मध्ये तु परं ज्योतिःशिखा सूक्ष्मा परात्परा ।
विद्युद्योतन सङ्काशा सहस्रादित्यभास्वरा ।।५२।।
सुनयनातिसूक्ष्मा च निराकारा निरालया ।
परानन्दमयी पूर्णा सा भवेत् सुन्दरी परा ।।५३।।

हे अद्रिजे। पृथ्वी में जल है, जल में शून्य है। शून्य में वायु है, वायु के अभ्यन्तर में ध्वनि है। ध्वनि के मध्य में नाद है। नादाभ्यन्तर में बिन्दुरूपी ईश्वर विराजित रहते हैं। उस ईश्वररूपी बिन्दुमध्य में पर ज्योतिः शिखा रूपा, सूक्ष्म, परात्परा, विद्युतवल्लरी के समान, सहस्रों सूर्य के समान भास्वरा सुनयनाति सूक्ष्मा, निराकारा, निरालया, परानन्दमयी पूर्णा सुन्दरी परादेवी स्थित हैं।।५०-५३।।

पार्थिवे पार्थिवानां च लयः कार्यःसमाधिना ।
अप्सु चापां लयः कार्यः शून्ये शून्यस्य वै तथा ।।५४।।
लयो वायौ च वायूनां ध्वनौ ध्वनिं समर्पयेत् ।
ज्योतिषां च लयस्तत्र ब्रह्मण्येवं मनोलयः।।५५।।
मनः करोति पापानि मनः पापेषु लिप्यते ।
मनसि चोन्मनीभूते न धर्मो न च पातकम् ।।५६।।
एवं भावनया हृष्टः परमानन्दनिर्भरः।
संसारसागरं धीरो गोष्पदीकुरुते शिवे ।।५७।।

समाधि द्वारा समस्त पार्थिव को पृथिवी में लय करे। जल को जल में,

शून्य को शून्य में, वायु की वायु में तथा ध्वनि को ध्वनि में लयीभूत करदे। (व्यष्टि पार्थिवांश, जलांश, शून्यांश, वायव्यांश, ध्वन्यांश को इनके-इनके समष्टि में लय करे) ज्योति को ज्योति में, मन को ब्रह्म में लय करे। मन ही पाप करके पापलिप्त होता है। जब मन उन्मना स्थिति प्राप्त कर लेता है, तब न धर्म है न पातक। ऐसी भावना हो जाने पर धीर साधक हृष्ट तथा परमानन्द निर्भर हो जाता है। हे शिवे! धीर साधक यह संसार को गाय के खुर के गढ़े को जैसे अनायास पार कर लेते हैं, बैसे ही पार कर लेता है। भोग-मोक्ष उसके हाथों में हैं। वह मेरे समान हो जाता है।।५४-५७।।

भुक्तिमुक्ती करे तस्य मम तुल्यो भवेद् भुवि ।
पूजा ज्ञानमयी प्रोक्ता नतु होमस्तु तादृशः।।५८।।
तद्रूपं विद्धि कुण्डस्य बिन्दुत्रिवलयात्मकम् ।
आनन्दमेखलारम्यं मात्रायोनिभूषितम् ।।५९।।
तद्ब्रह्म परमं ध्यात्वा सर्वज्ञानविजृम्भिते ।
दीपितेऽग्नौ हुनेद्देवि प्रपञ्चहविरुत्तमम् ।।६०।।
शब्दाख्या मातृका रूपमक्षरं तु विराजितम् ।
अक्षरं च हुतं चात्र निशब्दं ब्रह्म जायते ।।६१।।

यह पूजा ज्ञानमयी कही जाती है, लेकिन होम उस प्रकार का नहीं होता है। कुण्ड को बिन्दु त्रिवलयात्मक जानो। वह आनन्द की मेखला से रम्य है और मात्रायोनि विभूषित है। उस कुण्ड के समान परम ब्रह्म का ध्यान करके साधक सर्वज्ञान विजृम्भित दीप्त अग्नि में इस प्रपञ्च रूप का हवन करे। मातृका शब्दाख्या है। उसका अक्षर रूप विरारित रहता है। इस अग्नि में अक्षर का हवन करने से ब्रह्म नि:शब्द हो जाता है।।५८-६१।।

पुण्यपापे हविर्देवि कृत्याकृत्ये हविः शिवे ।
सङ्कल्पश्च विकल्पश्च धर्माधर्मौ हविस्तथा ।।६२।।
धर्माधर्महविर्दीप्ते आमाग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ।।६३।।

हे शिवे ! पुण्यपाप हवि है। कृत्य-अकृत्य, संकल्प-विकल्प, धर्म-अधर्म सभी हवि हैं। धर्माधर्म रूप हवि से दीप्त आत्मारूप अग्नि में मन ही स्रुवा है। मैं सुषुम्नामार्ग से इन्द्रिय वृत्ति समूह का उसी में हवन करता हूँ।।६२-६३।।

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्यो न्मनांस्त्रुचम् ।
धर्माधर्मकलास्नेहपूर्णां वह्नौ जुहोम्यहम् ।।६४।।
वह्निजायान्वितं प्रान्ते मन्त्राभ्यां होमयेच्छिवे ।
निष्प्रपञ्चो यदा देवि जायते मन्त्रवित्तमः।
तदा स चिन्मयः साक्षात्केवलं ब्रह्म साधकः।।६५।।

प्रकाश तथा आकाश रूप हस्तद्वय द्वारा उन्मना स्रुक को धारण करके धर्माधर्म कलारूप तेल की आहुति उसमें भरकर उस अग्नि में हवन करता हूँ। हे शिवे! अन्त में स्वाहा युक्त मन्त्रद्वय द्वारा आहुति प्रदान करे। हे देवी! इस होम से मन्त्रवेत्ता निप्रपञ्च हो जाता है, अब वह साधक चिन्मय स्थिति में साक्षात् ब्रह्म है॥६४-६५॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शक्त्यानयनपूजातत्त्वादिनिरूपण-नामकः षट्त्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३६।।

॥ गन्धर्व तन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में शक्त्यानयनपूजातत्व
नामक छत्तीसवापटल समाप्त ॥

◆

सप्तत्रिंशः पटलः

शक्तिमाहात्म्यदेहासिद्धिनिरुपणम्

देव्युवाच–

परादारपरिष्वङ्गात् तथा नीचाभिसङ्गमात् ।
प्रतिलोमाभिसङ्गाच्च पातकी जायते नरः।।१।।
शक्त्यासक्तः कथं देव मुक्तः स्यात्परमेश्वर ।
वेदशास्त्रपुराणेषु सैव मुक्तिविरोधिनी ।।२।।
शक्तिर्हि जगतो मूलं सैव जगत्स्वरूपिणी ।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत् ।।३।।
सर्वा सर्वत्र देवेश गर्हिता सर्वकर्मसु ।
कथं तदुपयोग्यं स्यादिति वेदविदां स्थितिः।।४।।

देवी कहती हैं—परदारागमन,नीचस्त्री समागम,विलोमस्त्री सहवास से मनुष्य पातकी हो जाता है। हे देव! शक्ति में आसक्ति रखनें वाला कैसे मुक्त होता है? वेदशास्त्र पुराणो में शक्ति को मुक्ति विरोधी कहते हैं। शक्ति जगत कारण है। जगत स्वरूपा है। अत:जिसने स्त्री का त्याग कर दिया,मानो उसने जगत का त्याग करके सुख पा लिया!हे देवेश!सर्वत्र सभी नारीगण सभी कर्मो में निन्दिता हैं। उनका उपयोग कैसे हो, यह मैने वेदविद् लोगों की बात कहीं है।।१-४।।

ईश्वर उवाच–

इदं पुनर्महेशानि पुरैव प्रतिपादितम् ।
सूक्ष्मा गतिस्तु धर्मस्य मूढैस्तन्नावबुध्यते ।।५।।
ज्ञानाद्धि निर्मलं विश्वमज्ञानात् समलं प्रिये ।
वह्निरयं महादेवि सर्वगः सर्वभोजन ।।६।।
स कथं देवतायज्ञे देवविद्भिर्निदेशितः।
जलं चापि तथा प्रोक्तं तत् पूतं कथमद्रिजे ।।७।।
भृङ्गोपभुक्तपुष्पाणि मक्षिकोच्छिष्टकं मधुः।
दूषणीयं सुरापानं कथं यज्ञे निदेशितम् ।।८।।
गोरसं च गवां सारं तैलं च बीजसम्भवम् ।
कथं तद्विहितं दैवे पित्र्ये कर्मणि पार्वति ।।९।।
बीजनाशादनेकस्य विनाशं विद्धि सुव्रते ।
जायासु चैव सर्वासु तथा जातो जनिष्यते ।।१०।।

स सकृद्वैदिकैर्मन्त्रैः पूतो भवति पावकः।
वैदिकैस्तान्त्रिकैः शुद्धा पवित्रेयं तथा सुरा।।११।।
दूषणं नास्ति देवेशि महाविद्याप्रसाधने।
यस्मिन् यत्र य आचारस्तत्र धर्मस्तु तादृशः।।१२।।
अत्र भ्रमो महान् दोषस्तस्माद्भ्रान्तिं त्यज प्रिये।
अद्वैतभावरहितो द्वन्द्वचित्तोऽथ कामुकः।।१३।।
देवताभावरहितो लौल्यभावेन वा पुनः।
परशक्तिं समागच्छेत् स भवेद्गुरुतल्पगः।।१४।।
संसाराम्बुनिधेः पारं करोति विधिना च सा।
नरकाम्बुनिधौ शक्तिः क्षिपत्यविधिना शिवे।।१५।।
विना शक्तिं विना मद्यमद्वैतभावनां विना।
महाविद्याक्रमो यद्वद्यज्ञो घृतविवर्जितः।।१६।।

ईश्वर कहते है-यह पहले भी प्रतिपादित किया है कि धर्म की गति सूक्ष्म है लेकिन मूढ़ उसे नहीं जानता। हे प्रिये! ज्ञान से ही विश्व निर्मल लगता है। अज्ञान के कारण विश्व मलयुक्त प्रतीत होता है। हे महादेवी !यह अग्नि सर्वगामी तथा सर्वभोगी है,अच्छा-बुरा सभी भस्म कर देता है, तब उसे देवयज्ञ में देवतागण के लिए क्यों प्रयुक्त करते है? हे आद्रिजे! जल भी इसी प्रकार है,तब उसे प्रवित्र क्यों मानते है! भृंग पुष्पों का पराग लेकर उसे जूठाकर देता है, मक्खी से मधु उच्छिष्ट होकर बनता है,दूषणीय सुरापान यज्ञ में निदेशित है। गोरस गोगण का(के रक्त का) सार है। तैलतोबीज से निकला है, तब हे पार्वती! उसे दैव-पितृकार्य में विहित क्यो माना गया? हे सुव्रते! बीजनाश अनेक का विनाश है। वैसे ही स्त्री द्वारा उत्पन्न पुरुष पुनःपुत्ररुपेण स्त्री से ही उत्पन्न होता है। पावक वैदिक मन्त्रोच्चार से शुद्ध हो जाता है! अपवित्र सुरा भी भी वेद मन्त्रो से शुद्ध हो जाती है। हे देवी! इसी प्रकार से महाविद्या साधन में दोष नहीं है। जहाँ जो आचार है,वहाँ वैसा ही धर्म है। इसमे सन्देह महान दोष है। अतएव हे प्रिये! सन्देह न करें।

अद्वैतभाव से रहित,सन्दिग्ध चित्तयुक्त, कामुक, देवताभाव रहित,लोलुप भाव वाला पर स्त्री समागम करने के कारण गुरुस्त्रीगमन का पापभागी माना जाता है। वहीं शक्ति (स्त्री) शास्त्रोक्त विधानानुसार कार्य करने पर संसार सागर पार कर देती है। हे शिवे! जो शास्त्रीयविधान त्याग कर स्वेच्छा से इसका उपयोग करता है,उसे वह नरक में पतितं कर देती है। जैसे घृत विवर्जित यज्ञ फलित नहीं होता, उसी प्रकार से शक्ति रहित, मद रहित,अद्वैत भावना रहित साधना भी निष्फल हो जाती है।।५-१६।।

द्वैतभावे महेशानि वर्णजातिविकल्पना ।
अद्वैतभावमापन्ने लीने मनसि ब्रह्मणि ।।१७।।
कः कामः को भवेदिन्द्रः को ब्रह्मा को जनार्दनः ।
को देवः कोऽसुरो यक्षः पिशाचः कोऽमरः शिवे ।।१८।।
को द्विजः कोऽथवा शूद्रः को म्लेच्छः कोऽधमः शिवे ।
किं रूपं किं विरूपं वा को रोगी कोऽप्यनामयः ।।१९।।
किं च मेध्यममेध्यं वा किं वा वस्त्वप्यवस्तु च ।
किं मित्रं किममित्रं च को वध्योऽवध्य एव वा ।।२०।।
किं च भक्ष्यमभक्ष्यं वा किं वा तव ममेति च ।
अविद्याकल्पितं चैतद्विद्यया च्छिन्दि संशयम् ।।२१।।

हे महेशानी! द्वैतभावास्था में ही वर्णजाति की कल्पना लोग करते हैं। जब मन अद्वैतभावापन्न होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है तब कौन काम है? कौन इन्द्र है, कौन ब्रह्मा है, कौन विष्णु है, कौन देव है, कौन असुर है? हे शिवे! कौन दक्ष, कौन पिशाच है, कौन द्विज अथवा शूद्र है? कौन म्लेच्छ है, कौन अधम है? हे शिवे! तब कौन सुरुप है— कौन विरूप है? कौन रोगी है कौन है निरोग? क्या पवित्र, क्या अपवित्र, क्या वस्तु, क्या अवस्तु, कौन मित्र, कौन अमित्र? कौन वध्य, कौन अवध्य, कौन भक्ष्य, कौन अभक्ष्य? क्या तुम्हारा, क्या मेरा? यह सब अविद्या कल्पित ही है। विद्या द्वारा इस अविद्या संशय को उच्छिन्न करो॥१७-२१॥

स्त्रियं मम परां विद्यामिति जानीहि पार्वति ।
एकस्या बहुधा कृत्यमेकस्या बहुविग्रहम् ।।२२।।
बहुरूपाणि देहांहये कस्याएव निश्चितम् ।
अद्वैतानन्दसंदोहो विद्ययैव प्रकाश्यते ।।२३।।

हे पार्वती। स्त्रियों को मेरी पराविद्या जानो। एक उसी शक्ति के अनेक कार्य हैं तथा उसके अनेक विग्रह हैं। अनेक प्रकार के देह तथा रूप उस एक के ही हैं। अद्वैतानन्द सन्दोह विद्या द्वारा ही प्रकाशित होता है॥२२-२३॥

शक्तियागेषु यन्मांसं तन्मांसममृतोपमम् ।
पशुघातस्तदर्थं तु तद्विना ब्रह्महा भवेत् ।।२४।।
द्वैतान् पशून्विजानीयादद्वैतान् ब्राह्मणान्बिदुः ।
अतज्ज्ञ स्तेयपापेन भुनक्ति बहुकिल्विषम् ।।२५।।
मद्यपानं तु यज्ञेषु तद्विना पातकी भवेत् ।
पवित्रं सकलं भद्रे वासना यद्यकुत्सिता ।।२६।।

शक्तियाग में जो मांस है, वह अमृतोपम है। पशु का वध भी इसी याग हेतु किया जाता है। इस याग के अतिरिक्त पशुवधकारी तो ब्रह्महत्यारा है। द्वैतभाव युक्त को ही पशु जाने तथा जो अद्वैतभाव युक्त है वह है। ब्राह्मण । जो यह नही जानता, उसे चोरी का पाप लगाता है तथा अनेक पापफलों को भोगना पड़ता है। मद्यपान यज्ञार्थ ही को,अन्य समय पान से पातकी हो जायेगा। हे भद्रे! मन यदि वासना से मलिन नहीं है,तब सब कुछ पवित्र है।।२४-२६।।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
शरीरं दृश्यते यद्यत्तत्कर्म प्राकृतं शिवे ।।२७।।
प्रकृत्या क्रियते कर्म साक्षी पुरुष उच्यते ।
तन्मायामोहितः सोऽथ कर्ताहमिति मन्यते ।।२८।।
न कर्ता पुरुषो देवी कर्त्री प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषे करणं नास्ति निर्गुणत्वात् सदा प्रिये ।।२९।।

हे शिवे! ब्रह्मादिस्तम्ब पर्यन्त जो स्थावर-जंगमात्मक जगत है,उसमें जो जो देह लक्षित होता है, तथा तत् जनित जो-जो कर्म है, वह सब प्रकृति ही है। प्रकृति कर्म करती है, साक्षी पुरुष कहलाता है। उसकी माया से विमोहित होकर लोग स्वयं को (पुरुष) कर्त्ता कहते हैं। पुरुष विमोहित हो जाता है। हे देवी! पुरुष कदापि कर्त्ता नहीं है। प्रकृति ही करने वाली है। पुरुष सर्वदा निर्गुण है, अतः उसमें करणत्व नहीं है। करण-कर्त्तृत्व प्रकृति मे है, जो सगुणा है।।२७-२९।।

तथा करणकर्तृत्वं सगुणायां प्रतिष्ठितम् ।
यदिदं पुरुषे देवि कर्तृत्वमुपलक्ष्यते ।।३०।।
स्फटिके निर्मले देवि जपारागमिवानघे ।
अहमाकाशवत्सर्वं बहिरन्तर्गतोऽच्युतः।।३१।।
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परब्रह्माहमेव तत् ।।३२।।
ब्रह्मण्याधाय चित्तं तु कुर्वन् कर्म न लिप्यते ।
उभाभ्यामपि शक्यं स्यात्तर्तुं भवपयोनिधिम् ।।३३।।

हे देवी! पुरुष में कर्त्तृत्व उपलक्षित होता है जैसे स्वच्छ स्फटिक में जवाकुसुम का देखना है, अर्थात जैसे वर्ण वस्तु उसके समक्ष रखते है स्फटिक भी उसी वर्ण का प्रतीत होने लगता है। अतः वह औपाधिक कर्त्तृत्व है। यथार्थ नहीं है।''मै आकाशवत् सब हूँ, बाह्याभ्यन्तर में सर्वदा अच्युतरूपेण विद्यमान हूँ सदा सर्वसम शुद्ध तथा निःसंग -निर्मल-अचल हूँ। सत्य -ज्ञान- अनन्त परब्रह्म मै ही हूँ। '' यह चिन्तन

करके ब्रह्म में चित्त लगाकर कर्म करने वाला कर्म से लिप्त नहीं होता। संसार सागर को इन चिन्तन से पार किया जा सकता है।।३०-३३।।

दक्षिणेनापि कौलेन दुःखेनापि सुखेन च ।
कुम्भसंस्तरणैस्तर्तुं पोतवर्येण वाम्बुधिम् ।।३४।।
तस्मादयं वरः कौलो दक्षिणादपि सुव्रते ।
कुलज्ञानं विना देवि नैव मुक्तिः कदाचन ।।३५।।

ये दो मार्ग हैं दक्षिण मार्ग तथा तथा कौलमार्ग। दुःख-सुख के साथ कुंभसंस्तरण के पोत द्वारा इस अम्बुधि को पार किया जा सकता है। (दक्षिण मार्ग से अनेक कष्टकर साधना द्वारा तथा कौलामार्ग से सुखमयी साधना द्वारा संसार सागर को पार किया जा सकते हैं।) हे सुव्रते!तभी कौलमार्ग (तुलनात्मक रूपेण) दक्षिणमार्ग से श्रेष्ठ है। हे देवी!कौलज्ञानाभाव में मुक्ति कदापि नहीं मिलती।।३४-३५।।

माया बलवती ह्येषा शक्तिर्गुणमयी तु या ।
प्रकृतिर्गीयते सा तु सांख्ययोगविशारदैः।।३६।।
विद्याविद्येति सा प्रोक्ता वेदतत्त्वार्थदर्शिभिः।
महाविद्येति सा कैश्चिन्महामायेति चापरैः।।३७।।
शक्तिः सा सर्वभूतानामिति कैश्चिदुपास्यते ।
समुपासते सर्वे तां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।३८।।
तस्या एव न मे भेदो विष्णोर्ब्रह्मण एव वा ।
योगभोगतपः क्लेशैरानम्रैरभिनन्दिता ।।३९।।
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।
परितोष्य विधानेन येन तेनैव साधकः।।४०।।
संसारनिगडैर्बद्धः पुमान् विमुच्यते तया ।
तस्यास्तोषं विना देवि विमुक्तिर्नैव विद्यते ।।४१।।

माया बलवती है। इसे गुणमयी शक्ति भी कहते हैं। सांख्ययोग विशारद इसे प्रकृति कहते है। वेद तत्वदर्शी इसे विद्या-अविद्या कहते है। कोई इसे महाविद्या कहते हैं, अन्य इसे महामाया कहते हैं। कुछ लोग इसकी समस्त प्राणीगण की शक्तिरूपेण उपासना करते हैं। ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर भी उनकी उपासना करते रहते हैं। मेरा(शिव का),विष्णु तथा ब्रह्म का उससे कोई भेद नहीं हैं।

वे ही एकमात्र ऐसी हैं जो योग भोग,तप, क्लेश तथा भक्ति से आराधित होनें, पर सबको भोग-मोक्ष-स्वर्ग पददात्री हैं। साधक के जिस विधान से वे

प्रसन्न होती हैं, उसी से पुरुष की संसार बन्धन से मुक्ति संम्भव है उनकी कृपा बिना मुक्ति नहीं होती॥३६-४१॥

तन्निगृहीतचित्तानां पुंसां पुरुषपूजिते ।
अतस्तां च प्रयत्नेन पुरुषा मुक्तिलिप्सवः।।४२।।
समाश्रयन्ति योगाद्यैर्नित्यानन्दस्वरूपिणीम् ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चाहमात्मवत्समुपास्महे ।।४३।।

हे पुरुषपूजिते! उनके द्वारा गृहित चित्त वालो की मुक्ति उनकी कृपा से हीं सम्भव हो जाती है। मुक्ति लिप्सा से युक्त व्यक्ति अनेक प्रयत्नो द्वारा उन नित्यानन्दस्वरूपा का आश्रय योग आदि द्वारा लेते हैं। उनकी उपासना मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु भी अद्वैतभावना से आत्मस्वरुपा मानकर करती हैं॥४२-४३॥

तपःक्लेशैश्च तां देविपशुभावे स्थितो विधिः।
सन्तोष्य परया भक्त्या सावित्रीं वेदमातरम् ।।४४।।
इच्छाशक्तिं च वागीशीं लब्ध्वा सृष्टिमचीकरत् ।
तनयां जगृहे मोहाद्ब्रह्मा पशुरुदारधीः।।४५।।
तज्जुगुप्सितमन्याय्यमद्यापि न निवर्तते ।
परशक्तिं पशुस्तस्मान्मनसापि न संस्मरेत् ।।४६।।

हे देवी! ब्रह्मा ने पशुभाव की साधना द्वारा तपक्लेशः से उन देवी को सन्तुष्ट करके वेदमाता सावित्री को प्राप्त किया था। उन इच्छाशक्तिरूपा को प्राप्त करके ब्रह्मा ने सृष्टि किया था। उन उदारधी ब्रह्मा ने पशुभाव के कारण मोहवशात् अपनी पुत्री को ही ग्रहण कर लिया था। वह जुगुप्सित अन्याय कार्य आज भी निवारित नही हो सका (वे ही उनकी पत्नी हैं) अतः पशुभावापन्न को चाहिये कि वह कदापि परस्त्री का स्मरण न करे॥४४-४६॥

तद्भावमाश्रिता विप्रास्तामेव समुपासते ।
मित्राणां सर्वभूतानां तेषां मद्यं घृतं पयः।।४७।।
अपूपं पिष्टकं मांसं गृह्णीयुः शक्तिदापितम् ।
अपि वा संविदासक्ता भवेयुः शक्तिमाश्रिताः।।४८।।
दिव्यभावस्थितो विष्णुर्जगत्पालनरूपिणीम्।
मधुमैरेयभोगाद्यैः सन्तोष्यानन्दरूपिणीम् ।।४९।।
ज्ञानशक्तिमयीं लक्ष्मीं जगदाधाररूपिणीम् ।
लब्ध्वा तु जगतः सोऽयं पालकोऽभून्निराकुलः।।५०।।

विप्रगण तद्भावभावित होकर उनकीं उपासना करते हैं। ब्राह्मण समस्त प्राणीगण के मित्र स्वरूप हैं। उन्हे चाहिये कि शक्ति द्वारा प्रदत्त मद्य, घृत, दुग्ध, मालपूआ, हलुआ, पीठी, मांस को स्वीकार करें। अन्यथा वे संविदा (विजया) में आसक्त होकर शक्ति का आश्रय ग्रहण करे। दिव्यभावापन्न विष्णु भी सन्तोष्यानन्दरूपा उन जगत् पालनरूपा देवी शक्ति को मधु-मदिरा आदि से सन्तुष्ट करके ज्ञानशक्तिमयी जगदाधारिरूपा लक्ष्मी को प्राप्त करके निराकुल रूप से संसार के पालक हैं। तद्भाव से भावित आश्रित राजा भी देवी की (कौलाचार से) उपासना करते हैं।।४७-५०।।

तद्भावमाश्रिता भूपास्तथैव तामुपासते ।
अथ देवाश्च दैत्याश्च मुनयो मानुषाः परे ।।५१।।
विष्णुमेव हि सततं भजन्ते भावसिद्धये ।
स च भावविशुद्धात्मा तद्भावं तु जुगोप ह ।।५२।।
ये नन्दन्ति च तद्भावं गोपयन्ति च सर्वदा ।
ते वै प्रियतमाः सर्वे शङ्खचक्रगदाभृतः।।५३।।
तद्भावादिमुखान् कर्तुं लोकांल्लोकेश्वरो हरिः।
इदमादिष्टवान् देवि मामेव जगदीश्वरः।।५४।।

दैव,दैत्य,मनुष्य तथा मुनि भावसिद्धि हेतु भगवान विष्णु की उपासना करते हैं। विष्णु ने भावविशुद्ध आत्मा होने के कारण उस भाव को(उस दिव्य भाव को)गोपित ही रखा है। जो इस भाव के प्रशंसक हैं तथा गुप्त रखते हैं,वे शंख,चक्र गदाधारी विष्णु के प्रियतम हैं। हे देवी! विष्णु ने उन सब को भाव से विमुख करने हेतु मुझे यह आदेश दिया।।५१-५४।।

भगवानुवाच–

सर्वे दिव्या भविष्यन्ति मद्भावे हि प्रकाशिते ।
पशुभावं पुरस्कुर्वन् मद्भावस्य विनिन्दकः।।५५।।
आगमैः कल्पितैर्देव मद्भावाद्विमुखान् कुरु ।

ईश्वर उवाच–

तदाज्ञां शिरसि धृत्वा विष्णोरमिततेजसः।।५६।।
तथैवाहं महेशानि कृतवांस्तन्त्रविस्तरम् ।
गोपयन्दिव्यभावं च पुरस्कुर्वन् पशोर्मतम् ।।५७।।
अत एव महेशानि वैष्णवे दर्शने खलु ।
पूजितः पशुभावश्च शक्तिनिन्दा च विस्तृता ।।५८।।

भगवान कहते हैं—मेरे दिव्य भाव के प्रकाशन से सभी दिव्य हो जायेंगे। हे देव! इसी कारण पशुभाव को प्रश्रय देकर आप मेरे दिव्य भाव के निन्दक हो जायें। कल्पित आगमों से लोगों को मुझसे विमुख करिये। ईश्वर कहते हैं— अमित तेजस्वी विष्णु की आज्ञा शिरपर धारण करके मैंने वैसे ही तन्त्र का विस्तार किया। हे महेशानी! मैंने दिव्यभाव को गोपित किया। पशुभाव को प्रदर्शित किया। हे महेशानी! इसी कारण वैष्णव दर्शनों में पशुभाव की प्रशंसा (दक्षिण मार्ग की प्रशंसा) तथा शक्तियाग की निन्दा अंकित है।।५५-५८।।

या शक्तिः सर्वभूतानां द्विधा भवति सा पुनः।
स्थूलरूपा च सा देवी सूक्ष्मरूपा च पार्वति ।।५९।।
स्थूलरूपेण सा देवी सर्वमेतज्जगत्त्रयम् ।
मोहयित्वा जनान्सर्वान् बहुरूपा सुखेच्छया ।।६०।।
संस्थिता परमेशानि लीलाकलितविग्रहा ।
स्वभावतो न जानन्ति तन्मायामोहिता जनाः ।।६१।।
केचित्तां तु प्रहाराद्यैः कटूक्तिभाषणैस्तथा ।
ताडयन्ति च वै मूढा जना निरयगामिनः।।६२।।
केचित्तां भूषणाच्छादैः सम्भोगैरपि सेवया ।
पूजयन्ति हि ते धीराश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः।।६३।।

हे पार्वती! जो समस्त की सर्वभूतों की शक्ति है, वह स्थूलरूपा तथा सूक्ष्मरूपा होकर द्विधा हो जाती है। स्थूलरूप से वह देवी समस्त त्रिलोकी है। वह सबको मोहित करके सुखेच्छा से बहुरूपा हो गयी है। हे परमेशानी! वह लीला से विग्रहवान होकर संस्थित है। लोग उसे (शक्ति को) स्वभावत नही जानते, क्योंकि उसकी माया से मोहित हो जाते हैं। जो मूर्ख तथा नरकगामी हैं वे दण्ड, गाली आदि द्वारा उसे (शक्ति को) प्रताड़ित करते हैं। जो धीर तथा चतुर्वर्ग साधक हैं, वे उसको प्रसन्न करके उसकी पूजा करते हैं। उसे कष्ट देने वाले (शक्ति अर्थात कुलस्त्री को कष्ट देने वाले) निश्चयतः पतित होते हैं। (देवी का यहाँ जो स्थूल रूप है- वही है कुलस्त्री-शक्ति) ।।५९-६३।।

तेषां विप्रियकर्तारः पतिष्यन्ति सुनिश्चितम् ।
सूक्ष्मरूपां च तां विद्धि सर्वेषा मन्तरस्थिताम् ।।६४।।
त्रैलोक्यजननीं देवीं मुख्येन ब्रह्मवर्त्मना ।
योजयित्वा परानन्दे परमानन्दरूपिणीम् ।।६५।।
तयोर्योगाद्यदमृतं तर्पयेत्तेन योगिनीम् ।
प्राणधारणया देवि शुद्धनाड़ीमनाः सुधीः।।६६।।

प्राणान्प्रवेशयेन्नाड्या तन्मुखे चैव तान् हुनेत् ।
तद्वक्त्रे वायुना भिन्न याति चोर्ध्वं परेश्वरी ।।६७।।
तस्मादाकृष्य तद्वायुं कुम्भयित्वा तु सञ्चयेत् ।
संचितैर्वायुभिस्तां च कुलवर्त्मविहारिणीम् ।।६८।।
सहस्रारे महापद्मे सितदीधितिमण्डले ।
समुन्नीय परे हंसे तयोरैक्यं धिया स्मरेत् ।।६९।।
होमाद्यं विहितं तत्र चन्द्रसूर्यात्मकं तयो ।
स्रुक्स्रुवौ च समादाय जुहुयादव्ययं हविः ।।७०।।
मूलाधारे परे चक्रे शक्तिर्या कुण्डली शुभा ।
तद्भ्रमावर्ततोऽयं च बहिर्याति दिने दिने ।।७१।।
दिनेशाङ्गुलिमानेन तदर्धं चोपवासतः ।
द्विगुणं रतिकाले स्यात् त्रिगुणं भोजनाद्बहिः ।।७२।।
अत ऊर्ध्वं वहेद्देवि त्रिदिनं यदि मारुतः ।
न्यूनं वा तदधः प्राणः शरीरं परिमुञ्चति ।।७३।।

जो सूक्ष्मरूपा हैं, वे सब मे हैं। हे परान्दे! त्रैलोक्यजननी उन परमानन्दरूपिणी को मुख्य सुषुम्नामार्ग से युक्त करने पर (सहस्रारस्थ करने पर) उन दोनों (सहस्रार योग से) से जो अमृत क्षरित होता है, उससे योगिनी को तृप्त करे। हे देवी! सुधी साधक स्वयं शुद्धनाड़ी तथा शुद्ध चित्त होकर सुषुम्ना में प्राणों को ले जाकर कुलकुण्डलिनी में उस प्राण की आहुति प्रदान करे। प्राणवायु से कुण्डलिनी की वह परमेश्वरी शक्ति (कुण्डलिनी) उर्ध्वोत्थित होती है। उससे वायु को आकर्षित करके कुम्भक से संचित करे।

उस संचित वायु द्वारा कुलमार्ग संचरणशीला कुलकुण्डलिनी को श्वेत प्रभावाले सहस्रधार महाकमल में ले जाकर दोनों के ऐक्य का ध्यान करना चाहिये। वहाँ होम का विधान होता है। वहाँ दोनों की चन्द्रसूर्यात्मक भावना करनी चाहिये। उन्हें स्रुक्-स्रुवा रूप से भावित करके अव्यय हवि का होम करे। मूलाधार मे जो कुण्डलिनी शुभा रूप है, उसके भ्रमावर्त्त होने से, उर्ध्व-अधः होने से, यह प्राण दिनो-दिनो बहिर्गत होता है। अब इसकी गति १२ अंगुल होती है। उपवास से यह ६ अंगुल होता है। रतिकाल में २४ अंगुल तथा भोजन काल में तीस गुना आवर्त्तन करता है। हे देवि! यदि यह ६ अंगुल से कम हो अथवा ३६ अंगुल से अधिक बढ़े तब तीन दिनों में प्राण चले जाते हैं।।६४-७३।।

यावत्कालं वहेदेतद्वायुश्च जगदीश्वरः।
तावच्चलति देहोऽयं तद्विना चाचलः स्मृतः।।७४।।
निश्चलं पवनं कृत्वा योगी भवति साधकः।
वायुना नीयते बाह्ये मनस्तु प्राणिना शिवे।।७५।।
वायौ च सुस्थिरीभूते मनोऽपि स्थिरतां वहेत्।
तयोरद्वैतभावे तु निश्चलत्वं गते द्वयोः।।७६।।
देहं निरामयं विद्धि यथाकामविलासिनम्।
इह स्थित्वा यथाकामं संत्यज्य च कलेवरम्।।७७।।

जगत्स्वामी यह प्राण जब तक शरीर में तथा बाहर चलता है तभी तक जीवन है। अन्यथा यह मृत है। इसे स्थिर करने वाला योगी है। हे शिवे!प्राणियों का मन वायु से ही विषयोन्मुखीन होता है। मन तथा प्राण की अद्वैतावस्था में देह निरोग रहता है तथा इच्छानुरूप मन से चालित होता है। वह इच्छानुरूपजीवित रहकर देहान्त में अद्वैतभावेन मुक्त हो जाता है।।७४-७७।।

अद्वैतभावमापन्नो न स पुनरिहाव्रजेत्।
प्रसङ्गात् कथिता देवि देहसिद्धिरनुत्तमा।।७८।।
येन तेन विधानेन परितुष्टा महेश्वरी।
संसारनिगडैर्बद्धः पुमान्विमुच्यते तया।।७९।।
तस्यास्तोषं विना देवि विमुक्तिर्नैव विद्यते।
अनिगृहीतचित्तस्य पुरुषस्य महेश्वरि।।८०।।

हे देवी! यह देह की सर्वोत्तम सिद्धि कही गयी है, जिसको पूर्वोक्त रूप कर्म करने से देवी प्रसन्न हो जाती हैं। वे संसार बन्धन से मुक्ति देती हैं। हे देवी! महेश्वरी! अनिगृहीत चित्त व्यक्ति की उनकी कृपा बिना मुक्ति नहीं होती।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शक्तिमाहात्म्यदेहसिद्धिवर्णन-नामकः सप्तत्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३७।।

।। गन्धर्व तन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में शक्ति माहात्म्य देहसिद्धि नामक ३७ वाँ पटल समाप्त ।।

◆

अष्टात्रिंशः पटलः

शिवशक्तिप्राप्तिनिरुपणम्

ईश्वर उवाच–

बहुकालं पूजिता तु तुष्टा स्यात्सूक्ष्मरूपिणी ।
यथा तुष्यति भोगेन तपोयोगैश्च न तथा ।।१।।
अतो भोगेन तां तोष्य तया मुक्तो भवेत्सुखी ।
मया चापि पुरा देवि सेविता योगवर्त्मना ।।२।।

ईश्वर कहते है—बहुत काल पर्यन्त पूजित होकर वह सूक्ष्माशक्ति प्रसन्न होती हैं। जैसे वे भोग से सन्तुष्ट होती हैं, तप योग से उतनी सन्तुष्ट नहीं होती। तभी उन्हें भोग से सन्तुष्ट करे तथा उनकी कृपा से मुक्त होकर सुखी हो जाये। हे देवी! मैने भी पुराकाल में उन्हें योग से सन्तुष्ट करने का अत्यन्त प्रयत्न किया था।।१-२।।

परितुष्टा न मे देवी सूक्ष्मरूपान्तरस्थिता ।
शक्तिहीनं च मां वीक्ष्य वनिताविमुखं तथा ।।३।।
विषण्णवदनो ब्रह्मा हृदयेन विदूयता ।
चिन्तावशमुपाविष्टो ब्रह्मा लोकपितामहः ।।४।।
मामासाद्य तथा विष्णुं ययौ क्षीरपयोनिधिम् ।
क्षीरोदस्योत्तरे तीरे रत्नद्वीपे सुशोभिते ।।५।।

लेकिन वे सूक्ष्मरूप स्थिता देवी उससे सन्तुष्ट नहीं हो सकीं। मुझे शक्तिविरहित देखकर तथा स्त्री से विमुख देखकर ब्रह्मा विषणणवदन होकर मुझे विष्णु के निकट क्षीरसागर में गये, क्योंकि वे मेरी स्थिति देखकर हृदय से दुःखित थे। क्षीरसागर के उत्तर तीर पर रत्नद्वीप शोभित था। वहाँ ब्रह्मा ने ध्यान प्रारम्भ किया।।३-५।।

तत्र स्थित्वावयोर्मध्ये ब्रह्मा ध्यानपरोऽभवत् ।
हृत्पुण्डरीकमध्यस्थे देवीपादसरोरुहे ।।६।।
मनो निधाय योगात्मा देवीसूक्तं परं जगौ ।
व्यतीते बहुकालेऽथ देवी त्रिभुवनेश्वरी ।।७।।
शूलपाशधरा देवी किरीटादिविमण्डिता ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च बालार्ककिरणारुणा ।।८।।
दर्शयामास स्वं रूपं तस्य तुष्टा सदा शिवे ।
प्रसन्नां तां समालोक्य स्त्रष्टा सर्वजगद्गुरुः ।।९।।

भक्त्या विनम्रवदनस्तुष्टाव च ननाम च।

ब्रह्मोवाच–

त्वं सावित्री च वाग्देवीत्वं श्रीः सर्वजगत्प्रसूः।।१०।।
स्वाहा त्वं देवयज्ञेषु पितृयज्ञेषु च स्वधा।
सुधा त्वं देवलोकेषु हविस्त्वं खलु मानुषे।।११।।
त्वं विद्याश्चैव मन्त्राश्च वेदास्त्वं हि स्वरात्मिका।
अर्धमात्रात्मिका त्वं वै यानुच्चार्या विशेषतः।।१२।।
त्वमेव परमा शक्तिर्जगत्कारणरूपिणी।
विचार्याष्टाङ्गयोगेन लक्षणाद्यैर्मुहुर्मुहुः।।१३।।
यत् स्थिरीक्रियते देवि तत्ते रूपं सनातनम्।
यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मनः।।१४।।
रूपं तवैव तत् सूक्ष्मं सकलं च जगन्मयम्।
या सृष्टिशक्तिरस्माकं स्थितिशक्तिस्तथा हरेः।
अन्तशक्तिस्तथेशस्य सा त्वं शक्तिः सनातनी।।१५।।

हृत् पुण्डरीक मध्यस्थित देवी के पदसरोरुह में मन नियोजित करके उन्होंने देवी सूक्त को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। अधिक समय व्यतीत हो जाने पर चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, त्रिशूल-पाश धारिणी मुकुट आदि से मण्डिता बाल सूर्यवत् अरुणवर्णा त्रिभुवनेश्वरी देवी ने प्रसन्न होकर अपना रूप उन्हे दिखलाया। हे शिवे! स्रष्टा, सर्वजगत् गुरु ब्रह्मा ने भक्तिविनम्र होकर उन्हे प्रसन्न करने हेतु स्तुति किया तथा प्रणाम निवेदित किया।

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवी! तुम सावित्री तथा वाग्देवी, श्री समस्त जगत् का प्रसव करने वाली, स्वाहा एवं पितृयज्ञ की स्वधा हो। देवलोक में तुम ही सुधा हो, मनुष्यलोक में हवि हो। तुम विद्या हो, तुम ही मन्त्र हो, तुम ही स्वरात्मक वेद हो! तुम अर्द्धमात्र हो, तुम ही विशेषतः अनुच्चार्या भी हो। तुम ही परमा शक्ति जगत्का रण रूपिणी हो। हे देवी! अष्टांगयोग के अभ्यास से लक्षण आदि द्वारा पुनःपुनः तुम्हारा ध्यान करके तुम्हारे रूप को चित्त में स्थिरीकृत किया जाता है। वही है तुम्हारा सनातन रूप। जो निष्कल परमात्मा का अव्यक्त अनिर्देश्य रूप है, वही है तुम्हारा सकल एवं जगन्मय सूक्ष्मरूप। मेरी जो सृष्टि

करने की शक्ति है, हरि की जो स्थिति शक्ति है, तथा ईश की जो अन्त्यशक्ति है, वह सनातनी शक्ति तुम ही हो॥६-१५॥

त्वं जातवेदोगता शक्तिरुग्रा त्वं दाहिका सूर्यकरस्य शक्तिः।
आह्लादिका त्वं बहु चन्द्रिकाया स्तां त्वामहं नौमि नमामि चाम्बिकाम् ।।१६।।
योषा योषित्प्रियाणां त्वं विद्या त्वं चोर्ध्वरितसाम् ।
वाञ्छा त्वं सर्वजगतां माया च त्वं तथा हरेः।।१७।।
यथा प्रकाश्यते ब्रह्म सा त्वं नित्या प्रसीद मे ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्वयोनिरयोनिजा ।।१८।।

तुम ही जातवेद की उग्र शक्ति हो। तुम ही सूर्य किरणों की दाहिका शक्ति हो। चन्द्रिका की आल्हादिका शक्ति तुम ही हो। मैं तुम्हारा नमन करता हूँ। हे अम्बिका! तुम्हे प्रणाम । तुम स्त्री को चाहने वालों की कान्ता हो, तुम ही उर्ध्व रेतस (योगीगण) की विद्या हो। तुम ही सर्वजगत् भी वाञ्छा हो । विष्णुमाया हो, जिससे ब्रह्म प्रकाशित होता है, वह नित्या मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। तुम अनादि हो, तथापि विश्व की आदि हो। विश्व की योनि होकर भी अयोनिजा हो॥१६-१८॥

अनन्तात्सर्वजगतस्त्वमेवैकान्तरूपिणी ।
एका त्वं त्रिविधा भूत्वा मोह संहारकारिणी ।।१९।।
संसारसागरोत्तारतरणिः सुखमोक्षदे ।
त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचरमोहिनी ।।२०।।
नमस्ते जगतां मातः सृष्टिरूपे सनातनि ।
स्थितिरूपे नमस्तुभ्यं नमः संहारूपिणि ।।२१।।
एवं संस्तूयमाना सा योगनिद्रा विरिञ्चिना ।
आविर्बभूव प्रत्यक्षं ब्रह्मणः परमात्मनः।।२२।।

इस अनन्त सर्वजगत् की तुम अन्तिम स्थिति हो। तुम एक ही तीन होकर मोह संसार कारिणी हो। तुम ही संसार सागर से पार करानें वाली नौका हो। तुम ही सुखदा एवं मोक्षदा हो। तुम नित्या अनित्या हो, तुम ही सचराचर मोहिनी हो। हे जगतमाता! तुमको नमस्कार! तुम सृष्टिरूपा सनातनी हो! हे स्थिति रूपा! तुमको नमस्कार! संहारूपिणी! तुमको नमस्कार!

इस प्रकार से ब्रह्मा से स्तुत होकर वे देवी योगनिद्रा परमात्मा ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हो गईं॥१९-२२॥

देव्युवाच-

परितुष्टास्मि लोकेश स्तोत्रेणानेन ते विभो।
वरं वृणीष्व भद्रं मे यत्ते मनसि वर्तते।।२३।।

देवी कहती हैं—हे प्रभो! हे लोकेश! मैं इस स्तुति से सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे मन में जो इच्छा है, वह वर मांगो॥२३॥

ईश्वर उवाच-

मां समीक्ष्य वरं वव्रे जगत्संहारकारकम्।
सृष्टिशक्तिं मयि त्वं च विष्णौ पालनरूपिणीम्।।२४।।
संहारशक्तिमीशाने देहि मातर्नमोऽस्तु ते।
एकश्चरति भूतेशो न द्वितीयां समीहते।।२५।।
तथा मोहय सर्वेशं दारान् स्वयं जिघृक्षति।

देव्युवाच-

यदुक्तं भवता ब्रह्मंस्तच्च सत्यं न चान्यथा।।२६।।
मोहयित्वाहमीशानं सतीरूपेण शङ्करम्।
संहरिष्यामि लोकेश जगदेतच्चराचरम्।।२७।।
तत्रापि तां तनुं त्यक्त्वासम्भविष्यामि पार्वति।
इति तस्मै समाभाष्य ब्रह्मणे परमेश्वरी।।२८।।
वीक्ष्यमाणा जगत्स्रष्टा तत्रैवान्तरधीयत।
तस्यामन्तर्हितायां च ब्रह्मा लोकपितामहः।।२९।।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुमाह प्रजापतिः।
संहारकरणे योग्यं वीरभावं च यद्भवेत्।।३०।।
तन्निवेशय महादेवे विष्णो लोकेषु दुर्लभम्।
इति तद्वचनं श्रुत्वा भगवान् हरिरीश्वरः।।३१।।
आदिष्टवान् मयि भद्रे वीरभावं सुदुर्लभम्।
वीरभावे स्थितः सोऽहं मातस्त्वां समुपास्महे।।३२।।

ईश्वर कहते है—मुझ जगत् के सहार कारक को ब्रह्मा ने देखकर यह वर मांगा 'हे माता! मुझे सृष्टिशक्ति, विष्णु को पालनशक्ति तथा ईश्वर को संहारशक्ति प्रदान करो। माता! तुमको नमस्कार है। ये भूतों के ईश शिव

एकाकी रहते हैं। दूसरे की इच्छा नही करते । इन सर्वेश को मोहग्रस्त करो। वे स्वयं स्त्री की कामना करने लगें।

देवी कहती है—हे ब्रह्मन्! आपने जो कहा वह सत्य हो। अन्यथा न हो। हे लोकेश! मैं ईश्वर ईशान शिव को सतीरूप धारंण कर मोहित करूंगी। साथ ही इस सचराचर का संहार करूंगी। तदनन्तर वह शरीर छोड़कर पार्वती हो जाऊँगी। यह कहकर परमेश्वरी अन्तर्हित हो गयीं।

देवी के अन्तर्हित हो जाने पर ब्रह्मा लोकपितामह ने अंजलिबद्ध होकर विष्णु प्रजापति से कहा हे विष्णु! जो वीरभाव संहारकार्य योग्य है, उस वीरभाव को (दुर्लभ वीरभाव को) महादेव में निवेशित करें। हे शिव! उन्होंने ब्रह्मा का यह वचन सुनकर उस सुदुर्लभ वीरभाव को मुझमें आविष्ट कर दिया। हे माता! वीरभावस्थित मैं तुम्हारी उपासना करता हूँ।।२४-३२।।

अद्यापि परमेशानि मातस्तुभ्यं नमो नमः।
प्रकृतिः सर्वभूतानां त्वं हि सर्वजगत्प्रसूः।।३३।।
या मूर्तिः मम देवेशि क्षितिरूपा तु गीयते ।
सा त्वमेव न मेह नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३४।।
या मे मूर्तिर्द्वितीया च जलमयीति कथ्यते ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३५।।
अग्नेयी या तृतीया मे जगत्क्षोभणकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३६।।
चतुर्थी वायवी मूर्तिः सृष्टिसंहारकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३७।।
पञ्चमी या च सर्वेषां परिणामस्वरूपिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३८।।
षष्ठी या सर्वदेवानामाप्यायनीति गीयते ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।३९।।
सप्तमी मम मूर्तिर्या जगदाह्लादकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।४०।।
अष्टमी मम मूर्तिर्या स्थितिसंहारकारिणी ।
सा त्वमेव न मे नाहं मातः सत्यं नमो नमः।।४१।।

न चैवाहं न मे किंचिद्यदिह जगतीतले।
त्वयैवेदं जगद्व्याप्तं जगत् सर्वं त्वमेव हि।।४२।।

ईश्वर प्रार्थना करते हैं—हे परमेशानी ! हे माता ! तुमको नमस्कार ! तुम सब भूतों की प्रकृति हो तथा समस्त जगत् की प्रसविनी हो! मेरी पृथिवीरूपा मूर्त्ति भी तुम ही हो। वह तुम हो, मैं नहीं हूँ हे माता! यह सत्य है। तुमको नमस्कार। मेरी दूसरी मूर्ति जलमयी कही गयी है, वह भी तुम हो, मैं नहीं हूँ। यह सत्य है। तुमको नमस्कार। जो तृतीया मेरी मूर्त्ति अग्निमयी कही जाती है। जो जगत् क्षोभक है, सत्य है, वह भी तुम हो, मैं नहीं हूँ। तुमको नमस्कार। मेरी चतुर्थी मूर्त्ति वायवीमूर्त्ति जो सृष्टिसंहार कारिणी है, वह भी तुम ही हो मैं नहीं हूँ। यह सत्य है, आपको नमस्कार। पञ्चमी जो सब की परिणाम रूपा है, वह तुम हो, यह सत्य है कि वह मैं नही हूँ। तुमको नमस्कार। मेरी छठी मूर्त्ति जो देवों की आप्यायिनी है, वह मैं नहीं हूँ। यह सत्य है कि वह तुम ही हो। तुमको बारम्बार नमस्कार। मेरी सातवीं मूर्त्ति जो जगत् को आल्हाद देने वाली है, वह मैं नहीं हूँ. यह सत्य है । वह तुम ही हो। तुमको नमस्कार। मेरी अष्टम मूर्ति जो कही जाती है, जो स्थितिसंहार कारिणी है, वह मैं नहीं हूँ। यह सत्य है। वह तुम ही हो। तुमको नमस्कार। मैं इस जगतीतल पर स्वयं कुछ भी नहीं हूँ। तुम ही समस्त जगत् में व्याप्त हो। तुम ही सम्पूर्ण जगत् हो।।३३-४२।।

देव्युवाच–

मया सर्वं जगद्व्याप्तं वत्सं सत्य प्रभाषसे।
ममैवैतेऽवताराश्च मत्स्यकूर्मादयोऽपरे।।४३।।
त्वमेवाहं न चान्योऽसि ब्रह्माहं विष्णुरप्यहम्।
अहमेव जगत् सर्वं नास्ति किंचिन्मया विना।।४४।।
यत्तु पश्यसि हे वत्स यत् किंचिज्जगततीतले।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमहमेव न संशयः।।४५।।
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
इत्युक्तवा दर्शयामास शम्भवे जगदीश्वरी।।४६।।
स्वशरीरे जगत्कृत्स्नं सम्प्रविष्टमनेकधा।
दृष्ट्वा जगन्मयीं प्राह शम्भुर्मायाविमोहितः।
मामुद्धर जगन्मातर्मोहसागरमध्यतः।।४७।।

देवी कहती हैं—हे वत्स! यह जगत मुझसे व्याप्त है यह तुमने सच कहा। मत्स्य-कूर्म आदि अवतार मेरे ही हैं। तुम भी मैं ही हूँ। ब्रह्मा तथा विष्णु भी मैं ही हूँ। मैं ही समस्त संसार हूँ, मेरे बिना कुछ भी नहीं है। हे वत्स! जो भी देखते हो, इस संसार में जो भी देखते हो, जो कुछ ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त है, वह मैं ही हूँ। इस में कोई संशय नहीं है। अब मुझमें ही सचराचर समस्त जगत् को देखो।

यह कहकर जगदीश्वरी ने शम्भु को अपने अनेक प्रकार के स्थित जगत् का दर्शन कराया। उसे देखकर उनकी माया से विमोहित शम्भु ने कहा- हे जगन्माता! मोहसागर से मेरा उद्धार करो॥४३-४७॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवस्य शक्तिप्राप्तिनिरूपण-
नामकोऽष्टात्रिंशः पटलः सम्पूर्णः।।३८।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वर सम्प्रदाय में शिवशक्तिप्राप्ति निरूपण
नामक ३८वाँ पटल समाप्त ॥

◆

उनचत्वारिंशः पटलः

देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णनम्

जगन्मय्युवाच–

मा विषीद महादेव सर्वथा त्वं स्थिरो भव ।
कुलज्ञानी कथं त्वं हि भावज्ञानी कथं पुनः ।।१।।
इत्येवं त्वं मया पृष्टस्त्वमात्मानं न विस्मर ।
तदानन्दमयं धाम स्वविद्याभेदसङ्गतम् ।।२।।
पुरुषः प्रकृतिश्चैव नित्यौ द्वौ समुपस्थितौ ।
सगुणाधिबला देवी निर्गुणो निर्बलः पुमान् ।।३।।
अविद्यानाद्यरूपा सा मदंशा भेदरूपिणी ।
सिसृक्षयापि नीचास्य सविधे समुपस्थिता ।।४।।
सिसृक्षया मया पूर्वं प्रार्थितः पुरुषः खलु ।
मामानन्दय सानन्दमित्युक्त्वा धर्षितः प्रभुः ।।५।।

जगन्मयी कहती हैं—हे महादेव ! आप दुखी न होकर स्थिर हो जाइये। आप कुलज्ञानी होकर भावज्ञानी क्यो हो रहे हैं? मेरे द्वारा पूछे जाने पर आप आत्मस्वरूप को न भूलें। वह आनन्द धाम स्वविद्या के अमेद से संगत है। आत्मज्ञान तथा आनन्द एक ही है। पुरुष-प्रकृति दो नित्य पदार्थ रूप है। देवी सगुण हैं अतः बली हैं। पुरुष निर्गुण तथा निर्बल है। अनादि अविद्या जो भेद रूपा है, वह मेरी ही अंश है। मैं सृष्टि की इच्छा से नीचास्य (अपनी स्वस्थिति से नीचे) होकर पुरुष के समक्ष उपस्थित हो गई। मैने उससे सिसृक्षा के कारण प्रार्थना किया कि मुझे आनन्द से आनन्दित करो। ऐसा कहकर मैने उसे धर्षित किया।।१-५।।

मया धर्षितमात्रोऽसौ बभूव सगुणो विभु ।
तत्तदानन्दसंदोहै सानन्दाहं पुनः पुनः ।।६।।
जडत्वादुभयोर्देव शून्यभावमुपागतम् ।
अथानन्दात्मनोर्जाता शक्तिराद्या सनातनी ।।७।।
गुणत्रयमयी सा तु बिन्दुत्रयस्वरूपिणी ।
अधः कृत्वा तु पुरुषं हकारार्धस्वरूपिणी ।।८।।
विपरीतेन रमते वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणी ।
अशिरस्कहकारान्त्यमशेषाकारसंस्थितम् ।।९।।
अन्तश्चरमजस्रं तं स्वमात्मानमुपास्महे ।
बिन्दुत्रये महादेव सर्गमेतत् प्रतिष्ठितम् ।।१०।।

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
पञ्चभूतमयं विद्धि चासत्यं सत्यवदभ्रमः।।११।।

मेरे धर्षणमात्र से वे विभु सगुण हो गये। तत्तद् आनन्द संदोह से मै भी पुन:पुन: सानन्द हो गयी। हे देव! (आनदमग्नता में) हम दोनों जड़त्व से शून्यमावापन्न हो गये। उस आनन्दात्मना स्थिति से आद्या शक्ति सनातनी उत्पन्न हो गयीं। वे गुणत्रयमयी तथा बिन्दुत्रय स्वरूपा हैं। पुरुष को अध: करके वे हकारार्धस्वरूपा विपरीत रति से रमण करती हैं।वे अग्नि-चन्द्र-सूर्य रूपा हैं। वे शिर (अ) अर्थात् अनुस्वाररहित 'अ' से लेकर अन्तिम 'ह' पर्यन्त अशेष आकार में संस्थित हैं। यह अन्त: में अजस्त्र रूपेण चलता है। ऐसे अन्त:श्चर की निरन्तर उपासना में मैं रत हूँ। हे महादेव! इस बिन्दुत्रय में समस्त सर्ग (सृष्टि) प्रतिष्ठित है। ब्रह्मा से स्तम्ब पर्यन्त समस्त स्थावर जंगम जगत् पंचभूतमय तथा असत्य है। इसका सत्य की तरह प्रतीत होना भी भ्रम है।।६-११।।

पृथिवीयं महादेव प्राकृती नतु वास्तवी ।
ब्राह्मणी नैव चाण्डाली नैव दैवी न मानुषी ।।१२।।
रसमात्रं जलं विद्धि न द्विजं न च पुक्कसम् ।
रूपमात्रं तु यत्तेजस्तत्र किं जातिकल्पना ।।१३।।
स्पर्शमात्रं तु यद्वायुर्नोत्तमो नाधमः खलु ।
शब्दमात्रं यदाकाशं विभोस्तस्य महात्मनः।।१४।।
नीचतां कल्पते देवि मूढोऽज्ञानविजृम्भितः।
एभिः पञ्चभिरारब्धं देहं स्थावरजङ्गमम् ।।१५।।
पञ्चानां सन्निपातं यत् न ब्राह्मणं न पुक्कसम् ।
तदसत्यं विजानीयात् सत्यं ब्रह्म न तन्न तत् ।।१६।।

हे महादेव! यह पृथिवी उस प्रकृति से ही सम्भूत है। वास्तविक नहीं है। यह न तो ब्रह्माणी है, न चाण्डाली है, न दैवी है, न मानुषी है। जल को रसमात्र ही समझो, वह न द्विज है न पुक्कस ही है। जो तेज केवल रूप मात्र है, वहाँ जाति कल्पना क्या होगी? वायु स्पर्शमात्र है, न उत्तम है न अधमवत् है। हे देवी! जो आकाश केवल शब्दमात्र है, उस व्यापक महात्मा के लिये कोई अज्ञानविजृम्भित मूढ़ ही नीचता की कल्पना करेगा, तात्पर्य यह है कि आकाश उच्च अथवा नीच नहीं है। यह स्थावर जंगम देह भी पंचतत्वों से निर्मित्त है। पंचमहाभूतों का जो सन्निपात है, वह भी न ब्राह्मण है न पुक्कस । यह शरीर ब्रह्म नहीं है। अत: सत्य नहीं है। केवल ब्रह्म ही सत्य है।।१२-१६।।

देहाद्भिन्नः शिवो देही परमानन्दरूपवान् ।
तद्ब्रह्मेति च यो विद्यात् स एव ब्राह्मणो मतः ।।१७।।
यदिदं लक्ष्यते देव पञ्चभूतात्मविग्रहे ।
वायुभिरिन्द्रयग्रामे प्रेरिते पञ्चभिः शिवम् ।।१८।।
कर्तृत्वमात्मनो देव तदविद्याभ्रमो महान् ।
व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ।।१९।।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ।
आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ।।२०।।
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जनाः ।
देहेन्द्रियगुणान् कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ।।२१।।

शिव देह से भिन्न है, अतः आत्मा है। परमानन्द रूप है। वह ब्रह्म है, ऐसा मानने वाला ही ब्राह्मण है। हे देव! यह जो पंचभूतात्मक विग्रह लक्षित हो रहा है (देह) वह शिव ही है जो वायु तथा इन्द्रियों द्वारा प्रेरित होने पर इसप्रकार से लक्षित हो रहा है। हे देव! आत्मा को कर्त्तारूप मानना महान् अविद्याभ्रम है। इन्द्रियाँ जब अपने-अपने कार्य व्यापार को करती हैं,तब आत्मा को ही कार्य करने वाला व्यापारवान् समझना अविवेकी का अविवेक पूर्ण विचार है। यह वैसा ही दृष्टिभ्रम है, जैसा बादलों के चलने पर चन्द्रमा का चलते प्रतीत होना। आत्मचैतन्य के आधार पर ही देहेन्द्रिया- मनबुद्धि आदि अपने-अपने कार्य करते हैं, जैसे सूर्य के आलोक में व्यक्ति अपना कार्य करता है। देहेन्द्रिय गुण तथा कर्ममल के उस सच्चिदानन्द आत्मा पर आच्छादित होने के कारण उसी प्रकार से कार्य सम्पन्न होते हैं, जैसे आकाश पर नीलता कहा जाना, जो अरोपित है, वास्तविक नहीं है॥१७-२१॥

अध्यास्यात्माविवेकेन गगने नीलतामिव ।
अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।।२२।।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः।
रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ।।२३।।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशस्तस्माद् बुद्धेस्तु नात्मनः।
प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ।।२४।।
स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः।
आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति रिति द्वयम् ।।२५।।

संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ।
आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ।।२६।।

अज्ञानवशात् मन के उपाधि स्वरूप कर्तृत्व आदि आत्मा में वैसे ही कल्पित होते हैं, चंचल भासित होते हैं, जैसे जल में पड़ रहा चन्द्र बिम्ब जल की चंचलता के कारण चंचल परिलक्षित होता है। राग-इच्छा-सुख-दुख आदि बुद्धि के कारण ही प्रवर्त्तित होते हैं, लेकिन सुषुप्ति में बुद्धि नही रहती। अतः ये सब तब भासित नहीं होते। ये सब बुद्धि के ही प्रपंच हैं। आत्मा के नहीं हैं। जैसे सूर्य का स्वभाव है प्रकाश, जल का स्वभाव है शीत, अग्नि का स्वभाव है उष्णता, वैसे ही आत्मा का स्वभाव है सच्चिदानन्दमयता, निर्मलता । आत्मा के सत् चित् अंश से बुद्धि को वृत्ति को मिला देने से यह अविवेक जाग्रत होता है कि मैं जानता हूँ' (जो कि विकार है) आत्मा में विक्रिया नहीं होती। बुद्धि का कभी ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो आत्मा का धर्म है। बुद्धि का नहीं है।।२२-२६।।

जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ।
रज्जुसर्पवदात्मानं ज्ञात्वा जीवो भयं वहेत् ।।२७।।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातश्च निर्भयो भवेत् ।
अत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि हि ।।२८।।
दीपो घटादिवत् स्वात्मजातैस्तैर्नावभास्यते ।
स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपस्य चात्मनः।।२९।।
न दीपस्य तु दीपेच्छा यथा स्वात्मप्रकाशने ।
निषिध्य निखिलोपाधिं नेतिनेतीति वाक्यतः।।३०।।

जीव सर्वमल के कारण यह जानता है कि मैं कर्त्ता हूँ तथा वह मोह में पड़ जाता है। रज्जु में सर्प भ्रम होने से जीव भयभीत हो जाता है। जब उसे यह ज्ञान होता है कि मैं जीव न होकर परमात्मा हूँ, तब वह निर्भय हो जाता है। एक आत्मा ही बुद्धि-इन्द्रिय आदि सब को अवभासित प्रकाशित करता है। जैसे दीप अपने समान अन्य दीप से अवभासित नहीं होता, जैसे घट अपने ही सजातीय मिट्टी के घट से अवभासित नहिं होता, वैसे ही आत्मा को भी अपना ज्ञान हो जाने पर अन्य के द्वारा बोध हो ऐसी इच्छा नही होती जैसे दीप तो स्वयं प्रकाशित है, उसे अन्य दीप प्रकाशित करे ऐसी इच्छा उसे नहीं रहती। अतएव नेति-नेति महावाक्य द्वारा समस्त देहादि इन्द्रियादि उपाधियों का वर्णन करके जीवात्मा -परमात्मा का अभेद चिन्तन करे।।२७-३०।।

विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः।
आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षणम् ।।३१।।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम्।
देहान्मम विभिन्नत्वान्न मे जन्मजरादयः।।३२।।
शब्दादिविषयै सङ्गो निरिन्द्रियतया न च।
अमनस्त्वान्न मे दुखरागद्वेषभयादयः।।३३।।
अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध इत्यादिश्रुतिशासनात्।
निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः।।३४।।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः।
नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् ।।३५।।
सत्यं ज्ञानमयं यत्तत् परं ब्रह्माहमेव तत्।
एवं निरन्तरं कृत्वा ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम्।।३६।।

यह बुद्बुद्वत् एक क्षण के लिये दृश्य रहने वाला शरीर अविद्या जनित है। इस विलक्षण विद्या को जानें कि मैं ही विलक्षण निर्मल ब्रह्म हूँ। देह आत्मा से भिन्न है, अतः मुझ आत्मा का जन्म-जरा आदि नहीं हैं। मै आत्मा होने के कारण इन्द्रयों से रहित हूँ। अतः मुझ इन्द्रिय रहित का शब्दादि विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरा मन ही नहीं है, अतएव दुःख राग द्वेष भयादि भी नहीं है। 'अप्राणो ह्यमना शुद्धः' आदि श्रुति वचनानुसार मैं निर्गुण, निष्क्रिय, नित्य, निर्विकल्प, निरंजन, निर्विकार, नित्यमुक्त, निराकार, निरञ्जन हूँ। मैं हूँ नित्य-शुद्ध-विमुक्त, अखण्ड, आनन्दमय, अद्वय, सत्य, ज्ञानमय परंब्रह्म। ऐसा नित्यं चिन्तन करके जो अहंब्रह्म की वासना करता है, वह अविद्या जनित विक्षेपों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे रोगों को औषधि नाश करती है।।३१-३६।।

शम्भुरुवाच–

देहाद्भिन्नः कथं ह्यात्मा कीदृशःकुत्र संस्थितः।
कथं वा ज्ञायते ब्रह्म तन्मे वद जगन्मयि ।।३७।।

शम्भु कहते है— आत्मा देह से भिन्न कैसे है? वह कैसा तंथा कहाँ स्थित है? ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता है? हेजगन्मयी! कृपया बतलायें।।३७।।

जगन्मय्युवाच–

अवच्छिन्न इवाज्ञानात् तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ।।३८।।

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्विनिर्मलम् ।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ।।३९।।
संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसङ्गतः ।
अबोधे सत्यवद्भाति सुबोधेऽसत्यवद्भवेत् ।।४०।।

यह अज्ञान के कारण अवच्छिन्न-आवरित रहता है। उसका नाश हो जाने पर यह केवल है। यह स्वयं प्रकाशित होता है। जैसे अंशुमान सूर्य बादल के आवरण के हटते ही स्वयमेव प्रकाशित हो जाता है। अज्ञान से कलुषित जीव ज्ञान के अभ्यास से ही निर्मल होता है। अपना कार्य पूर्ण करके ज्ञान स्वयमेव नष्ट हो जाता है। जैसे जल को स्वच्छ करके फिटकिरी नष्ट हो जाती है। यह संसार स्वप्नतुल्य है। यह रागद्वेषादि के संग के कारण अबोध स्थिति में सत्य जैसा प्रतीत होता है। बोध होते ही यह असत्यवत् हो जाता है।।३८-४०।।

तावत् सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ।।४१।।
सच्चिदात्मन्यनुस्यूतानित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ।।४२।।
यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे त्वेकवद्भवेत् ।।४३।।

जैसे बालू में रजत का भ्रम होता है, उसी प्रकार यह जगत् तबतक ही सत्य प्रतीत होता है, जबतक सर्वाधिष्ठान अद्वय ब्रह्म का ज्ञान नही हो जाता जैसे स्वर्ण में कटक-कुण्डलादि भेद भासित होते हैं, जबकि वह सब स्वर्ण ही है। उसी प्रकार से चित् स्वरूप सच्चिदानन्द विष्णु में अनेक (असंख्य) व्यक्ति प्रकल्पित होते हैं। जैसे इन्द्रियों का स्वामी व्यापक आकाश नाना घटाकाश, पटाकाश आदि उपाधियों से युक्त हो जाता है, उसी प्रकार एक ही विष्णु अनेक व्यक्ति रूप भासित होता है।।४१-४३।।

नानोपाधिवशादेव जातिवर्णाश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णविभेदवत् ।।४४।।
पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसंचितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ।।४५।।
पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ।।४६।।

आत्मा में नाना उपाधिवशात् जाति-वर्णाश्रम आदि अरोपित है। जैसे जल में नमक मिलाने से नमकीन तथा मिश्री मिलाने से मधुर हो जाता है, उसी प्रकार यह सब भेद है। पंचीकृत महाभूत से सम्भूत कर्म के द्वारा संचित यह सुख-दुखादि का भोगायतन कहा गया है। पंचप्राण-मन-बुद्धि-दशेन्द्रियों से यह समन्वित है। १७ अवयवों से युक्त, अपंचीकृत भूतों से प्रभूत, सूक्ष्म अंगो वाला यह भोगसाधन है॥४४-४६॥

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यदात्मानमवधारय ॥४७॥
सर्वभूतस्थमात्मानमहमेव तथात्मनि ।
सर्वभूतानि संचिन्त्य चिन्तयस्वैकमेव हि ॥४८॥
उत्पत्तिप्रलयाभ्यां च न सदिदं निशामय ।
मनः करोति पापानि मनः पापेन लिप्यते ।
मनस्युन्मननीभूते न धर्मो न च पातकम् ॥४९॥

अनादि, अनिर्वाच्य अविद्या ही कारणोपाधि है। आत्मा तीनों उपाधियों से सर्वथा रहित है। आत्मा सर्वभूतसमूह में विद्यमान है। मैं आत्मा सर्वभूत समूह में विराजित हूँ। यह चिन्तन करके ऐक्य भावना करे। उत्पत्ति तथा प्रलय के कारण संसार नश्वर है। सत् नही है। यह समझो। मन ही पाप करता है, पाप में लिप्त होता है। उन्मनीभूत स्थिति में न धर्म है नपा है॥४७-४९॥

॥ इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवस्य देवीकृतज्ञानोपदेशवर्णन नामक ऊनचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः॥३९॥

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में देवीकृतज्ञानोपदेश वर्णन नामक ३९वाँ पटल समाप्त ॥

चत्वारिंशः पटलः

शिवशक्तिज्ञानकुलवर्णनम्

शम्भुरुवाच–

कथ्यतां देवदेवेशि व्यक्तीभूतावुभौ कथम् ।
शिवशक्तिमयं ज्ञानं कथं वा जायते तथा ।।१।।

शम्भु कहते हैं—हे देवदेवेशी! ये दोनो व्यक्तीभूत कैसे हो गए? शिवशक्ति का ज्ञान कैसे होता है?।।१।।

जगन्मय्युवाच–

पुंभावः शिव इत्याहुः स्त्रीभावः प्रकृतिः परा ।
शिवो ज्ञानमयो देहे शक्तिर्बुद्धिमयी परा ।।२।।
शुक्रं शिवो महामेदः शक्तिः कुण्डलिनी त्विति ।
लिङ्गं शिवस्तथा शक्तिर्योनिर्जगति दृश्यते ।।३।।
इत्येवं त्रिपुरा शक्तिरित्येवं त्रिपुरः शिवः।
नानयोर्विद्यते भेदो या शक्तिः स शिवो ध्रुवम् ।।४।।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः।
न तद्भूतस्तयोर्भेदश्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ।।५।।

जगन्मयी कहती हैं—शरीर में पुरुष भाव शिव है, स्त्रीभाव पराप्रकृति है। शिव है ज्ञान स्वरूप, पराशक्ति है बुद्धिमयी। शिव ही महामेद शुक्र है। शक्ति है कुण्डलिनी शक्ति । इस जगत् में लिंग शिव तथा शक्ति योनि ही परिलक्षित होती है। अतः त्रिपुरा शक्ति है, त्रिपुर है शिव! दोनों मे भेद नहीं है। जो शक्ति है, वही शिव है। यह ध्रुव है। बिना शक्ति शिव नहीं है और शिव बिना शक्ति नहीं है। जैसे चन्द्र-चन्द्रिका में भेद नहीं है, उसी प्रकार से इन दोनों में भी भेद नहीं है।।२-५।।

एवं तौ सर्वभूतेषु द्विधाभूतौ व्यवस्थितौ ।
तस्मान्नास्ति तयोर्भिन्नं जगदेतच्चराचरम् ।।६।।
पिता माता सुतेश्चेति भावोऽयं विविधो मृषा ।
स्वाविद्यासुदृढाभ्यासाद् दृढीभूतो हृदि स्थितः।।७।।

इस तरह दोनों समस्त प्राणिवर्ग में दो रूप से द्विधा स्थित हैं। तभी यह सचराचर

जगत् उनसे भिन्न नहीं है। मेरा पिता, मेरी माता, मेरा पुत्र, आदि भाव मृषा हैं। अविद्या के संस्कार तथा अभ्यास के कारण ये हृदय में दृढ़ीभूत हो गये हैं।।६-७।।

गुरुवाक्येन तं विद्याद् दृढाभ्यासेन मानवः।
जीवन्मुक्तः सर्वभूतमयो भवति वै ध्रुवम् ।।८।।
शरीरं विविधाङ्गं मे कथ्यते शृणु सादरम् ।
ब्रह्मैवाहं न चान्योऽस्मि शरीरमेतदेव हि ।।९।।

मानव गुरुवाक्य श्रवण तथा विद्या के दृढ़ अभ्यास के द्वारा जीवनमुक्त तथा सर्वभूतमय हो जाता है, यह ध्रुव है। मैं शरीर के विविधाङ्ग का वर्णन करती हूँ। आदर से सुनें। मैं ब्रह्म हूँ। अन्य नहीं हूँ। शरीर भी ब्रह्म ही है।।८-९।।

चैतन्यं सर्वभूतानां शब्दब्रह्मस्वरूपकम् ।
वर्णरूपेण तद्व्यक्तं मन्त्रविद्यादिभेदतः।।१०।।
कुङ्कुमागुरुकस्तूर्या रोचनाचन्दनेन्दुभिः।
प्रकाश्य तव पीठे तु शक्त्यन्तःस्थं यथा भवेत् ।।११।।
तत्र पूजा सदा कार्या तत्तद्धर्मविधानतः।
सर्वेषामेव देवानां मन्त्रमाद्यं शरीरकम् ।।१२।।
पूजयेत्तद् गुरुमन्त्रदेवतात्मस्वरूपतः।
द्वितीयं कथ्यते देव यत्पुनर्ध्यानगोचरम् ।।१३।।
कृत्वा रत्नमयं रूपं शुद्धकाञ्चननिर्मितम् ।
प्रत्यहं पूजयेद्देवममुत्र मासि मासि च ।।१४।।
वार्षिकं त्वथ वा कुर्यान्महोत्सवमनुत्तमम् ।
विमुखो दम्भमाश्रित्य द्रव्यनाशवशादुत ।।१५।।
महोत्सवविधौ यो मे (स्व?स)स्याद्भग्नमनोरथः।
विमुखास्तस्य दुर्बुद्धे पितरः सामरा गणाः।।१६।।
तस्मात्परदिने प्राप्ते बोधयित्वा विधानतः।
प्रत्यहं पूजयेद्भक्त्या पूर्णं तस्या महोत्सवम् ।।१७।।

चैतन्य सर्वभूतसमूह में है। वह शब्दब्रह्मरूप है। वह मन्त्र विद्याभेद से वर्णरूपेण व्यक्त होता है। कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी, गोरोचन, चन्दन तथा कर्पूर द्वारा पीठ पर उसे ऐसे लिखना होगा कि शक्ति सदैव उसमें स्थित है। उस पीठ

पर वहाँ उस धर्म विधान द्वारा सदा पूजा करे। सभी देवताओं का आद्य शरीर है मन्त्रागुरु,मन्त्र तथा देवता स्वरूपतः अभिन्न हैं। इस कारण इनकी पूजा करनी चाहिये। हे देव! अब पुनः ध्यानगोचर द्वितीय रूप बतलाया जा रहा है। शुद्ध सोने की रत्नमयी मूर्त्ति निर्मित करके प्रतिदिन अथवा प्रतिमास, अथवा वर्ष में एक बार उत्तम महोत्सव युक्त पूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति दुम्द का आश्रय लेकर, अथवा द्रव्य व्यय में कृपणता के कारण मेरा उत्सव नहीं मनाता, वह भग्न मनोरथ वाला हो जाता है। उस दुर्बुद्धि वाले से पितरगण तथा देवगण विमुख हो जाते हैं। अतएव शुभ दिवस पर उन देवी का उद्बोधन करके भक्ति पूर्वक पूजन सम्पन्न करे। प्रतिदिन उनकी पूजा भक्ति से करनी चाहिये। उसका महोत्सव पूर्ण (सफल मनोरथ) हो जाता है॥१०-१७॥

तृतीयं कथ्यते यन्त्रं रात्नं वा हेमनिर्मितम् ।
मदात्मरूपमात्रं तु विदित्वा सद्गुरोर्बुधः ।।१८।।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्मदात्मा मदभेदतः ।
चन्दनागुरुकस्तूर्या रोचनाचन्द्रकुङ्कुमैः ।।१९।।
कुलपुष्पैश्च संलिख्य त्वदुक्तविधिना यजेत् ।
वाराहस्कन्धजैर्दर्भैरनुलेपं विघर्षयेत् ।।२०।।
वाराहदेहजैर्दर्भैः कुर्यान्मलविघर्षणम् ।
प्रीतिर्मे जायते तत्र पूर्णा द्वादशवार्षिकी ।।२१।।

अब तृतीय रूप कहते हैं। यह स्वर्णपत्र पर रत्न से निर्मित करना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति को उसे मेरा रूप मानकर सद्गुण द्वारा उपदिष्ट मार्ग से गन्ध, पुष्पादि से मेरा पूजन करना चाहिये। यन्त्र को मेरी आत्मा तथा मुझसे अभिन्न मानना होगा। चन्दन-अगुरु-कुंकुम-कस्तूरी-गोरोचन-कुलपुष्प से यन्त्र बनाकर (स्वर्ण पत्र पर) उसका विधि विधान पूर्वक यजन करे। वाराही कंद के रोमों द्वारा मुझपर (यन्त्र पर) अनुलेप करे। इससे १२ वर्ष तक प्रीति उत्पन्न होती है॥१८-२१॥

सुगन्धिस्पर्शसुखदैः कुसुमैररुणैरपि ।
अशून्यं सर्वदा कुर्याच्छून्ये विघ्नाद्यनेकशः।।२२।।
अत्यन्तसुखदैर्वस्त्रैराच्छाद्य भवनान्तरे ।
त्वल्लिङ्गेनातिशुद्धेन शुक्लेन चित्तहारिणा ।।२३।।

स्थापयेत्पूजयेत्सार्धं यतो नाहं त्वया विना ।
नैव त्वमपि हे देव प्रभुर्देवो मया विना ।।२४।।

सुगन्ध युक्त तथा स्पर्श में सुखदायक लगने वाले अरुणवर्ण के पुष्पों से मेरे यन्त्र रूप शरीर को सदैव युक्त रखना चाहिये। इन पुष्पों से मेरे यन्त्र शरीर को शून्य रखने से अनेक विघ्न आ जाते हैं। अत्यन्त सुखद रेशमी वस्त्रों से यन्त्र को आच्छादित करके दूसरे कक्ष में अतिशुद्ध श्वेत वर्ण के आपकें मनोहर लिंग के साथ मेरी स्थापना तथा पूजा करे। क्योंकि आपके बिना (शंभु के बिना) में सत्ताहीनं हूँ। हे देव! उधर आप भी मेरे अभाव में जगत् स्वामी अथवा प्रभु हो ही नहीं सकते। इसलिए सिद्धिकामी सदैव दोनों को साथ ही स्थापित करे॥२२-२४॥

तस्मादावां सदैवात्र स्थापयेत्सिद्धिमिच्छुकः।
विद्रुममौक्तिकाभ्यां वा यो जपेन्मन्त्रमुत्तमम् ।।२५।।
समयाचारयोगेन त्वयोक्तेनैव शङ्कर ।
पूजां यः कुरुते नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।२६।।
चतुर्धा कालरूपैश्च हस्तैरालिङ्गय तं शिवम् ।
मामक्या कलया युक्तं करोमि पुरनायकम् ।।२७।।
तुरीयं मे परं रूपं गुप्तं यज्जगतीतले ।
तत्र पूजा सदा कार्या कुलयागविधानतः।।२८।।
सर्वापापेषु सर्वत्र कौलो धर्मः परो महान् ।
सुगमा निगमाः सर्वे कौलो धर्मस्तु दुर्गमः।।२९।।
निसर्गदुर्गमः कौलः सुगम इव भात्यसौ ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रभवो यत्र कीर्तितः।।३०।।
तद्रूपं मे परं धाम ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
सद्गुरोः कृपया लब्धा तत्र पूजा महोदया ।।३१।।

हे शंकर! जो मूंगा या मौक्तिक की माला से मेरे उत्तम मन्त्र को जपता है तथा आपके द्वारा कहे गये समयाचार के द्वारा नित्य भक्ति तथा श्रद्धा युक्त होकर पूजन करता है तथा यह पूजन चारों सन्ध्याकाल में उस शिवलिंग को स्पर्श करता हुआ करता है, वह मेरी कृपा से मेरी कलायुक्त होकर पुरनायक भी हो जाता है। मेरा चतुर्थ रूप इस धरती पर अत्यन्त गुप्त है। वहाँ कुलयाग

विधान द्वारा उसका पूजन सम्पन्न करना चाहिये। सर्वत्र समस्त उपायों में कौलधर्म परम महान है। निगमोक्त समस्त धर्म सुगम है। कौलधर्म दुर्गम है। यह कौलधर्म स्वभावतः दुर्गम होने पर भी सुगम सा भासित होता है। जहाँ से ब्रह्मा-विष्णु शिवादि का आविर्भाव कहा गया है, वह अव्यय ब्रह्म रूप मेरा परम धाम है। सद्गुरु कृपा से प्राप्त पूजा वहाँ महान उदय प्रदान करती है॥२५-३१॥

ब्रह्मप्रकाशकं तत्तु तन्निष्ठं ब्रह्म चोच्यते।
स्वयं प्रकाशते ब्रह्म यस्य दर्शनतः शिवे ।।३२।।
स्पर्शनात्पूजयेद्यस्य ब्रह्मण्येव निमज्जति।
आनन्दाब्धौ निमज्ज्येव भवाब्धिं स न पश्यति ।।३३।।

मेरा वह रूप ब्रह्म का प्रकाशक है। वही ब्रह्म की सत्ता है। हे शिव! जिस के दर्शन से ब्रह्म स्वयं प्रकाशित हो जाता है, जिसके स्पर्श से शिव पूजित हैं, जिसकी अर्चना करके ब्रह्म में निमञ्जित हो जाते हैं, जिस आनन्द समुद्र में निमज्जित होकर मानव पुनः भवसागर में नहीं डूबता, वह मेरा ही रूप है॥३२-३३॥

कौलो धर्मस्त्वया प्रोक्तस्तमासाद्य कुलं यजेत्।
मद्रूपा परमा शक्तिर्लिङ्गरूपी भवान् प्रभुः।।३४।।
शुक्रं शिवो रजः शक्तिरिति जानीहि शङ्कर।
त्वया मया जगदिदं परिपूर्णं महेश्वर।।३५।।
एकैवाहं परं ब्रह्म शिवशक्तीति भेदतः।
सम्प्रभिन्नं जगदिदं भ्रम एवात्र कारणम्।।३६।।
त्वमहं चेति यत्प्रोक्तं तदविद्या भ्रमो महान्।
तत्त्वमसि स एवाहं न त्वं नाहं तदेव यत्।।३७।।
आवयोर्नहि भेदोऽस्ति युत्त्या बुध्यस्व शङ्कर।
मदन्तस्त्वपि संलीने त्वमेवाहं भवान् प्रभुः।।३८।।

आपने जिस कौलधर्म को कहा है, उसकी दीक्षा लेकर कुल का यजन करना चाहिये। परमाशक्ति मेरे रूप वाली योनिरूपा है। आप हैं लिंग रूपी प्रभु। हे शिव! शुक्र शिव है, रजः शक्ति है। यह संसार मुझसे तथा आपसे परिपूर्ण है। मैं ही एक परब्रह्म हूँ। शिवशक्ति में भेद (प्रतीत हो जाने से) के कारण यह भिन्नवत् संसार प्रतीत हो रहा है। इसमें यह भेदभ्रम ही कारण है। 'तुम तथा मैं'

यह प्रतीति भी अविद्या जनित भ्रम है। जो आप हैं, वही मैं हूँ। न आप है न मैं। हम दोनों में भेद है ही नहीं। हे शङ्कर! इसे युक्ति से समझें। मेरे अन्दर आपकी लीनता के कारण मैं आप हूँ। आप प्रभु हैं॥३४-३८॥

आवयोः सरलाकारमभून्मिलितयो शिव ।
तन्महामोक्षमाप्नोति भोगेनैव महेश्वर ।।३९।।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
पूजनान्नहि मे प्रीतिर्यदिहान्यप्रकारतः।।४०।।
मांसभारैर्न मे प्रीतिर्न तथा मद्यसागरै ।
यथा मे जायते प्रीतिर्भगलिङ्गामृतैः शिव।।४१।।

हे शिव! हम दोनों के सम्मिलित होने पर जो सरलाकार है, उस महामोक्ष को (कौल) साधक भोग से पा लेता है। सहस्त्रों करोड़ कल्पपर्यन्त पूजन से मुझे वह प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती है, जो अन्य प्रकार (कौल उपासना) से होती है। मुझे मांस के ढेर से तथा मद्यसागर से वह प्रसन्नता नहीं मिलती, जो भगलिङ्ग (संयोग से स्त्रवित) के अमृत से होती है। (यहाँ पंचम प्रकार मैथुन जनित आनन्द से तात्पर्य है, वह आनन्द ही अमृत है॥३९-४१॥

अहमेव महादेव स्त्रियः सर्वा जगत्स्विह ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।।४२।।
ये देवा मद्गतप्राणा मद्वासा मद्विभूषणा ।
स्वधर्मानपरित्यज्य मामेव शरणं गताः।।४३।।
ते पुनर्भोगिनो मुक्ता जीवन्तोऽपि महीतले ।
मदङ्गस्पर्शमात्रेण चात्मानं ज्ञातुमर्हसि ।।४४।।

हे महादेव!समस्त संसार की समस्त स्त्री मैं ही हूं।यह जानकर बुद्धिमान साधक भाव से युक्त होकर मेरा भजन करें। जो देवता (दिव्य भावा पन्न साधक) मदगत प्राण हैं, मेरे लिए वस्त्र तथा मेरे लिए आभूषण धारी है,जो समस्त धर्मो की उपेक्षा करके मेरी शरण में शरणागत हैं, वे इसी पृथ्वी पर भोग द्वारा ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।आप मेरे अंगस्पर्श से ही आत्म साक्षात्कार कर सकते हैं॥४२-४४॥

मयि प्रविश विश्वेश मां भजस्व सनातनीम् ।
जहि शङ्कां महादेव त्वमात्मानं न विस्मर ।।४५।।

विष्णुः पिबत्यसौ वामं ब्रह्मा मे दक्षिणं स्तनम् ।
त्वं पिबस्व महादेव ममाधर स्नुतामृतम् ।।४६।।
स्त्रियं गच्छन् स्पृशन्पश्यंस्ताभिरेव विहारवान् ।
ध्यानं पूजां जपं चैव कुर्यान्मे साधकोत्तमः ।।४७।।
शक्त्या युक्तः सदा मन्त्री न तया रहितो भवेत् ।
तया विरहितो देवः सर्वकर्मसु न क्षमः ।।४८।।
पतिहीना यथा नारी सर्वकर्मविवर्जिता ।
शक्तिहीनस्तथा मन्त्री तस्माच्छक्तियुतो भव ।।४९।।

हे विश्वेश ! मेरे अन्दर प्रविष्ट होकर मुक्त सनातनी का भजन कीजिए। शंकाओं को त्याग दीजिए। अपनी आत्मा का विस्मरण न कीजिए। मेरा वाम स्तन विष्णु तथा दक्षिण स्तन ब्रह्मा पीते हैं। हे महादेव! आप मेरे अधरामृत का पान कीजिए।

स्त्रीगण के समीप जाने वाला, उनका स्पर्श करने वाला,उनके साथ विहार करने वाला श्रेष्ठ साधक मेरा ही ध्यान पूजन जप करे। मन्त्री को चाहिए कि सदैव शक्तियुक्त रहे। उसके बिना न रहे। उससे रहित देवता भी कार्यों में समर्थ नहीं होता।जैसे पतिहीना नारी सर्वकर्म वर्जित हो जाती है, उसी प्रकार शक्ति (कुल स्त्री) रहित मन्त्री भी व्यर्थ हो जाता है।अतः साधक शक्तियुक्त रहे।।४५-४९।।

एका चेद्वशगा साध्वी तस्याः कृष्टिर्भवाय च ।
दुष्टभार्या कराकृष्टिर्विनाशायैव केवलम् ।।५०।।
कुलभेदी नदीतीरे कोषागारं यथा शिव ।
भगलिङ्गसमायोगाद्यदानन्तं प्रजायते ।।५१।।
ब्रह्मैव तद्विजानीयादन्तं मोक्षसाधनम् ।
गुरुपूजा कराकृष्टिर्विघ्नोत्सारणकर्मकृत् ।।५२।।

यदि एक साध्वी वश में है, तब उसके साथ साधना से सब प्राप्त होगा। अनेक दुष्टाओं के साथ साधना करना विनाशक है। हे शिवे! जैसे नदी के किनारे खजाना रखने से वहजल प्रवाह द्वारा विनष्ट हो जाता है, उसी तरह से कौल साधना में कुलभेद करने वाला अपनी साधना नष्ट कर देता है। भगलिङ्ग समायोग

से आनन्दोपलब्धि होती है। यह आनन्द ही ब्रह्मानन्द है। यह अनन्त मोक्ष साधन है। गुरु की पूजा तथा शक्तियुक्त साधना से विघ्न भाग जाते हैं।।५०-५२।।

रहस्याख्यानकं कर्णे ह्यासनं गण्डचुम्बनम् ।
भूतशुद्धिः परीरम्भः सन्तोषेन्द्रियनिग्रहः ।।५३।।
प्राणायामः स्तनाकृष्टिर्न्यासमत्र समीरितम् ।
नखदन्तक्षतादीनि धूपदीपप्रदापनम् ।।५४।।
चाटुकानि रतान्ते च सुपुष्पाण्यङ्गसङ्गमम् ।
दर्शनं स्पर्शनं योनेर्विकाराल्लिङ्गघर्षणम् ।।५५।।
अधरामृतपानं च स्वयमावेशनं तथा ।
विक्षेपोत्क्षेपण चैव पतनोत्पतनं तथा ।।५६।।
तर्पणाद्युपचारं तु मथनं हवनं तथा ।
सीत्कारो मन्त्रजपनं ब्रह्मार्पणैकचित्तता ।।५७।।
कूजनं गायनं स्तोत्रं रेतः पातो विसर्जनम् ।
इत्थमेव महादेव पूजनं मे समीरितम् ।।५८।।

शक्ति से उसके कानों में रहस्य वार्ता ही आसन निवेदन रूप है।उसका कपोल चुम्बन ही भूतशुद्धि है। उसका आलिंगन करके संन्तोष प्रदान करना ही इन्द्रिय निग्रह है। स्तन मर्दन प्राणायाम एवं न्यास है।नख दन्त से क्षत करना ही शक्ति (कुलस्त्री) को धूप-दीप निवेदन है। मीठी वार्ता करना ही पुष्प प्रदान है। उसके अंगो का स्पर्श करना,अंगसंगम करना, योनि स्पर्श, योनि दर्शन, उत्तेजित लिङ्ग द्वारा उसकी योनि का घर्षण,अधरामृत पान, मिलन हेतु आवेशित होना, शक्ति को नीचे ले जाना रूप विक्षेप, उसे ऊपर (अपने उपर ले जाना) उत्क्षेप आदि ही तर्पणआदि उपचार कहे गये हैं। लिंग से योनि मंथन ही हवन है। रमणकालीन आनन्द सीत्कार ही मन्त्र जप है। दोनों की एक चित्तता ही ब्रह्मार्पण है। कूजन गायन स्तोत्र है। रेतःपात विसर्जन है। हे महादेव! यह पूजन आप से कहा।।५३-५८।।

एकस्या बहुरूपिण्या प्रत्यहं यः समाचरेत् ।
जीवन्मुक्तः स्वयं देवोऽप्यसाध्यमपि साधयेत् ।।५९।।
भोगैश्च मधुपर्काद्यैर्वामाभावे स्थितो यजेत् ।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म त्यजन् वाथ समाश्रयन् ।।६०।।

जो एक होकर बहुरूपा है, ऐसी के साथ जो नित्य कुलयाग करता है, वह भावापन्न स्वयं मुक्त होकर असाध्य साधन करने में समर्थ हो जाता है। यदि मद्य उपलब्ध नही है, तब मधुपर्क आदि से पूजन करे। कुलयागी साधक मन्त्री श्रुति-स्मृति में वर्णित कर्मो का त्याग करे अथवा आश्रय ले, वह उन- उन कर्मों के त्याग के कारण (कुल कर्म त्याग के कारण) हीन जाति में जन्म लेता है।।५९-६०।।

तत्तत्कर्मपरित्यागाद् हीन जातिषु जायते ।
ततो बहु सुखं भुक्त्वा परेषां च सुदुर्लभम् ।।६१।।
विद्याभ्यासप्रसादेन भोगेन मोक्षमाप्नुयात् ।
एवं बहुविधान् भोगी भोगान्वै सुमनोहरान् ।।६२।।
समासाद्य च तांस्तांस्तु वैराग्ये वनमाविशेत् ।
असारांश्च तथा सारान्निःसारांश्च तथा परान् ।।६३।।
नानाविधैर्विवेकाद्यैर्विविच्य साधकस्तथा ।
सारभूते परे तत्त्वे मन आधाय योगवित् ।।६४।।

कुल साधक अन्य के लिए जो दुर्लभ सुख है, उन्हे भोगकर विद्याभ्यास की कृपा से भोग द्वारा मोक्ष पा लेता है। वह अनेक सुमनोहर भोगों का भोग करके वन में चला जायें। वन में वैराग्य आने पर चला जाये। साधक अपनी बुद्धि से साररहित-सारयुक्त,पूर्व में सार लगने वाले परन्तु वैराग्य आ जाने पर असारवत् प्रतीत होने वाले तथा स्वात्मा से भिन्न प्रतीत होनं वाले तत्वो की विवेचना द्वारा परमसाररूप परमात्मा में मन लगाये। वह योगबिन्दु से सचराचर जगत को नि:सार एवं आदि अन्त में नि:सार समझे।।६१-६४।।

निःसारमसदाद्यन्तं जगदेतच्चराचरम् ।
सत्यं किमपि तत्रैव वस्तु साक्षान्निरक्षरम् ।।६५।।
तदानन्दमयं ब्रह्म विदित्वात्मनि साधकः।
एकान्तविजने रम्ये मृदु कोमल आसने ।।६६।।
आसीनश्चिन्तयद्ब्रह्म परमानन्दनिर्भरः।
ब्रह्मचिन्तापरामोदी भोगेषु विगतस्पृहः।।६७।।
एकां भार्यां समादाय योगिनीं सहचारिणीम् ।
असाध्यं साधयेद्योगी योगिन्येव सहायिनी ।।६८।।

यथा त्वं मयका नाथ पार्वत्या परमेश्वर ।
मोहयित्वा पुनर्देवी शङ्करं प्राह पार्वती ।।६९।।

यहाँ जो वस्तुसाक्षात तथा अक्षर है, वहीं आनन्द ब्रह्म है, साधक यह जानकर एकान्त निर्जन स्थान में कोमलासन पर आसीन हो जाये। वहाँ परमानन्द से परिपूरित हो ब्रह्माचिन्तन करे। भोगों से विगतस्पृह होकर एक योगिनी सहचारिणी भार्या के साथ (साधना करके)असाध्य को साधित कर लेता है। योगिनी स्त्री उसे सहायता देती है। यह वैसे ही जैसे आप परमेश्वर मुझ पार्वती के साथ हैं। अब पार्वती देवी शंकर को पुनः मोहित करके कहने लगी ।।६५-६९।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे शिवशक्तमयज्ञानकुलयागवर्णन-नामकश्चत्वारिंशः पटलःसम्पूर्ण ।।४०।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में शिवशक्तिमयज्ञान कुलमार्ग वर्णन नामक ४० वाँ पटल समाप्त ।।

❖

एकचत्वारिंशः पटलः

अनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरुपणम्

अतुलैकरसानन्दं कैवल्यायतनं शिवम् ।
नत्वा शिष्येव सानन्दा तमुवाच परा शिवा ।।१।।

अतुलनीय तथा एकरस आनन्द से परिपूर्ण कैवल्यायतन शिव को देवी शिवा ने शिष्यवत् होकर प्रणाम करते हुए कहा।।१।।

पार्वत्युवाच–

प्रसीद परमानन्दमय संशान्तविग्रह ।
यद्यदेव परं तत्त्वं तत्त्वतो विदितं मया ।।२।।
त्वया देव समाख्याताः सर्वे मन्त्राः क्रियाःपराः।
योगाः समाधयो ज्ञानं तथा चान्ये मदीप्सिता ।।३।।
तेषां हि कारणं तत्त्वं यदीश परतः परम् ।
वक्तुमर्हसि तत्त्वेन शाम्भवं चाप्य चाप्यनुत्तरम् ।।४।।
वाच्यस्वरूपव्याप्तित्वं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः।
प्रकाशो विमर्शाधीन इति सत्यं यदि प्रभो ।।५।।
ममधीनस्त्वमेवासि यथोक्तं वद शङ्कर ।

देवी पार्वती कहती हैं— हे परमानन्दमय! हे पूर्णतः शान्त विग्रह वाले देव! जो परमतत्व है, वह मुझे विदित है। हे देव! सभी मन्त्र, पराक्रिया, योग, समाधि,ज्ञान तथा अन्य जो कुछ भी मुझे ईप्सित, तथा उस सबकी आपने व्याख्या कर दिया है। हे ईश! इन सबका जो कारण है परात्पर है उस अनुत्तर शांभव तत्व को कृपया कहिये। मैं वाच्य स्वरूप व्याप्ति को तत्वतः जानने की इच्छा करती हूँ। हे प्रभो!प्रकाश विमर्श के अधीन है,यदि यह उक्ति सत्य है, तब तो आप मेरे अधीन हैं क्योकि देवी हैं विमर्श ,प्रकाश है शिव) अतः हे शंकर! मैंने जो पूछा है,उसे कहिए।।२-५।।

शम्भुरुवाच–

अतिगुह्यतमं सूक्ष्ममवाङ्मनसगोचरम् ।।६।।
मया यत्नेन गुप्तं तन्न तत्कस्यापि कथ्यते ।
अहमेव त्वमप्यस्मि खलूक्तेति च मे मतिः।।७।।
त्वमप्येवं स्मरस्यस्मात् त्वयापि विदितं प्रिये ।
सच्चित्संयोगसंसिद्धिस्त्वद्वश्या मम सा यतः।।८।।

तदेव चोत्तरं प्राहु सत्यं सत्यं मयोदितम् ।
तदेव चित्सदाद्यन्तावैक्येन संस्थितं यदा ।।९।।
तदा शाम्भवमित्याहुर्मुनयस्तत्त्ववित्तमाः ।
तदेवाहमिदंभावपूर्णानन्दो यदा भवेत् ।।१०।।
तदैव शम्भुभावः स्यादुक्तमेतत्पदत्रयम् ।
शक्रस्त्रिशूली सर्गोऽन्तं तैरेवालंकृता यदि ।।११।।
सैव हि श्रीपरेत्युच्चैर्मुनिभिः परिकीर्तिता ।
प्रकाशानन्दसंदोहकैवल्यमहमाश्रया ।।१२।।
मत्परत्वान्महासिद्ध्यै सा परेति च कथ्यते ।
ये मन्त्राः परमेशानि तेनादावपि संयुताः।।१३।।
ते जीवन्ति च मन्त्रेभ्यो ह्यन्योन्यमिति मे मतिः ।
सप्तषष्टिप्रकृत्यर्णा जगत्सृष्ट्यादिकर्तृकाः।।१४।।
एतेषां जीवभूतत्त्वादनुत्तरमिदं जगत् ।

यह अतिगुह्यतम है तथा सूक्ष्म एवं मनवाणी से अगोचर तत्व है। मैं प्रयत्नतः गोपनीय रखने के कारण इसे कैसे किसी से कह सकता हूं,लेकिन तुमने कहा कि तुम भी मैं (शिव) ही हो। मेरा भी यही मत है। तुम भी यही क़हती हो। हे प्रिय! अभिन्न होने के कारण तुमने तो इसे जान लिया है इसी कारण सत्-चित-आनन्द के संयोग के कारण जो सिद्धि समूह तुम्हारे वश मे है, वही मेरे वश में भी है। यही विद्वानों के मतानुसार उत्तर तत्त्व है।यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। जब चित्त एवं सत्य का ऐक्य है तब उसे शांभव कहते हैं। यह तत्ववेत्तागण का मत है। जब वह तत्व 'अहमिंद' भाव से पूर्णानन्दरूप से उच्छलित होनें लगता है, तब वही है शम्भु भाव। ये ही तीन पद अहं, इदं, तथा आनन्द कहे गये हैं। शक्र (ल), त्रिशूली (ज), सर्ग (उ), तथा अन्त (म)। मन्त्रोद्धार होगा- 'ज्लुम्'। श्रेष्ठ मुनिगण इसे पराश्री कहते हैं। प्रकाश, आनंद का योग ही कैवल्य 'अहम्' है। यह विमर्श शक्ति इसी 'अहम्' के अधीन है। यह महासिद्धि हेतु मत्परक हैं अतः इसे परा कहा गया है। प्रकाश आनन्द का योग कैवल्य रूप 'अहम्' है। हे परमेशानी! जो मन्त्र उससे पहले से युक्त होते हैं, वे मन्त्रों हेतु ही जीवित रहते हैं। यही है दोनो का अन्योन्याश्रयत्व, यह मेरा मत है। ६७ प्रकृतवर्ण जगत् सृष्टि के कर्त्ता हैं। इनका कारणरूप संसार अनुत्तर है।।६-१४।।

पार्वत्युवाच–

सकला निष्कलाश्चैव मुक्तिमार्गप्रबोधकाः।।१५।।
मंन्त्रास्तु बहवः सन्ति वद तेषामनुत्तरम्।

शम्भुरुवाच–

केषांचिदस्मदुक्तानामेतेऽप्यनर्थदार्णकाः ।।१६।।
आवयोर्देवदेवेशि मनूनां कारणं मनः।
सर्वेषामेव मन्त्राणां प्राप्यावावां महेश्वरि ।।१७।।
आवयोरपि तत्प्राप्यमनुत्तरमिति स्मृतम्।
अप्येतदक्षरावृत्तेर्गम्यागम्यतया स्थितम् ।।१८।।
अगम्यकारणत्वाच्च गम्यावावामिति प्रिये।
इदन्तयाहन्तया वा सर्वेषामन्तरात्मनि ।।१९।।
प्रतीयमानस्त्वर्थो यस्तदेव शिवनिर्णयम्।
पूर्णाहन्तास्वभावेन कृत्रिमाहन्तया विना ।।२०।।
बहिरन्तरिदं विश्वं यः पश्यति स पश्यति।
अहन्तायां महादेवि त्वमेव प्राणिनां प्रिया ।।२१।।
अज्ञानामपि चात्मा त्वं सर्वे तेऽनुत्तरप्रियाः।

पार्वत्युवाच–

त्वया पूर्वोपदिष्टं यत्तत्त्वं श्रीमत्परामयम् ।।२२।।
तदेव निर्वाणपदमिति प्रोक्तं त्वया मया।
इदानीमतिगुह्यानां तदेवाद्यमनुत्तरम् ।।२३।।
प्रशंससे परानन्दविमर्शाविष्टविग्रह।
एतस्मिन्नेव कैवल्ये चेतःश्लेषो न मे विभो ।।२४।।

देवी पार्वती कहती हैं—मुक्तिमार्ग प्रबोधक अनेक सकल निष्कल मन्त्र हैं। उनमें जो अनुत्तर है, वह बतायें।

शम्भु कहते हैं—कहे गये उन मन्त्रों में से कुछ वर्ण भी अनर्थदायी हैं। हे देवदेवेशी! मन्त्रों का कारण है मन। हे महेश्वरी! समस्त मन्त्रों के प्राप्य हम लोग दोनों हैं। वह प्राप्य अनुत्तर है। हे प्रिये! इन अक्षरों की वृत्ति (आवृत्ति) गम्य एवं अगम्य है, तभी यह स्थिति है। हे प्रिये! अनुत्तर अगम्य है अतः हम दोनों गम्य हैं। इदं तथा अहं के रूप में सबकी अन्तरात्मा में जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वही है शिवनिर्णय! उसका ही देखना वास्तविक देखना है जो कृत्रिम

अहंता को न देखकर पूर्णाहन्ता स्वभावयुक्त होकर बाहर तथा अभ्यन्तर में इस विश्व का अवलोकन करता है। हे महादेवी! अहन्ता में तुम ही प्राणियों की प्रिय हो। तुम तो अज्ञानीगण की आत्मा हो। सभी अनुत्तर प्रिय है।

पार्वती कहती हैं—आपने जिस पूर्वोपदिष्ट श्रीपरामय तत्व को बतलाया था वही निर्वाणपद है। हे परानन्द से आविष्ट विग्रह युक्त! हे विभो! आप अब अतीव गोपनीय आद्य अनुत्तर तत्व को प्रशंसित कर रहे हैं। तथापि यह मैं हृदयङ्गम नहीं कर पा रही हूँ॥१५-२४॥

शम्भुरुवाच–

सत्यमेव त्वयाख्यातमुभयं तव सुन्दरि।
परया त्वपि तत्प्राप्यं पूर्वोदितमनुत्तमम्।।२५।।
यत् सम्मतं तथाप्येतत् तयोरप्यन्तरं महत्।
परा तु सप्तविंशत्या अन्तर्बाह्यक्रियागुणैः।।२६।।
पूज्या चास्मत्कलांशेति केषांचिद्योगिनीमतम्।
मानरूपक्रियोपाधिविहीनत्वान्महेश्वरि ।।२७।।
पराया अपि तत्प्राप्यं पूर्वोदितमनुत्तरम्।

पार्वत्युवाच–

अस्य माहात्म्यमेवोक्तं त्वया मे बहुधा विभो।।२८।।
उपायेनामुना पश्ये यदुक्तं नैव जातुचित्।
यदिष्टं सर्वमाख्यातं यदप्युक्तमनुत्तरम्।।२९।।
नैव शक्नोमि निर्णेतुं तत्त्वतः कथयस्व मे।

शिव कहते हैं—हे सुन्दरी! तुमने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है। तुम्हारे लिये दोनों ही उचित हैं। परा द्वारा उस पहले कहे गये अनुत्तर की प्राप्ति होती है। यह मत वैसे तो उचित है, तथापि इनमें महान् भेद भी है। कुछ का मत है कि पराविद्या अपने अन्तर्बाह्य स्थित २७ गुणों से हमारी कला के रूप में पूज्या है। हे महेश्वरी! क्रिया रूप उपाधियों से रहित होने के कारण अनुत्तर पराविद्या भी प्राप्य है।

देवी पार्वती कहती हैं—इसकी महिमा आपने बहुधा बतलाया है। जो कभी भी चर्चा में नहीं आया, उसे भी मैं इसी उपाय द्वारा उपलब्ध कर रही हूँ। इष्ट को पूर्णतः कह भी दिया गया, तथापि वह अनुत्तर है, इसका मैं निर्णय कर सकनें में समर्थ नहीं हो पा रही हूँ। कृपया उसे बतायें॥२५-२९॥

शम्भुरुवाच–

अत्यन्ताभावो भेदादावयोः परमार्थतः।।३०।।
इदमीदृशमित्युक्तं पुरेवाहमुपाधितः।
सम्प्राप्ता स्वरदेवता नैव कार्या विचारणा।।३१।।
यद्यन्यभावस्थैर्येण प्राप्तव्यं गुणकार्यतः।
तर्हि भूयोऽपि वक्ष्यामि मयोक्तार्थस्य निर्णयम्।।३२।।

शिव कहते हैं—यद्दपि हममें परमार्थतः भेद का अत्यन्ताभाव है, तथापि एकीभूत अवस्था होने पर भी भेदवशात् "यह ऐसा है'यह कहा गया।उपाधि के कारण पहले मैं स्वर देवता हो गया इसमे सन्देह न करो। अन्यभाव के स्थैर्य से गुण तथा कार्य द्वारा जो प्राप्तव्य है,उसे मैं अर्थ निर्णय द्वारा कहूंगा।।३०-३२।।

मनोवाग्विषयातीतं पूर्वोक्तं यदनुत्तरम्।
तत्रिधा भेदमायाति बिन्दुनादाख्यबीजतः।।३३।।
तान्येव सच्चिदानन्दभेदेन वैभवानि तु।
मत्स्वरूपो हि यो बिन्दुस्तस्मान्नादस्तु भामिनि।।३४।।
द्वयोः समरसीभावादुक्तं बीजाख्यमावयो।
एक्यज्ञानपथे चैनां देवि शाम्भववाचके।।३५।।
वर्णक्रमेण सम्भाव्य कुर्यान्मिथुनभावनाम्।
एवं क्रमे महेशानि तामनुत्तरतां व्रजेत्।।३६।।
वह्निवत् काष्ठसम्बद्धे समुन्नद्धोऽवनिं तरेत्।
व्यञ्जने मथनोद्भूते तां तु शक्तिपदात्मिकाम्।।३७।।

जिस अनुत्तर के सम्बन्ध में पहले यह कहा गया कि वह मनवाणी के विषयों से अतीत है,वह बिन्दु-नाद-बीज रूप भेदत्रय युक्त हो जाता है। वही सत-चित् आनन्द भेद द्वारा विस्तार युक्त हो जाता है। हे भामिनी!मेरा स्वरूप जो बिन्दु है, उससे नाद उत्पन्न हो जाता है। हम दोनों के समरसी भाव से बीजोत्पत्ति होती है। हे देवी! शांभववाची ऐक्यगान के पथ में वर्णक्रमानुसार हम दोनों की भावना से मिथुनभावना करे। हे महेशानी! इस क्रम से साधक को अनुत्तरत्व की प्राप्ति हो जाती है। अग्नि जब काष्ठ से युक्त होता है तब वह ज्वलित होता है, वैसे ही कुलस्त्री शक्ति के साथ सम्बन्ध होने से साधक पुनरागमन के चक्र को उत्तीर्ण कर लेता है। स्वरमंथन से उदभूत व्यंजन से उत्पन्न होने पर शक्तिपदात्मिका स्थिति के व्रत-होम द्वारा वर्द्धित होने पर साधक स्वभाव प्राप्ति कर लेता है।।३३-३७।।

व्रतहोमेन सम्भाव्य स्वभावं स्वयमाचरेत् ।
प्रकाशान्तर्विमर्शान्तस्तस्मादेवाप्रकाशकम् ।।३८।।
उत्तरोत्तरमेकैकं नयामि तत् क्रमोत्क्रमात् ।
सङ्कोचः सविकासश्च स्वरूपौ सूयसङ्गतौ ।।३९।।
तत्तु यागतया स्यातां प्रकाशानन्दमन्दिरौ ।
सच्चिन्मयौ क्रियासारावधूतात्मक्रियापरौ ।।४०।।
एतयोरावयोर्यत्तत्कारणं स्यादनुत्तरम् ।
हृदयानलभार्यान्तं शिवदण्डीविलं फलम् ।।४१।।
अन्तः प्रतीयमानं तदमेवं सर्वतोमुखम् ।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं निस्तरङ्गाब्धिसन्निभम् ।।४२।।
सन्मात्रं चैव चिन्मात्रं तयोरैक्यरसावृतम् ।
तमःप्रकाशहीनं यदणोर्बहुतरं परम् ।।४३।।
महतां च महत्त्वाच्च ब्रह्मसंज्ञमनुत्तरम् ।
तदेवावहितेन त्वं स्वान्तेन परिभावय ।।४४।।

प्रकाश में विमर्श है, तभी विमर्श प्रकाशित नहीं होता। वह क्रमशः क्रम से एक-एक को उत्तरोत्तर ले जाता है। संकोच विकास भी स्वरूप तथा सूर्य से सम्बद्ध हैं। वे याग के रूप में प्रकाश तथा आनन्द द्वारा आश्रयरूपता ग्रहण कर लेते हैं। साथ ही सत् एवं चिन्मय क्रियारूप होकर आत्मक्रिया को रोकने वाले हो जाते हैं। मैं तथा तुम इन्हीं रुपद्वय से युक्त हैं। हमारा कारण अनुत्तर है। नमः से स्वाहा पर्यन्त विन्दु का ही फल है।

वह अप्रमेय, सर्वतोमुख है। आदि-मध्य-अन्तरहित, निःस्तरंग समुद्रवत्, सन्मात्र, चिन्मात्र तथा दोनों का ऐक्य रूप भी है। वह केवल अन्तःप्रदेश में ही प्रतीयमान होता है। तमः प्रकाश से रहित, अणु से भी अनुरुप, महत् से भी महत् ब्रह्म है। वही अनुत्तर है। अविहित चित्त से अपने अन्दर उसकी भावना करनी चाहिये।।३८-४४।।

अनेन भाववानाशु मन्त्रस्तन्मयतां व्रजेत् ।
यदा तन्मयसिद्ध्यादि विश्वं त्वयि विभावयेत् ।।४५।।
तेन विश्रान्तभावेन तदैक्यानन्दमाप्स्यति ।
आकाशे निर्मले यद्वत्सहसा घनसंकुलम् ।।४६।।

उत्पत्य लीयते तद्वज्जगदात्मन्यनुत्तरे ।
इत्येवं प्रत्यभिज्ञानसिद्धिः स्यात्तव सुव्रते ।।४७।।
स्वसंवेद्यं सुखं पश्चान्नैव शक्नोमि वेदितुम् ।
परा त्वं परमर्द्धिः स्यान्नत्वस्य विहितं यतः।।४८।।
इत परं न जानामि त्वयाहं बहुधा शपे ।
एतच्छ्रुत्वा महादेव्या ह्येतदर्थविमर्शनम् ।।४९।।
प्रकाशितं तदेवाशु विस्मयाविष्टचेतसा ।
महदाश्चर्यमेतन्मे सम्पूर्णोऽयं यदास्थितः।।५०।।
इति संचिन्त्य देवस्य पादमाश्लिष्य सुन्दरी ।
तदा चान्योन्यमथनात्सान्द्रानन्दाभिनन्दिता ।।५१।।
यत्प्रकाशात्मकं सर्वं सत्त्वं केवलतां गतम् ।
विमर्शावनिसम्प्राप्तमित्येषा तात्त्विकी स्थितिः।।५२।।

यह भावना युक्त मन्त्र तन्मयता से ले आता है। तन्मय सिद्धि से जब साधक तुम्हारे भीतर भावना करेगा, तब उस विश्रान्त भाव से तदैक्यानन्द (विश्व से तुम्हारा ऐक्य) साधक प्राप्त करेगा। जैसे निर्मल गगन मे सहसा बादल उत्पन्न तथा लीन होते हैं, उसी प्रकार यह समग्र जगत अनुत्तर सें उत्पन्न होकर उसी में विलीन होता रहता है। हे सुव्रते! यही प्रत्यभिज्ञा सिद्धि प्राप्ति तुमको होगी। इस स्वसंवेद्य सुख को कोई भी कह सकने में समर्थ नहीं है। तुम तो परा एवं परमऋद्धि हो। इसमें कुछ भी विहित नहीं है।(कुछ कह सकना विहित नहीं है) इसके परे मै कुछ भी नहीं जानता। यह तुम्हारी सौगन्ध लेकर कहता हूं। यह सुन कर महादेवी ने (यह अर्थ विमर्शन सुनकर) विस्मय से आविष्ट चित्त द्वारा तत्काल इसे प्रकाशित कर दिया और मन ही मन कहा कि मुझे महान आश्चर्य है। यह तो सम्पूर्णरूपेण स्थित है (स्वात्मा में स्थित है) तत्पश्चात सुन्दरी ने महादेव के चरणो का आलिंगन किया। परस्परतः मंथन के कारण वे आनन्द से अभिनिन्दित हो गयीं। जो प्रकाशात्मक सर्व तत्व कैवल्य को प्राप्त था अब तो वह विमर्श को प्राप्त हो गया। (प्रकाशात्मक शिवतत्व अब विमर्श को प्राप्त हो गया) यह तात्विकी स्थिति है। इसकी साक्षी है सावधान भाव वाली मति।।४५-५२।।

अवधानैकभावानां मतिः सा साक्षिरूपिणी ।
तत्प्रमाणैः वराकैः किं तैश्चिदेवाप्रमाणका ।।५३।।

नहि वैकर्तनं ज्योतिर्दीपालोकमपेक्षते ।
आदर्शे विमलाभोगे यथा सर्वं प्रकाशते ।।५४।।
इत्थं चिदात्मकं विश्वं षट्त्रिंशत्तत्त्वभेदनम् ।
आदौ शुद्धात्मकं तत्त्वं पञ्चधा तमसः परम् ।।५५।।
शिवः शक्तिश्च सादाख्य ईशो विद्येति भिद्यते ।
हक्षादशान्तवर्णात्मा निरमायि यदा शिवे ।।५६।।
कला विद्या रागकालौ नियतिर्वर्म उच्यते ।
मायापूर्वो वकारादियकारान्ताक्षरात्मकम् ।।५७।।
प्रधानं पुम्मनो बुद्धिरहंकृन्मादिपञ्चकम् ।
श्रोत्रादिपञ्चकं तादि टादि वागादिपञ्चकम् ।।५८।।

उस चैतन्य क़ो अन्य प्रमाण की क्या आवश्यकता। सूर्य की ज्योति को अपने प्रमाणार्थ (प्रकाशार्थ) किसी दीप की आवश्यकता नहीं होती। जैसे विमलदर्पण में सब कुछ प्रकाशित(परिलक्षित) होता है, उसी प्रकार से एक परमशिव से सर्वाग्र में शुद्ध सत्वात्मक तमरहित शिव,शक्ति,सदाशिव,ईश्वर एवं शुद्ध विद्या रूप पंचतत्वों का उदय हुआ। हे शिवे! तदनन्तर ‘ह’ ‘क्ष’ तथा शान्त अर्थात् ‘श’ ‘ष’ ‘स’ ये पाँच वर्ण गठित हो गये। ये कला ,विद्या, राग,काल तथा नियति रूप पंचवर्ग कहे जाते हैं। इसके अनन्तर व,ल,र,य, ये पंचाक्षर हैं। तदन्तर म,भ,व,फ तंथा प भी प्रकृति,पुरुष,मन,बुद्धि,अहंकार,के वाचक हैं। त,थ,द,ध,न श्रोत्र, त्वक, चक्षु, जिह्वा तथा नासिका के वाचक हैं। ट, ठ, ड, ढ, ण वाक् , पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थवाचक हैं। च आदि तन्मात्र पंचक के तथा क आदि पंचतत्वों के वाचक हैं। ।।५३-५८।।

तन्मात्रपञ्चकं चादि भूम्यादि कादिपञ्चकम् ।
सिसृक्षोः प्रथमः स्पन्दः शिवतत्त्वं प्रभोः स्मृतम् ।।५९।।
इच्छैवास्यापरिम्लाना शक्तितत्त्वमुदङ्कुशम् ।
स्वेच्छया सूचितं विश्वमाच्छाद्याहन्तया स्थितः।।६०।।
स एव तत्त्वं सादाख्यं सर्वानुग्रहणोन्मुखम् ।
स एवैश्वरतत्त्वं स्यात् पश्यन् विश्वमिदन्तया ।।६१।।
अहन्तेदन्तयोरैक्यं सा विद्येति निगद्यते ।
स्वाङ्गभूतेषु भावेषु मायातत्त्वं विभेदधीः।।६२।।

सिसृक्षा का प्रथम स्पन्द है शिव परमेश्वर इनकी इच्छा को निरंकुश। शक्तितत्व कहते हैं। स्वेच्छया सूचित विश्व का आच्छादन करके यह अहंतारूपेण स्थित हैं।

यही तत्व सब पर अनुग्रहार्थ उन्मुख सदाशिव तत्व कहा गया है। जब यह विश्व को अपने से पृथक् रूप से विश्व को 'इदन्ता- रूपेण' देखता है, तब वही ईश्वर तत्व है। अहन्ता एव इदन्ता का एक्य ही शुद्धविद्या है। अपने स्वाङ्गभूत तत्त्वों में जब विभेद भावना आती है, तब वही है मायातत्व ॥५९-६२॥

मायागृहीतसङ्कोच शिवः पुंस्तत्त्वमुच्यते ।
अयमेव हि संसारी जीवो भोक्तेति दृश्यते ।।६३।।
ज्ञात्वाकर्तृत्वपूर्णत्वनित्यत्वाद्याश्च शक्तयः।
तत्सङ्कोचात्संकुचिताः कलाविद्यादिना स्थिताः।।६४।।
मायात्मनः कला नाम किंचित्कर्तृत्वलक्षणम् ।
विद्या किंचिज्ज्ञताहेतू रागोऽभिष्वङ्गकारणम् ।।६५।।
कालः परिच्छेदको वा नियतिश्चेदमेव मे ।
कर्तव्यं नान्यदित्येषा व्यवस्थायन्त्रणाकृतिः।।६६।।

जब शिव माया को स्वीकार करके संकुचित हो जाये, तब वही है पुरुष तत्व। यही है संसारीजीव तथा भोक्ता । उसकी सर्वज्ञत्व सर्वकर्त्तृत्व, पूर्णत्व, नित्यत्वादि शक्ति समूह तब संकुचित होकर कला, विद्या, राग, नियति एवं काल बन जाते है। माया का प्रथम आवरण कला है। इससे पुरुष स्वयं को किचिंत कर्तृत्व वाला मान लेता है। विद्या कंचुक किंचित ज्ञातृत्व का रूप है। राग है संसार के प्रति आकर्षण। काल असीम परिच्छेद होकर सीमित करने वाला है। तथा नियति कर्त्तव्य के विषयं में 'यह मेरा कर्त्तव्य है, अन्य नहीं है, यह निर्धारण करती है॥६३-६६॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं स्यादहङ्कारादिजन्मभूः।
अहंममेदमित्येतद्बुद्धिहेतुरहंकृतिः ।।६७।।
बुद्धिरध्यवसायस्य कारणं निश्चयात्मनः।
सङ्कल्पस्य विकल्पस्य बीजं मन उदीर्यते ।।६८।।
वचनादेश्च शब्दादेर्वागादि श्रवणादिकम् ।
करणं श्रवणादी ग्राह्यं तन्मात्रपञ्चकम् ।।६९।।
आकाशाद्यवकाशादिकारणं भूतपञ्चकम् ।
परापराशक्तिमये शुद्धे विद्यादिपञ्चकम् ।।७०।।

गुणत्रय का साम्य है प्रकृति। इसी को अहंकार की जननी कहते हैं। 'यह में' 'यह मेरा' 'यही अवधारणा अहंकार है। निश्चयरूप अध्यवसाय की कारण

स्वरूपा है बुद्धि। संकल्प -विकल्प का कारण मन है। वचन तथा शब्द का कारण है वाक् एवं श्रोत्र इन्द्रियाँ। इनका असाधारण कारण रूप है पंचतन्मात्र। आकाश आदि के कारण भी पंचमहाभूत हैं। शुद्धतत्व में पराशक्तियुक्त विद्या आदि ५ रहते हैं। वह शुद्ध विद्या कही जाती है। लेकिन अपराशक्ति युक्त को मात्र विद्यातत्व ही कहते हैं॥६७-७०॥

तदन्यदपराशक्तिर्विद्यातत्त्वमुदीरितम् ।
अथ देवी पराशक्तिः शुद्धाशुद्धाध्वरूपिणी ।।७१।।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि यदा लीनानि कारणे ।
तदा कारणमात्राणि शक्तिरुद्वमते बहिः।।७२।।
अनुत्तरेच्छे उन्मेष आनन्देशनमूनता ।
क्रियेच्छाज्ञानशक्तीनां स्वराणां मूलता च षट् ।।७३।।

यही शुद्ध-अशुद्ध अध्वा रूपा देवी पराशक्ति है। अब अकारादि का तात्पर्य सुनो। जब पृथ्वी आदि तत्व स्वकारण में लीन हो जाते हैं, तब शक्ति कारणमात्र को बाह्यतः ले आती है। वे है अ अर्थात् अनुत्तर। उ =उन्मेष । आ अर्थात् आनन्द। ई=ईशन, ऊ=उनता। इच्छा ज्ञानादि शक्तियों के मूल हैं। ये षड्वर्ग॥७१-७३॥

इच्छेशनां ततो रूढा स्फुटास्फुटजगन्मयी ।
चत्वारः षण्डवर्णा स्युः शुद्धात्मानः प्रचोदिताः।।७४।।
अनुत्तरानन्दशक्ती इच्छाशक्तौ नियोजिते ।
त्रिकोणमथ षष्ट्कोणमिच्छायां रूढिमागते ।।७५।।
अनुत्तरानन्दशक्ती त्रिकोणद्वययोगतः।
तथैवोन्मेषयोगेन क्रियाशक्तेः स्फुटं वपुः।।७६।।
उक्तत्रिशक्तिसङ्घट्टात् त्रिशूलं द्वैतघस्मरम् ।
परस्पराविरोधेन कार्येषु प्रविरोहति ।।७७।।

यह संसार स्फुट-अस्फुट रूप प्रतीत होता है। उससे प्रेरित ऋ, ॠ, ऌ ॡ, रूप चार नपुंसक वर्ण शुद्धरूप में प्रकट होते हैं। अनुत्तर तथा आनन्द के इच्छाशक्ति में नियोजन से त्रिकोण तथा अनुत्तर तथा आनन्द के इच्छा में रूढ़ होने पर षट्कोण बनता है। यह त्रिकोणद्वय के योग से लेता है। ऐसे ही शक्त्युन्मेष द्वारा क्रियाशक्ति का वपु स्फुट हो जाता है। उक्त ज्ञान-इच्छा-क्रिया शक्तित्रय के संघट्ट से त्रिशूल गठित होता है, वह द्वैत का उच्छेद कर देता है।

इन शक्तियों में परस्परतः विरोध नही हैं। ये मिलकर कार्य करती हैं। इनके लिये यह नहीं कह सकते कि 'इनका ऐसा रूप है।।७४-७७।।

न कथंचिदुपाधेयमासां रूपमिदं भवेत् ।
बिन्दुर्वेद्यस्य संस्कारो विमर्शः सर्ग इत्यसौ ।।७८।।
कलाषोडशकाकारा शक्तिर्बीजायते परा ।
तिथयः प्रतिपत्पूर्वाः पञ्चदश्यन्तिमा यथा ।।७९।।
सूर्याचन्द्रमसौ स्वान्तश्चरन्तौ स्थितिहेतवे ।
तथा विमर्शवपुषः सर्गस्याद्या कलाः स्मृताः।।८०।।

विन्दु को वेद्य का संस्कार कहते हैं। विमर्श है सृष्टि। षोडश कलाकारा पराशक्ति इनकी बीज है। जैसे प्रतिपदा से लेकर पञ्चदशी पर्यन्त तिथि में सूर्य तथा चन्द्रमा इनकी स्थिति हेतु चलनशील रहते हैं उसी प्रकार विमर्शरूप शरीर के सृष्टि की कलायें आद्य मानी गयी हैं।।७८-८०।।

द्विधेयं मातृका देवी बीजयोन्यात्मना स्थिता ।
नित्यप्रवृत्तशृङ्गाटवपुर्विश्वस्य जन्मभूः।।८१।।
हृदयं बीजमेतस्याः संविदो यत्परं महः।
वटबीजे यथा वृक्षस्तद्वत् सन्निहितं जगत् ।।८२।।
विचार्यमाणं यन्नैव कारणादतिरिच्यते ।
मृदादेः कलशादीनां तत्त्वं नान्यन्निरूपणे ।।८३।।
इत्याहुस्तत्त्ववादिन्यः श्रुतीनामन्तिमा गिरः।
इदं सर्वं सदेवासीदग्र इति विनिश्चयात् ।।८४।।

यह मातृका बीज तथा योनिरूपेण द्विधा स्थिता है। नित्य प्रकृत मूलाधार (मूलाधारस्थ त्रिकोण) शृङ्गाट (सिंघाड़े) रूप है जो विश्व की जन्मभूमि है। संवित् का परतेज ही बीज रूप है। जैसे वटबीज वृक्ष में निहित रहता है, उसी प्रकार संसार भी संविद में जगत् सन्निहित रहता है। विचार द्वारा वृक्षरूपी जगत अपने कारणबीज से (हृदय से) अलग नहीं है जैसे कलश आदि का तत्व मृत्तिका से अलग नहीं है, यह तत्ववादिनी श्रुतियाँ कहती हैं। श्रुति का भी यह सिद्धान्त है "सदेवेदमग्र आसीत्" इत्यादि ।।८१-८४।।

सत्तावाचिनि बीजेऽस्मिन्क्ष्मादिमायान्तिमं जगत् ।
विलुप्तप्रत्ययाकारमेतत् स परिशिष्यते ।।८५।।
ततो ज्ञानक्रियासारा विद्येश्वरसदाशिवाः।
शक्तौ त्रिशूले लीयन्ते चतुर्दशकलात्मनि ।।८६।।

ऊर्ध्वाधः सृष्टिवपुषि सर्वं लीनमतः परम् ।
इत्थं परस्यां संवित्तौ स विसर्गचितिः क्रमात् ।।८७।।
अथ वाङ्मनसातीते यत्र क्वापि निरञ्जने ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वलहरीकलहातीतगोचरे ।।८८।।
विश्वात्मनि महामन्त्रे स्वभावे सा विलीयते ।
कुतश्चिन्मथिते धाम्नि दीप्ते केनापि हेतुना ।।८९।।
सर्वं हविरिदं जुह्वन्न दारिद्रेण पीड्यते ।
पञ्चपञ्चात्मकं देवि पञ्चस्पन्दविजृम्भितम् ।।९०।।
संङ्कोचयन् परामर्शी सामान्यस्पन्दकेवलम् ।
अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः।
पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वभावमशिवापहम् ।।९१।।

यह बीज सत्तावाची है। इसमें पृथ्वी से लगाकर मायापर्यन्त तक का जगत विलुप्त प्रत्ययाकृति में रहता है। इसके आगे वाले शुद्धविद्या, ईश्वर तथा सदाशिव चतुर्दशकलात्मक त्रिशूल में लीन हो जाते हैं। तदनन्तर सृष्टि वपु में ऊर्ध्व-अधः सभी लीन हो जाता है। इस परासंवित् में विसर्ग चैतन्य भी क्रमानुसार लीन हो जाता है। तदनन्तर परासंवित वाणी-मन से अतीत, ३६ तत्त्वों की लहरी से अगोचर निरंजन विश्वात्मा महामन्त्र स्वभाव में लीन हो जाती है।

जो अचिन्त्य कारण से मथित एवं दीप्त इस संविदारूप अग्नि में समस्त जगत् रूप हवि से हवन कर देता है, वह कभी दरिद्रता की पीड़ा नहीं पाता हे देवी! पञ्चपञ्चात्मक पञ्चस्पन्दों से विजृम्भित उन पांचों को संकुचित करने वाला परामर्शी (साधक) केवल सामान्य स्पन्द को 'इदम्' प्रतियोगी अहम्' मे लीन करके वहाँ पराक्रमी अशिव का अपोहन करके स्वभाव का अनुभव करता है।। ८५-९१।।

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादेऽनुत्तरज्ञानप्रक्रियानिरूपणनामक
एकचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः।।४१।।

।। गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत् पार्वतीश्वरसंवाद में अनुत्तरज्ञान प्रक्रिया निरूपण
नामक ४१ वाँ पटल समाप्त ।।

द्विचत्वारिंशः पटलः

तत्वज्ञानोपदेशवर्णनम्

श्रीपार्वत्यवाच–

कथमुत्पद्यते वाणी कथं वा सा विलीयते ।
वाचो विनिर्णयं ब्रूहि पश्चात्तत्त्वमुदीरय ।।१।।

भगवती पार्वती कहती हैं— वाणी की उत्पत्ति कैसे होती है? कैसे विलीन होती है? पहले इसका निराकरण करके वाणी का तत्व भी कहिये।।१।।

ईश्वर उवाच–

अव्यक्तात्प्राण उत्पन्नः प्राणादुत्पद्यते मनः।
मनस उत्पद्यते वाग्वाङ्मनसि विलीयते ।।२।।

ईश्वर कहते हैं—अव्यक्त से प्राण, उससे मन, उससे वाक् की उत्पत्ति होती है। यह उत्पत्तिक्रम है। लयक्रम में वाणी का लय मन में हो जाता है।।२।।

देव्युवाच–

आहारं काङ्क्षते कोऽसौ भुङ्क्ते च पिबते च कः।
जागर्ति सुप्यते कोऽसौ सुप्तः कोऽसौ प्रबुध्यते ।।३।।

देवी कहती हैं—आहार कौन चाहता है? भोजन-पान कौन करता है? कौन जागता सोता है? सुप्त होने के पश्चात् कौन प्रबुद्ध हो जाता है?

ईश्वर उवाच–

आहारं काङ्क्षते प्राणो भुङ्क्ते चैव हुताशनः।
जागर्ति सुप्यते वायुः सुप्ते तेजः प्रबोधयेत् ।।४।।

ईश्वर कहते हैं—प्राण आहार चाहता है। अग्नि खाता है। वायु जागता एवं सोता है। तेज सोये को प्रबुद्ध करके जगाता है।।४।।

देव्युवाच–

को वा करोति पापानि को वा पापेन लिप्यते ।
को वा बद्धो विमुक्तः कः को वा पापैःप्रमुच्यते ।।५।।

देवी कहती हैं—कौन पाप करता है? कौन उससे लिप्त होता है। कौन बद्ध है? कौन मुक्त है? कौन पास से मुक्त होता है?।।५।।

ईश्वर उवाच–

मनः करोति पापानि मनः पापेन लिप्यते ।
मनस्युन्मननीभूते न धर्मो नापि पातकः।।६।।

मन पाप करता है। मन उससे लिप्त होता है। मन जब उन्मनी हो जाये तब न पुण्य है न पाप ॥६॥

देव्युवाच-

यदिदं शाक्तमाकाशं देहस्थं देहवर्जितम् ।
तत् स्थितं तु कथं देहे देहिदेहविवर्जितम् ।।७।।
कथं जीवः स्थितो देहे को वा जीवः प्रकीर्तितः।
केन पश्यत्यसौ जीवः केन मार्गेण सञ्चरेत् ।।८।।
सकलस्तु कथं जीवो निष्कलस्तु कथं भवेत् ।
केन जीवत्यसौ जीवः किं वा जीवस्य भोजनम् ।।९।।
कुतो वा लीयते जीवो जायते कुत एव हि ।
को वा जीवः कथं प्राणः केन जीवःप्रकीर्तितः।।१०।।
एतत्सर्वं यथातत्त्वं तत्त्वं मे ब्रूहि शङ्कर ।
संसारार्णवमग्ना हि येन मुच्याम्यहं प्रभो ।।११।।

देवी कहती हैं—यह शाक्त आकाश देह में स्थित हैं परन्तु स्वयं देहरहित है। देही तथा देह रहित यह आकाश देह में कैसे स्थित हैं? जीव देह में कैसे रहता है? जीव का स्वरूप क्या है? किसके द्वारा यह जीव देखता है? किस मार्ग से संचरण करता है? यह जीव सकल कैसे है? निष्कल कैसे होता है? किसके कारण जीवित रहता है? इसका भोजन क्या है? किसमें लीन होता है? कहाँ से उत्पन्न होता है? यह जीव क्या है? इसका प्राण क्या है? इसे जीव क्यों कहते हैं? हे शंकर! यह सब तत्व यथार्थतः बताएँ, जिसमें मै संसार समुद्र में डूबनें से मुक्त हो सकूँ॥७-११॥

ईश्वर उवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्त्वया समुदाहृतम् ।
कथयामि न संदेहः सारात्सारतरं शुभम् ।।१२।।
वायुस्तेजस्तथाकाशं तृतीयं जीवसंज्ञकम् ।
स जीवः प्राण इत्युक्तो बालाग्रशतकल्पितः।।१३।।
जीवः शुक्रं च विज्ञेयं यावत् सत्त्वेन संस्थितम् ।
रजसा स समायुक्तो वायुर्जीवः प्रकीर्तितः।।१४।।
तमसा च समायुक्तस्तदा हृष्टो भवेद् ध्रुवम् ।
सत्त्वेन च समायुक्तो धर्मज्ञानप्रवर्तकः।।१५।।

रजसा च समायुक्तो भुङ्क्ते च विषयान् प्रभुः।
तमसा च समायुक्तस्तदा पापेन लिप्यते ।।१६।।

ईश्वर कहतें है—हे देवी! तुमने जो पूछा वह बतलाता हूँ। मैं तुमको सार का भी सार तथा शुभ कह रहा हूँ। यह निःसन्देह है। वायु तेज एवं आकाश मिलकर जीव संज्ञक होते हैं। वही जीव प्राण कहा गया है जो बाल के अग्रभाग का सौंवा भाग होता है। जब शुक्र तत्वयुक्त रहता है,तब वह जीव है। वायु जब रजोगुण से युक्त है तब वह जीव है।तमोगुण समायुक्त होनें पर वह निश्चित रूप से प्रसन्न होता है। सत्वगुण युक्त होकर जीव धर्मज्ञान प्रवर्तक हो जाता है। जब वही जीव रजोगुण युक्त होकर विषयों का म्वामी बनकर भोग करने लगता है,तब वह तमोगुण से युक्तावस्था में पापलिप्त होता है।।१२-१६।।

नासाग्रं चैव नाभिं च हृदयं च तृतीयकम् ।
स्थानान्येतानि जीवस्य कल्पितानिशिवेन तु ।।१७।।
हृत्कमलं शिरश्चैव सत्त्वे यावद्व्यवस्थितम् ।
देहसंस्थित इत्युक्तः शिवेन परमात्मना ।।१८।।

शिव के अनुसार नासाग्र,नामि तथा हृदय तीन स्थान हैं। जीवों के इन तीनं स्थानों को शिव ने कल्पित किया है। हृत्कमल तथा शिर सत्वस्थ है।।१७-१८।।

यावन्न चलते जीवस्तावन्निश्चलतां गतः।
नाभिस्थो निष्कलं ज्ञात्वा मुच्यतेजन्मबन्धनात् ।।१९।।
नाभिस्थः सर्वकालेषु हृदि तिष्ठति सर्वगः।
वक्त्रनासापुटान्तःस्थो भुङ्क्ते च विषयान् प्रभुः।।२०।।
जीवः पश्यति देहस्थो जीवते च महेश्वरः।
भुङ्क्ते भोगं शुभं जीवो देही देहे व्यवस्थितः।।२१।।

जब तक जीव चलता नहीं तब तक वह निश्चल है। नाभिस्थ होकर निष्कल परमात्मा को जानकर वह बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह सर्वदा नाभि में रहता है। जब हृदय स्थित है, तब वह सर्वग है। मुख तथा नासापुटों में रहकर वह स्वामी रूप से विषयों का भोग करता है। देहस्थ यह महेश्वर जीव देखता तथा जीवित रहता है। देह में वह शुभाशुभ भोगों को भोगता रहता है।।१९-२१।।

देहं त्यक्त्वा यदा जीवो बहिराकाशमाश्रितः।
तदात्मविषयो जीवो जायते नात्र संशय ।।२२।।
तदिदं निष्कलं ब्रह्म ध्यायेदिति सदाशिवम् ।
ध्यात्वा शिवं च सहजं मुच्यते भवबन्धनात् ।।२३।।

सर्वगः सर्वदेहस्थो नासाग्रे च प्रतिष्ठितः।
प्रत्यक्षः सर्वभूतानां दृश्यते न च लक्ष्यते ।।२४।।

जब जीव देह त्याग करके बहि:आकाश में आश्रित होता है, तब वह नि:सन्देह आत्मविषयक हो जाता है। जब सदाशिव नामक निष्कल ब्रह्म का ध्यान करता है तथा शिव का ध्यान करता है, तब वह भवबन्धन से सहजता से मुक्त हो जाता है। वह सर्वव्यापी सर्वदेहस्थ नासाग्र में प्रतिष्ठित है। वह सब भूत समूह को प्रत्यक्ष है लेकिन उसे कोई लक्ष्य नहीं कर पाता।। २२-२४।।

नाभिमध्ये स्थितं जीवं शुद्धतत्त्वं तु निर्मलम् ।
आदित्यमिव दीप्तं तु रश्मिभिर्ज्वलितं शुभम् ।।२५।।
हकारार्धनिभं जीवं जीवो देहे च संस्थितः।
नाभिरन्ध्रस्थितं ख्यातं विषयान्प्राप्य संस्थितम् ।।२६।।
तेनेदमखिलं व्याप्तं क्षीरं च सर्पिषा यथा ।
कारणं नात्मनश्चैव प्राणापानैस्तु पञ्चभिः।।२७।।
श्वासनिःश्वासयोगेन अध ऊर्ध्वं प्रवर्तते ।
शुष्कपत्रं तु वातेन नीयते गगनं यथा ।।२८।।
तथा भ्रमति जीवा ख्यः प्राणापानैस्तुपञ्चभिः।
चतुष्कलासमायुक्तो भ्राम्यते हृदये स्थितः।।२९।।
गोलकस्तु यथा देवि स्वेन दण्डेन ताडितः।
उत्पत्य पतते शीघ्रमविश्रान्तः पुनः पुनः।।३०।।

नाभिस्थ जीव स्थित है जो शुद्धतत्व निर्मल है वह सूर्य की किरणों के समान दीप्त, शुभ तथा हकारार्द्ध रूप है। इस जीव को देहस्थ जीव देखता है। वह जीव नाभिरन्ध्रस्थित ख्यात है। विषयों को प्राप्त करके स्थित है। वह समस्त संसार में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे घृत एवं क्षीर। इन सबका कारण आत्मा नहीं है। कारण है प्राण आदि ५ वायु। यह श्वास आदि के योग से अध:उर्ध्व प्रवर्त्तित होता रहता है। जैसे सूखा पत्ता वायु के कारण आकाश में उड़ता है, वैसे ही प्राण आदि पंच वायु के द्वारा जीव भ्रमणरत रहता है। यह हृदय में चार कलाओं द्वारा भ्रमण करता स्थित है। जैसे गेंद बल्ले से मारने पर उछलता-गिरता है उसी प्रकार यह जीव भी अविश्रान्तरूपेण उठता-गिरता रहता है।।२५-३०।।

पार्वत्युवाच–

यदिदं सकलं ब्रह्म व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
निष्कलं निर्मलं शान्तं निष्प्रपञ्चमलक्षणम् ।।३१।।

अप्रत्यक्षमविज्ञेयं विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ।
कैवल्यं केवलं शान्तं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।।३२।।
करणयोग विनिर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम् ।
तक्षणान्मुच्यते येन तज्ज्ञानं ब्रूहि शङ्कर ।।३३।।

पार्वती कहती हैं—यह सकल ब्रह्म, व्योमातीत, निरंजन, निष्कल, निर्मल, शान्त, निष्प्रपंचलक्षण, अप्रत्यक्ष,अविज्ञेय, विनोशोत्पत्ति रहित, कैवल्य, केवल, शान्त, शुद्ध स्फटिक के समान, करण योग से रहित, हेतु साधन से वर्जित है। हे शंकर! जीव जिस ज्ञान से मुक्त होता है उसे बताएँ।।३१-३३।।

ईश्वर उवाच–

एतदेव महाभागे कुमारो ब्रह्मणः सुतः।
परिसमेत्य योगीशं विष्णुं विश्वैककारणम् ।
उवाच परया भक्त्या ब्रह्मविद्यां वद प्रभो ।।३४।।
ययाचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य
परात्परं पुरुषं याति विद्वान् ।
तस्मै स होवाच जगत्प्रभुश्च
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवेहि ।।३५।।
न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैकेनामृतत्वमानशुः ।
परेण नाकं निहितं गुहायां
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ।।३६।।
वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद् यतयो विशुद्धाः
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ।।३७।।

ईश्वर कहते हैं—हे महाभागे ! बह्मपुत्र कुमार ने विश्व के एकमात्र कारण योगीश विष्णु के पास जाकर परमभक्ति युक्त कहा कि प्रभो!उस ब्रहाविद्या को कहिए,जिससे शीघ्र सभी पापों. को हटाकर परात्पर पुरुष की प्राप्ति होती है। भगवान विष्णु इसका उत्तर देते हुए कहते हैं— श्रद्धा, भक्ति,ध्यान, योग से उसे प्राप्त करते हैं। कर्म,पूजा,धन से नहीं अपितु त्याग के द्वारा अमृतत्व की शीघ्र प्राप्ति होती है। वह तत्व स्वर्ग से परे है। गुहानिहित है। इसमें त्यागी ही प्रवेश प्राप्त करता है। वेदान्त विज्ञान से विनिश्चित अर्थ को जानने वाले विशुद्ध

जन उसे सन्यास योग द्वारा प्राप्त करते हैं। वे अन्तकाल में ब्रह्मलोक में परमामृत के कारण मुक्त हो जाते हैं॥३४-३७॥

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः
शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः।
स्वस्वाश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि
निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य॥३८॥
हृत्पुण्डरीके विरुजं विशुद्धं
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम्।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं
शिवं शान्तममृतं ब्रह्मयोनिम्॥३९॥
अथादिमध्यान्तविहीनमेकं
विधिं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्॥४०॥
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।
स एव मायापरिमोहितात्मा
शरीरमास्थाय करोति सर्वम्॥४१॥
स्त्रीस्वन्नपानादिविचित्रभोगैः
स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति।
स्वप्ने च जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितविश्वलोके॥४२॥
सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति।
पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः॥४३॥
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीव-
स्ततस्तु जातं सकलं विचित्रम्।
आधारमानन्दमखण्डबोधं
यस्मिंल्लयं याति पुरत्रयं च॥४४॥

साधक एकान्त में सुखासनासीन हो जाये।पवित्र स्थिति में बैठकर ग्रीवा, शिर तथा शरीर को सीधा रखे। सब अपनें अपनें स्थान पर रहे। समस्त इन्द्रियों का निरोध करके अपने गुरुदेव को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर हत्पुण्डरीक में रोग रहित विशुद्ध, विशद, विशोक, अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त रूप, कल्याणकारी, शान्त, अमृत, ब्रह्मा की योनि अर्थात् कारण, आदि-मध्य-अन्त रहित एक व्यापक चित् आनन्द रूप अद्भुद, उमा के साथ स्थित, परमेश्वर, प्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, शान्त, सर्वसाक्षी भगवान शिव का ध्यान करे जो अज्ञान से परे, प्राणियों के आदिकरण हैं। उनका ध्यान करके मुनिगण अज्ञान को पराभूत कर लेते हैं।

जाग्रदावस्था में वह माया परिमोहित स्वरूप युक्त तथा शरीर में स्थित होकर सब करता है। वही स्त्री, अन्न पानादि विविध भोगों से तृप्त होता है। वह स्वप्नावस्था में सुख-दुःख का भोक्ता होकर अपनी मायाकल्पित विश्वभूमि में रहता है। वह सुषुप्तावस्था में जन्मान्तरीण कर्मयोग वशात् सोता तथा जागता है। पुरत्रय में क्रीड़ारत जो जीव है, उसी से विचित्र रूप यह संसार उत्पन्न है। आधार, आनन्द, अखण्ड बोधरूप ब्रह्म में ही यह पुरत्रय लीन हो जाता है।।३८-४४।।

स ब्रह्मा शिवः स इन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट् ।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।४५।।
स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम् ।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये ।।४६।।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
सम्पश्यन् परमं ब्रह्म याति नान्येन हेतुना ।।४७।।
आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ज्ञाननिर्मथनाभ्यासात् पापं दहति पण्डितः।।४८।।

वह ब्रह्मा शिव, इन्द्र तथा परम अक्षर तथा स्वराट् है। वही विष्णु-प्राण,कालाग्नि तथा चन्द्र है। जो भूत,भव्य, सनातन है,सब वही है। उसे जानकर, साधक मुक्ति के परे हो जाता है। अन्य मुक्तिपथ है ही नहीं। स्वयं को सभी में तथा सब को स्वयं में देखने वाला ब्रह्म को प्राप्त करता है, अन्य मार्ग है ही नहीं। अपने को नीचे अरणि बनाये, प्रणव को उपर की अरणि करके ज्ञान द्वारा मन्थन से विद्वान पापों को जला देता है।।४५-४८।।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथिवी विश्वधारिणी ।।४९।।

यत्पुनर्ब्रह्म सर्वात्मा सर्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्यमेव तत् ।।५०।।

इसी से प्राण समस्त इन्द्रियां,आकाश,वायु,ज्योति,जल,विश्वधारिणी,पृथिवी उत्पन्न होते हैं। सब का आत्मा,सब का परम आयतन,सूक्ष्मातिसूक्ष्म जो तत्व है, वह तुम ही हो।।४९-५०।।

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपञ्चं यत्प्रकाशते ।
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ।।५१।।
त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः सोऽहं चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ।।५२।।
मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ।।५३।।

जाग्रत,स्वप्न,सुषुप्ति आदि प्रपंच में जो प्रकाशित है, वह ब्रह्म मैं ही हूं। यह जानकर साधक सर्वबन्धनविमुक्त हो जाता है। धामत्रय में जो भाग्य है,जो भोग एवं भोक्ता है, मै उन सब से विलक्षण हूं। मै चिन्मात्र सदाशिव हूं। मुझसे ही सब उत्पन्न है, मै सब मे प्रतिष्ठित हूं। मेरे मे ही सब विलीन हो जाता है। मैं ही अद्वय ब्रह्म हूँ ।।५१-५३।।

अणोरणीयानहमेव तद्व-
न्महानहं विश्वमहं विचित्रम् ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरणमयोऽहं शिवरूपमस्मि ।।५४।।
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स शृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ।।५५।।
वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ।।५६।।

मै अणु से अणुतर,महान से भी महान हूं। मैं ही विचित्र विश्व हूं। मै ही पुरातन पुरुष, ईश्वर,हिरणमय शिव रूप हूं। हाथ-पैर रहित अचिन्त्य शक्ति हूं।

बिना आँख देखता, बिना कान सुनता हूं। विविक्त रूपेण सब का ज्ञाता हूं। मेरा कोई ज्ञाता ही नहीं, है मै सर्वदा चित्स्वरुप हूं। अनेक जानने वालों का मैं ही वैद्य हूं। उपनिषदों का रचयिता तथा वेदों का वेत्ता मै ही हूं। मेरा न पुण्य है न पाप। न नाश होता है, न जन्म। मेरा शरीर इन्द्रिय तथा बुद्धि नहीं है। भूमि - जल-वायु-आकाश भी मेरा नहीं है ॥५४-५६॥

न भूमिरापो मम नास्ति वह्नि-
र्न चानिलो मेऽस्ति च चाम्बरं च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ।।५७।।

जो इस परमात्मरूप, गुहाशय, निष्कल, अद्वितीय, सबके साक्षी सद्-असद् विहीन परमात्मरूप को जानता है, वह शुद्ध परमात्म रूप को प्राप्त करता है॥५७॥

य एतत्तन्त्रं समधीते सोऽग्निपूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति ।
कृत्याकृत्यात्पूतो भवत्यगम्यगमनात्पूतो भवति ।।५८।।

जो इस तन्त्र को सम्यक्रूपेण पढ़ता है, वह अग्निपूत हो जाता है। सुरापानजन्य पाप से मुक्त हो जाता है। कृत्य-अकृत्य से पवित्र हो जाता है। अगम्यगमन से पूत हो जाता है॥५८॥

।। इति श्रीगन्धर्वतन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे तत्त्वज्ञानोपदेशनामको
द्विचत्वारिंशः पटलः सम्पूर्णः।।४२।।
।। समाप्तमिदं श्रीशिवार्पणं भूयात् ।।

॥ गन्धर्वतन्त्रान्तर्गत पार्वतीश्वर संवाद में तत्वज्ञानोपदेश
नामक ४२ वाँ पटल समाप्त ॥

[redacted]

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

गन्धर्वतन्त्र - हिन्दी व्याख्या सहित - एस.एन.खण्डेलवाल	७००.००
योगिनीतंत्र - हिन्दी व्याख्या सहित - एस.एन.खण्डेलवाल	५००.००
कामाख्यातंत्रम् (वामाचार, कुलाचार, कामाख्यामहात्म्यम्, कामाख्यापूजन) - हिन्दी व्याख्या सहित - अजयकुमार उत्तम	३५०.००
सर्वविजयीतंत्र (श्रीशंकरप्रणीत)- हिन्दी व्याख्या सहित - एस०एन०खण्डेलवाल	४०.००
कुब्जिकातंत्र - हिन्दी व्याख्या सहित - एस०एन०खण्डेलवाल	५०.००
स्तोत्र-महार्णव (श्रीमन्महेश्वरानन्दसरस्वतीविरचित) - अजयकुमार उत्तम (देवीखण्ड)	२७५.००
स्तोत्र-महार्णव (श्रीमन्महेश्वरानन्दसरस्वतीविरचित) - अजयकुमार उत्तम (देवताखण्ड)	२००.००
उड्डामरेश्वर तन्त्र - हिन्दी व्याख्या सहित - डॉ० अजय कुमार उत्तम	७५.००
दिव्याङ्गनातंत्रम् - हिन्दी व्याख्या सहित - अजयकुमार उत्तम	४०.००
भूत-डामर-महामंत्र-भाषा टीका सहित - अजयकुमार उत्तम	५०.००
सौन्दर्य लहरी-भाषा टीका सहित - अजयकुमार उत्तम	४०.००
निरुत्तरतंत्रम् -भाषा टीका सहित - अजयकुमार उत्तम	५०.००
श्रीताराकर्पूरस्तोत्रम् -'माधवी' हिन्दी व्याख्या सहित-अजयकुमार उत्तम	२०.००
भुवनेश्वरी रहस्यम् -हिन्दी व्याख्या सहित - अजयकुमार उत्तम	१००.००
गुप्तसाधनतंत्र - अजयकुमार उत्तम	३०.००
गौरीकाञ्चालिकातंत्र - अजयकुमार उत्तम	४०.००
महानिर्वाणतंत्र -संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित - अजयकुमार उत्तम	५००.००
षट्चक्रनिरूपण -संस्कृत, हिन्दी व्याख्या सहित - अजयकुमार उत्तम	१००.००
दुर्गामन्त्रराज कल्पतंत्रम् - सम्पा०-अजय कुमार उत्तम	३५०.००
कालीतन्त्र - हिन्दी व्याख्या सहित - अजय कुमार उत्तम	३००.००
वर्ण-बीजकोष - अजय कुमार उत्तम	५००.००

[redacted]A SANSTHAN
संस्थान
विक्रेता
-221002 (उ०प्र०)

गन्धर्वतन्त्रम् * **मूल्य : 700/-**